आनन्दाश्रमसंस्कृतग्रन्थावलिः ।

ग्रन्थाङ्कः ७२

# वैद्यनाथकृतगदाटीकासंवलितः परिभाषेन्दुशेखरः ।

एतत्पुस्तकं

वे० शा० रा० रा० गोखले इत्युपाह्वैर्गणेशशास्त्रिभिः संशोधितम् ।

तत्

हरि नारायण आपटे

इत्येतैः

पुण्याख्यपत्तने

आनन्दाश्रममुद्रणालये

आयसाक्षरैर्मुद्रयित्वा

प्रकाशितम् ।

शालिवाहनशकाब्दाः १८३५

खिस्ताब्दाः १९१३



मूल्यमाणकषट्कसहितं रूपकद्वयम् । ( २॥ )

## आदर्शपुस्तकोल्लेखपत्रिका ।

अस्य गदाटीकासहितस्य परिभाषेन्दुशेखरस्य पुस्तकानि यैः परहितैकपरतया संशोधनार्थं प्रदत्तानि तेषां नामादीनि संज्ञाश्च प्रदर्श्यन्ते—

(क.) इति संज्ञितम्—कै० नारायणशास्त्री साठे इत्येतेषाम् । अस्य लेखनकालः शके १७८४

(ख.) इति संज्ञितम्—रा० रा० निळोपंत वझे इत्येतेषाम् । अस्य लेखनकालः शके १७१२

(ग.) इति संज्ञितम्—आनन्दाश्रमस्थम् । अस्य लेखनकालः संवत् १८३१

(घ.) इति संज्ञितम्—वे० शा० सं० रा० वासुदेवशास्त्री अभ्यंकर इत्येतेषाम् । अस्य लेखनकालः शके १८१२

(ङ.) इति संज्ञितम्—वे० शा० रा० काशीनाथशास्त्री आगाशे इत्येतेषाम् । अस्य लेखनकालः शके १७२६

(च.) इति संज्ञितम्—पुण्यपत्तनस्थानां रा० रा० काशिनाथ बळवंत पेणसे इत्येतेषाम् । अस्य लेखनकालः शकः १८२९.

# शुद्धिपत्रम् ।

—:*:—

| पृष्ठम् । | पङ्क्तिः । | अशुद्धम् । | शुद्धम् । |
|---|---|---|---|
| ७ | २३ | ह्या | ह्या |
| १० | १७ | पि | पी |
| १३ | १३ | था चोप | था चाव उप |
| १४ | २८ | त्त्व | त्व |
| १५ | १६ | क्ताद | क्तदा |
| १६ | ६ | ष्ट्य | ष्ट्य |
| १९ | २६ | स्वा | वा |
| २० | २६ | था | या |
| २२ | २ | त्व | द्व |
| २३ | ९ | दास | द स |
| २३ | १६ | धयि | धीय |
| २७ | २१ | स | सं |
| २९ | ६ | थ | र्थ |
| ३१ | २९ | चो | च |
| ३२ | ११ | स्व | स्व |
| ३२ | १४ | स्व | स्वं |
| ३६ | ६ | ष्टे इ | ष्टावि |
| ३६ | १७ | द्धेर्थे | द्धेऽर्थ |
| ३७ | २६ | तत्ये | तेत्य |
| ३८ | १७ | व. | व |
| ३८ | १८ | सू | सू |
| ४० | १८ | स्य | त्य |
| ४१ | ११ | र | इ |
| ६७ | ८ | ह्व | ह्व |
| ७१ | १४ | वात | वर्ति |
| ७१ | १६ | वु | वु |
| ७१ | २७ | म | म्रा |
| ७१ | २८ | द्ध | द्धु |

| पृष्ठम् । | पङ्क्ति । | अशुद्धम् । | शुद्धम् । |
|---|---|---|---|
| ७२ | २१ | सु | मु |
| ८७ | २० | ग | ङ्ग |
| ९२ | २२ | त् । क्त | त् । उक्त |
| ९५ | २४ | त्त | त |
| ९८ | ३० | स्थ | स्य |
| ९९ | १७ | त्वं | त्त्वं |
| ९९ | २० | स्या | स्था |
| १०० | २५ | स्व | स्वं |
| १०० | २९ | त्व | त्त्व |
| १०१ | १५ | न्यु | न्त्यु |
| १०१ | २८ | भित | भिमत |
| १०३ | ११ | स्थ | स्य |
| १०४ | २६ | न्मतुप् | दिष्ठन् |
| १०४ | २७ | श्र | श्रु |
| १०५ | १० | तोला | तोऽला |
| १०६ | १५ | प्यो | पो |
| १०७ | २३ | स्था | त्या |
| १०८ | २७ | स्यः | स्य |
| १०९ | ७ | पि त्वा | पि तत्त्वा |
| १०९ | १२ | त्क्ये | क्त्ये |
| १११ | १४ | तृं बृ | तृंबृ |
| १११ | २६ | स्था | स्याः |
| ११७ | १९ | द्धि | द्ध |
| ११७ | २५ | य | यं |
| ११७ | २७ | दमि | दनमि |
| १२० | १० | लो | लौ |
| १२० | २४ | स्वे | से |
| १२१ | २२ | द्र | न्द्र |
| १२६ | ४ | त्या स्या | त्याऽस्या |
| १३० | ५ | प्त्ये | प्त्यै |

| पृष्टम् । | पङ्क्तिः । | अशुद्धम् । | शुद्धम् । |
|---|---|---|---|
| १३७ | १७ | त्त | न्त |
| १३८ | ६ | ष | प |
| १३८ | १० | र्थ | र्थ्य |
| १४० | १३ | वा | बा |
| १४२ | ११ | स्ति | त्ति |
| १४४ | १२ | थ्य | घ्य |
| १५२ | २४ | र्था | पी |
| १५६ | ७ | ध | व |
| १५८ | २३ | सां | स |
| १५९ | ३ | धा | धो |
| १५९ | १३ | ड्यु | ड्यु |
| १५९ | २१ | ने | नै |
| १५९ | ३१ | जित्य | जित्याशये |
| १६१ | १५ | ते | वे |
| १६४ | २४ | ढ्या | ढ्या |
| १६४ | २५ | विभक्तौ किमुक्तं | किमुक्तं विभक्तौ |
| १७४ | १९ | पा | प |
| १७७. | १२ | धा | घा |
| १७८ | ५ | घौ | ॆ |
| १७८ | १६ | वि वि | वि |
| १७९ | २५ | रीव | रवि |
| १८१ | १७ | थोः | योः |
| १८१ | २२ | स | स |
| १९१ | ४ | स्त्वं | त्वं |
| १९२ | ४ | ब्द् | द्र |
| १९२ | १७ | र्थं | र्यं |
| १९२ | २० | दत् | त् |
| २०० | १७ | कृडिचे | कृडितिचे |
| २०८ | २६ | ता | त |
| २०९ | १४ | स्वा | स्वा |
| २११ | १५ | न्या | न्या |

| पृष्ठम् । | पङ्क्ति । | अशुद्धम् । | शुद्धम् । |
|---|---|---|---|
| २१४ | २२ | मै | मे |
| २१६ | ९ | त्र | त्रे |
| २२१ | २० | ड्य | ण्डय्य |
| २२२ | १४ | क्ता | क्त |
| २२३ | २० | क्ष्य | क्ष्य |
| २२४ | २२ | स्या | स्या |
| २३१ | ६ | र्धा | र्धा |

समाप्तम् ।

ॐ तत्सद्ब्रह्मणे नमः ।

# परिभाषेन्दुशेखरः

वैद्यनाथकृतगदाटीकोपेतः।

**नत्वा साम्बशिवं ब्रह्म नागेशः कुरुते सुधीः ।**
**बालानां सुखबोधाय परिभाषेन्दुशेखरम् ॥ १ ॥**

**प्राचीनवैयाकरणतन्त्रे वाचनिकान्यत्र पाणिनीयतन्त्रे ज्ञापकन्यायसिद्धानि भाष्यवार्तिकयोरुपनिबद्धानि यानि परिभाषारूपाणि तानि व्याख्यायन्ते ।**

---

ब्रह्मादयो यस्य न पारमापुवन्गङ्गाऽद्भुत मस्तकदेशवासिनी ।
वामार्धदेहाऽपि न चण्डिकाऽऽप य ध्यायामि देवं सनकादिवन्द्यकम् ॥ १ ॥
वैद्यनाथः पायगुण्डो नत्वा नागेश्वर गुरुम् ।
विवृतिं परिभाषेन्दुशेखरे तनुते गदाम् ॥ २ ॥

प्रारिप्सितस्य ग्रन्थस्य निर्विघ्नपरिसमाप्त्यर्थमिष्टदेवतानतिरूप मङ्गलमाचरञ्शिष्याशिक्षायै व्याख्यातृश्रोतॄणामनुषङ्गतो मङ्गलाय च निबध्नाति—**नत्वेति** । निर्गुणमूर्तेर्नत्यसम्भवादाह—**साम्बेति** । रूपकमिदम् । बालाना, भाष्यादितः परिभाषार्थनिर्णयासमर्थानाम् । परिभाषैवेन्दुरर्थप्रकाशकत्वात्स शेखरे यस्येति । ग्रन्थपक्षे तत्र तासामेव व्याख्येयत्वेन वन्द्यत्वान्मस्तकधृतत्वमारोप्यते । यद्वा स शेखरो भूषण यस्य । यद्वा तस्य शेखर आश्रयः । यद्वा तासां प्रकाशकालकारस्तम् । शिवपक्षे तु परिभाषा इवेन्दुरित्यादि स्पष्टमेव । ननु कास्ता. परिभाषा अत आह—**प्राचीनेति** । * इन्द्रादीत्यर्थ । वाचनिकानि, सूत्ररूपेण पठितानि । अत्र, अस्मिन् । एवमग्रेऽपि । ज्ञापकेत्यस्य प्रायेणेत्यादिः । तथा च वाचनिकानामपि तत्सहचरितानां सग्रहः । न्यायसिद्धाज्ज्ञापकसिद्धस्य प्राबल्येनाभ्यर्हितत्वाज्ज्ञापकशब्दस्य द्वद्वे पूर्वनिपातः । तत्रैतच्छास्त्रीयं लिङ्ग ज्ञापकम् । एतच्छास्त्रलोकतन्त्रान्तरप्रसिद्धा युक्तिर्न्यायः । सूत्रपाठस्थपरिभाषाणामत्राव्याख्यानाय [ + वाचनिकाना सग्रहाय ] प्राचीनोक्तानां कासा चिदप्रामाण्याय चाऽऽह—**भाष्येति** । [ ×तयोस्तत्त्वेन पठितानीत्यर्थ. । तथा च सौत्रव-

---

* ‘ इन्द्रश्चन्द्र काशकृत्स्नापिशली शाकटायन । पाणिन्यमरजैनेन्द्रा जयन्त्यष्टाऽऽदिशाब्दिका. ’ इद पद्य कपुस्तकस्थम् । + धनुश्चिह्नान्तगतो ग्रन्थो घ पुस्तकस्थ. । × धनुश्चिह्नान्तर्गतो ग्रन्थो घ. पुस्तकस्थः ।

---

१ घ. °माययुर्गङ्गा° । २ ङ. °अस्मिन्पक्षे । ३ ग ङ. °य. । अनेन सू° । ४ ग. ङ. °ख्यानेऽपि न क्षतिरिति सूचितम् । प्रा° । ५ ग. ङ. °व्यायाऽऽह ।

ननु 'लण्' 'अइउण्' सूत्रयोर्णकारस्यैवोपादानेनाणिण्ग्रहणेषु संदेहादनिर्णयोऽत आह—

**व्याख्यानतो विशेषप्रतिपत्तिर्न हि संदेहादलक्षणम् ॥ १ ॥**

विशेषस्यान्यतराद्यर्थरूपस्य व्याख्यानाच्छिष्टकृतात्प्रतिपत्तिर्निश्चयो हि यतः संदेहाच्छास्त्रमलक्षणमननुष्ठापकं लक्षणमलक्षणं तथा न शास्त्रस्य निर्णयजनकत्वौचित्यादित्यर्थः। असंदिग्धानुष्ठानसिद्ध्यर्थेऽत्र शास्त्रे संदिग्धोच्चारणरूपाचार्यव्यवहारेण संदेहनिवृत्तेर्व्याख्यानातिरिक्तनिमित्तानपेक्षत्वं बोध्यत इति यावत्। तेन 'अणुदित्सवर्णस्य' [पा०सू०१।

त्तन्निरासस्तत्सग्रहश्च। एतदर्थमेव वार्तिकपदम्। अन्यथा भाष्य इत्येव वदेत्।] अनेन रूढ्यर्थतावच्छेदकमुक्तम्। तथा च शुद्धरूढमिद परिभाषापदम्। यद्वा योगरूढमस्तु। परितो भाष्यते या सेति योगसभवात्। अत एव 'परितो व्यापृता भाषा परिभाषा प्रचक्षते' इत्यभियुक्तोक्तिः परिभाषा पुनरेकदेशस्थेत्यादिभाष्य च सगच्छते। एतेन शुद्धयौगिकमिदमिति भ्रान्तोक्तिरपास्ता। सज्ञादिष्वतिप्रसङ्गादिति भाव'। पुनः प्रतिज्ञा तु स्पष्टार्था। पद्यात्तथाऽप्रतीतेः। तत्र भाष्ये सर्वतः पूर्व व्याख्यानत इत्यस्या उक्तत्वेन सर्वशास्त्रोपकारकत्वेन च ता तावद्वक्तुं शङ्कते—**नन्विति। विशेषेति।** कर्तृकर्मेति कर्मषष्ठ्यन्तेन समासः। उभयप्राप्तावित्यस्योभयप्रयोग एव प्रवृत्तेरत्राप्रवृत्त्या कर्मणि चेति निषेधाप्रवृत्तेः। शेषषष्ठ्या वा। तद्ध्वनयन्नाह—**विशेषेति।** बहुसदेहेऽन्यतमस्याऽऽदिना परामर्शः। **व्याख्यानादिति।** 'पदच्छेद पदार्थोक्तिर्विग्रहो वाक्ययोजना। आक्षेपोऽथ समाधान व्याख्यानं षड्विध मतम्' *इत्युक्तोपदेशपरम्परारूपागमादित्यर्थः। नन्वेवमतिप्रसङ्गोऽत आह—**शिष्टेति।** भाष्यकारादीत्यर्थ। प्रस्तुतत्वादाह—**शास्त्रमिति।** प्रकृतशास्त्रमित्यर्थः। ननु तत्र लक्षणत्वस्य ब्रह्मणाऽपि निषेधो दुष्करोऽत आह—**अननुष्ठेति।** तदर्थान्तर्भावेणात्र वृत्तिरिति भावः। **औचित्यादिति।** अन्यथा शास्त्रानर्थक्यापत्तेरिति भावः। नन्वणादिषु भाष्योक्तज्ञापकैरेव सदेहपरिहारे किमर्थ परिभाषेयमत आह—**असंदीति।** सिद्ध्यर्थे, सिद्धिफलके। सदिग्धपदेऽशीआद्यच्। सदिग्धार्थप्रतिपादकणकारानुबन्धोच्चारणरूपशिवव्यवहारेणेत्यर्थः। तथा च तैर्महद्भिः प्रयत्नैः संदेहपरिहारेऽपि प्रतिपत्तिगौरवं ज्ञापकशून्य+स्थलेऽनिर्वाहश्चेतीयमावश्यिका। अन्यथा लाघवाय वर्णान्तरमेवानुबध्येतेति भावः। ननु ज्ञापितेऽपि प्रवर्तकतया निवर्तकतया वा नास्य चारितार्थ्यमत आह—**बोध्यत इति।** तथा चोपदेशपरम्परया सिद्ध एवायमर्थस्तादृशव्यवहारेण बोध्यत इति नान्यत्रेवात्र ज्ञापकता भगवतोऽभिमतेति भावः। उक्तदोषोद्धाररूपमेतत्फलमाह—**तेनेति।** व्याख्यानेनैवेत्यर्थः।

* ङ पुस्तके इत्येवरूपादि° इति पाठान्तरम्। + क पुस्तके अणोऽप्रगृह्येत्यादौ।

१ ग. भाष्यीयक्रमेणैव तासा व्याख्यानमिति सूचयितु ताघच्छङ्क°।

१ । ६९ ] इत्येतत्परिहाय पूर्वेणाण्ग्रहणं, परेणेण्ग्रहणमिति लण्सूत्रे* भाष्ये स्पष्टम् ॥ १ ॥

तत्र संज्ञापरिभाषाविषये पक्षद्वयमित्याह—

**यथोद्देशं संज्ञापरिभाषम् ॥ २ ॥**

**कार्यकालं संज्ञापरिभाषम् ॥ ३ ॥**

उद्देशमनतिक्रम्य यथोद्देशम् । उद्देशश्चोपदेशदेशः । अधिकरणसाधनश्चायम् । यत्र देश उपदिश्यते तद्देश एव वाक्यार्थबोधेन गृहीतशक्त्या गृहीतपरिभाषार्थेन च सर्वत्र शास्त्रे व्यवहारः । देशश्चोच्चारणकाल एवात्र शास्त्रे व्यवह्रियते । तत्तद्वाक्यार्थबोधे जाते भविष्यति किंचिदनेन प्रयोजनमिति ज्ञानमात्रेण संतुष्यद्यथाश्रुतग्राहिप्रतिपत्त्रपे-

[ * लण्सूत्र इति । तत्र हि ढ्लोपे पूर्वस्य दीर्घोऽण इत्यादिज्ञापकादणुदित्सूत्रातिरिक्ते पूर्वेणैव । अणुदित्सूत्रे तु ऋत उदित्यादिज्ञापकात्परेण । इण इत्येव सिद्धे य्वोरिति ज्ञापकादिण्परेणैवेत्युक्तम् ] **भाष्य इति** । अनेनैव सति ज्ञापकानुसरणक्लेशो वृथेति सूचितम् । एतेन तेषूक्तार्थसिद्धिर्न व्याख्यानमात्रात्किंतु + सज्ञापकादिति तथा प्राचोक्तमयुक्तमिति सीरदेवभ्रान्ताद्युक्तमपास्त भाष्यविरोधापत्तेरिति दिक्[1] ॥ १ ॥

अथ सीरदेवादिभिरत्रानुक्तमपि परिभाषाद्वय सज्ञापरिभाषाणा सर्वशास्त्रोपकारकत्वादादौ तत्प्रकरणोल्लेखवत्तद्विषयकमादौ वक्तु पूर्वसगतिमाह—**तत्रेति** । शास्त्र इत्यर्थः । अलक्षणमित्यनेन तस्य पूर्वमुपस्थितत्वादिति भावः । **संज्ञेति** । इतरेतरद्वन्द्वः । अग्रे समाहारद्वन्द्वः । तत्राऽऽद्याया अर्थमाह—**उद्देशमिति** । ल्यबन्तस्य वर्तत इति शेष । उद्देशोपदेशयोरन्यत्र क्वचिद्भेदादुद्देशपदस्य[2] भावघञन्तत्वाच्चाऽऽह—**उपदेशेति, अधीति च** । तथा चोपदेश एवात्रोद्दिशेरर्थः । अयम्, उद्देशशब्दः । व्युत्पत्तिं सूचयितुमत्र पक्षे निर्वाहमाह—**यत्रेति** । एवेन विधिदेशव्यावृत्ति. । सज्ञास्थल आह—**गृहीतेति** । परिभाषास्थल आह—**गृहीतपरीति** । उभयत्र कर्मधारय. । सर्वत्र, अष्टाध्याय्याम् । ननु कोऽसावत्र देशो यत्र वाक्यार्थबोधः । प्रसिद्धदेशस्त्वत्र न सभवतीत्यत आह—**देशश्चेति** । चस्त्वर्थे । **व्यवह्रियत इति** । तथा च न मुख्य तत्त्व किं त्वारोपितमिति भावः । नन्वेवं तदानीं विधिवाक्यार्थाज्ञानेन किमस्य फलमित्याकाङ्क्षाशान्त्यभावेन दुष्ट एवायं पक्षोऽत आह—**तत्तदिति** । सज्ञापरिभाषावाक्यार्थेत्यर्थ. । अनेन, शक्तिग्रहेण परिभाषार्थग्रहेण च । मात्रपदेन विशेषज्ञानव्यावृत्ति । नन्वत्र पक्षेऽग्नी इत्यादौ प्लुतस्यासिद्धत्वेन तत प्रागेव प्लुताभावपक्षेऽनुनासिकप्रतिबन्धेन फलवत्या प्रगृह्यसंज्ञाया ततः प्लुते तं द्विमात्रत्वेन पश्यन्त्या

* चिह्नान्तर्गतो ग्रन्थो ङ पुस्तकस्थ । + ङ पुस्तके ज्ञापकसहितादित्यर्थः ।

१ ग. °थ प्रतिज्ञानुरोवेनाऽऽह—त° । २ घ. °दुपदेशप° ।

क्षोऽयं पक्ष इतीद्धृत्सूत्रे [ १ । १ । ११ ] कैयटः । केचित्तु परिभाषाविषये 'तस्मिन्' ( १ । १ । ६६ ) इत्यादिवाक्यार्थबोधे सप्तमीनिर्देशादि क्वेति पर्यालोचनायां सकलतत्तद्विध्युपस्थितौ सकलतत्तत्संस्काराय गुणभेदं परिकल्प्यैकवाक्यतयैव नियमः । कार्यकालपक्षे तु त्रिपाद्यामप्युपस्थितिरिति विशेषः । एतदेवाभिप्रेत्याधिकारो नाम त्रिप्रकारः कश्चिदेकदेशस्थः सर्वं शास्त्रमभिज्वलयति यथा प्रदीपः सुप्रज्वलितः सर्वं वेश्माभिज्वलयतीति 'षष्ठी स्थाने' ( १ । १ । ४९ ) इति सूत्रे भाष्य उक्तम् । अधिकारशब्देन पारार्थ्यात्परिभाषाऽप्युच्यते । कश्चित्परिभाषारूप इति कैयटः । दीपो यथा प्रभाद्वारा सर्वगृहप्रकाशक एवमेतत्स्वबुद्धिजननद्वारा सर्वशास्त्रोपकारकमिति तत्तात्पर्यम् । एतच्च पक्षद्वयसाधारणं भाष्यं पक्षद्वयेऽपि प्रदेशैकवाक्यताया इतः प्रतीतेः । तत्रैतावान्विशेषः—यथोद्देशे परिभाषादेशे सर्वविधिसूत्रबुद्धावात्मभेदं परिकल्प्य तैरेकवाक्यता परिभाषाणाम् । तदुक्तं 'क्ङिति च' ( १।१।

---

अपि संज्ञायाः पुनः प्रवृत्तौ बीजाभावादल्विधित्वेन स्थानिवत्त्वाभावाच्चाप्रगृह्यत्वेनानुनासिकः स्यादिति चेन्न । सञ्ज्ञायाः कार्यार्थितया पुनः प्रवृत्तौ कार्यसिद्धिरूपबीजसत्त्वेन पुनस्तस्याः सुलभत्वात् । स्पष्टं चेदं तत्रैव भाष्ये । दुष्टत्वाशङ्कैव नास्तीति सूचयितुं कैयट इति सूचितामरुचिमुक्तपक्षे ध्वनयितुं च सिद्धान्तभाष्यमतमाह—**केचिदित्यादिना** । केचिदिति । भाष्यतत्त्वविद इत्यर्थः । **परीति** । संज्ञाया विशेषस्य वक्ष्यमाणत्वादिति भावः । बोधे, सतीति शेषः । आदिभ्यामग्रिमसूत्रतद्विषययोर्ग्रहणम् । **सकलतत्तद्विधीति** । सप्तमीनिर्देशादिघटितसर्वविधीत्यर्थः । एवमग्रेऽपि । संस्कारः, विशिष्टवाक्यार्थानिश्चयः । गुणभेदं, परिभाषाभेदम् । एवेन भिन्नवाक्यताव्यावृत्तिः । नियमः, इतरव्यावृत्तिः । ननु यथोद्देशेऽप्येवं पदैकवाक्यताया को भेदः कार्यकालपक्षादत आह—**कार्येति** । अपिः सपादसप्ताध्यायीसमुच्चायकः । तथा च तत्र पक्षे सर्वैकवाक्यताऽत्र तु त्रिपादीभिन्नैर्नैवेति भेदः । वाक्यार्थबोधस्तु स्वगृह उभयथाऽप्यस्त्येवेति भावः । अत्र प्रमाणमाह—**एतदेवेति** । पक्षद्वयेऽपि पदैकवाक्यतयैव नियम इत्येतदेवेत्यर्थः । नामेति निश्चये । ननु परिभाषाप्रसङ्गेऽधिकार इत्युक्तिरसंगताऽत आह—**अधीति** । तदुभयाशयमाह—**दीप इति** । एतदेवाभिप्रेत्येत्युक्तमभिप्रायमाह—**एतच्चेति** । **पक्षद्वयेति** । यथोद्देशकार्यकालेत्यर्थः । प्रदेशः, विधिः । इतः, उक्तभाष्यात् । तत्र, द्वयोः पक्षयोरेकवाक्यतायाम् । आत्मभेद, परिभाषाभेदम् । तैः, विधिसूत्रैः ।

---

१ ङ. °त्वाच्चाप्र° । २ घ. °ति । युक्तिभा° । ३ घ. ङ. °रयुक्ताऽ° । ४ ङ. °योर्मध्ये । आ° ।

५) इति सूत्रे कैयटेन—यथोद्देशे प्रधानान्यात्मसंस्काराय संनिधीयमानानि गुणभेदं प्रयुञ्जत इति । कार्यकाले तु तत्तद्विधिप्रदेशे परिभाषाबुद्ध्यैकवाक्यतेति । अत्रैकदेशस्थ इत्यनेन तत्रतत्र तत्तद्बुद्धावपि तत्तद्देशस्थत्वं वारयति । यथा व्यवहर्तॄणां कार्यार्थमनेकदेशगमनेऽपि न तत्तद्देशीयत्वव्यवहारः किं त्वभिजनदेशीयत्वव्यवहार एव तद्वत् । निषेधवाक्यानामपि निषेध्यविशेषाकाङ्क्षत्वाद्विध्येकवाक्यतयैवान्वय इति परिभाषासादृश्यात्परिभाषात्वेन व्यवहारः क्ङिति च(१।१।५)इत्यत्र भाष्ये । तत्रैकवाक्यता पर्युदासन्यायेन। प्रसज्यप्रतिषेधेऽपि तेन सह वाक्यार्थबोधमात्रेणैकवाक्यताव्यवहारः । संज्ञाशास्त्रस्य तु कार्यकालपक्षे न पृथ-

---

प्रधानानि, विधिसूत्राणि । अनेन तत्तद्विषयकनिषेधोपप्लवे बीजं दर्शितम् । गुणभेद, निषेधभेदम् । तत्तदित्यनेन यौगपद्य निरस्तम् । एव च यथोद्देश एकदेशस्थत्वं स्पष्टमेव । कार्यकालेऽपि तस्यैव स्वविषयविषयकसर्वशास्त्रैकवाक्यत्वात्तत्त्वं प्रसिद्धदेशस्थेनैव । तत्रतत्र स्वबुद्धिजननादिति भावः । तदाह—**अत्रैकेति** । उक्तभाष्य इत्यर्थ. । कार्यकाल इति भाव. । [ * नन्वत्र पक्षे ङः सीत्यादौ तस्मिन्निति तस्मादित्युभयोपस्थितावेकदेशस्थत्वेन परत्वादुभयनिर्देश इति नियमानुपपत्तिरत आह—**वारयतीति** ] एवः स्पष्टार्थः[3] । प्रसिद्धदेशस्थत्वमेव सर्वथा बोधयितुमेकदेशस्थ इत्युक्तमिति तात्पर्यम् । ननु कार्यकाल[4]पक्षेण समाध्युक्तिस्तत्र भाष्येऽयुक्ता न हि निषेधस्य परिभाषात्वव्यवहारोऽत आह—**निषेधेति** । अपिर्मुख्यसमुच्चायक· । तस्य त्वेन व्यवहार इत्यत्रान्वयः । **निषेध्येति** । अनुवृत्तगुणवृद्धिश्रुत्या तद्विशेषरूपनिषेध्याकाङ्क्षाया यावद्गुणवृद्धिविधायकशास्त्रोपस्थितौ तत्ताद्विषयविषयकनिषेधवाक्यानां व्यक्तिपक्षे विनिगमनाविरहादुपप्लवेनैकवाक्यतयैवान्वय इत्यर्थ. । **इतीति** । तथाऽन्वितत्वरूप यत्परिभाषासादृश्य तस्मादित्यर्थः। इतिरभेद इति केचित्। वस्तुत इतिर्हेतौ सादृश्यस्य पदार्थान्तरत्वादिति बोध्यम् । तथा चाऽऽरोपित तत्त्व न तु मुख्यमिति भावः । ननु विरोधात्कथमेकवाक्यताऽत आह—**तत्रैकेति** । तयोर्विधिनिषेधयोरित्यर्थः । पर्युदासेत्यनेन पदैकवाक्यता सूचिता । सा च क्ङिड्ङिन्नसार्वधातुकादौ गुण इत्यादिरूपा शाब्दी । नन्वसमस्ते प्रायेण निषेध एव नञर्थ इतीदमसगतमत आह—**प्रसज्येति** । तेन, विधिना । साहित्यं चाव्यवहितोत्तरत्वसंबन्धेन । तथा च वाक्यैकवाक्यता । अनन्तरं सा च प्रागुक्तरूपाऽऽर्थीति भावः । एव यथोद्देशे कार्यकाले च परिभाषास्थले निर्णयं कृत्वा सज्ञास्थले तमाह—**संज्ञेति** । **पृथगिति** । स्वदेश इत्यर्थः ।

---

* धनुश्चिह्नान्तर्गतो ग्रन्थो ङ. पुस्तके वर्तते ।

---

१ ङ. °काले तु स्वविषयस° । २ ङ °त्वं पठितदे° । ३ ङ '°र्थः । पठितदे° । ४ ग. ऌय· थाद्देशपक्षभेदेन पक्षद्वयोक्तिस्तत्र । ५ ग नन्वेव पक्षान्तरेऽनिर्वाहोऽत आ° ।

त्वाक्यार्थबोधः किं तु प्रदेशवाक्यार्थेन सहैव । अत एव 'अणोऽप्रगृह्यस्य' ( ८ । ४ । ५७ ) इत्येतदेकवाक्यतापन्नम् ' अदसो मात् ' ( १ । १ । १२ ) इत्येतत्प्रति न मुत्वाद्यसिद्धम् । असिद्धत्वस्य कार्यार्थतया कार्यज्ञानोत्तरमेव प्रवृत्तिः कार्यज्ञानं च प्रदेशदेश एवेति तद्देशस्थस्यासिद्धत्वात्पूर्वग्रहणेनाग्रहणात् । एवं तद्बोधोत्तरमेव विरोधप्रतिसंधानं चेति तत्रत्यपरत्वमेव विप्रतिषेधसूत्रप्रवृत्तौ बीजम् । अत एव कार्यकालपक्षेऽयादिभ्यः परैव प्रगृह्यसंज्ञेति 'अदसो मात्' ( १ । १ । १२ ) इति सूत्रे भाष्य उक्तम् । आकडाराधिकारस्थभपदसंज्ञादिविषये तु यथोद्देशपक्ष एवेति तत्रत्यपरत्वेनैव बाध्यबाधकभावः । पदादिसंज्ञानां तत्र

---

**सहैवेति** । प्रागवत् । तथा च वाक्यैकवाक्यतेति भावः । अत्र मानमाह—**अत एवेति** । तत्रैव बोधादेवेत्यर्थ । ननु तदेकवाक्यत्वेनाग्रे गमनेऽपि पूर्वं पाठेन तत्त्वं दुर्वारमतोऽनसिद्धत्वे हेतुमाह—**असिद्धत्वेत्यादिग्रहणादित्यन्तेन** । असिद्धत्वस्य, पूर्वत्रासिद्धमित्यतिदेशस्य । **प्रदेशेति** । वाक्यार्थबोधोत्तरमेव तज्ज्ञानादिति भावः । तथा च यद्देशे वाक्यार्थबोधस्तद्देशस्थत्वमेव तस्य । तदाह—**तद्देशस्थस्येति** । गमकान्तरमत्रैव वक्तुमाह—**एवमिति** । उक्तवदित्यर्थः । **तद्बोधोत्तरमेवेति** । प्रदेशदेश एव वाक्यार्थबोधोत्तरमेवेत्यर्थ· । चेन तत्कार्यविज्ञानसमुच्चयः । **तत्रत्येति** । प्रदेशदेशस्थेत्यर्थः । अत्र मानमाह—**अत एवेति** । प्रदेशस्थपरत्वस्य तद्बीजत्वादेवेत्यर्थः । **परैवेति** । उक्त एवास्य भाष्यस्याऽऽशयः । पूर्वं पाठेऽपि तत्र वाक्यार्थबोधाभावादिति भावः । एवकारेण सज्ञास्थले क्वचित्पाठकृत पूर्वत्व विद्यमानमपि विप्रतिषेधसूत्रप्रवृत्तौ न नियामकमिति सूचितम् । परिभाषाणा तु तत्पक्षेऽपि स्वदेशेऽर्थबोधोऽस्त्येवेति तद्विषये विप्रतिषेधसूत्रप्रवृत्तौ पाठकृतमेव तन्नियामकमिति तत्तात्पर्यमित्यनुपदमेव स्फुटी भविष्यति मूले । नन्वेव भपदसज्ञादाविष्टबाध्यबाधकभावो न स्यादत आह—**आकडारेति** । **भपदसंज्ञादीति** । [ * स्वादिष्वित्यादिविहितासु मियोबाध्यबाधकभावापन्नास्वित्यर्थ. । तथा च सुप्तिङन्तमित्यस्य कार्यकालत्वेऽपि न बाधकम् ] सज्ञाद्वयमुपदेशेन यत्र प्राप्त तत्रेत्यर्थः । तेन न पूर्वापरविरोधो न वा भाष्यशब्दरत्नादिविरोध इति भावः । [ + प्यङ इतिसूत्रस्थ भाष्य त्वेकदेश्युक्तिः ] **तत्रत्येति** । स्वदेशस्थेत्यर्थ. । [ × एतेन कार्यकालपक्षे यूष्ण इत्यत्राल्लोपे नलोपापत्तिः स्वादीत्यस्यासिद्धत्वाद्यचि भमित्यनेन तद्बाधायोगादित्यपास्तम् । ] नन्वेव तद्दृष्ट्या त्रिपाद्या असिद्धत्वात्तत्र प्रवृत्तिर्न स्यादत आह—**पदादीति** । तत्र, स्वगृहे ।

---

* धनुश्चिन्हान्तर्गतो ग्रन्थो घ. पुस्तकस्थ. । + धनुश्चिह्नान्तर्गतोग्रन्थो ङ. पुस्तकस्थः । × धनुश्चिन्हान्तर्गतो ग्रन्थो ङ पुस्तकस्थ. ।

---

१ घ. °मू । तेन न परवि° ।

**जातशक्तिग्रहणेनैव त्रिपाद्यामपि व्यवहारः । अत एव 'पूर्वत्रासिद्धम्' ( ८ । २ । १ ) इति सूत्रे भाष्ये परिभाषाणामेव त्रिपाद्यामप्रवृत्तिमाशङ्क्य कार्यकालपक्षाश्रयेण समाहितमित्याहुः । यथोद्देशपक्षः प्रगृह्यसंज्ञाप्रकरणे भाष्ये ॥ २ ॥**

**कार्यकालमित्यस्य च कार्येण काल्यते स्वसंनिधिं प्राप्यत इत्यर्थः । कार्येण स्वसंस्काराय स्ववृत्तिलिङ्गचिह्नितपरिभाषाणामाक्षेप इति यावत् । अत एव 'पूर्वत्रासिद्धम्' ( ८।२।१ ) इति सूत्रे भाष्ये त्रिपाद्या असिद्धत्वात्तत्र सपादसप्ताध्यायीस्थपरिभाषाणामप्रवृत्तिमाशङ्क्य यद्यपीदं तत्रासिद्धं तस्त्विह सिद्धमित्युक्त्वा तावताऽप्यसिद्धिरित्यभिप्रायके कथमिति प्रश्ने कार्यकालं संज्ञापरिभाषं यत्र कार्यं तत्रोपस्थितं**

---

एवकारेण विधिप्रदेशे शक्तिग्रहनिरासः । अपिः सपादसप्ताध्यायीसमुच्चायकः । ष्यङः सम्प्रसारणमितिसूत्रस्थ भसञ्ज्ञाया· कार्यकालत्वपर भाष्यं त्वेकदेश्युक्तिरिति भाव. । अत्र मानमाह—**अत एवेति** । तत्र यथोद्देशाङ्गीकारे तथा निर्वाहादेवेत्यर्थः । एवेन संज्ञाव्यावृत्ति· । आशङ्क्य, यथोद्देशे तदसिद्धत्वात् । अन्यथा शङ्कासमाध्योः संज्ञायामपि तुल्यत्वेन विशिष्य तत्रैव तदुक्त्यसांगत्य स्पष्टमेवेति भावः । यथोद्देशस्य दुर्बलत्वात्तत्सत्त्वे मानमाह— **यथोद्देशेति** ॥ २ ॥

एवमाद्यपरिभाषार्थमुक्त्वा द्वितीयार्थमाह—**कार्येति** । चस्त्वर्थे । नन्वचेतनत्वादुभयोः पक्षयोः परिभाषायाः कथ सान्निध्यप्राप्ति । किं च सर्वत्र सर्वासा तदापत्तिः । किं चासिद्धे तस्मिन्कथं तदुपस्थितिरत आह—**कार्येणेति** । तथा चाऽऽरोपिताकाङ्क्षया नोक्तदोषत्रयमिति भावः । तत्र तृतीयदोषोद्धारं स्पष्टयितुमुक्तस्याऽऽक्षेपस्य परिभाषार्थत्वे मानमाह—**अत एवेति** । अस्यास्तदाक्षेपार्थकत्वादेवेत्यर्थ. । तत्र, त्रिपाद्याम् । **परिभाषाणामिति** । सञ्ज्ञास्थले गतिस्तूक्तैवेति भावः । इद, त्रिपादीस्थम् । तत्र, तस्मिन्परिभाषाशास्त्रे । **तस्त्विहेति** । परिभाषाशास्त्र तु त्रिपाद्यां सिद्धमित्यर्थः । **असि रिति** । कथं सिद्धमित्यर्थः । असिद्धे तस्मिन्कथं तदुपस्थितिरिति भावः । कार्यकालमित्यस्योत्तरमित्यादिः । नन्वस्या अपि लक्ष्ये कार्येण समकाल तयोः प्रवृत्तिरित्यर्थस्तत्र कार्यस्यासिद्धत्वे कथ तत्समकालं प्रवृत्तिः । यत्कार्यं हि सिद्धं तत्रोपस्थितिरास्तां नाम । येषामसिद्धत्व तत्रोपस्थितिर[1] बाधितैवात आह—**यत्र कार्यमिति** । कार्येणाऽऽक्षेपादित्यर्थः ।

---

१ घ. °सिद्धत्वे त° ।

द्रष्टव्यमित्युक्तम् । न च कार्यकालपक्षे 'ङमो ह्रस्वात्' ( ८ । ३ ।३२ ) इत्यादौ 'तस्मादित्युत्तरस्य' ( १ । १ । ६७ ) 'तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य' ( १ । १ । ६६ ) इति परिभाषाद्वयोपस्थितौ परत्वादुभयनिर्देशे पञ्चमीनिर्देशो बलीयानिति तस्मिन्निति सूत्रस्थभाष्यासंगतिः । उभयोरेकदेशस्थत्वेन परत्वादित्यस्यासंगत्यापत्तेः । स्पष्टं चेदमिको गुण ( १ । १ । ३ ) इत्यत्र कैयट इति वाच्यम् । विप्रतिषेधसूत्रेऽष्टाध्यायीपाठकृतपरत्वस्याऽऽश्रयणेनादोषात् । न हि कार्यकालपक्ष इत्येतावता तदपैति । पक्षद्वयेऽपि प्रदेशेषु स्वबुद्धिजननाविशेषात् । न हि तत्पक्षेऽप्यचेतनस्य शास्त्रस्य स्वदेशं विहाय तद्देशगमनं संभवति । नाप्यस्मदादिबुद्धिजननेन स्वदेशत्यागो भवति । अत एव भाष्य एकदेशस्थस्यैव सर्वशास्त्राभिज्वालकत्वमुक्तम् । अत एव तस्मिन्निति सूत्रे कैयटः—सूत्रपा-

---

तथा च कार्येण मूलोक्तरीत्या तासामाक्षेपसंभव । कार्यस्य स्वसंस्कारकत्वात्परिभाषापेक्षा, परिभाषाया अपि स्वसंस्कार्यत्वेन विध्यपेक्षा । तत्र सपादसप्ताध्याय्यामुभयाकाङ्क्षया सबन्धस्त्रिपाद्यां तु तदीयाकाङ्क्षयैवेति विशेषः । एवं च पक्षद्वयसाधारण उभयाकाङ्क्षयैव संबन्ध इत्याशयकः पूर्वपक्षः । कार्यकालाश्रयेणान्यतराकाङ्क्षयाऽपि सबन्ध इत्युत्तराशयः । तत्रत्यकैयटस्तु चिन्त्य इति स्पष्टं तत्रैवोद्द्योते । तथा चेद भाष्यमुक्ततात्पर्यकमेवेति न कश्चिद्दोषः । तथा च परिभाषाणा कार्यार्थतया कार्यकालत्वमेव युक्तमिति सिद्धम् । तत्र शङ्कते—**न चेति ।** [* परिभाषाविषये पूर्वोक्तैकदेशस्थपदसूचितस्वदेशहान्यभावसिद्धान्तानभिज्ञस्येयमाशङ्केति भावः ] आदिना ङ सीत्यादिपरिग्रहः । परत्वादिति प्रकृताभिप्राय न तु परिभाषान्तर्गतम् । **स्पष्टमिति ।** क्रोष्ट्रीयसमतविप्रतिषेधखण्डके नैष युक्तो विप्रतीतिभाष्यप्रतीके यथोद्देशपक्षे परिभाषयो पौर्वापर्यं न तु कार्यकालतायामिति तेनोक्तम् । **पाठकृतेति ।** परिभाषास्थल इति शेषः । तासामत्र पक्षेऽपि स्वदेशेऽर्थबोधोऽस्त्येवेति भावः । नन्वत्र पक्षे तत्र गमनेन कथ तत्त्वमत आह—**न हीति ।** तत्, पाठकृतपरत्वम् । **प्रदेशेष्विति ।** विषयसप्तमी । तथा च तद्विषयस्वबुद्धिः स्वगृहे तत्र वा जन्यत इति भाव. । ननु कार्यकाले स्वस्यैव विधौ गमनामिति कथमुक्तरीत्याऽविशेषोऽत आह—**न हीति । तत्पक्षेऽपीति ।** पक्षद्वयान्तर्गतकार्यकालपक्षेऽपीत्यर्थं । अपिर्यथोद्देशसमुच्चायकः । तत्र च वैपरीत्य बोध्यम् । **बुद्धीति ।** तद्विषयेत्यादि । इद च परिभाषास्थले । सञ्ज्ञास्थले तूक्तभाष्यबलात्तथाऽङ्गीकृतमिति भावः । अत एव, स्वदेशात्यागादेव । तच्च भाष्यमुक्त प्राक् । [+ पठितदेशादेशस्थत्वमेव सर्वथा परिभाषाणा बोधयितु तथोक्तमिति भावः ] कैयटस्यापीत्थमेवेष्टामित्याह—**अत एवेति ।** उक्त एवार्थः । नन्वेवमुक्तभाष्यविरोधात्स्वविरोधाच्च तत्कैयटस्य का गतिरत आह—

---

* धनुश्चिह्नान्तर्गतो ग्रन्थो ङ पुस्तकस्थ. । + धनुश्चिह्नान्तर्गतो ग्रन्थो ङ. पुस्तकस्थः ।

१ घ. °क्तपरिभाषाव° ।

ठापेक्षया परत्वस्य व्यवस्थापकत्वमिति । इको गुण(१।१।३)इतिसूत्रस्थ कैयटस्तु चिन्त्य एव । अन्यथा सर्वशास्त्राणां प्रयोगार्थत्वेन प्रयोगरूपैकदेशस्थत्वेन क्वापि परत्वं न स्यात् । किं च क्ङिति च(१।१।५) इतिसूत्रस्थकैयटरीत्या विधिसूत्राणां यथोद्देशपक्षे परिभाषादेशसंनिधानेन तेषां परत्वं व्याहन्येत । एवं च वृक्षेभ्य इत्यत्र 'सुपि च '(७।३।१०२) इत्यतः परत्वात् 'बहुवचने झल्येत् ' (७।३।१०३) इत्येत्वमित्याद्युच्छिद्येतेत्यलम् ॥ ३ ॥

इत्संज्ञका अनुबन्धास्तथा तेष्ववयवानवयवत्वसंदेह आह—

---

इको गुणेतीति । विपक्षे बाधकान्तरमप्याह–अन्यथेति । पूर्वपक्षीयकैयटोक्त्यङ्गीकार इत्यर्थः । प्रयोगार्थत्वेन, प्रयोगसाधनफलकत्वेन । देशस्थत्वेन, तत्र मिलनात् । न स्यादिति । तथा च परत्वस्योच्छेद एव स्यादिति भाव. । नन्वत एव तादृशदेशो न गृह्यतेऽत आह–किं चेति । कैयटेति । स च प्रागुक्तः । सनिधानेन, बौद्धेन । तेषामिति । तेषामपीत्यर्थः । इष्टापत्तौ बाधकमाह–एवं चेति । तत्परत्वव्याघाते चेत्यर्थः । न चैव कार्यकालपक्षमादाय त्रिपाद्या परिभाषाशास्त्राणा प्रवृत्तिर्यथोद्देशे तु पूर्वाण्येतानि प्रति त्रिपाद्या असिद्धत्वेनाप्रवृत्तिरेव स्यादिति भाष्याद्युक्तमत्र प्रागुक्त विरुध्येतेति वाच्यम् । परिभाषाणां सिद्धत्वेनात्र पक्षेऽसिद्धेनापि कार्येण स्वार्थे स्वमात्राकाङ्क्षया तदाक्षेपसभवस्योक्तत्वात् । वस्तुतः सर्वत्र पाठकृतपरत्वमेव तन्नियामकम् । परैव प्रगृह्यसज्ञेत्यत्र सज्ञापदेन तत्कार्यं प्रकृतिभाव उच्यते । आशयानभिज्ञस्याग्रे प्रश्नः कथमिति, एकदेशिन उत्तर कार्यकालमित्यादीति । एव च न तद्विरोध इत्येकरूपता सज्ञापरिभाषयोः सिद्धा । एव चात्रापि स्वगृहे वाक्यार्थबोध. पूर्ववल्लक्ष्यसस्कारकत्वमपि तस्य तुल्यम् । एतेन कार्यकालेऽपि पाठकृतपरत्वमयादीनामेव । अन्यथा ङमो ह्रस्वादित्यादौ त्रिपादीस्थे कार्यकालपक्ष एव परिभाषयो. प्रवृत्त्या परत्वात्तत्र तस्मादित्येवेति सिद्धान्तासगतिरुभयोरेकदेशस्थत्वेन परत्वासभवादित्यपास्तम् । अत एवैतावदशस्य दुष्टत्वेन तत्रारुचिसूचनाय केचिदित्युक्तम् । अन्यथैतदन्यस्य सर्वस्य सिद्धान्तत्वेन परे त्विति वक्तुमुचितम् । अत एवैतद्ग्रन्थस्यादसो मादित्यत्रत्योद्द्योतविरोधो नेति दिक् । तदेतद्ध्वनयन्नाह—अलमिति ॥ ३ ॥

अथेत्सज्ञायाः सज्ञाप्रसङ्गेनैव स्मृतायास्तद्विशेषभूतायाः शास्त्रमूलत्वात्तच्छास्त्रस्याऽऽदावुल्लेखवत्तद्विषयक परिभाषाद्वयमादौ वक्तु जीर्णानुक्तत्वात्तद्ग्रन्थे न्यूनता ध्वनयितुं च पूर्वसगतिमाह—इत्संज्ञेति । सज्ञायाः पूर्वमुपस्थितत्वात्तद्विशेषे तादृशो विचार इति भावः । इत्सज्ञाप्रयुक्तस्वलोपान्यकार्यजनकत्वविशिष्टमिदमनुबन्धसामान्यलक्षणम् ।

---

१ ङ. °व. । संज्ञा° । २ ङ 'युक्तेत्कार्य° ।

## अनेकान्ता अनुबन्धा इति ॥ ४ ॥

अनेकान्ता अनवयवा इत्यर्थः। यो ह्यवयवः स कदाचित्तत्रोपलभ्यत एव। अयं तु न तथा तदर्थभूते विधेये कदाऽप्यदर्शनात्। शिदित्यादौ समीपेऽवयवत्वारोपेण समासो बोध्यः। 'वुञ्छण्कठ' (४। २। ८०) इत्यादौ णित्त्वप्रयुक्तं कार्यं पूर्वस्यैवेत्यादि तु व्याख्यानतो निर्णेयम्। 'हलन्त्यम्' (१। ३। ३) इत्यत्रान्त्यशब्दः परसमीपबोधकः॥ ४॥

---

यतो हीत्संज्ञका इत्यस्येत्सञ्ज्ञाद्वारकस्वलोपान्यभावाभावरूपकार्यभाज इत्यर्थ इति तत्त्वम्। तथा, पर्यवसितम्। एवमेव वाच्ये तथोक्तिः प्राचां मतस्यापि सग्रहाय। अवयवेत्यस्य[1] प्रकृत्यादीत्यादिः[2] [ * तत्रैव तत्तत्प्रयुक्तकार्यभेदसंभवत्। तदेकदेशिमतमाह— ] **अनेकान्ता इति**। इत्यस्येति शेषः[3]। तत्त्व व्यतिरेकमुखेणोपपादयति—**यो ह्येति**। शाखादिरित्यर्थः। छेदने तत्रानुपलम्भादाह—**कदाचिदिति**। छेदनात्पूर्वमित्यर्थः। एवेमानुपलम्भव्यवच्छेदः। अयं तु, अनुबन्धत्वावच्छिन्नस्तु। न तथा, नावयवः। तदर्थेति[4]। औपदेशिकबोधकबोध्ये लौकिकप्रयोगस्थ इत्यर्थः। नन्वनवयवत्वे [ + तदनुबादकशब्दान्तरे ] वृत्तिर्न स्यात्सबन्धाभावात्सामीप्ये तु न वृत्तिरिति स्पष्टमेवात आह[5]— **शिदिति**। समासः, बहुव्रीहिः। [ × सामीप्यं च तदभिन्नतद्बोधकौपदेशिकगतम्। एतावता तत्र कार्येऽपि सोपाधिकोपलम्भापत्तिर्नेति बोध्यम् ] नन्वेवमपि पूर्ववत्परविषयेऽपित्कार्यप्रसङ्गः कचिदत आह—**वुञिति**। पूर्वस्यैवेत्यस्य पूर्वसबन्धिन एवेत्यर्थः। [ ⊙ स्पष्टं चेद तस्य लोप इति सूत्रे भाष्ये। पक्षद्वयं सदोषमुक्त्वा स्वीकृत एव तर्ह्यनन्तर इति तृतीयपक्षे पूर्वपरयोरित्कार्यप्रसङ्गरूपदत्तदोष परिहरता वृत्ताद्वेत्यनेन। व्याख्यात च कैयटेन व्याख्यानपरतया ]। नन्वेवमपीत्वस्यैवाभावे मूले कुठार एवात आह—**हलन्त्यमिति**। लक्षणयेति भावः॥ ४॥

---

* धनुश्चिन्हान्तर्गतो ग्रन्थो घ. पुस्तकस्थः। + धनुश्चिह्नान्तर्गतो घ. पुस्तकस्थः। × धनुश्चिह्नान्तर्गतो ग्रन्थो घ. पुस्तकस्थः। ⊙ धनुश्चिह्नान्तर्गतो ग्रन्थो घ. पुस्तकस्थः।

---

१ घ. °स्य लौकिकप्रयोगस्थप्र°। २ ङ °दिः। अनुबन्धा इति। अनुबन्धत्व च कार्यविशेषसंपादकत्वम्। अ°। ३ घ. °षः। भाष्येऽत्रानुक्तमेकान्तत्वोक्तहेतुतो लब्धं हेतु व्य°। ४ ङ. °ति। तद्घटितार्थे त्य°। ५ घ. पूर्वे बोध्यस्यैवे°।

वस्तुतस्तु—

## एकान्ताः ॥ ५ ॥

इत्येव न्याय्यम् । शास्त्रे तत्रोपलम्भादन्यत्रानुपलम्भाच्च । अनवयवो हि काकादिरेकजातीयसंबन्धेन गृहवृक्षादिषूपलभ्यते नैवमयम् । एवं हि बहुव्रीहिरपि न्यायत एवोपपन्नः । अन्त्यशब्दे लक्षणा च न । किं चानवयवत्वे णशकप्रत्ययादौ कादेरित्त्वानापत्तिः प्रत्ययादित्वाभावात् । दृन्नचश्चकारस्य वैयर्थ्यापत्तेश्च । इदं च 'तस्य लोपः' (१ ।

---

एवमेकदेशिमतमुक्त्वा सिद्धान्तमतमाह—**वस्तुत इति** । एकान्ताः, अवयवाः । ननु तदभावसाधकहेतोरुक्तत्वात्कथं तत्त्वमत आह—**शास्त्र इति** । तत्र, विधेयबोधके । [*तद्भिन्न औपदेशिके ] एतेन विधेयेऽनुपलम्भेऽपि क्षत्यभावः सूचितः । अवयविनिदर्शनस्यैवापेक्षितत्वेन [+तत्रैवेति नियमाभावेन तस्यात्र सत्त्वात् । ] [×तदुक्तं घसंज्ञासूत्रे भाष्ये । इह हि व्याकरणे सर्वेष्वेव सानुबन्धकग्रहणेषु रूपमाश्रीयते यत्रास्यैतद्रूपमिति रूपनिर्ग्रहश्च शब्दस्य नान्तरेण लौकिकं प्रयोगं तस्मिंश्च लौकिके प्रयोगे सानुबन्धानां प्रयोगो नास्तीति कृत्वा द्वितीयः प्रयोग उपास्यते कोऽसावुपदेशः [इटं] नामेति ] तस्यात्र सत्त्वात् । =अन्वयमुक्त्वा व्यतिरेकमाह—**अन्यत्रेति** । तथा चानुपलम्भकयत्नं विना तत्रान्यत्र चोपलभ्यमानोऽनवयवस्तं विना तत्रैवोपलभ्यमान एव यः सोऽवयव इति फलितम् । अन्यथा शाखाया अपि च्छेदनोत्तरमन्यत्रोपलम्भात्तत्रैवोपलम्भाभावेनानवयवत्वं स्यादिति भावः । इदमपि व्यतिरेकमुखेणैवोपपादयति—**अनवेति** । एकजातीयसंबन्धेन, संयोगादिना । **नैवमयमिति** । अनुबन्धो न तादृशसंबन्धेन सर्वत्रोपलभ्यत इत्यर्थः । एवमनेन हेतुना तद्धेतुनिरासेन साधितेऽवयवत्वे साधकान्तरमप्याह—**एवं हीति** । यतोऽवयवत्व इत्यर्थः । अस्योभयत्रान्वयः । न्यायतः, औचित्येन । आरोपं विनेति यावत् । नन्वनयोः पूर्वत्रोक्तगतिभ्यामपि निर्वाहोऽत आह—**किं चेति** । नन्वादिशब्दोऽप्यन्त्यशब्दवत्सुशको व्याख्यातुमत आह—**दृन्नच इति** । ननु पूर्वमुक्त एव व्याख्यानेन निर्णय इति न तस्य वैयर्थ्यमत आह—**इदं चेति** । पूर्वोक्तं सर्वं चेत्यर्थः । तदेवाऽऽह—

---

* धनुश्चिह्नान्तर्गतो ग्रन्थो घ पुस्तकस्थः । + धनुश्चिह्नान्तर्गतो ग्रन्थो घ. पुस्तके वर्तते । × अयमपि घ पुस्तकस्थ एव । = अत्रायं घ. पुस्तके पाठः—नन्वेवं शाखावत्काकादेरप्यवयवत्वापत्तिरत आह—अन्यत्रेति ।

---

१ घ. °ति । व्यक्तिभेदादाह—जातीयेति । सं° । २ घ. °दिनेत्यर्थः । नै° । ३ क. °नयोर्विनिगमनाविरहात्पूर्वोक्तगतिरेव गृह्यतेऽत ।

३ । ९ ) इत्यत्र भाष्ये स्पष्टम् । तत्र ह्युक्तमेकान्ता अनुबन्धा इत्येव न्याय्यमिति दिक् ॥ ५ ॥

नन्वेकान्तत्वेऽनेकाल्त्वादेवैशादीनां सर्वादेशत्वसिद्ध्या 'अनेकाल्' सूत्रे ( १ । १ । ५५ ) शिद्ग्रहणं व्यर्थमत आह—

**नानुबन्धकृतमनेकाल्त्वम् ॥ ६ ॥**

शिद्ग्रहणमेवैतज्ज्ञापकम् । तेन ' अर्वणस्तृ ' ( ६ । ४ । १२७ ) इत्यादेर्न सर्वादेशत्वम् । डादिविषये तु सर्वादेशत्वं विनाऽनुबन्धत्वस्यै-वाभावेनाऽऽनुपूर्व्यात्सिद्धम् ॥ ६ ॥

---

**तत्र ह्युक्तमिति** । एकान्तत्वानेकान्तत्वोक्त्युत्तरमिदमुक्तं तत्र भाष्ये । तस्याय भावः । एकान्तत्व एकोऽवयवो द्वयोर्न संभवतीति व्याख्यानेन निर्णयेऽपि नानेकान्तत्वे तथाऽऽनन्त-र्यस्योभयापेक्षस्यैकत्र विरोधाभावात्संदेहाभावाद्व्याख्यानाप्रवृत्तेः । विरुद्धानेककोटिविषयक-ज्ञानस्यैव संदेहत्वात् । तथा च चवैयर्थ्य सम्यगेव । किं चोक्तरीत्या व्याख्यानाप्रवृत्तौ वुञ्छणादिविहितकादिविषये णित्वादिप्रयुक्तवृध्द्याद्यापत्तिर्लक्षणारोपाभावप्रयुक्तं लाघवं च पूर्वोक्तहेतुनैतस्यैव सिद्धिश्चेति । तद्ध्वनयन्नाह—**इति दिगिति** ॥ ५ ॥

एतत्पक्षे भाष्याद्युक्तदोषत्रय तदुक्तरीत्यैव तत्क्रमेणोद्धर्तुं पूर्वसंगतिमाह—**नन्वेकान्तत्व इत्यादि** । अनुबन्धकृतमनेकाल्त्वं नाऽऽश्रयणीयमिति परिभाषार्थः । एवमग्रेऽपि । अस्यां ज्ञापकमाह—**शिदिति** । उक्तरीत्यैवेति भाव. । घ्वसोरेद्धावित्यत्र निर्वाहस्तु भाष्यादौ स्पष्ट इति तात्पर्यम् । चारितार्थ्यं स्वस्मिन्स्पष्टत्वादुपेक्ष्य ज्ञापितपरिभाषाफलमाह—**तेनेति** । ज्ञापितवचनेनेत्यर्थः । एवमग्रेऽपि सर्वत्र बोध्यम् । ननु णलः प्रत्ययाधिकारपाठादौपदेशिक-प्रत्ययत्वेनं तदनुबन्धत्वेनानया प्राप्तदोषस्य प्रश्लेषेण निवारणेऽपि डादिरनया सर्वादेशो न प्राप्नोति गत्यन्तरसंभवेन पूर्ववत्प्रश्लेषो नात आह—**डादीति**[3] । आदिना जसः शी, सुपा-मितिसूत्रोक्तशे इत्यादिसंग्रह. । औपदेशिकप्रत्ययत्वस्यात्र सर्वत्राभावात् । तथा च सर्वादेशताऽऽदौ तत आतिदेशिकं प्रत्ययत्व तत इत्संज्ञेति पूर्वं तदभाव एव । अनुबन्धत्वं च विशेषणं न तूपलक्षणमिति भावः । तदाह—**आनुपूर्व्यादिति** । उक्तक्रमादित्यर्थः । एतेनात्र णलुल्लेख कुर्वन्सीरदेवादिः परास्तः । उक्तहेतो. । इदं च प्राचीनरीत्या । अत एवा-रुचिबोधकस्तुः प्रयुक्तः । वस्तुतो णल्युक्तप्रकार एव डादौ । जसः शीत्यादौ शित्वादेव सर्वादेश इति बोध्यमित्यन्यत्र निरूपितं गुरुभिः । स्पष्ट चेदं ज्ञापक तस्य लोप इत्यत्रैव भाष्ये ॥ ६ ॥

---

१ घ. °रमाष्योक्तिनमनन्तरपक्षोक्त्युत्तरमि° । २ ग. °त्वेनानु° । ३ घ. °ति । यद्वा एवश-ब्दोऽप्यर्थे विनाशब्दोऽभावे । तथा चानुबन्धत्वस्याभावेन विनाऽपि नाऽऽभाति आ° ।

नन्वेवमप्यवदातं मुखमित्यत्र पलोपोत्तरमात्वे कृते 'अदाप्' (१। १। २०) इति घुसंज्ञाप्रतिषेधो न स्यात्। दैपः पकारसत्त्वेऽनेजन्तत्वाद्दात्वाप्राप्त्या पलोपोत्तरं पकाराभावेनास्य 'दाब्' रूपत्वाभावादत आह—

## नानुबन्धकृतमनेजन्तत्वम् ॥ ७ ॥

'उदीचां माङः' (२। ३। १९) इति निर्देशोऽस्या ज्ञापकः। 'आदेच उपदेशे (६। १। ४५) इतिसूत्रेणोपदिश्यमानस्यैजन्तस्याऽऽत्वं क्रियते। ङकारसत्त्व एजन्तत्वाभावादात्वाप्राप्तेस्तस्यासंगतिः। न चास्यामवस्थायां तस्य धातुत्वाभावात्कथमात्वम्। तत्र धातोः (६। १। ८) इत्यस्य निवृत्तेरित्यन्यत्र विस्तरः। स्पष्टं चेदं 'दाधाघ्वदाप्' (१। १। २०) इतिसूत्रे भाष्ये ॥ ७ ॥

---

**एवमपि,** उक्तदोषस्यात्र मत उद्धारेऽपि । **पलोपोत्तरमात्वे इति।** अन्यथाऽनेजन्तत्वान्न स्यादिति भावः। **न स्यादिति।** तथा[1] चोपसर्गादिति स्यादिति भावः। ननु पसत्त्व एव निषेधोऽत आह—**दैप इति।** आत्वाप्राप्त्येत्यस्य दाप्त्वाभावेऽन्वयः। नन्वेव तल्लोपोत्तरं सोऽत आह—**पलोपोत्तेति।** अस्य। उक्तप्रयोगस्थस्य। **इति निर्देश इति।** इत्यत्रत्यो मेङः सानुबन्धस्याऽऽत्वभूतस्य माङ इति निर्देश इत्यर्थ.। तस्य तत्त्वमुपपादयति—**आदच इति।** उपदेश इति कर्मणि घञ्षष्ठ्यर्थे सप्तमी विशेष्यत्वं च तस्य। तदाह—**उपदीति। तस्यासंगतारिति।** माङ इतिनिर्देशस्यासंगतिरित्यर्थः। तस्य तदर्थज्ञापकतासंगतिरिति क्वचित्पाठः। तत्र निर्देशस्य परिभाषार्थज्ञापकत्वसंगतिरित्यर्थः। अस्यां, मेङ इत्यस्याम्। तस्य, मेङ इत्यस्य। अनुबन्धलोपे जात एव धातुत्वमित्यर्थस्य न धातुलोप इतिसूत्रे भाष्यकैयटयोः स्पष्टत्वादिति भावः। तत्र, आदेच इत्यत्र। **निवृत्तेरिति।** गवादिशब्दाना ढौकितेत्याद्येकदेशानां चानुपदेशान्नात्वम्। इरेप्रभृतीनामुपदेशेऽप्यशित्परत्वाभावान्न तत। प्रसज्ज्यप्रतिषेधेऽपि प्रत्यासत्त्याऽशित्प्रत्ययपरत्वयोग्यानामेजन्तानामेवग्रहणान्न दोषः। उच्चारणसामर्थ्यादपि तत्रादोषः। यावता विनेतिसिद्धान्तादिदमपि तज्ज्ञाप्यम्। एतेन तङादेशाना टेरनेत्वज्ञापनेन चरितार्थं तदित्यपास्तम्। अत एवाथापि निवृत्तमित्यादेच इत्यत्र तदेतद्धातुग्रहणं तिष्ठतु तावत्सान्यासिकमिति लिटि धातोरित्यत्र च भाष्य उक्तम्। अन्तरङ्गत्वाद्व्यतीहारनित्यसबद्धस्य मेङ एव सूत्रे ग्रहणं न माङस्तस्य पदान्तरसंनिधानेन प्रतीयमानबहिरङ्गव्यतीहारवृत्तित्वादिति कैयटः। अन्ये तु माङोऽनभिधानात्क्त्वोऽनुत्पत्तिरिति न तस्य तत्र ग्रहणमित्याहुः। तदाह—**इत्यन्यत्रेति।** उद्द्योतादावित्यर्थः। अत्र समतिमाह—**स्पष्टं चेदमिति।** उक्तज्ञापकमित्यर्थः। दाधाघ्वित्युपलक्षणं तस्य लोप इति सूत्रस्यापि ॥ ७ ॥

---

१ °था च दोददघोरिति स्यादिति°। २ ग. °त्र मानमा°।

नन्वेवमपि 'वाऽसरूपः' [ ३।१।९४ ] इतिसूत्रेण कविषयेऽणोऽप्यापत्तिरित्यत आह—

**नानुबन्धकृतमसारूप्यम् ॥ ८ ॥**

'ददातिदधात्योर्विभाषा' [ ३।१।१३९ ] इति णबाधकशस्य विकल्पविधायकमस्या ज्ञापकम्। तेन गोद इत्यादौ नाणिति वाऽसरूपसूत्रे भाष्ये स्पष्टम् ॥ ८ ॥

ननु संख्याग्रहणे बह्वादीनामेव ग्रहणं स्यात्। प्रकरणस्याभिधानियामकत्वसिद्धात्कृत्रिमाकृत्रिमयोः कृत्रिमे कार्यसंप्रत्यय इति न्यायात्। अस्ति च प्रकृते बह्वादीनां संख्यासंज्ञा कृतेति ज्ञानरूपं प्रकरणम्। न तु लोकप्रसिद्धैकद्व्यादीनामित्यत आह—

**उभयगतिरिह भवति ॥ ९ ॥**

इह शास्त्रे। 'संख्याया अतिशदन्तायाः' [ ५।१।२२ ] इति निषेधोऽस्या ज्ञापकः। न हि कृत्रिमा संख्या त्यन्ता शदन्ता चास्ति। तेन 'कर्तरि कर्मव्यतिहारे' [ १।३।१४ ] 'कण्वमेघेभ्यः करणे' [ ३।१।१७ ] 'विप्रतिषिद्धं चानधिकरण' [ ५।४।१३ ] इत्यादौ लौकिक-

---

**एवमपीति**। प्राग्वत्। इति **णेति**। इत्यत्र श्याद्व्यधेति प्राप्तणस्य बाधकशस्य ददातीतिसूत्रविहितस्य विकल्पविधायकं विभाषाग्रहणमित्यर्थः। तत्कृतासारूप्याङ्गीकारे तु तेनैव सूत्रेण रूपद्वयसिद्धौ तदानर्थक्यं स्पष्टमेव। शङ्कोक्तं वारयति— **तेनेति**। वाऽसरूपेत्युपलक्षणं तस्य लोप इति सूत्रस्यापि ॥ ८ ॥

अथेत्संज्ञाप्रसङ्गात्संज्ञाविशेषोद्देश्यतावच्छेदकविधावन्यत्र विचार इति पूर्वसगतिं ध्वनयन्नाह—**ननु संख्येति**। **प्रकरणेति**। इद च हर्यादिग्रन्थे स्पष्टम्। ननु सैन्धवमानयेत्यादौ भोजनादिवत्प्रकृते किं तत्प्रकरण येन तद्वदत्रापि शक्तिसकोचो भवेत्। न च पूर्वोपक्रान्तत्वं तत्त्वम्[1]। अव्यवहितस्य तस्याभावात्[2]। अत आह—**अस्ति चेति**। **कृतेतीति**। शास्त्र इति भावः। एवव्यवच्छेद्य स्पष्टार्थमाह—**न त्विति**। एकशब्दस्यानेकार्थत्वेन सख्याशब्दग्रहणायाऽऽह—**द्यादीति**। परिभाषापाठनिरासायाऽऽह—**शास्त्र इति**। **ताया इतीति**। इत्यत्रातीति[3] निषेध इत्यर्थः। ज्ञापकमुपपादयति—**न हीति**। नन्वनर्थकत्वेऽपि तेः सामर्थ्यात्कतीति कृत्रिमसख्यामादाय स निषेधः सफलोऽत आह—**शदन्ता चेति**। **लौकिकेति**। तत्त्व चात्र वेदभिन्नविदितत्त्वम्[4]। अत एव तत्र सामर्थ्यात्तन्त्रान्तरप्रसिद्धद्रव्यग्रहणेऽपि न क्षतिः। यद्यप्यकृत्रिमस्यैव ग्रहण-

---

१ ङ. °त्व प्रकरणत्व व्य°। २ ङ. तत्त्वाभा°। ३ ङ °ति त्यन्तानि°। ४ घ. °विहित°।

**क्रियाद्रव्याद्यवगतिः । तत्र क्वोभयगतिः क्वाकृत्रिमस्यैव क्व कृत्रिमस्यैवे-त्यत्र लक्ष्यानुसारि व्याख्यानमेव शरणम् । अत एवाऽऽम्रेडितशब्देन कृत्रिमस्यैव ग्रहणं न तु द्विस्त्रिर्घुष्टमात्रस्य । स्पष्टं चेदं संख्यासंज्ञासूत्रे भाष्ये । यत्तु संज्ञाशास्त्राणां मच्छास्त्रेऽनेन शब्देनैत एवेति नियमार्थत्वं कृत्रिमाकृत्रिमन्यायबीजमिति तन्न । तेषामगृहीतशक्तिग्राहकत्वेन विधित्वे संभवति नियमत्वायोगात् । सर्वे सर्वार्थवाचका इत्यभ्युपगमोऽपि योगिदृष्ट्या न त्वस्मदादिदृष्ट्या । विशिष्य सर्वशब्दार्थज्ञानस्याशक्यत्वात् । सामान्यज्ञानं तु न बोधोपयोगीत्यन्यत्र निरूपितम् ॥ ९ ॥**

---

मितिमात्रज्ञापनेऽप्यस्य साफल्य तथाऽप्याम्रेडितादौ दोषापत्ते. संज्ञाकरणवैयर्थ्यापत्तेश्चाकृत्रिमस्यापीत्येव ज्ञाप्यते । एव च सख्याग्रहणेऽपि न दोष इति भावः । **द्रव्याद्यवगतिरिति** । क्रियाद्रव्यादेरेवावगतिरित्यर्थः । न तु कारकस्येति भावः । ननूभयगतिरित्युक्त्वेद फलकथनमयुक्तं तथा तत्राभावात् । सख्याग्रहणस्थले च तथा फलं वक्तु युक्तमिति चेन्न । उभयगतिरित्यस्योभयोः कृत्रिमाकृत्रिमयोर्विषयभेदेनैकत्र विषये च गतिर्ग्रहणमित्यर्थेन त्रितयलाभात् । तत्रान्त्यलक्ष्यं तु पूर्वपक्षविषय एवेति न पुनरुक्तम् । अत एव तद्दोषपरिहारः । अत एव च लः कर्मणीत्यादौ कारकावगतिः । तद्ध्वनयन्नाह—**तत्रेति** । तेषां त्रयाणां मध्य इत्यर्थः । व्याख्यान, भाष्यकृतादीनाम् । **अत एवेति** । तथाव्याख्यानस्य शरणत्वादेवेत्यर्थः । तत्र तैस्तथैव व्याख्यानात् । अन्यथा तदसगति. स्पष्टैवेति भावः । एतेनोभयोर्ग्रहणं वा स्यात्कृत्रिमस्यैव वाऽकृत्रिमस्यैव तु ग्रहण कथमित्यपास्तम् । **स्पष्टं चेदमिति** । प्रागुक्त सर्वमित्यर्थः । तत्र ह्येकादीनां संख्यासंज्ञार्थ सख्याग्रहणमुद्देश्यसमर्पकं कर्तव्यमित्याशङ्क्योक्तरीत्या प्रत्याख्यातम् । कैयटाद्युक्ति खण्डयति—**यत्त्विति** । तेषां, संज्ञासूत्राणाम् । ननु सर्वेषा सर्वार्थवाचकत्वमिति पक्षे गृहीतशक्तिग्राहकत्वमेव तेषामत आह—**सर्व इति । न त्विति** । यतस्तदस्माभिर्दुर्ज्ञेयमिति भावः । तदाह—**विशिष्येति** । सर्वशब्दार्थेत्यत्र द्वन्द्वकर्मधारयषष्ठीतत्पुरुषा बोध्याः । **सामान्येति** । शब्दत्वादिनेत्यर्थः । न चैवम्—

'व्यवहाराय नियमः संज्ञायाः संज्ञिनि क्वचित्' ।

इत्यादिहरिग्रन्थासगतिरिति वाच्यम् । तस्य तत्र तत्र सकेते गृहीते तत्तत्सकेतज्ञानरूपप्रकरणवशात्तस्यैवोपस्थितिर्नान्यस्येति फलितनियमपरत्वात् । तदेतद्विशेषणविशेष्यवदित्यनेन सूचितमिति मञ्जूषाया विस्तरः । तदाह—**अन्यत्रेति** ॥ ९ ॥

**नन्वध्येता शयित इत्यादाविङ्शीङोर्ङित्त्वाद्गुणनिषेधः स्यादत आह—**

**कार्यमनुभवन्हि कार्यी निमित्ततया नाऽऽश्रीयते ॥ १० ॥**

**'स्थण्डिलाच्छयितरि' (४।२।१५) इति निर्देशश्चास्या ज्ञापकः। ऊर्णुनविषतीत्यादिसिद्धये कार्यमनुभवन्निति। अत्र हि 'द्विर्वचनेऽचि' (१।१।५९) इति नुशब्दस्य द्वित्वम्। अन्यथा 'सन्यङोः' (६।१।९) इत्यस्य षष्ठ्यन्तत्वात्सन्नन्तस्य कार्यित्वेनेसो द्वित्वनिमित्तत्वाभावात्तत्प्रवृत्तिर्न स्यात्। वस्तुतः समवायिकारणनिमित्तकारणयोर्भेदस्य सकललोकतन्त्रप्रसिद्धतया तस्य तत्त्वेनाऽऽश्रयणाभावेन नैषा ज्ञापकसाध्या।**

---

अथ सिंहावलोकनन्यायेनेत्संज्ञकविशेषोद्देश्यकविधौ विचार इति ध्वनयन्नाह—**नन्वध्येतेति। शयित इति।** निष्ठा शीङिति कित्त्वनिषेध. । आदिना शायितेत्यादिसंग्रहः। शायितेति तृजन्तपाठस्तु सुगम एव। **निषेधः स्यादिति।** क्ङितीति सत्सप्तमीति भावः। न चैव निष्ठा शीङिति व्यर्थम्। तेन तावन्मात्रवारणापेक्षया परिभाषाज्ञापनस्यैवौचित्यादिति बोध्यम्। यत्त्वस्या ज्ञापकं दीधीवेव्योर्गुणप्रतिषेध. कुटादौ कूङ्पाठो वेति सीरदेवादयस्तन्न। दीधीवेवीटामित्यस्य प्रत्याख्यानात्। प्रत्याख्यानस्थले दृष्टफलाभावेन भाष्यरीत्या तदसंभवात्। आदीध्यक इत्यादावनिग्लक्षणाचो ञ्णितीतिवृद्धिनिषेधेन साफल्येन सूत्ररीत्याऽपि तत्त्वासंभवात्। पाठस्याशोकवनिकान्यायेन चरितार्थत्वाच्च। अत आह—**स्थण्डिलादिति।** न च निर्देशः सौत्रः। तथा सत्यन्यत्र प्रयोगो न स्यादिति भावः। चेन निष्ठा शीङिति निषेधस्य दीधीवेव्योः प्रकारान्तरेण प्रत्याख्यानपरभाष्यस्य च समुच्चयः। अन्यथा तयोर्ङित्वात् क्ङिति चेत्यनेनैव निषेधे सिद्धे प्रकारान्तरानुसरणं व्यर्थमेवेति बोध्यम्। तथा चाध्येता शयितोऽरिरिषतीत्यादिसिद्धिः। नैवमूर्णुनविषतीत्यादावित्याह—**ऊर्णुनेति।** हि, यतः। + [ चीतीति निषेधोऽत इति पाठ. ] **द्वित्वमिति।** न तु पूर्वत्रेवेति भावः। अन्यथा, तद्विशेषणाभावे। निमित्तत्वाभावात्, तत्त्वाभावापत्तेः। तत्प्रवृत्तिः, द्विर्वचनेऽचीत्यस्य प्रवृत्तिः। एतेन परिभाषाद्वयमिदमिति सीरदेवाद्युक्त सुध्युपास्य इत्यादावनया प्राप्तदोषस्य ज्ञापकाद्वारणमिति भ्रान्तोक्तमेकपरिभाषापक्षेऽपि प्रायिकमेनल्लक्ष्यवशात्क्वचिदाश्रीयते क्वचिन्नेत्याद्योक्तमुक्तज्ञापकसिद्ध परिभाषान्तरमित्यन्योक्तं चापास्तम्। उक्तयुक्तेर्भाष्येऽस्यानुक्तेश्च। व्याकरणेऽपि कार्यिणोपश्लिष्टस्यैव निमित्तत्वव्यवहाराच्च। न चारिरिषतीत्यादाविसस्तथा। उपश्लेषस्य समीपसंबन्धरूपस्य भेदनिबन्धनत्वात्। तद्ध्वनयन्सिद्धान्तमाह—**वस्तुत इति।** अस्य तत्त्वमित्यत्रान्वयः। **तन्त्रेति।** न्यायशास्त्रादीत्यर्थः। तस्य, समवायिकारणस्य। तत्त्वेन,

---

* धनुश्चिह्नान्तर्गतोग्रन्थो ह पुस्तकस्थः।

---

१ क. °त्रेति।

अत एव हिः प्रयुक्तः । स हिस्तत्त्वेनानाश्रयणे हेतोः प्रसिद्धत्वं द्योतयतीति तत्त्वम् । 'द्विर्वचनेऽचि' ( १ । १ । ५९ ) इत्यत्र भाष्ये ध्वनितैषा ॥ १० ॥

ननु प्रणिदापयतीत्यादौ दारूपस्य विधीयमाना घुसंज्ञा दापेर्न स्यादत आह ।

**यदागमास्तद्गुणीभूतास्तद्ग्रहणेन गृह्यन्ते ॥ ११ ॥**

यमुद्दिश्याऽऽगमो विहितः स तद्गुणीभूतः शास्त्रेण तदवयवत्वेन बोधितोऽतस्तद्ग्रहणेन तद्ग्राहकेण तद्बोधकेन शब्देन गृह्यते बोध्यत इत्यर्थः । तत्र तद्गुणीभूता इत्यंशो बीजकथनम् । लोकेऽपि देवदत्तस्या-

---

निमित्तकारणत्वेन । अत एव, अज्ञापकसाध्यत्वादेव । हेतो', सकललोकतन्त्रप्रसिद्धभेदक-त्वस्य । **ध्वनितैषेति** । तत्र हि जेघ्रीयते देध्मीयत इत्येतद्वारकाज्ग्रहणस्य रूपातिदे-शज्ञापकतोक्ता । तेन यथा ध्वनिता तथा स्पष्टमुद्द्योते ॥ १० ॥

अथ सज्ञाप्रसङ्गादेव सज्ञाकर्मके संज्ञिविशेषोद्देश्यके विधौ विचार इति ध्वनयन्नाह—**ननु प्रणीति । दापेर्न स्यादिति** । तत्र स्व रूपमिति तद्ग्रहणेन समुदायस्यादारूप-त्वादेकदेशस्य चानर्थकत्वात् । तथा च णत्व न स्यादिति भावः । इद च मुख्यकार्यकालपक्षे । द्वितीयस्तु दुर्बल एवेत्युक्तम् । सग्राहकवाक्येऽत्र बहुवचनसत्त्वेऽपि लक्ष्यसस्कारकवाक्ये तदनुपयोगादाह—**यमिति** । एतत्परिभाषाप्रवृत्तिविषयसूत्रे कार्यित्वेन निर्दिष्टमित्यर्थः । अस्य तत्पदार्थद्वयेनान्वयः । तस्य तत्रोद्देश्यता च यथा कथचिन्न तु तत्सूत्रोपात्ततावच्छे-दकरूपेणैवेत्याग्रह इति भाव' । आगम इत्यस्य य इत्यादि । तद्गुणीभूत इत्यस्य[1] यत इत्यादि । अस्यैव व्याख्या—**शास्त्रेणेति** । आद्यन्तौ टकितावित्यादिनेत्यर्थ । [ * एवं चास्य कैयटोक्तार्थो न युक्त इति स्पष्टमुद्द्योते ] ननु ग्रहणमुच्चारण ज्ञानं वा न हि तेन तस्य ग्रहण सभवतीत्यत आह—**तद्ग्राहेति** । ननु तद्ग्राहकेण श्रोत्रेण तद्ग्र हणेऽपि प्रकृतेष्टासिद्धिरत आह—**तद्बोधेति** । नन्वेवमपि तेनोच्चारणासभवोऽत आह—**बोध्यत इति** । स समुदाय इति शेषः । इदमेव ध्वनयितुमस्या लोकन्यायसिद्धत्व प्रतिपादयितु तत्साधकतया विशेषण सफलयति—**तत्रेति** । तेन तद्बोधन इत्यर्थः । परिभाषायामित्यर्थ इति कश्चित् । तद्गुणीभूत इति पाठे तत्रेत्यस्य व्याख्यान इत्यर्थः । [ + अनेन परिभाषास्थस्यापि तदुक्तप्रायम् । ] तदेवाऽऽह—**लोकेऽपीति** । अपिः

---

* धनुश्चिह्नान्तर्गतो ग्रन्थो घ. पुस्तकस्थ । + धनुश्चिह्नान्तर्गतो ग्रन्थ. क. ख. पुस्तक-योर्वर्तते ।

---

१ ग. °ति । अ य यत इत्यादि. ।

ङ्गाधिक्ये तद्विशिष्टस्यैव देवदत्तग्रहणेन ग्रहणं दृश्यते। यमुद्दिश्य विहित इत्युक्तेः प्रनिदारयतीत्यादौ न दारित्यस्य घुत्वम्। आने मुक् (७।२।८२) इति मुग्विधानसामर्थ्यादेषाऽनित्या। अन्यथा पचमान इत्यादावकारस्य मुक्यनया परिभाषया विशिष्टस्य सवर्णदीर्घे तद्वैयर्थ्यं स्पष्टमेव। तेन दिदीय इत्यादौ यणादि न। जहारेत्यादौ 'आत औ णलः' (७।१।३४)

---

शास्त्रसमुच्चायकः। तद्विशिष्टस्येत्यनेनोक्तार्थसिद्धिः। एवेन तद्रहितव्यावृत्ति। ननु यदागमा इत्यस्य यथा कथंचिद्यत्सबन्धिन आगमास्तदवयवा इत्याद्येवार्थोऽस्त्वत आह—**यमुद्दीति**। (* ल्यब्लोपे पञ्चमीविधानादित्यर्थः। समासस्तु पञ्चमीति योगविभागात्सुप्सुपेति वा मयूरव्यंसकादित्वाद्वेति कश्चित्।) **घुत्वमिति**। रेफस्य यथाकथंचिद्घुसंज्ञासूत्रोपात्तदामुदिश्याविधानात्। अत एव नेर्णत्व न। अन्यथा रेफस्य शास्त्रेणाऽऽकारावयवत्वबोधनेनावयवावयवस्य समुदायावयवत्वस्य लोकसिद्धत्वेन दावयवत्वस्य रेफे सत्त्वेन तदापत्तिरिति भावः।

नन्वेवमप्यन्यत्रातिप्रसङ्गस्तदवस्थ एवात आह—**आने मुगिति**। अन्यथा, अनित्यत्वानङ्गीकारे। विशिष्टस्य, अमः। अकत्वेन ग्रहणादाकारेण सहेति शेष। तेन, एतदनित्यत्वेन। अस्योभयत्रान्वयः। नद्द्वयोपादानान्न चोक्ति। अन्यथा दिदीय इत्यत्रान्तरङ्गत्वाद्युटि द्वित्वेऽनया तद्विशिष्टस्यैशोऽज्ग्रहणेन ग्रहणादेरनेकाच इति यणापत्तिः। युड्विधानं तु पाक्षिकयत्रयश्रवणेन सफलमिति भावः। **जहारेति**। ननु प्रनिदारयतीत्यतोऽत्र को विशेष इति चेत्। शृणु। तत्रोक्तरीत्या[1] घुसञ्ज्ञासूत्रोपात्तदोद्देशेन रेफस्याविधानमत्र तु तथाऽऽत औ इत्येतत्सूत्रोपात्ताकारोद्देशेन रेफस्य विधानम्। धातुपदस्यानुवृत्तेरसंभवात्। णल इत्यनेनाऽऽक्षेपेऽपि तस्य पार्थक्येनाऽऽकारविशेषणतया वाऽन्वयसंभवात्। आक्षिप्तस्य विशेषणत्वस्यैवाङ्गीकारेण संभवतीति न्यायानङ्गीकारात्। वक्ष्यमाणरीत्याऽन्यथानुपपत्त्यभावाच्च। अङ्गसञ्ज्ञानिमित्तणल इत्यर्थेनाङ्गस्येति तु षष्ठ्यन्तमेव न तु पञ्चम्यन्तमिति स्पष्ट भाष्यादाविति। एतेनानित्यत्वमनभिप्रेत्य चिच्छिदतुरित्यादौ हलादिःशेषेण तुको निवृत्तिः स्यादित्यादिदोषानभिधाय महता प्रयासेन यथा कथंचित्समाधिं कुर्वन्सीरदेवादेर्यासुटोऽनयोदात्तत्वे सिद्ध उदात्तविधानमागमानुदात्तत्व ज्ञापयतीति वदन्भ्रान्तश्च परास्तः। अनित्यत्वेन तत्राप्रवृत्ते। आद्य उक्तरीत्या परिभाषाप्रवृत्तेरेवाभावात्। अन्त्ये भूयासमित्यादौ तस्य चारितार्थ्यात्। लस्य[2] यासुट्यपि लस्य स्थान आद्युदात्त स भवतीत्येवमर्थादुत्पद्यमानस्यैवाऽऽद्युदात्ततया तत्र यदागमा इत्यस्या अनुवादविषयाया अप्रवृत्त्या यासुडुदात्त-

---

* धनुश्चिह्नान्तर्गतो ग्रन्थो ङ पुस्तकस्थ।

---

१ ख ग. तत्र घु॰। २ ङ लस्थानिक आद्युदात्त. सभ॰।

**इति च न । न चाकारादेर्वर्णस्य वर्णान्तरमवयवः कथमिति वाच्यम् । वचनेनावयवत्वबोधनात् । तस्य चावयवत्वसादृश्ये पर्यवसानं बोध्यम् । न चोक्तज्ञापकाद्वर्णग्रहणेऽस्या अप्रवृत्तिवरिति वाच्यम् । 'आने मुक्' (७।२।८२) इति सूत्रे भाष्येऽकारस्याङ्गावयवस्य मुगित्यर्थे पचमान इत्यत्र 'तास्यनुदात्तेत्' (६।१।१८६) इति स्वरो न स्यादित्याशङ्क्याद्उपदेशभक्तस्तद्ग्रहणेन ग्रहीष्यत इत्युक्तेरसंगत्यापत्तेः । किं च ङमन्तपदावयवस्य ह्रस्वात्परस्य ङमो ङमुडित्यर्थे कुर्वन्नास्त इत्यादौ ङमो ङमुडागमे णत्वप्राप्तिमाशङ्क्य यदागमा इति न्यायेनाऽऽद्यनस्यापि पदान्तग्रहणेन ग्रहणात् 'पदान्तस्य' (८।३।३७) इति निषेध इत्यनया च परिभाषयाऽऽगमानामागमिधर्मवैशिष्ट्यमपि**

---

स्वदौर्लभ्याच्चेति दिक् । **कथमिति** । शाखायाः शाखान्तरावयवत्वव्यवहारादर्शनादिति भावः । नन्वसिद्धपदार्थस्य वचनसहस्रेणापि बोधन दुर्वचमत आह—**तस्य चेति** । अवयवत्वस्य चेत्यर्थः । अन्यत्रान्यशब्दः प्रयुज्यमानो विनाऽपीति न्यायादिति भाव. । **वर्णग्रहण इति** । यथा कथंचिद्वर्णग्रहण इत्यर्थः । ज्ञापकस्य सामान्यापेक्षत्वात् । अत एव दिदीय इत्यादौ न दोष इति भाव. । अथं, सिद्धान्तभूते । इत्यत्र, इत्यादौ । **तास्येति** । चित्स्वर बाधित्वा परत्वादिट इत्यादि. । **अदुपदेशेति** । अकारान्तोपदिश्यमानेत्यर्थः । स्वरविधौ तथैव सिद्धान्तितत्वात् । अत एव हतो हथ इत्यादौ नानुदात्तत्वम् । शुद्धाकारे तु व्यपदेशिवद्भावो बोध्यः । तत्रत्यकैयटस्तु चिन्त्य एवेति स्पष्टमुद्द्योते तत्रैव । अत्र यतस्तद्भक्तोऽनस्तद्बोधकशब्देन समुदायो ग्रहीष्यत इत्यर्थो बोध्यः । ग्राहिष्यत इति तु चिण्वद्भावेन रूपम् । एव वर्णस्य विशेषणत्वेनाऽऽश्रयण एतदप्रवृत्तौ दोषमुक्त्वा विशेष्यत्वेनाऽऽश्रयणे तत्र तमाह—**किं च ङमन्तेति** । अयं, असिद्धान्तभूते । आदिना कुँपन्नास्त इत्यादिपरिग्रहः । **ङमुडागमे णत्वेति** । नुडागमनकारे णत्वेत्यर्थः । तस्य पूर्वत्वेनापदान्तत्वेन निषेधाप्रवृत्तेरिति भाव. । आद्यनस्यापि, आगमनकारस्यापि । निषेध इतीत्यस्य भाष्य इत्यनेनान्वय. । ननु भाष्ये पदान्तभक्त पदान्तग्रहणेन ग्राहिष्यत इत्युक्त तदयुक्तम् । यदागमा इत्यनयोक्तरीत्या समुदायस्य पदान्तत्वातिदेशोऽपि केवलागमनकारस्य तत्त्वाभात्वात् । नत्व तु तस्याप्यस्त्येवेति । अत आह—**अनया चेति** । चस्त्वर्थे वाक्यालङ्कारे वा । क्वचिन्निश्च. पाठः । अपिर्भिन्नक्रम आगमानामित्यत्र योज्यः । तेन समुदायसमुच्चयः । अयं भावः—परिभाषाया गृह्यन्त इति पाठः । यदागमा इत्यत्रापीति शेषः । तद्ग्रहणेनाऽऽगमिग्राहकधर्मेण गृह्यन्ते ज्ञानविषयी क्रियन्ते । तथा चाऽऽगमी येन

---

१ ङ. °त्वस्यैव दौ° । २ ङ. °ध्य. । अत्र° । ३ घ कुष्यन्ना° ।

बोध्यत इत्याशयकङ्मुट्सूत्र—( ८ । ३ । ३२ )—स्थभाष्यासंगतेः ।

किं च गुणादे रपरत्वे रेफविशिष्टे गुणत्वाद्येष्टव्यम् । अन्यथा ऋकारस्य गुणवृद्धी अरारावेवेति नियमो न स्यात् । तच्च वर्णग्रहण एतद्प्रवृत्तौ न संगच्छते । अत एव 'रदाभ्याम्' (८ । २ । ४२) इति सूत्रे भाष्यम्—"गुणो भवति वृद्धिर्भवतीति रेफशिरा गुणवृद्धिसंज्ञकोऽभिनिर्वर्तते" इति । अत एव 'नेटि' (७ । २ । ४) 'णेरनिटि' ( ६ । ४ । ५१ ) इत्यादि चरितार्थम् । अनागमकानां

---

धर्मेण गृह्यते तद्ग्रहणेन तद्ग्राहकधर्मेण यमुद्दिश्य विहिता आगमा यतस्तद्गुणीभूता अतस्तेऽपि गृह्यन्तेऽपिना तद्विशिष्टा अपीत्यक्षरार्थः । यमुद्दिश्येत्यस्यार्थस्तु प्रागुक्त एव । आगमी यद्यद्धर्मवैशिष्ट्येन भासते परिभाषाप्रवृत्तिविषय आगमविध्यन्यविधौ तदारोपेणाऽऽगमस्यापि तद्धर्मवैशिष्ट्येन ग्रहणमिति यावत् । आगमी येन येन शब्देन बोध्यते तेन तेन शब्देनाऽऽगमस्य समुदायस्य च कार्यानुरोधेन बोधनमिति फलितोऽर्थः । स च प्रागुक्तो मूले । तत्र समुदायस्य तेन बोधन लोकन्यायसिद्धमुक्तम् । आगमस्य तेन बोधनमपि लोकन्यायसिद्धम् । अङ्गुल्याद्यवयवेऽङ्गुल्यादिव्यवहारदर्शनात् । इद भाष्यमप्यत्र गमकमिति । इत्याशयकेत्यपि भाष्यविशेषणम् । **संगतेरिति** । निश्चः पाठः ।

ननु ह्रस्वात्परपदावयवङमः परस्याजादे. पदस्येति व्याख्यानस्यैव सिद्धान्तत्वेनास्यैकदेश्युक्तमतावलम्बनकत्वेनासिद्धान्तत्वान्नाय दोषोऽत आह—**किंच गुणादेरिति** । **अन्यथेति** । विशिष्टे तदभाव इत्यर्थः । सर्वत्राऽऽन्तरतम्याभावस्य तुल्यत्वादिति भावः । **तच्चेति** । विशिष्टे तदेषण चेत्यर्थः । यत इत्यादि । विशिष्टे तत्त्वे समतिमप्याह—**अत एवेति** । विशिष्टस्य तत्त्वादेवेत्यर्थः । भाष्यमित्यस्य सगच्छत इति शेषः । तदेवाऽऽह—**गुण इति** । यत्तु भ्रान्तादयो[1] नेटीत्यादिज्ञापकमात्रसाध्येयमिति । तन्न । लोकन्यायसिद्धत्वस्योक्तत्वात् । तद्ध्वनयन्नाह—**अत एवेति** । तथापरिभाषाङ्गीकारादेवेत्यर्थः । अन्यथाऽपटीत्कारयितव्यमित्यादाविटा व्यवहितत्वादेव वृद्धिणिलोपयोरभावात्कि[2] निषेधाभ्यामिति भावः[3] । तथा चाऽऽद्ये सूत्र द्वितीयेऽशरूपमनिटीति निषेधक चरितार्थमित्यर्थो बोध्यः । आदिनाऽधराणीत्यादिनिर्देशपरिग्रहः । नन्वनागमकानां सागमका आदेशा इति सिद्धान्तात्स्थानिवद्भावप्राप्तवृध्द्यादिनिषेधार्थतया नेटीत्यादेः साफल्यमिति कथमेतज्ज्ञापकत्वं तयोः । कि च समुदायस्य तत्त्वमित्यंशरूपा व्यर्थेयं[4] तेनैव गतार्थत्वात् । अत आह—**अनागमेति** । अयमर्थ इत्यस्य कर्तव्येतीत्यत्रान्वयः । यथाश्रुतार्थतात्पर्ये बीजप्रतिपादन-

---

१ घ. भ्रान्त्या सीरेदवाद° । २ घ. ङ. °रप्राप्त्या कि । ३ °षेधेनेति । ४ घ. ङ. तस्य ।

सागमका आदेशा इत्यस्य त्वयमर्थः। आर्धधातुकस्येडागम इत्यर्थे ज्ञाते नित्येषु शब्देष्वागमविधानानुपपत्त्याऽर्थापत्तिमूलकवाक्यान्तरकल्पनेनेड्रहितबुद्धिप्रसङ्गे सेड्बुद्धिः कर्तव्येति। एवं चाऽऽदेशेष्विवात्रापि बुद्धिविपरिणाम इति न नित्यत्वहानिः।

स्थानिवत्सूत्रे च नेदृशादेशग्रहणम्। साक्षादष्टाध्यायीबोधितस्थान्यादेशभावे चारितार्थ्यात्। किं चैवं सति स्थानिबुद्ध्यैव कार्यप्रवृत्त्या 'निर्दिश्यमानस्य' (प० १२) इति परिभाषाया अप्राप्त्याऽऽगमसहितस्य पिबाद्यादेशापत्त्या लावस्थायामडितिभाष्योक्तसिद्धान्तासंगतिः। स्थानिवद्भावविषये निर्दिश्यमानस्येति परिभाषायाः प्रवृत्तौ

---

पूर्वकमत्र[1] हेतुमाह—**आर्धधातुकेत्यादि कल्पनेनेत्यन्तेन**। तथा च सा हेतौ तृतीया। **अनुपपत्त्येति**। अभेदे तृतीया। तदभिन्ना याऽर्थापत्तिस्तन्मूलिकेत्यर्थः। नुपपत्त्यर्थापत्तीति पाठस्तु सुगमः। यद्वा कल्पनायां तस्या[2] हेतुत्वेनान्वय[3] इति यथाश्रुतं तदपि साधु। **अर्थापत्तीति**। कल्पकप्रमाणोपन्यास। **वाक्यान्तरेति**[4]। तद्रहितार्धधातुकबुद्धौ सेडार्धधातुकबुद्धिरित्यादिरूपेत्यादिः। तत्तात्पर्यमाह—**एवं चेति**। बुद्धिविपरिणामस्वीकारे चेत्यर्थः। अत्रापि, आगमेष्वपि। विपरिणाम इत्यस्य तन्मात्रमित्यर्थः।

नन्वस्त्वेव तथाऽपि तद्वत्तेन गतार्थत्वादि तदवस्थमेवात आह—**स्थानिवदिति**। **ईदृशेति**। अनागमकानामित्युक्तेत्यर्थ। **साक्षादिति**। हनो वधेत्यादिनेति भावः। ननु बुद्धिविपरिणामस्य तत्रापि सत्त्वादविशेषोऽत आह—**किं चैवमिति**। ईदृशादेशस्यापि तत्र ग्रहणे सतीत्यर्थ। यतः[5] स्थानिवद्भावेन सर्वत्रेति शेष। **स्थानिबुध्यैव कार्यप्रवृत्त्येति**। परिभाषाया अप्राप्तौ हेतु। तस्य तद्बुध्या[6] कार्यकरणे निर्दिश्यमानस्यैव जायमानत्वेन फलाभावात्तदप्राप्तिरिति भाव। अप्राप्त्येत्यग्रेऽपिबादित्यादाविति शेषः। ननु तद्बुद्धिविषयत्वेन[7] तत्त्वऽपि वस्तुतः स्वरूपसन्निर्दिश्यमानत्व न तत्र समुदायस्येति नोक्तदोषो निर्दिश्यमानेति परिभाषाप्रवृत्त्या[8]। न चैव हन्त्यादिकार्यं वधादौ न स्यादिति वाच्यम्। इष्टापत्तेः। अतिदेशस्त्विडाद्यागमस्थलविशेष एव सफलोऽत आह—**स्थानिवदिति**। [ *आदेशातिरिक्तकार्ये साफल्येन स्थानिवद्भाववैयर्थ्यापत्तिरूपदोषा-

---

* धनुश्चिह्नान्तर्गतो ग्रन्थो घ. पुस्तकस्थः।

---

१ ङ °र्वक तत्र। २ ङ तस्याम्। ३ ङ °त्वे वाऽन्व°। ४ घ °ति। इड्रहि°। ५ ख. ततः। ६ घ. तदबुध्या। ७ ङ तदबुद्धि°। ८ घ. °षाया. फलसत्त्वेन प्रवृत्ते। अतस्तत्रेदृशस्यापि ग्रहण एव दोषान्तरमाह—स्था°।

**तिसृणामित्यत्र परत्वात्तिस्रादेशे स्थानिवद्भावेन त्रयादेशमाशङ्क्य सकृद्गतिन्यायेन समाधानपरभाष्यासंगतिः। 'एरुः' (३।४।८६) इत्यादौ स्थानषष्ठीनिर्देशात् तदन्तपरतया पठितवाक्यस्यैव समुदायादेशपरत्वेनाऽऽदेशग्रहणसामर्थ्यात्तस्य स्थानिवत्सूत्रे ग्रहणेन न दोषः।**

**आनुमानिकस्थान्यादेशभावकल्पनेऽपि श्रौतस्थान्यादेशभावस्य न त्याग इति 'अचः परस्मिन्' (१।१।५७) इत्यादेर्नासंगतिः।**

---

भावादाह—तिसृणामिति।] परत्वादित्यस्य त्रयादेशापेक्षयेत्यादिः। **असंगतिरिति।** निर्दिश्यमानेतिन्यायेन शङ्काया एवाभावात्। अज्ञानेन तत्करणेऽपि तं विहाय समाध्यन्तरकरणासंगतिरिति भावः[1]। नन्वेतावता तद्विषये तदप्रवृत्तिसिध्द्या बुद्धिविपरिणामस्योभयत्र तुल्यत्वेनाविशेषात्किं चैव सतीति दोषापत्त्या यत्र श्रौतस्थान्यादेशभावेन प्रयोगनिर्वाहस्तादृशस्याऽऽदेशस्य तत्र ग्रहणं नाऽऽनुमानिकादेशस्येति सिद्धम्। तथा सत्येरुरित्यादौ दोषापत्तिरत आह—**एरुरिति।** **तदन्तेति।** नित्यत्वानुपपत्तिमूलिकयेत्यादिः। अर्थवत्त्वेव। स्थान्यादेशभावविश्रान्तेः शब्दरूपं विशेष्यमादाय वर्णग्रहणे तदन्तग्रहणादिति भावः। वाक्यस्यैव, एरुरित्यादेरेव। इदं च मध्यमणिन्यायेनान्वेति। एवेनापठितागमस्थलीयानुमानिकवाक्यसदृशवाक्यव्यावृत्तिः। **आदेशग्रहणेति।** स्थानिवदित्युक्त्यैव संबन्धिशब्दमहिम्नाऽऽदेशाक्षेपे सिद्धे पुनरादेशग्रहणसामर्थ्यादित्यर्थः। तस्य, तादृशसमुदायादेशस्य। तथा च श्रौतस्थान्यादेशभावे तदनुपपत्तिमूलकतया कल्प्यमानतादृशस्थान्यादेशभावे च तत्प्रवृत्तिर्न त्वागमस्थलीये तत्रेति फलितमिति नोक्तदोषद्वयमिति बोध्यम्। . .

नन्वेवमपि श्रौतस्थान्यादेशभावस्य द्वितीये त्यागादच' परेत्यादीनामसंगतिवच्छ्रौतावयवावयविभावस्य तत्र त्यागाद्यदागमा इत्यस्याप्यसंगतिरेवात आह—**आनुमानिकेति।** यथेत्यादिः। **नासंगतिरिति।** तथाऽत्रापि श्रौतावयवावयविभावस्य न त्याग इति यदागमा इत्येतत्प्रवृत्तिरव्याहतैवेति प्रतिपादयतीत्यादौ न दोष इति शेषः। अन्यथाऽऽनुमानिकेत्यादिग्रन्थस्य प्रकृतानुपयुक्तत्वं[2] स्पष्टमेव। प्रासङ्गिकत्वकल्पनापेक्षया हीत्थमेवोचितमिति[3] बोध्यम्। यत्त्वत्र पक्ष आगमत्वं नास्त्येवेति तन्न। अनागमकानामित्यादिव्यवहारासंगतेः। किं च निरवयवकबुद्धिनिमज्जनपूर्वकसावयवकबुद्ध्युन्मज्जनेनाऽऽगमत्वव्यवहारस्यापि निर्बाधत्वात्। किं च नित्यत्वरक्षणायैरुरित्यादाविवात्रापि बुद्धिविपरिणाममात्रस्वीकारेण समुदाये गौणादेशत्वव्यवहारेणावयवे तदपगमो न युक्तो भिन्ननिष्ठत्वेनाविरोधादिति

---

१ घ °वः। तथा च तदसिद्ध्या किंचैव सतीति दोषापत्त्या नोक्तादेशस्य तत्र ग्रहणमिति न तेन गतार्थत्वादीति भाव.। नन्वेवं श्रौतादेशस्य तत्र ग्र°। २ घ. °पयोगित्वं। ३ घ. °दिपूर्वकव्य°।

**एतेन यदागमा इति परिभाषा स्थानिवत्सूत्रेण गतार्थेत्यपास्तम् । एतत्सर्वं ' दाधा ध्वदाप् (१।१।२०) इति सूत्रे भाष्ये स्पष्टम् ॥ ११ ॥**

**नन्वेवमुदस्थादित्यादौ ' उदः स्थास्तम्भोः पूर्वस्य ' ( ८ । ४ । ६१ ) इति पूर्वसवर्णापत्तिरत आह—**

**निर्दिश्यमानस्याऽऽदेशा भवन्ति ॥ १२ ॥**

**' षष्ठी स्थानेयोगा ' ( १ । १ । ४९ ) इति सूत्रमावर्तते । तत्र द्वितीयस्यायमर्थः, षष्ठ्यन्तं निर्दिश्यमानमुच्चार्यमाणमुच्चार्यमाणसजातीयमेव निर्दिश्यमानावयवरूपमेव वा स्थानेन स्थाननिरूपितसंबन्धेन**

---

दिक् । तद्ध्वनयन्नाह—**एतेनेति** । उक्तरीत्याऽनयोर्भिन्नविषयकत्वेनेत्यर्थ । इदं । सर्वं समूचयति—**एतत्सर्वमिति** । परिभाषातद्व्याख्यानमनागमकानामित्यादि सर्वं चेत्यर्थः । तत्र हि प्रनिदारयतीत्यादौ तदभावाय कृत ' समानशब्दप्रतिषेध. ' इति वार्तिकमर्थवद्ग्रहण-परिभाषया खण्डयित्वा प्रणिदापयतीत्यत्र तथैवाव्याप्तिमाशङ्क्य न वाऽर्थवतो ह्यागमस्तद्गुणीभूतस्तद्ग्रहणेन गृह्यत इत्याद्युक्त्वा नित्येष्वागमशासनमयुक्तमित्याशङ्क्य नित्येष्वादेशशासनं यथा बुद्धिविपरिणामेन तथाऽत्रापीत्याशयेनाऽऽदेशास्तर्हीमे भविष्यन्त्यनागमकाना सागमकाः । तत्कथम् । सर्वे सर्वपदादेशा इत्याद्युक्तम् । आदेशा इत्यादेरिम आगमत्वेन व्यवह्रियमाणा अपि तथा विधीयमाना अप्यादेशास्तत्सदृशा भविष्यन्तीत्यर्थ इति बोध्यम् ॥ ११ ॥

**एवं**, यदागमा इत्यङ्गीकारे । अनेन पूर्वसगतिरुक्ता । नेयं ज्ञापकलोकतन्त्रान्तरस्थन्यायसिद्धा किं तु सूत्रार्थभूतेत्याह—**षष्ठीति** । यद्यपि ' षष्ठी स्थाने ' इति सूत्र प्रसिद्धार्थक नापेक्षित तद्विनैवान्तरङ्गत्वादिनाऽत्र शास्त्रे तादृशस्थले सर्वत्र स्थानसंबन्धलाभात्तथा चाऽऽनर्थक्यात्तस्यैवायमर्थ इति भाष्य उक्त सीरदेवादिभिरपि तथैवोक्त तथाऽप्यबुधबोधनाय सूत्रमतावलम्बेनाऽऽह—**आवर्तत इति** । तत्रैकस्य प्रसिद्धार्थकत्वादाह—**तत्रेति** । तयोर्मध्य इत्यर्थ । अय, वक्ष्यमाणः । तमेवाऽऽह—**षष्ठ्यन्तमित्यादीतीत्यन्तेन** । प्रत्ययग्रहण इति परिभाषया षष्ठीपदेन तदन्तग्रहादाह—**षष्ठ्यन्तमिति** । निर्दिश्यमानपदाध्याहारादाह—**निर्दिश्येति** । तदर्थमाह—**उच्चार्येति** । ननु सूत्राद्युच्चार्यमाणस्य न तत्संबन्धः कि तु प्रयोगस्थस्यात आह—**उच्चार्येति** । सर्वं वाक्यमिति न्यायेन सामर्थ्यात्परिभाषायाः फलवतीत्वाच्चाऽऽह—**एवेति** । नन्वेव सुपद उदस्थादित्यादिसिद्धावप्यतिस्य इत्यादौ दोषोऽत आह—**निर्दिश्येति** । उच्चार्यमाणसजातीयावयवरूपमेव वेत्यर्थः । एव च यत्र समुदायोत्तर स्थानषष्ठी तद्विषय पूर्व पक्षो यत्रावयवषष्ठी तद्विषयोऽन्त्यः पक्ष इति विकल्प । अत एव वक्ष्यतीयं चावयवषष्ठीविषयेऽपीति बोध्यम् । इदमप्यध्याहारलभ्यम् । सुपद उदस्थादित्यादौ तु व्यपदेशिवद्भावेन सिद्धिरिति भावः । स्थानस्यासंबन्धत्वस्यान्यत्र प्रतिपादितत्वादाह—**स्थानेनेति** । निवर्त्यनिवर्तक-

**युज्यते न तु प्रतीयमानमिति । तेनेदं सिद्धम् ।**

**न च 'अस्य च्वौ' (७।४।३२) इत्यादौ दीर्घाणामादेशानापत्तिस्तेषां निर्दिश्यमानत्वाभावादिति वाच्यम् । जातिपक्षे दोषाभावात् । किं च 'न भूसुधियोः' (६।४।८५) इति निषेधेन ग्रहणकशास्त्रगृहीतानां निर्दिश्यमानकार्यबोधनान्न दोषः । इयङुवङोर्ङित्वं त्विवर्णोवर्णान्तधातुश्नुभ्रुवामित्यर्थेन धात्वादीनामपि निर्दिष्टत्वादन्त्यादेशत्वाय ।**

---

भावेनेत्यर्थः । योगेति कर्मणि घञित्याह—**युज्यत इति** । एवव्यावर्त्यमाह—**नेति** । प्रतीयमान, प्रतीयमानसजातीय प्रतीयमानसजातीयावयवरूप वेत्यर्थः । [ * प्रतीयमानत्वं च यत्किंचिच्छास्त्रान्तरप्रापितत्वम् । आनुमानिकामिति यावत् । ] इति तेनेदमिति पाठः । इत्यर्थस्तेनेदमित्यपाठः । **तेनेदमिति** । उक्तार्थकतत्सूत्रेणोक्तवचन समूलमित्यर्थः । यद्वा, उभयत्रार्थे इत्येव पाठः । अयमित्यस्योक्तवचनरूप इत्यर्थस्तदेवाऽऽह—षष्ठ्यन्तमित्यादिसिद्धमित्यन्तेन । इत्यर्थ इति । द्वितीयसूत्रस्येति भावः । अन्यत्सर्व प्राग्वत् ।

एव साधितपरिभाषाया व्यक्तिपक्षे शङ्कते—**न चेति** । इत्यादौ, इत्यादि[2]विषये माली भवतीत्यादौ । **दोषाभावादिति** । जातेः स्वतो निर्दिश्यमानत्वाभावेऽपि नान्तरीयकतया तत्तात्पर्योच्चारितव्यक्तिद्वारक तदस्त्येव । जातिश्च सर्वत्राविशिष्टा । एवं चोच्चार्यमाणत्वमारोपानारोपसाधारणमतो न वक्ष्यमाणग्रन्थासगतिरपीति भाव. । नन्वेवमपि व्यक्तिपक्षे दोषस्तदवस्थ एवात आह—**किं चेति** । यत इति[3] शेषः । **ग्रहणकशास्त्रेति** । ग्राहकशास्त्राणुदित्सूत्रेत्यर्थः । कार्यबोधनात्, कार्यभवनबोधनात् । अन्यथा, एरनेकाच ओः सुपीत्यादौ तेन तेषां ग्रहणेऽप्यनिर्दिश्यमानत्वाद्भूसुधियोर्यण प्राप्तिरेव नेति निषेधवैयर्थ्य स्पष्टमेव । धातोरनुवृत्त्या तादृशनिर्दिष्टत्वेऽपि ह्रस्वेकारान्तादेरेव तस्य तत्त्व न तु दीर्घेकारान्ता[4]दे. । चिच्यतुरित्यादावेरित्यस्य पटुमन्तमाचष्टे णिज्मतुब्लोपस्ततः क्विप्, पटु. पट्वावित्यादावो· सुपीत्यस्य चारितार्थ्यमिति भावः । नन्वेवमपीयङुवङोर्ङित्व [5]व्यर्थ य्वोरित्युक्त्याऽनया तयोरेव भवनादत आह—**इयङिति** । इह य्वोरिति सभवतीतिन्यायेन धातोरेव समानाधिकरण विशेषण नान्ययोरसभवादव्यभिचाराच्च । तदाह—**इवर्णोवर्णान्तेति** । धातुश्नुभ्रुवामिति पाठः । सर्वमूलत्वेनाभ्यर्हितत्वाद्धात्वन्तस्य पूर्वनिपातः । अत एवाग्रे धात्वादीनामित्युक्तिः । सूत्रे तु सौत्रत्वात्तदविवक्षयाऽल्पाच्तरत्वेन तथा प्रयोग इति बोध्यम् । इत्यर्थेन, अचि श्नुधात्वित्यस्येति शेषः । अपिर्वर्णसमुच्चायकः । निर्दिष्टत्वात्, स्वरूपतः प्रागुक्तरीत्या यथासभव निर्दिष्टत्वात् । साक्षादिति शेषः ।

---

* चतुश्चिह्नान्तर्गतो ग्रन्थो ङ पुस्तकस्थः ।

---

१ घ. °वेनैवेत्य° । २ घ °दिलक्ष्ये मा° । ३ घ. °यभावबो° । ४ घ. °दे विच्यतु° । ५ घ. व्यर्थम् । ए ओ इत्यनयोस्तत्रानुवृत्त्या तदन्ते प्राप्तावप्यन° ।

**रीङ्रिङोर्ङित्वं तु स्पष्टार्थमेव। एतेनेदं ङित्वं वर्णग्रहणे निर्दिश्यमान-परिभाषाया अप्रवृत्तिज्ञापकमित्यपास्तम्। हयवरट्सूत्रस्थेन ‘अयोगवाहानामुपदेशेऽलोऽन्त्यविधिः प्रयोजनं वृक्षस्तत्र नैतदस्ति प्रयोजनं निर्दिश्यमानस्येत्येव सिद्धम्’ इति भाष्येण विरोधात्।**

**अनया परिभाषया ‘येन विधिः’(१।१।७२) इति सूत्रबोधिततदन्तस्य स्थानित्वाभावबोधनं ‘यदागमाः’ (प०११) इति लब्धस्य च। तेन**

---

एव च तत्त्वाविशेषेऽपि प्राधान्याच्छ्नुश्नुवोरुक्तयुक्त्यसंभवाच्च तेषामेव स्यादिति नानया वारणमिति ङित्वमावश्यकमिति भाव.। नन्वेवमपि रीङ्रिङोर्ङत्व व्यर्थम्। तद्विधौ वर्णवत्समुदायस्यानिर्दिष्टत्वादनयैव निर्वाहात्। न चाङ्गस्येत्यधिकारप्राप्तमिति तदपि तथा निर्दिष्टमेवेति वाच्यम्। तावताऽप्यतिप्रसक्त्या तस्य स्वातन्त्र्येणास्थानित्वेन तदन्तविधिं विना तत्राऽऽदेशाप्राप्त्याऽवश्यवाच्यतदन्तविधौ तत्र तदभावबोधकत्वेन स्थानित्वनिवारकत्वेनास्यास्तत्र विद्यमानस्यापि निर्दिष्टत्वस्याप्रयोजकत्वात्। अत एव प्राग्धात्वादीत्यत्राऽऽदिपदोक्तिरेनेकाच इत्यादावङ्गस्यातत्त्व च। एव चानुवृत्त्या तत्त्वमधिकारसूत्रान्यसूत्रस्थपदस्यैवेति न वक्ष्यमाणातिस्य इत्यादिग्रन्थासगतिरत आह—**रीङिति**। एवेन फलान्तरव्यवच्छेदः। तमेवाऽऽह—**एतेनेति**। वक्ष्यमाणदोषेणेत्यर्थः। इद ङित्व, रीङादेर्ङित्वम्। तमेव दोषमाह—**हयेति**। अस्य भाष्येणेत्यत्रान्वयः। **उपदेश इति**। प्रयोजनविशेषनिर्देश विनोपदेश इत्यर्थः। **वृक्षस्तत्रेति**। अलोऽन्त्यस्येत्यन्त्यस्य सत्त्वसिद्धिरिति भावः। **विरोधादिति**। तत्रापि वर्णग्रहणेन त्वद्रीत्यैतदप्रवृत्त्यापत्तेरिति भाव.।

नन्ववतरणादस्या यदागमा इतिन्यायमात्रलब्धविशिष्टस्थानित्वबाधकत्वलाभात्सुपद इत्याद्यसिद्धि[1]। सामान्यतः सर्वबाधकत्व त्वस्य चत्रावित्याद्युक्तरीत्या दुर्वचम्। अतः पर्यवसितमाह—**अनयेति**। एव चोभयलब्धविशिष्टद्वय प्रतीयमानत्वेन विवक्षितं तद्भिन्नं प्रागुक्तरीत्योच्चार्यमाणत्वेन विवक्षितमिति न कश्चिद्दोषः। तथा चोपस्थितत्वेन तथोक्तावपि तत्तस्याप्युपलक्षणमिति भाव·। पदाङ्गाधीत्यस्य सूत्रप्रपञ्चत्वादाह—**येनेति**। ततः परादेः कार्यस्येष्टत्वादाह—**स्थानित्वेति**। सूत्रतस्तथैव लाभादिति भावः। **लब्धस्य चेति**। विशिष्टस्य तत्त्वाभावबोधनमित्यर्थः। इदमुपलक्षणम्। स्थलविशेषेऽलोन्त्यपरिभाषालब्धस्यापि तस्याभावबोधनमित्यपि बोध्यम्। इदमनुपदमेव स्फुटी भविष्यति। अनेनैव क्रमेण तयोरुदाहरणे आह—**तेनेति**। अस्य वचनस्य तदुभयादिबोधिते तत्र तद्बाधकत्वेने-

---

१ घ. °रणोक्तरीत्याऽस्या। २ ङ. °शिष्टादेस्तत्त्वा°। ३ ङ. तदबाध°।

**सुपद् उदस्थादित्यादिसिद्धिः । अनया च स्वस्वनिमित्तसंनिधापिता-नाम् 'अलोऽन्त्यस्य' ( १ । १ । ५२ ) इत्यादीनां समावेश एवं न बाध्यबाधकभावो विरोधाभावात् । नाप्येतयोरङ्गाङ्गिभाव उभयोरपि परार्थत्वेन तदयोगात् । 'अनेकाल्शित्' ( १ । १ । ५५ ) इति सूत्रे सर्वश्चैतत्परिभाषाबोधित एव गृह्यते ।**

**यत्तु 'आदेः परस्य' ( १ । १ । ५४ ) 'अलोऽन्त्यस्य' ( १ । १ । ५२ ) इत्येतावेतद्बाधकाविति तन्न । उदस्थादितिसूत्रवि-षयेऽस्याः 'पादः पत्' ( ६ । ४ । १३० ) इति सूत्रे भाष्ये संचा-रितत्वात् । नाप्येतयोरियं बाधिका । एतयोर्निर्विषयत्वप्रसङ्गादिति**

---

त्यर्थः । आदिना विंशक इत्यादिपरिग्रह. । कस्यचिदुक्तिं खण्डयितुं सिद्धान्तमाह— **अनया चेति** । सहेति शेष. । त्यदादीनाम एरनेकाच इत्यादाविति भावः । आदिनाऽऽ-देरित्यस्य परिग्रहः । बहुवचनेनानेकाल्शित्यस्य परिग्रह । **समावेश एवेति** । अविकृ-ताङ्गाद्युपात्तत्यदाद्यनेकाजादिव्यवच्छेदद्वारैतद्व्यवस्थापकत्वस्यापि तेषां संभवादिति भावः । एवव्यवच्छेद्यमेवाऽऽह—**न बाध्येति । विरोधेति** । क्वचिन्निष्फलत्वेऽप्येतत्प्रवृत्तौ दोषाभावेन क्वचित्तत्साध्यफलस्यैवानया साध्यत्वेन धर्मद्वयाक्रान्तत्वस्यैकत्र संभवेन च तदभावादित्यर्थ. । अन्यथा परत्वात्तेषामेतद्बाधकत्वापत्तिरिति भावः । नन्वेवमङ्गाङ्गिभावा-पत्तिरत आह—**नापीति** । परार्थत्वेन, विध्युपकारकत्वेन । गुणानामितिन्यायादिति भावः । नन्वेवमपि येन विधिर्यदागमा इत्युभयबोधितस्थानिनोरनेकाल्शित्यत्रत्यसर्वपदेन ग्रहणादनया सह तस्य विरोधसंभवेन बाध्यबाधकभावापत्त्या परत्वादनेकाल्शित्यस्य प्रवृत्त्या सुपदो निर्जरसावित्याद्यसिद्धिरेवात आह—**अनेकालिति** । एवेन तदुभयबोधितव्यावृत्तिः। तथा च तेनापि समावेश एव । पद्न्न इत्यादावप्यादेशैः पाणिनिकृतस्थान्युच्चारणानुमाना-त्तेषां व्यवस्थार्थत्वाद्वा न दोष इति भावः ।

कौस्तुभोक्तिं खण्डयति—**यत्त्विति** । परत्वात्सर्वादेशविषयेऽस्याश्चारिताथ्यं तेनैव हि समावेशस्तथा भाष्य उदाहरणात् । तयोस्तु कृते चारितार्थ्यमिति भाव । **उदस्थादिति सूत्रेति** । पादः पदितिसूत्रभाष्य उदस्थादिति लक्ष्य आदेरितिसूत्रविषयेऽस्या. सञ्चारितत्वा-दित्यर्थः । इदमुपलक्षणम् । तत्सूत्रे ति विंशतेरिति सूत्रे चालोन्त्यपरिभाषाविषयेऽस्या. संचारितत्वादित्यपि बोध्यम् । किंचोक्तरीत्या तेषा व्यवस्थापकत्वे संभवति बाधकत्वकल्प-नानौचित्यादबाधेनैवोपपत्तिन्यायादित्यपि बोध्यम् । एतयोः, पूर्वोक्तयोरनयोः । **बाधि-केति** । अन्तरङ्गत्वादिति भावः । **निर्विषयत्वेति** । क्वचिदनया बाधेन सिद्धेः

---

१ क °हः । कौस्तुभोक्ति° ।

'ति विंशतेः' (६।४।१४२) इति सूत्रे कैयटः।

अकृज्विषये नाय न्यायः। स्थानिवद्भावेनेव तन्मध्यपतितन्यायेन

क्वचिदनिष्टापत्तेः क्वचिदन्त्याद्योरनिर्दिश्यमानविषयत्वाभावाच्च। एव चैतद्विषय उक्तरीत्याऽलोन्त्यस्येत्यादिप्रवृत्तावप्यबाधिततद्विषयताके राज्ञ. क चेत्यादौ नैतत्प्रवृत्तिरुभयाद्यविषयत्वात्। एवं च सम. सुटि तासस्त्योरित्यादौ येनेतिविषय एतत्प्रवृत्त्या तत्प्रवृत्तिः सुवचेति न दोष। स स्यार्धेत्यत सीतिवत्स इत्यनुवृत्तिरप्यन्त्ये सुवचेति भावः। **ति विंशेति।** तत्र हि यस्येति चेत्यनेनैवान्त्यस्य लोपे सिद्धे सूत्रारम्भसामर्थ्यात्समुदायस्य निर्दिष्टत्वात्प्राप्तादेशवारणाय तिग्रहणे कृतेऽप्यन्त्यस्य कुतो नेति प्रश्ने निर्दिश्यमानेतिवारणपरोत्तरभाष्यप्रतीकेनात्र परिभाषाप्रवृत्तिरिष्टा। न हि सा तयोर्बाधिका। उक्तहेतो.। तस्मात्तिग्रहणसामर्थ्यादलोन्त्यस्येत्यस्याप्रवृत्तौ सर्वस्यार्थाल्लोप इति भाष्याकूतमिति तेनोक्तम्। कैयट इत्यनेनारुचिः सूचिता। उक्तार्थस्येष्टत्वेऽपि नानर्थक इत्यस्य प्रत्याख्यानपरसिद्धान्तभाष्यरीत्या तद्भाष्ययोजनेत्थमनुचिता। अक्षरास्वारस्यात्। न चैव भाष्यासंगतिः। एकदेश्युक्तेन प्रकारान्तरेण सुयोजत्वात्। तथा हि—द्वयोर्दशतोर्विन्नादेशः शतिच्प्रत्यय इति पक्षेऽव्युत्पत्तिपक्षे विंशादेशस्तिच्प्रत्यय इति साधुत्वाय व्युत्पत्तावपि वस्तुत. शुद्धरूढे चानर्थकत्वेनालोन्त्यस्येत्यस्याप्रवृत्त्याऽनया सर्वादेश इति। एव चैकदेशिमताभिप्रायकमेव तद्भाष्यम्। अत एवोद्द्योतेऽन्य इत्युक्तम्। सिद्धान्तस्तु कैयटोक्त एव। इदमेव सूचयितुं तिविंशेतिसूत्रपर्यन्त गमनम्। अन्यथोक्तार्थस्य षष्ठी स्थान इत्यत्रैव कैयटेनोक्तत्वेन तावत्पर्यन्तगमन व्यर्थमेवेति बोध्यमिति केचित्। वस्तुतस्त्वियं परिभाषा तयोर्विषय इव प्रकारान्तरेण बाधितालोन्त्यपरिभाषाविषयेऽपि तत्त्वस्य बाधिकेति तद्भाष्याकूतम्। नैतावता तयोर्निर्विषयत्वप्रसङ्गः। सामर्थ्यसहकारस्थल एव तथाऽङ्गीकारात्। युक्त चैतत्। निर्दिश्यमानत्वस्याक्तपरिमाणधर्मतया सख्यादिवन्न्यूनाधिकयोरसत्त्वेनाधिके तत्त्वव्यवच्छेदवन्न्यूनेऽपि तत्सभवात्। एव चैव भाष्यसगतावन्यथा वदन्तौ कैयटोद्द्योतौ चिन्त्यावेव। अत एव कैयटव्याख्यानमकृत्वा स्वव्याख्यानेऽन्य इत्यरुचिसूचकमुद्द्योत उक्तम्। एव च त्रितयबोध्यस्थानित्वाभावबोधनमनया क्रियत इति बोध्यम्।

नन्वेवमप्यस्या अकृज्विषयेऽपि प्रवृत्तिसभवेन पूर्वत्र तन्मध्यपतितन्यायस्याप्युल्लेख उचितः। तथा च साकचकस्य कार्यं न स्यादत आह—**अकृजिति**। [*नायं न्याय इति। येन विधिर्यदागमा इत्येतद्बाधकत्वेनोत्सर्गसमानदेशा इति न्यायेनास्यास्तद्विषयत्वेन तदविषये तत्राप्राप्तेरिति भावः] तत्रैतन्न्यायाप्रवृत्तौ हेतुमाह—**स्थानीति**। [+एवो व्युत्क्रमे न्यायेनेत्युत्तर योज्यः। तथा च] यथा स्थानिद्भावेन स्थानिबुध्या कार्यं तथा

* धनुश्चिह्नान्तर्गतो ग्रन्थो ग. घ पुस्तकयोर्वर्तते। + धनुश्चिह्नान्तर्गतो ग्रन्थो ग. घ. पुस्तकस्थ.।

१ ग. घ. °व.। नन्वेव तर्हि केन न्यायेन तत्र कार्यमत आह—स्था°

तद्बुद्ध्यैव कार्यजननात् । इयं चावयवषष्ठीविषयेऽपि । अत एव 'तदोः सः सौ' (७।२।१०६) इति सत्वमतिस्य इत्यत्रोपसर्गतकारस्य न। निर्दिश्यमानयुष्मदाद्यवयवमपर्यन्तस्यैव यूयादयो न त्वतियूयमित्यादौ सोपसर्गावयवमपर्यन्तस्येति बोध्यम् । 'पादः पत्' (६।४।१३०)

---

तेन न्यायेन तद्बुद्ध्यैव कार्यजननादित्यर्थ । अस्याऽऽशयः किं चैव सति स्थानिबुद्ध्यैवेति-ग्रन्थव्याख्यानरीत्या बोध्यः । न चैवमत्र दृष्टान्तोक्तिरधिकेति वाच्यम् । पूर्वदोषारुच्या तिसृणामित्यत्रान्यथात्रयादेशवारणपरभाष्यासगत्यापत्त्या तदग्रिमया पूर्वत्रोक्तया यथा तद्विषय एतदप्रवृत्तिरेवमत्रारुचिसत्त्वेऽपि किम इत्यस्योत्तरार्थत्वेऽपि कादेशविधानसामर्थ्या-त्स्थानिवद्भाववत्तन्मध्येतिन्यायवैयर्थ्यापाताच्च तद्विषय एतदप्रवृत्तिरिति तन्मध्येतिन्यायः स्थानिवद्भावतुल्यो न तु ताभ्यामिति तत्कोटिप्रविष्टत्व तन्मध्येत्यस्य नेति तौ द्वौ मिथस्तु-ल्यावेतौ द्वौ च मिथ इति ताभ्यामत्र भेद इति सूचनार्थत्वात् । एतेन । तयोरेव विष-येऽस्याः प्रवृत्तिरित्यत्र किं मान तन्मध्येतिन्यायविषयेऽपि प्रवृत्तिसभवात् । किं च यदा-यामा इत्यनेनापि तद्बुद्धचैव कार्यजनेने ततोऽविशेषेण तत्रैतदप्रवृत्तावस्य हेतुत्वासभवोऽन्यथा स्वपूर्वापरविरोध इत्यपास्तम् । ग्रन्थयोरन्याशयकत्वस्योक्तत्वात् । शीङो रुडित्यत्र रुडू न ह्रस्य तथा सत्यत्तस्य न स्यात् , आदेरित्यनेन रुट एव स स्यादिति न्यासकृद्यु-क्तिस्तु चिन्त्यैव । तथा सत्यनया तस्य सर्वथा दौर्लभ्यापत्तेः । अत एवादम्यस्तादित्युतोऽ-दित्यनुवृत्तिरूरीकृता दीक्षितैः । एतेनैतदनपेक्ष्येय न्यासकृदुक्तिर्मपर्यन्तेतिसूत्रे तदभावे युवकामित्यादावतिप्रसङ्ग इति तदुक्तिरपि तथेति सीरदेवोक्तमपास्तम् । आद्य उक्तरीत्या दोषाभावात् । अन्त्य एतदप्रवृत्तेरुक्तत्वात् । नन्वेवमपि षष्ठी स्थान इत्यस्या अनिर्धारित-संबन्धविशेष एव प्रवृत्त्या तदर्थकत्वेनास्या अपि तत्रैव प्रवृत्तिः स्यादिति प्रथमार्थ एव प्रागुक्तो युक्तो न द्वितीय इत्यातिस्य इत्याद्यसिद्धिरेवात आह—**इयं चेति** । चो वाक्या-लंकारे। अत्र लक्ष्यानुरोधस्य हेतुत्व सूचयितु फलमाह—**अत एवेति** । तत्रापि प्रवर्तना-देवेत्यर्थः । अस्य बोध्यमित्यत्रान्वयः । अतिस्य इत्यत्र कर्मधारयः । **तकारस्य नेति।** अन्यथाऽङ्गाधिकारात्तदन्तविधौ त्यदाद्यन्तानामङ्गाना तदोः स इत्यर्थेन तदापत्ति. स्पष्टैवेति भाव. । फलान्तरमाह—**निर्दिश्येति** । एतत्प्रवृत्तिलब्धार्थकथनमेतत् । एवव्यावर्त्यमाह—**न त्वतीति** । अत्यादय इति समासः । **सोपेति** । अन्यथा पूर्ववत्तदन्तविधिना युष्मदाद्यन्ताङ्गावयवमपर्यन्तस्येत्यर्थेन प्राप्तिरिति भावः । नन्वस्याः पादः पादिति सूत्रस्थ-

---

१ क ख. °रेव।कि। २ ङ °नेन त°।

इति सूत्रे 'षष्ठी स्थाने' (१ । १ । ४९) इति सूत्रे च भाष्ये स्पष्टैषा ॥ १२ ॥

ननु चेतेत्यादौ ह्रस्वस्येकारस्य प्रमाणत आन्तर्यादकारोऽपि स्यादत आह—

**यत्रानेकविधमान्तर्यं तत्र स्थानत आन्तर्यं बलीयः ॥ १३ ॥**

**अनेकविधं स्थानार्थगुणप्रमाणकृतम् । अत्र मानं 'षष्ठी स्थाने' (१।१।४९) इत्यत एकदेशानुवृत्त्या स्थानेग्रहणे पुनः स्थानेऽन्तरतमः (१।१।५०) इति सूत्रे स्थानेग्रहणमेव । तद्धि तृतीयया विपरिणमय्य वाक्यभेदेन स्थानिनः प्रसङ्गे जायमानः सति संभवे स्थानत एवान्तरतम इत्यर्थकम् ।**

---

त्वेऽपि प्राथमिकत्यागो निर्बीजोऽत आह—**षष्ठीति** । उक्तमेतत् ॥ १२ ॥

स्थान्यादेशभावप्रसङ्गात्तदग्रिमसूत्रमूलकत्वाच्च तदुक्तिरिति ध्वनयन्नाह—**ननु चेतेत्यादाविति** । केचित्तु नन्वित्यस्यैवमपीति शेष. । उक्तपरिभाषया प्रतीयमानस्याऽऽदेशवारणेऽपीति तदर्थ । तथा च स्थानिकृतदोषवारणेऽप्यादेशकृतातिप्रसङ्गस्तदवस्थ एवेति भाव इत्याहु. । **अकारोऽपीति** । अपिना पक्षे स्थानत आन्तर्यात्प्राप्तैकारसमुच्चयः । उभयोस्तुल्यबलत्वादिति भाव. । **यत्र,** चेतेत्यादिलक्ष्ये । स्थानिन आदेशै. सहेति शेषः । **अनेकविधं,** स्थानतदन्यकृतम् । **आन्तर्यम्** । अनियमप्रसङ्गनिवारणपूर्वकमिथोविरुद्धादेशसपादकतया नियामकत्वेन प्रसक्तम् । **तत्रेति** । प्रागवत् । तयोर्मध्य इति शेषः । वाग्घरिरित्यादौ स्थानत आन्तर्यस्य न नियामकत्वेन प्रसक्तिरिति सत्त्वेऽपि तस्य न गुणकृतान्तर्यतः प्राबल्यमिति परिभाषाक्षरार्थ. । प्रागुक्तमेव फलम् । अनेकत्वस्य द्व्यादिपरार्धपर्यन्तेषु सत्त्वात्प्राचीनमतस्य सुयोजत्वेन भाष्यमतमनपेक्ष्य तन्मतेन वास्तव तद्विशेषस्वरूपमाह—**स्थानार्थेति** । तेषामेव सभवादन्येषामत्रैवान्तर्भावसभवाच्चेति भावः । नन्वेवमपि वचनं निर्मूलमत आह—**अत्रेति** । परिभाषायामित्यर्थः । **एकदेशेति** । दामहायनान्ताच्चेत्यादौ दृष्टयेति शेषः । एकदेशे स्वरितत्वप्रतिज्ञानादिति भावः । स्थानेग्रहणे, प्रसङ्गवाचिनि । अनुवर्तमाने इति शेषः । अन्यथा तृतीयान्तसप्तम्यन्तयोरनन्वयः स्पष्टएव । स्थानेग्रहण, कण्ठादि स्थानवाचि । एवेन ज्ञापकादिनिवृत्तिर्न तु सूत्रस्येति ध्वनयितु केवलस्य तस्य तत्त्वासंभवात्सूत्रद्वारा तस्य तत्त्वमुपपादयति—**तद्धीति** । स्थानेग्रहणं हीत्यर्थः । तृतीयया, तदन्तेन तृतीयार्थे सप्तमीति तत्त्वम् । विपरिणमय्येत्यस्य सूचितेनेति शेषः । अन्यथा ल्यबनुपपत्तिः स्पष्टैव । वाक्यभेदेन योज्यमिति पाठे तु शेषपूरण विना तेन तथा कृत्वा तेन योज्य तद्धीत्यर्थकमित्यर्थः । प्रसिद्धपूर्ववाक्यार्थलब्धमर्थमनुवदति—**स्थानिन इति** । सति सभव इत्यनेनासंभवेऽ-

---

१ ह. °ग्रिमायाः सू° ।

तमङ्ग्रहणमेवानेकविधान्तर्यसत्तागमकम् । स्थानतः स्थानेनेत्यर्थः । तत्र स्थानत आन्तर्यम् 'इको यणचि' ( ६ । १ । ७७ ) इत्यादौ प्रसिद्ध-मेव । अर्थतः 'पद्दन्' ( ६ । १ । ६३ ) इत्यादौ । स्थान्यर्थाभिधान-समर्थस्यैवाऽऽदेशतेति सिद्धान्ताद्यदर्थाभिधानसमर्थो यः स तस्याऽऽदेश इति तत्समानार्थतत्समानवर्णपादादीनां ते । 'तृज्वत्क्रोष्टुः' ( ७ । १ । ९१ ) इति च । गुणतो वाग्घरिरित्यादौ । प्रमाणतः 'अदसोऽसेः' ( ८ । २ । ८० ) इत्यादौ । स्थानेऽन्तरतमसूत्रे ( १ । १ । ५० ) भाष्ये स्पष्टैषा ॥ १३ ॥

---

न्यस्यापि ग्रहो यथा वाग्घरिरित्यादाविति सूचितम् । एवेनान्यान्तर्यव्यावृत्तिः । ननु वाक्यभेदेन न फलमनेकविधान्तर्यसत्त्व एव मानाभावात् । न च स्थानेग्रहण तथा । प्रसङ्गे स्थानकृतान्तर्यवानित्यर्थेनैव सिद्धेः । तथा च तद्धसतीत्यादावव्यवस्थापत्तिरत आह—**तमविति** । यद्येक स्थानकृतमेव तत्स्यात्तदाऽऽन्तर इत्येवसिद्धे तद्वानर्थक्य स्पष्टमेव । उत्कर्षस्य प्रतियोगिसापेक्षत्वात् । तथा चैकवाक्यतायामुक्तदोषापत्तिरिति वाक्यभेद आवश्यक इति भावः । ननु तत्र स्थान इत्यस्य तृतीयान्तार्थकत्वेऽपि परिभाषाया स्थानत इति पञ्चम्यन्तस्य सत्त्वेनार्थभेदापत्तिरत आह—**स्थानेनेति** । आद्यादित्वात्तृतीयान्तात्तसिरिति भावः । सति सभव इतिविशेषणसाफल्याय चतुर्णां क्रमेणोदाहरणान्याह—**तत्रेति** । चतुर्णां मध्य इत्यर्थः । ननु पद्दन्न इत्यादौ स्थानिनामेवानुपादानात्कथ तत्त्वमत आह—**स्थान्यर्थेति** । अर्थवत्येव स्थान्यादेशभावविश्रान्तेरिति भावः । **तत्समानेति** । तत्राऽऽदेशत्वग्रहे स्थान्यर्थाभिधानसमर्थत्वग्रहे सति स्थानिन्यपि तदर्थाभिधानसमर्थत्वस्य तुल्यवित्तिवेद्यत्वेन ग्रहेणाऽऽदेशाक्षिप्तादेशसमानार्थेत्यर्थ. । नन्वेव चरणादीनामपि तदापत्तिरत आह—**तत्समानेति** । आदेशसमानवर्णेत्यर्थ. । तदपि भूयसा यथाकथचिन्न तु सर्वांशेनेति भाव. । ते, पदादय. । ननु पद्दन्न इत्यादेर्व्यवस्थार्थत्वेन स्थान्यादेशभाव एव तत्र नात आह—**तृज्वदिति** । इति च, इत्यादौ च । गुणशब्देनोक्तत्रितयातिरिक्तं धर्ममात्र तेनानान्तर्यमेवैतयोरित्यादिभाष्येण न विरोध. । बाह्याना विवारादीना साक्षाद्वर्णावृत्तित्वेऽप्यौपचारिक गुणत्वम् । तदाह—**गुणतो वाग्घरिरिति** । इद च कौमुद्या स्पष्टम् । आदिना कृष्णर्द्धिरित्यादिपरिग्रहः । प्रमाणस्य ह्रस्वत्वादेर्वस्तुतो गुणत्वेऽपि ब्राह्मणवसिष्ठ-न्यायेन पृथगुक्तिरिति ध्वनयन्नाह—**प्रमेति** । **अदसोऽसेरिति** । अत्राऽऽन्तरतम्याद्ह्रस्वव्यञ्जनयोर्ह्रस्वो दीर्घस्य दीर्घ इति भाव ॥ १३ ॥

---

१ क. 'शग्रहणेन स्था°।

ननु प्रोढवानित्यत्र 'प्रादूहोढ ( ६ । १ । ८९ । ३ वा० ) इति वृद्धिः स्यादत आह—

## अर्थवद्ग्रहणे नानर्थकस्य ॥ १४ ॥

विशिष्टरूपोपादान उपस्थितार्थस्य विशेषणतयाऽन्वयसंभवे त्यागे मानाभावोऽस्या मूलम् । अत्रार्थः कल्पितान्वयव्यतिरेककल्पितः शास्त्रीयोऽपि गृह्यत इति ' संख्याया अति ' ( ५ । १ । २२ ) इति सूत्रे भाष्ये स्पष्टम् । इयं वर्णग्रहणेषु नेति ' लस्य ' ( ७ । ४ । ७७ ) इत्यत्र भाष्ये स्पष्टम् । अत एवैषा विशिष्टरूपोपादानविषयेति वृद्धाः । एतन्मूलकमेव ' येन विधिः ' ( १ । १ । ७२ ) इत्यत्र भाष्ये पठ्यतेऽलैवा-

---

**नन्विति** । एवमपीति शेष· । स्थानत आन्तर्यस्य प्राबल्यप्रतिपादनेऽपीति तदर्थः । इत्यत्र, इत्यत्रापि । तथा चान्यत्रान्यथाऽतिप्रसङ्गस्तदवस्थ इति स्थान्यादेशभावप्रसङ्ग एव संगतिरिति भाव. । परिभाषाया भाष्यमते मानमाह—**विशिष्टेति** । वर्णसमूहेत्यर्थः । इदं च वक्ष्यमाणरीतिसिद्धार्थकथनम् । **विशेषणेति** । उपात्तशब्दरूपं प्रतीति भावः । सभवे, सतीति शेष· । नन्वत्र प्रसिद्धत्वाल्लौकिकार्थग्रहणम् । स च वाक्ये पदे वा । एव च प्रोढवान्पटुजातीयायेत्याद्यावनया कथं वारणमत आह—**अत्रेति** । परिभाषायामित्यर्थः । अन्वयव्यतिरेकयोरपि लोकेऽनुपयोगेन वस्तुतोऽसत्त्वादाह—**कल्पितेति** । शास्त्रवासनाकल्पितेत्यर्थः । **कल्पित इति** । प्रकृतिप्रत्ययादिबोध्य इति शेषः । अपिर्लौकिकसमुच्चायकः । **संख्याया अतीति** । तत्र हि डतेश्चेति वार्तिकमनयोक्तरीत्या प्रत्याख्यातम् । नन्वेवमुक्तरूपविशिष्टरूपोपादान एव प्रवृत्तौ मानाभावेन तथोक्तिरयुक्तेति भवत्वितीत्यादौ लक्ष्मीनारायणार्थकयशब्दादौ सावकाशो यणन स्यादत आह—**इयं वर्णेति** । **लस्येत्यत्रेति** । तत्र हि लादेशे सर्वप्रसङ्गाऽविशेषादिति दत्ताया लुनातीत्यादावापत्तेरनया कृत वारण न वर्णग्रहणेष्विति खण्डितम् । **अत एवेति** । ततो वर्णग्रहण एतदप्रवर्तनादेवेत्यर्थः । उक्तार्थे मानान्तरमपि ध्वनयितुमाह—**एतन्मूलेति** । वर्णग्रहण एतदप्रवृत्तिमूलकमेवेत्यर्थः । वार्तिकमिति शेषः । एवेन मूलान्तरव्यावृत्ति· । अय भाव.—यदि सर्वत्रास्या. प्रवृत्तिस्तर्ह्यलोऽनर्थकेनेति विशेषणमयुक्तम् । एतत्परिभाषाविरोधात् । तस्माद्वर्णादन्यत्रैवास्याः प्रवृत्तिरिति हनादौ पदाङ्गाधिकार इति तदन्तविधिना प्राप्तप्लीहनादिग्रहणाभावाय तद्वार्तिकम् । तथा च वर्णसमुदायेन चेत्तदन्तविधिस्तर्ह्यर्थवतैवेति फलितम् । एतेन न वर्णग्रहणेष्विति पूर्वापवादभूत परिभाषान्तरमिति । तत्र ज्ञापकमुञ इति सूत्रम् । अन्यथा उ इतीत्यत्र अचो आनर्थक्याद्यणादेशस्यैवाप्रसङ्गे कि तेन । ईदूतौ च सप्तम्यर्थे

---

१ घ, ङ °र्थे मल.न्त° । २ घ र्थेऽज्ञाऽन° ।

मर्थकेन तदन्तविधिरिति । किं च 'स्वं रूपम्' (१ । १ ६८) इति शास्त्रे स्वशब्देनाऽऽत्मीयवाचिनाऽर्थो गृह्यते रूपशब्देन स्वरूपम् । एवं च तदुभयं शब्दस्य संज्ञीति तदर्थः । तत्रार्थो न विशेष्यस्तत्र शास्त्रीयकार्यासंभवात्किं तु शब्दविशेषणम् । एवं चार्थविशिष्टः शब्दः संज्ञीति फलितम् । तेनैषा परिभाषा सिद्धेति भाष्ये स्पष्टम् ॥ १४ ॥

नन्वेवमपि महद्भूतश्चन्द्रमा इत्यत्र 'आन्महतः' (६ । ३ । ४६) इत्यात्वापत्तिरत आह—

गौणमुख्ययोर्मुख्ये कार्यसंप्रत्ययः ॥ १५ ॥

गुणादागतो गौणः । यथा गोशब्दस्य जाड्यादिगुणनिमित्तोऽर्थो

---

इति निर्देशो वेत्यादि च सीरदेवाद्युक्तमपास्तम् । तत्रैतदप्रवृत्त्यैव निर्वाहे वचनान्तरकल्पने गौरवात् । सूत्रमते परिभाषाया मानमाह—**किं चेति । स्वरूपमिति ।** शब्दस्वरूपमित्यर्थः **। एवं चेति ।** उभयग्रहणे चेत्यर्थ । तथा च पदार्थोपस्थिति सपत्नेति भाव. । **तदुभयमिति ।** तत्सूत्रघटकशब्दद्वयबोध्य द्वयमित्यर्थः । एवमग्रेऽपि । तदुभय ताभ्यां स्वरूपशब्दाभ्या गृह्यमाण द्वयमिति वा । एतदुभयमिति पाठस्तु सुगम· । तत्र, अर्थे **। शास्त्रीयेति ।** प्रत्ययेन पौर्वापर्यासभवात् । प्रातिपदिकादित्यनेनान्वयासभवाच्चेति भावः । शब्दविशेषण, शब्दस्य विशेषणम् । अर्थ इत्यनुषज्यते । एव च, अर्थस्य तद्विशेषणत्वे च **। तेनैषेति ।** तथा तदर्थेन सूत्रेणेत्यर्थः । ननु सूत्रस्य प्रत्याख्यानादयुक्तमिदमत आह—**भाष्य इति ।** इत्यादिभाष्ये स्पष्टमित्यर्थः । अनेनाऽऽद्यप्रकार एव तदा बोध्य इति सूचितम् । एतेन सूत्रप्रत्याख्यानात्सीरदेवोक्त रूपग्रहण ज्ञापकमिति चिन्त्यमिति भ्रान्तोक्त व्रश्चादिसूत्रे भ्राजिग्रहणमिह ज्ञापकमिति सीरदेवोक्त चापास्तम् । सूत्ररीत्योपपत्त्याऽऽद्यस्यायुक्तत्वात् । व्रश्चादिसाहचर्येण धातुसज्ञकराजेरेव तत्र ग्रहणेन भ्राजिग्रहणस्योपक्षीणत्वेनान्त्यस्यायुक्तत्वात् । ऋकारस्य तदनुबन्धकत्वाच्चेति दिक् ॥ १४ ॥

**एवमपीति ।** तत्र लौकिकशास्त्रीयार्थग्रहणेन तया सर्वथाऽनर्थकवारणेऽपीत्यर्थः । अनेन स चार्थः कीदृगित्याशङ्कयैतदुक्तिरिति पूर्वसगतिः प्रदर्शिता **। महदिति ।** च्व्यर्थे चायम् **। आत्वापत्तिरिति ।** मुख्यस्यैव ग्रहणमित्यत्र मानाभावादिति भाव । वाक्यार्थबोधफलकपदार्थबोधाय तत आगत इत्यणन्तो गौणशब्द इत्याह—**गुणादिति ।** गुणहेतुकयथाकथचिच्छब्दजन्यतादृशबोधविषय इत्यर्थः । तमेव सदृष्टान्तमाह—**यथेति ।** गोनिष्ठजाड्यादिगुणसजातीयजाड्यादिगुणहेतुकारोपविषयगोत्वादिनिमित्तकप्रवृत्तिकतच्छब्दजन्यबोधविशेष्यको वाहीकरूपोऽर्थ इत्यर्थः । अभिव्यक्तेति सग्रहा-

---

* धनुश्चिह्नान्तर्गतो ग्रन्थो ड पुस्तकस्थः ।

---

१ ड °ति । अत्र मु° । २ क. ख. °नेनात्र ।

बाहीकः। अप्रसिद्धश्च संज्ञादिरपि तद्गुणारोपादेव बुध्यते। मुखमिव प्रधानत्वान्मुख्यः प्रथम इत्यर्थः। गौणे ह्यर्थे शब्दः प्रयुज्यमानो मुख्यार्थारोपेण प्रवर्तते। एवं चाप्रसिद्धत्वं गौणलाक्षणिकत्वं चात्र गौणत्वम्। तेन प्रियत्रयाणामित्यादौ त्रयादेशो भवत्येव। तत्र त्रिशब्दार्थस्येतरविशेषणत्वेऽप्युक्तरूपगौणत्वाभावात्।

किं चायं न्यायो न प्रातिपदिककार्ये। किं तूपात्तं विशिष्यार्थोपस्था-

---

याऽऽह—**अप्रसिद्धश्चेति**। नन्वस्य किं रूपं किं च भेदेनोक्त्याऽस्य गुणनिमित्तकत्वाभावेन गौणत्वाभावेनात्र कथं ग्रहणमत आह—**संज्ञादिरिति**। [* सज्ञेति कर्मण्यङ् ] संज्ञा, आदिः प्रथमो बोधकोऽस्येत्यर्थ। तथा च सज्ञाबोध्य इति फलितम्। अपिनाऽनुकरणे शब्दरूपपरिग्रह.। अनेनाऽऽद्यशङ्का समाहिता। **तद्गुणेति**। तद्गुणारोपपूर्वक तद्धर्मारोपादेवेत्यर्थ। एव च गुणादागतत्व तद्वदनयोरपि तुल्यमिति द्वितीयशङ्का समाहिता। अत एव युष्मदादेः स्वरूपमात्राश्रयकार्याणामर्थाश्रये चेत्यादिवक्ष्यमाणरीत्योपसर्जनतायामिव सज्ञाया न प्रवृत्तिर्युष्मद्युपपद इत्यादावपि। एकाच प्राचामित्यादौ स्मादादीनामपि। एवमन्यत्रापि बोध्यम्। यद्वाऽपिः प्रागुक्तसमुच्चायकः। **तद्गुणेति**। यद्वाचकशब्दप्रयोगस्तदीयगुणेत्यर्थः। एतेन प्रसिद्धाप्रसिद्धयोरिति परिभाषान्तरमिति रत्नकृदुक्तमपास्तम्। सादृश्ये हेतुमाह—**प्रधानत्वादिति**। प्रधानार्थान्तरप्रतीतिनिरपेक्षतया प्रतीयमानत्वादित्यर्थः। तादृशतादृशार्थबोधकत्वाच्छब्दस्यापि गौणत्व मुख्यत्वं च बोध्यम्। शाखादिभ्य इति य.। उपमेयमाह—**प्रथम इति**। प्राथमिकशक्तिजन्यबोधविषय इत्यर्थ। प्रथमत्वं तत्रोपपादयति—**गौणे ह्येति**। आरोपाय हि पूर्वं तदुपस्थितिरावश्यकीति भावः। **मुख्यार्थेति**। मुख्यार्थप्रवृत्तिनिमित्तारोपेणेत्यर्थः। आरोपितगोत्ववान्बाहीकसमभिव्याहारे गोशब्दार्थ इति भाव'। फलितमाह—**एवं चेति**। उभयोर्गुणनिमित्तकत्वे चेत्यर्थ। चात्र परिभाषायाम्। अनेनान्यत्र नैवमिति सूचितम्। ईदृशव्याख्यानस्य फलमाह—**तेनेति**। तदर्थमाह—**तत्रेति**। प्रियत्रयाणामित्यत्रेत्यर्थ.। **इतरेति**। अन्यपदार्थेत्यर्थः। **उक्तरूपेति**। द्विविधेत्यर्थः। अत एवोपसर्जनप्रतिषेधो वार्तिककृता सर्वादिसूत्रे कृत इति भावः।

ननूपसर्जनत्ववत्यपि गौणत्वव्यवहर्तॄणा मतेऽयमतिप्रसङ्गस्तदवस्थ एवात आह—**किं चेति**। ननु तद्वारणाय यदि पदोद्देश्यककार्ये प्रवृत्तिरित्युच्येत तर्हि श्वाशुरिरित्यादौ यदेव स्यात्, गोऽभवदित्यादौ प्रगृह्यसज्ञा च स्यात्। एतेन यथाकथञ्चित्पदसबन्धिकार्ये प्रवृत्तिरित्यप्यपास्तम्। अन्त्यदोषापत्तेः श्वाशुरिरित्यादावैज्नापत्तेश्च। अत आह—**किं तूपात्तमित्यादि। विशिष्टेति**। अर्थवत्परिभाषामूलकत्वादस्या अपि विशिष्टरू

---

* धनुश्चिह्नान्तर्गतो ग्रन्थो ग. पुस्तकस्थ।

१ क. ख °वनात्र। २ क ख. °मू। अपि.।

**पकं विशिष्टरूपं यत्र तादृशपदकार्य एव। परिनिष्ठितस्य पदान्तरसं-बन्धे हि गौर्वाहीक इत्यादौ गौणत्वप्रतीतिर्न तु प्रातिपादिकसंस्कारवे-लायामित्यन्तरङ्गत्वाज्जातसंस्कारबाधायोगः प्रातिपदिककार्ये प्रवृत्त्य-भावे बीजम्। श्वशुरसदृशस्यापत्यमित्यर्थके श्वाशुरिरित्यादावत इञः सिद्धय उपात्तमित्यादि। न च प्रातिपदिकपदं तादृशमिति वाच्यम्। तेन हि प्रातिपदिकपदवत्त्वेनोपस्थितिरिति तस्य विशिष्यार्थोपस्थापक-त्वाभावात्।**

---

पोपादानविषयत्वमिति भाव.। रूपमित्यस्योद्देश्यमिति शेषः। वर्णसमूहात्मकार्थवद्रूपमुद्देश्य-मिति तदर्थः। यत्र, कार्ये। ननु तत्रैवेत्युक्तौ तु पदकार्येऽय न्याय इत्यभियुक्तोक्त्यसंग-त्यापत्तिः। तत्र पदकार्य इत्युक्तौ तु पदस्यापि कार्ये निमित्तत्वभ्रम. स्यात्। अत आह—**तादृशेति**। वस्तुतः पदव्यपदेशराहितानिमित्तकेत्यर्थ[1]। एवं प्रातिपदिककार्यव्यवच्छे-दाय। तत्र निषेधे हेतुमाह—**परीति**। स्वार्थे परिपूर्णमित्यादिभाष्योक्तेरिति भाव.। हि, यतः। बीजमित्यत्रास्यान्वयः। **प्रातीति**। तस्य सुबादिकृतसाधुत्वरूपसंस्कारेत्यर्थः। **बाधायोग इति**। उत्तरकालप्रतीतिकगौणत्वहेतुकप्रवृत्तिकगौणमुख्यन्यायेन बहिरङ्गे-णेति भावः। ननु विशिष्टेत्यादिनैवोक्तसकलेष्टप्रयोगसिद्धावलं विशेषणद्वयेन, अत इञि-त्यत्रात एवोद्देश्यत्वादोदित्यत्र चौदन्तनिपातस्योद्देश्यत्वादत आह—**श्वशुरेति**। वैषम्ये बीजाभावेनौदन्तनिपातवदत्राप्यदन्तप्रातिपदिकस्योद्देश्यत्वामिति विशिष्टरूपस्योद्देश्यत्वमस्त्ये-वेत्यतिप्रसङ्गस्तदवस्थ एवेति भाव.। **इत्यर्थक इति**। अनेनास्य विग्रहत्वं निरस्तम्। अत इञ., अत इञितीञ.। **उपात्तमिति**। तथा चादन्तरूपं नोपात्तमिति नातिप्रसङ्ग इति भावः। नन्वेवं तावदेवास्तु, अलं द्वितीयविशेषणेनात आह—**आदीति**। अनेनेदं सूचितं द्वितीयविशेषणस्यापीदमेव कृत्यमिति। एतदेव प्रतिपादयितुं प्राथमिकरीत्या शङ्कते-**न चेति**। तादृशम्, उपात्तम्। तथा च तावन्मात्रे दत्तेऽपि नातिप्रसङ्गवारणमिति भाव। सूचितरीत्या सिद्धान्तमाह—**तेनेति**। प्रातिपदिकपदेनेत्यर्थ। हि. प्रसिद्धौ। इतः पञ्चम्याश्च सत्त्वात्। सञ्ज्ञाशब्दे शब्दस्य प्रवृत्तिनिमित्तत्वस्य प्रसिद्धत्वादिति भाव। एवं सत्याद्यविशेषणवैयर्थ्यं तु न। अदन्तप्रातिपदिकस्य विशिष्टस्य विशिष्यार्थोपस्थापकत्वादिनाऽ-तिप्रसङ्गतादवस्थ्यात्। एवं च केवलस्यात इत्यस्य न विशिष्टरूपत्वमात्रं प्रातिपदिकपदस्य न विशिष्यार्थोपस्थापकत्वमात्रमदन्तप्रातिपदिकस्य तादृशस्य नोपात्तत्वमात्रमिति बोध्यम्।

नन्वेवं गोऽभवदित्यादावनया वारणं न स्यादोदित्यत्र निपातपदस्यापि सञ्ज्ञाशब्दत्वेन तत्तुल्यत्वात्। किं चानुवृत्तस्य नोपात्तत्वमिति प्रागुक्तदोषनिरासे द्वितीयविशेषणं व्यर्थमे-

---

१ ग. °हितकार्यित्वानाश्रवके°।

निपातपदं तु चादित्वेनैव चादीनामुपस्थापकमिति तदुद्देश्यककार्यवि-धायके 'ओत्' (१।१।१५) इत्यादावेतत्प्रवृत्त्या गोऽभवदित्यादौ दोषो न। अग्नीषोमौ माणवकावित्यत्र प्रसिद्धदेवताद्वन्द्ववाच्यग्नीषोम-पदस्य तत्सदृशपरत्वेऽन्तरङ्गत्वादीत्वषत्वे भवत एव। सदृशलाक्षणिकाग्निसोमपदयोर्द्वन्द्वे तन्नामकावित्यर्थके च न षत्वम्। आद्ये गौणलाक्ष-णिकत्वादन्त्येऽप्रसिद्धत्वात्। अत एवाग्निसोमौ माणवकावित्यत्र गौण-मुख्यन्यायेन षत्ववारणपरम् 'अग्नेः स्तुत्स्तोमसोमाः' (८।३।८२) इतिसूत्रस्थं भाष्यं संगच्छते।

---

वात आह—निपातेति। चादित्वेनैवेति। चत्ववात्वहत्वादिनेत्यर्थ। एवेन निपातत्वस्याखण्डोपाधिजातिशब्दरूपत्वस्य निरास। अय भाव.—निपातत्व नाखण्डोपाधिरूपम्। तदनङ्गीकारात्। नापि जातिरूपम्। द्योतकत्वादिना साकर्यात्। नापि शब्दरूपम्। अस्य योगरूढत्वेन प्रातिपदिकपदवच्छुद्धरूढत्वाभावाच्छब्दस्य च तत्रैव तत्त्वाङ्गीकारात्। अत एव पूर्वतो वैलक्षण्यसूचकस्तुरुक्त इति। कार्येति। प्रगृह्यसज्ञेत्यर्थ। एतदिति। गौणमुख्यन्यायेत्यर्थ.। गोऽभवदिति। गोभिन्नकर्तृकस्य गोसदृशकर्तृकत्वरूपेण भवनस्य प्रतीतिरत्र गौणत्वम्[१]। यत्र च योगीश्वरशापादिना मुख्यगोरूपप्राप्तिस्तत्र च्विर्नेष्यत इति भावः। दोषो न। प्रगृह्यत्वप्रयुक्तप्रकृतिभावो न। तथा च यद्यनुवृत्तस्य तत्त्वं न स्यात्तर्ह्यत्र दोषो दुर्निवार। तथा च दोषवारणपरभाष्यासंगतिरिति तथाऽवश्यं वाच्यमिति निपातपदमादायैवैतत्प्रवृत्तिर्न प्राग्वदिति ततोऽत्र[२] वैलक्षण्यमेवेति भावः। नन्वेवमग्नीषोमौ माणवकावित्यत्रापीत्वषत्वे न स्यातामेतत्प्रवृत्तेरत आह—अग्नीति। प्रसिद्धेति। गौणत्वस्य तदा निरासाय। देवताद्वन्द्वेति। देवताद्वयेत्यर्थः। भवत एवेति। अत्र बीजमुक्तम्। नन्वेव भाष्यविरोधोऽत आह—सदृशेति। द्वन्द्वे इत्युभयान्वयि। द्वितीयेऽपि लक्षणैव तत्तद्गुणाद्यारोपमूलकतत्तत्प्रवृत्तिनिमित्तारोपेण च बोध इति मञ्जूषाया स्पष्टमिति गौणत्व युक्तमेवेति भावः। न षत्वमिति। देवताद्वन्द्वाभावादीत्वस्य प्राप्तिरेव नेति तदनुल्लेखः। एवमग्रेऽपि। नेत्वषत्वे इति पाठे तु यथोक्तहेतोरीत्व न तथाऽनेन षत्व नेत्यर्थ.। तदेव भाष्यमाह—अत एवेति। उक्तज्ञापकत्वादेवेत्यर्थः। एव चाग्नीषोमावित्यादौ प्रागुक्ते तयोरङ्गीकारे न भाष्यविरोध इति भावः।

ननु परिनिष्ठितस्येत्यादिना यदुक्त तस्याय भावः—विभक्त्यर्थस्य क्रियाकारकसंबन्धरूपत्वेन तयो. सबन्धबोध· श्रुतिकृत इति श्रुतेर्वाक्यापेक्षया शीघ्र प्रवृत्त्या प्रथम तयोरन्वय·

---

१ क. °म्। अन्यत्र। २ ङ °ति तत्ततोऽ°।

गां पाठयेत्यादौ मुख्यगोपदार्थस्य पाठनकर्मत्वासंभवेन विभक्त्युत्पत्तिवेलायां प्रयोक्तृभिर्गौणार्थत्वस्य प्रतीतावप्यपदस्याप्रयोगेण बोद्धृभिः सर्वत्र पदस्यैव गौणार्थकत्वस्य ग्रहेणात्वं त्वं संपद्यतेऽमहान्महान्भूतस्त्वद्भवतीत्यादिभाष्यप्रयोगे त्वाद्यादेशदीर्घादीनां करणेन चास्य न्यायस्य पदकार्यविषयत्वमेवोचितम् । अन्यथा वाक्यसंस्कारपक्षे तेषु तदनापत्तिः । किं च शुक्लामित्युक्ते कर्म निर्दिष्टं कर्ता क्रिया चानिर्दिष्टे इत्याद्युक्त्वेहेदानीं गामभ्याज कृष्णां देवदत्तेत्यादौ सर्वं निर्दिष्टं गामेव कर्म देवदत्त एव कर्ताऽभ्याजैव क्रियेत्यर्थकेनार्थवत्सूत्रस्थभाष्येण कारकादिमात्रप्रयोगे योग्यसर्वक्रियाध्याहारे प्रसक्ते नियमार्थः क्रियावाचकादिप्रयोग इत्येतत्तात्पर्यकेण सामान्यतः क्रियाजन्यफलाश्रयत्वमात्र-

---

बोधः पश्चान्मिथो गा वाहीकमानयेत्यादाविति । इदमयुक्तम् । गा वाहीक पाठयेत्यादौ यत्र गौणार्थप्रादुर्भाव विना क्रियासबन्ध एवासभवी तत्र पूर्वमेव गौणत्वावगतेरात्वाद्यनापत्तेस्तादवस्थ्यात् । अत आह—**गामिति** । बेलाया, तत्प्राग्वेलायाम् । गौणार्थत्वस्य प्रतीताविति व्यस्तः पाठः । उभयेति नियमप्राप्त्या कर्मणि चेति निषेधप्रवृत्तेः । अत एव कर्तरि * तृतीया । एव गौणार्थकत्वस्य ग्रहेणेत्यत्रापि बोध्यम् । **अपदस्येति** । तथा चानुपपत्त्यैवैतन्न्यायाप्रवृत्त्या कार्यप्रवृत्तिरिति भाव । अप्रयोगादेवाऽऽह—**बोद्धृभिरिति ।** तथा च तेषां नानुपपत्तिलेशोऽपीति भाव । एव सिद्धेर्थे ऋषिसमतिमप्याह—**त्वमिति ।** आदिना मद्भवतीत्यादिपरिग्रहः । अन्यथा, अस्य पदकार्याविषयकत्वे । तेषु, गा पाठयेत्यादिषु । **तदनेति** । आत्वाद्यनेत्यर्थः । भाष्यप्रयोगेऽपीद बोध्यम् । इद च प्रयोक्तॄणां तदा गौणार्थकत्वप्रतीतिमभ्युपेत्य । वस्तुतः साऽपि नेत्याह—**किं चेति** । आदिना देवदत्तेत्युक्ते कर्ता निर्दिष्टः कर्मक्रिये अनिर्दिष्टे अभ्याजेत्युक्ते क्रिया निर्दिष्टा कर्तृकर्मणी अनिर्दिष्टे इत्यस्य परिग्रहः । सर्व निर्दिष्टमित्यस्येत्युक्तेनेति शेषः । अन्यथा क्त्व इत्यर्थकेनेत्यस्य चासंगतिः स्पष्टैव । **गामेवेति** । गामितिशब्दवाच्यमेव कर्मेत्यादिक्रमेणार्थ. । एवास्तदन्यव्यवच्छेदकाः । दत्तैवेति पाठः । आदिभ्या यथाक्रम क्रियाकारकयोः परिग्रहः । **प्रसक्त इति** । एतेन सर्वत्र वाक्यमेव बोधकमिति पदार्थातिरिक्त. कश्चिद्वाक्यार्थोऽस्तीति सूचितम् । **सामान्यत इति** । क्रियात्वेनेत्यर्थ. । मात्रपदेन विशेषव्यावृत्तिः । तदादिविवक्षायामित्यर्थ. । अत एवाग्रिमादिसगतिः । अन्वाख्यान, कर्मणीत्यादिसूत्रेण । विशेष-

---

* ङ. प्रयोक्तृभिरिति ।

---

१ घ. °दावपि । इ° । २ ङ. महद्भूत इत्या° ।

विवक्षायां द्वितीयादीनां साधुत्वान्वाख्यानमित्यर्थलाभेन पाठनक्रिया-न्वयकाले पदस्यैव गौणार्थत्वप्रतीतिः प्रयोक्तुरपि ।

एवमेतन्मूलकः " अभिव्यक्तपदार्था ये " इति श्लोकोऽपि पदकार्य-विषयकः । ध्वनितं चेदं ' सर्वादीनि '( १ । १ । २७ ) इति सूत्रे संज्ञा-भूतानां प्रतिषेधमारभता वार्तिककृता ' पूर्वपर ' ( १ । १ । ३४ ) इति सूत्रेऽसंज्ञायामिति वदता सूत्रकृताऽन्वर्थसंज्ञया तत्प्रत्याख्याने कुर्वता भाष्यकृता च । अर्थाश्रय एतदेवं भवति शब्दाश्रये च वृद्ध्यात्वे इत्यो-त्सूत्रस्थभाष्यस्य लौकिकार्थवत्त्वयोग्यपदाश्रय एष न्यायस्तद्रहितशब्दा-श्रये च ते इत्यर्थः । ' गोतः ' ( ७ । १ । ९० ) इति यथाश्रुतसूत्रे

---

क्रियान्वय आह—**पाठनेति** । एवेन प्रातिपदिकव्यावृत्तिः । **गौणार्थत्वप्रतीति-रिति** । शेषे विभाषेति विकल्पेन नियमाप्रवृत्तिपक्षे कर्तृकर्मेत्युभयत्र षष्ठ्या कर्मणि चेति निषेधाप्रवृत्त्या समास इति भावः । अपिर्बोद्धृसमुच्चायकः । वृद्धिसूत्रस्थभाष्यमप्यत्र मान-मित्युद्द्योते स्पष्टम् ।

एवमस्य कैयटाद्युक्तपदकार्यविषयकत्वं सुसमर्थाभिव्यक्तेति परिभाषान्तरमिति भ्रमं निरसितुं तत्राप्येवमेवेत्याह—**एवमिति** । उक्तन्यायवदित्यर्थः । एतन्मूलक इत्यनेन तस्या अन्यत्व निरस्तम् । श्लोकोऽपीत्यनेन तस्य कल्पितत्व सूचितम् । एवं सिद्धेऽर्थे मानान्तरमप्याह—**ध्वनितमिति** । ध्वनितमपीत्यर्थः । इदम्, अस्य न्यायस्य पदकार्य-विषयकत्वम् । सर्वादीनीति सूत्र इति पाठः । पूर्वपरेतीति पाठः । **तत्प्रत्याख्येति** । सर्वेषां नामानि सर्वनामानीत्यन्वर्थसंज्ञया तदुभयप्रत्याख्यानमित्यर्थः । अत एवात्र सूत्रवार्तिकयो-र्व्यत्यासोक्तिः । अन्यथा तस्यैव प्रत्याख्यानमिति भ्रमः स्यादिति भावः । **कृता चेति** । अन्यथा गुणयोगेन लाक्षणिकत्वरूपगौणत्वाभावेऽपि तन्मूलत्वेनाप्रसिद्धत्वादिकस्याप्यत्र ग्रहणस्योक्तत्वेन सर्वादिरूपसंज्ञाया अपि तथात्वेनानेनैव वारणे त्रितयासंगतिः स्पष्टैवेति भावः । नन्वेवमप्योत्सूत्रस्थभाष्यासंगतिरेवात आह—**अर्थेति** । वस्तुतो लौकिकार्थव-त्त्वस्य वाक्य एव सत्त्वादाह—**योग्येति** । अर्थपदस्य लक्षणेति भावः । एतदेवमित्यस्या-र्थमाह—**एष न्याय इति** । **तद्रहितेति** । लौकिकार्थवत्त्वयोग्यत्वसमानाधिकरणपद-त्वरहितत्यर्थः । मुख्यव्यपदेशरहितस्वार्थबोधकप्रातिपदिकरूपशब्दाश्रये इति यावत् । वस्तुतः पदव्यपदेशराहितस्य तत्र निमित्तत्वेनाऽऽश्रयणमिति भावः । ते, वृद्ध्यात्वे । ननु शब्दाश्रये चेत्यस्यार्थरहितवर्णमात्राश्रये इति प्रतीयमानार्थः कुतो नेत्यत आह—**गोत इति** । **यथाश्रुतेति** । गकाराविवक्षायामसत्यामिति भावः । युक्त चैतत् । अस्यैव

---

१ ख. ग. °ग्यपदत्व° । २ ग. °त्र कार्यित्वे° । ३ घ. ङ. °यामि° ।

विशिष्टरूपोपादानसत्त्वेनोक्तरीत्यैव तस्य भाष्यस्य व्याख्येयत्वादित्यलम् ॥ १५ ॥

'अर्थवद्ग्रहणे' ( प० १४ ) इत्यस्यापवादमाह—

**अनिनस्मन्ग्रहणान्यर्थवता चानर्थकेन च**
**तदन्तविधिं प्रयोजयन्ति ॥ १६ ॥**

'येन विधिः' ( १ । १ । ७२ ) इत्यत्र भाष्ये वचनरूपेण पठितैषा। तेन राज्ञा साम्नेत्यादावल्लोपो दण्डी वाग्ग्मीत्यादौ 'इन्हन्' ( ६ । ४ । १२ ) इति नियमः सुपयाः सुस्रोता इत्यादौ 'अत्वसन्तस्य' ( ६ । ४ । १४ ) इति दीर्घः सुशर्मा सुप्रथिमेत्यादौ 'मनः' ( ४ । १ । ११ )

मतस्य सिद्धान्तत्वादिति बोध्यम्। **व्याख्येयत्वादिति** । यत्तु सर्वनामस्थानामुशासाक्षिप्तप्रातिपदिकस्यौत इत्यनेन विशेषणात्तयोरपि विशिष्टशब्दाश्रयत्वात्तथा भाष्यार्थो न युक्त इति । तन्न । स्वार्थादिप्रयुक्तकार्येण पूर्णस्य पदस्यार्थप्रतिपादनाय प्रयोगार्हस्य पदार्थान्तरान्वये बाधप्रतिसधाने गौणार्थत्वप्रतीतेराक्षेप आक्षिप्तस्य वा शाब्देऽन्वये मानाभावाच्चेति दिक् । तदाह—**इत्यलमिति** । नन्वनिनित्यस्यार्थवत्परिभाषापवादत्वेन तदुक्त्वा गौणमुख्येति वक्तुमुचितामिति कथ पूर्वमुक्तमिद तथा मूलमस्य वक्तव्य नोक्तमिति चेन्न । अर्थवद्ग्रहण इति परिभाषायमार्थस्य मुख्यस्य प्रधानन्यायेन ग्रहणेनास्य न्यायस्य सिद्धत्वेनानतिरिक्तत्वात् । इदमेवः सूचयितुमेवमपीत्यपिशब्दघटितमुक्तं पूर्वपक्षे । तेन ह्यर्थप्रसङ्गात्तत्रैव पूर्वमाकाङ्क्षोदय सूचितः । अस्या भिन्नत्वे तु नन्वेवमित्येव वदेत् । तथा चैतदुक्ति विना तदर्थानिश्चय इत्यपवादो दुर्वच इति तदर्थमेतदुक्तिः ॥ १५ ॥

तदेतद्ध्वनयन्नाह—**अर्थवदिति** । अपवादमित्यनेन पूर्वसगतिः सूचिता । अर्थवतेत्यादितृतीयान्त विशेषणेनेत्यर्थकस्य सौत्रस्य येनेत्यस्य विशेषणम् । तद्ध्वनयन्नाह—**येनेति** । **वचनेति** । वार्तिकेत्यर्थः । अनेनापूर्वत्वमस्याः सूचितम् । अर्थवता चानर्थकेन चेत्युक्तेरनादिषु प्रत्येकमुदाहरणद्वयमाह—**तेन राज्ञा साम्नेत्यादिना** । परिभाषाक्रमेणैवाऽऽद्यमर्थवतो द्वितीयमनर्थकस्येति बोध्यम् । अल्लोप इत्यादिप्रथमान्ताना सिद्ध इत्यत्रान्वय । अल्लोप इत्यस्याल्लोपोऽन इतीत्यादिः । **नियम इति** । तथा च सौ चेति दीर्घसिद्धिरिति भाव । **सुस्रोता इति** । अनागमकाना सागमका इति पक्षेऽनर्थकत्वं स्पष्टमेव । पक्षान्तरेऽप्यागमसनिधौ तद्विशिष्टस्यैवार्थवत्ताया न्याय्यत्वेन भाष्य उक्तत्वेन च तत्त्वम् । एतेनार्थवतो ह्यागम इति पक्षेऽयमर्थवानेवेति चिन्त्यमिदमुदाहरणमिति तत्रत्यकैयटोक्तिरपास्तेति स्पष्टमुद्योते । खण्डयितुं मता-

१ घ. °ये बोध° ।

इति ङीब्निषेधश्च सिद्धः। अन्ये तु परिवेविषीध्वमित्यत्र ढत्वव्यावृत्तये क्रियमाणात् 'इणः षीध्वम्' (८।३।७८) इत्यत्राङ्गग्रहणादर्थवत्परिभाषाऽनित्या तन्मूलकमिदमित्याहुः। 'विभाषेटः' (८।३।७९) इत्यत्रानर्थकस्यैव षीध्वमः संभवादत्रापि तस्यैव ग्रहणमिति भ्रमवारणायाङ्गादिति परे ॥ १६ ॥

ननु 'उश्च' (१।२।१२) इत्यत्र 'लिङ्सिचौ' (१।२।११) इत्यत आत्मनेपदेष्वित्येव संबध्येतानन्तरत्वादत आह—

**एकयोगनिर्दिष्टानां सह वा प्रवृत्तिः सह वा निवृत्तिः ॥ १७ ॥**

वाशब्द एवार्थे। परस्परान्वितार्थकपदानां सहैवानुवृत्तिनिवृत्ती इत्यर्थः। एककार्यनियुक्तानां बहूनां लोके तथैव दर्शनादिति भावः।

---

न्तरमाह—**अन्ये त्विति**। प्राञ्च इत्यर्थः। **वेवीति**। विपधातोर्विधिलिङि रूपम्। **ढत्वेति**। षीध्वनिमित्तकेत्यादिः। **तन्मूलेति**। तदनित्यत्वमूलेत्यर्थः। आद्यन्ताभ्यामन्ये त्वाहुरित्याभ्या सूचितारुचिमाह—**विभाषेट इति**। आगमसंनिधौ विशिष्टस्यैवार्थवत्त्वादिति भाव। **अत्रापि**। इणः षीध्वमितिप्रागुक्ततत्पूर्वसूत्रेऽपि। **तस्यैवेति**। अनर्थकस्यैव। अर्थाधिकारानुरोधात्। एव चापूर्वत्वमेवास्या इति प्रागुक्त सिद्धम्। नन्वर्थवत्परिभाषानुरोधाद्विभाषेट इत्यत्र षीध्वमोऽसबन्ध एवेत्यङ्गग्रहणं ज्ञापकमेवेति चेन्न। एकयोगेतिन्यायेन परेण तत्सबन्धस्याऽऽवश्यकत्वात् ॥ १६ ॥

अत एव तामेव तत्रोक्तामवतारयति—**ननूश्चेत्यत्रेति**। **अनन्तरत्वादिति**। तत्पदस्यैवाव्यवहितत्वादित्यर्थ। विकल्पान्वयासंभवादाह—**वाशब्द इति**। जातावेकवचन वाशब्दावित्यर्थः। 'वा स्याद्विकल्पोपमयोरेवार्थेऽपि समुच्चये' इति कोशादिति भाव। वैवार्थ इति पाठान्तरम्। एकयोगेत्यस्य पदस्यार्थं शाब्द सूचयन्परिभाषार्थमाह—**परेति**। एतेनैकसबन्धनिर्दिष्टानामिति शाब्दस्तदर्थ सूचित। यद्यपि तत्त्वमेकसूत्रनिर्दिष्टानामेव फलति तथाऽपि तथा न व्याख्यातमेकसूत्रनिर्दिष्टानामप्यनन्वितार्थाना सहानुवृत्त्याद्यापत्तेः। **सहैवेति**। न त्वेकस्य निवृत्तिरपरस्यानुवृत्तिरिति भाव। अस्य लोकन्यायसिद्धत्वमाह—**एकेति**। एतेन हन सिजिति सिज्ग्रहणमत्र ज्ञापकमन्यथा लिङ्सिचावित्यतः सिजनुवृत्त्यैव सिद्धे किं तेनेति सीरदेवाद्युक्तमपास्तम्।

---

१ घ. ङ. °न्दतद°। २ ख. ङ °ताना।

यत्त्वत्र ज्ञापकं 'नेड्वशि' (७।२।८) इत्यत इडित्यनुवर्तमाने 'आर्धधातुकस्येट्' (६।२।३५) इत्यत्र पुनरिड्ग्रहणम्। तद्धि नेत्यस्यासंबन्धार्थमिति तन्न। 'दीधीवेवीटाम्' (१।१।६) इति सूत्रे भाष्ये तत्रत्येड्ग्रहणप्रत्याख्यानायेड्ग्रहणेऽनुवर्तमाने पुनरिड्ग्रहणस्येटो गुणरूपविकाराभावार्थकत्वस्योक्तत्वेन तद्विरोधात्। नञो निवृत्तिस्तु क्वचिदेकदेशोऽप्यनुवर्तत इति न्यायेन सिद्धा। वस्तुतस्तु 'दीधीवेवीटाम्' (१।१।६) इतिसूत्रस्थभाष्यमेकदेशयुक्तिः। 'आर्धधातुकस्य' (७।२।३५) इतिसूत्रस्थेड्ग्रहणस्य 'नेड्वशि' (७।२।८) इतिसूत्रभाष्ये प्रत्याख्यानात्। तत्करणेन गुरुतरयत्नमाश्रित्यैतत्प्रत्याख्यानस्यायुक्तत्वात्॥ १७॥

नन्वलुगधिकारः प्रागानङ उत्तरपदाधिकारः प्रागङ्गाधिकारादित्यनुपपन्नमेकयोगनिर्दिष्टत्वात्। तथा 'दामहायनान्ताच्च' (४।१।२७) इत्यादौ 'संख्याव्ययादेः' (४।१।२६) इत्यतः संख्यादेरित्यनुवर्तितेऽव्ययादेरिति निवृत्तमिति चानुपपन्नमत आह—

**एकयोगनिर्दिष्टानामेकदेशोऽप्यनुवर्तते॥ १८॥**

---

भ्रान्तोक्तिं खण्डयति—**यत्त्विति**। अत्र, परिभाषायाम्। तत्त्वमुपपादयति—**तद्धीति**। पुनरिड्ग्रहणं हीत्यर्थ। **तत्रत्येडिति**। दीधीवेवीतिसूत्रस्थेत्यर्थः। विकारान्तरस्येष्टत्वादाह—**गुणरूपेति**। ननु नेत्यस्य निवृत्त्यर्थं तत्, स्पष्टं चेदं नेड्वशीत्यत्र भाष्य इति कथमुक्तार्थकत्वं तस्य तद्भाष्योक्तमत आह—**नञ इति**। न्यायेन, अनुपदमेव वक्ष्यमाणेन। भ्रान्तोक्तेः सर्वथाऽसाङ्गत्यं ध्वनयन्सिद्धान्तमाह—**वस्तुतस्त्विति**। **प्रत्याख्यानादिति**। नञो निवृत्तेरुक्तरीत्यैव सिद्धत्वेन तदनुवृत्त्यैव सिद्धत्वात्। एवं च भ्रान्तस्य सर्वथा भाष्यविरोधः स्पष्ट एव। प्रत्याख्यानस्थले दृष्टकल्पनाया अभावस्यान्यत्र सिद्धान्तितत्वादिति भावः। तत्करणेन, तत्र कृतेड्ग्रहणाश्रयणेन। **गुरुतरयत्नमिति**। उक्तनियमरूपमित्यर्थः। **एतदिति**। दीधीवेवीतिसूत्रस्थेड्ग्रहणेत्यर्थ.॥ १७॥

नन्वित्यस्यैवमिति शेषः। उक्तपरिभाषाङ्गीकार इति तदर्थः। तथा च संगतिः स्पष्टा। तथा, एकयोगनिर्दिष्टत्वरूपहेतुनेत्यर्थ.। **चेति**। एतेन चेन पौनरुक्त्यं परिहृतम्। **अनुपपन्नमिति**। अस्य पुनरुक्तिः स्पष्टार्था। **एकयोगेति**। इदमनुवृत्तिलब्धम्। अपिरुक्तार्थसमुच्चायकः। तथा च विरोधान्नैकत्रोभयम्। किं तु क्वचित्तथा क्वचिदेवं लक्ष्यानुरोधादिति फलितम्। तदेतदाहुः—क्वचिदेकदेशोऽप्यनुवर्तत इति। नन्वेकसूत्र-

---

१ ख. ङ °ध्वनयन्नसिद्धा°। २ क. °दाह। क°।

एकत्रार्थे योगः संबन्धस्तेन निर्दिष्टयोः समुदायाभिधायिद्वंद्वनिर्दिष्टयोरित्यर्थ इति 'पक्षात्तिः' ( ५ । २ । २५ ) इति सूत्रे कैयटः। तावन्मात्रांशे स्वरितत्वप्रतिज्ञाबलाल्लभ्यमिदम् । स्पष्टा चेयं 'दामहायनान्ताच्च' ( ४ । १ । २७ ) इति सूत्रे 'औतोऽम्शसोः' ( ६ । १ । १३ ) इति सूत्रे च भाष्ये पूर्वा च ॥ १८ ॥

---

निर्दिष्टानामेकदेशानुवृत्तिर्दृश्यते यथाऽत इञित्यादाविञ्पदमात्रस्य बाह्वादिभ्यश्चेत्यादाविति समासनिर्दिष्टानामित्येव तदर्थो वाच्यो न प्रागुक्तोऽर्थ इति समासनिर्देश एवानयोः प्रवृत्तिर्न व्यस्त इति प्रागुक्तव्यस्तोदाहरणासंगतिरिति ध्वनयन्मतान्तरमाह—**एकत्रार्थ इति । इत्यर्थ इति ।** कथं पुनरेकयोगानिर्दिष्टयोरेकदेशोऽनुवर्तेत एकदेशो नेति पक्षात्तिरितिसूत्रस्थपूर्वपक्षभाष्यस्थस्य तस्येति शेषः । तथा च समाधानपरपरिभाषाऽप्युक्ताशयेति तद्भाव. । **कैयट इति ।** अनेनारुचिः सूचिता । तद्बीजं त्वौतोऽम्शसोरितिसूत्रस्थभाष्यासंगतिस्तथासति स्यात् । तत्र हि वा सुप्यापिशलेरित्यतः सुपोऽनुवृत्तिर्वाशब्दाननुवृत्तिरुक्तन्यायेनाशक्येत्याशङ्क्याऽलुगुत्तरपद इति दृष्टान्तेनानेन न्यायेन तत्साधितमिति प्रागुक्तार्थ एव युक्तो नायमिति । वस्तुतस्तु प्रकृताशयेन तथोक्तं कैयटेनेति न समाधानपरपरिभाषायास्तथाऽर्थस्तदभिप्रेत उक्तभाष्यविरोधात् । समासेऽपि तथाऽनुवृत्तौ किमु वाच्यमसमासेऽपि सेति तद्भाष्याशय । एवं च परिभाषयोरुभयत्र प्रवृत्तिः । वचनं विनोक्तार्थस्य दुर्ज्ञेयत्वात् । एवं च सकैयटो युक्त एव । एकसूत्रनिर्दिष्टानामिति सर्वथा नार्थ इति सूचनाय परमत्र तस्योल्लेख । तस्मादुक्तोऽर्थ एवेति सर्वत्र तेन शङ्कायामनया समाधानमिति तत्त्वम् । एतदेव ध्वनयितुमुभयनिर्देशे तथाऽनुवृत्तौ बीजं तुल्यमिति सूचयितुमत्र बीजमाह—**तावदिति ।** मात्रशब्दोऽवधारणे । इदम्, उभयत्रेष्टसाधकं प्रकृतवचनम् । अयं भाव·—अर्थाधिकारपक्षेऽर्थस्यैकत्वादविच्छेदान्न स्यादेकदेशानुवृत्तिरित्येतत्पक्षाशयकपूर्वपरिभाषया पूर्वपक्षः । शब्दाधिकारे तु यस्यैव शब्दस्य स्वरितत्वप्रतिज्ञा तत्सदृशशब्दान्तरप्रतीतिर्योगान्तरे, साऽपि भिन्नप्रतिज्ञासामर्थ्याद्भिन्नावधिकाऽपि क्वचिदित्येतत्पक्षाशयकोऽयं समाधिरूपो न्याय· । तथा च भिन्नप्रतिज्ञाबलाद्भिन्नावधिकत्वमेकदेशे तद्बलात्तन्मात्रानुवृत्तिर्विशिष्टे तद्बलात्समानावधिकतदनुवृत्तिरिति परिभाषयोर्द्वयोरर्थः फलित इति । एतेन तस्मादित्युत्तरेतीतिग्रहणमत्र ज्ञापकमन्यथा निर्दिष्टपदवत्तदनुवृत्त्या सिद्धमिति सीरदेवोक्तम्, इको गुणेत्यत्र गुणवृद्धिग्रहणं तथाऽन्यथा संपूर्णसूत्रद्वयानुवृत्त्या सिद्धमिति भ्रान्तोक्तं चापास्तम् । **सूत्रे च भाष्य इति ।** चेन पक्षात्तिरितिसूत्रस्यापि संग्रह. । ननु पूर्वा कुत्र स्पष्टाऽत आह—**पूर्वा चेति ।** उक्तसूत्रत्रयभाष्यादाविति भावः । तेषु हि तया पूर्वपक्षं कृत्वाऽनया समाहितम् ॥ १८ ॥

---

१ ङ. °त्यतस्तत्र सु° । २ क. °वृत्तिवच° । ३ ङ. तथा । ४ ग. °मनेन स° । ५ क. ङ. सूत्रादिस° ।

ननु 'त्यदादीनामः' (७।२।१०२) इत्यादिनेममित्यादावनुनासिकः स्यादत आह—

**भाव्यमानेन सवर्णानां ग्रहणं न ॥ १९ ॥**

'अणुदित्' (१।१।६९) सूत्रेऽप्रत्यय इत्यनेन सामर्थ्यात्सूत्रप्राप्तं जातिपक्षेण प्राप्तं गुणाभेदकत्वेन च प्राप्तं नेत्यर्थः। अत एवाणुदित्सूत्रे प्रत्ययादेशागमेषु सवर्णग्रहणाभावं प्रकारान्तरेणैवोक्त्वैवं तर्हि सिद्धे यदप्रत्यय इति प्रतिषेधं शास्ति तज्ज्ञापयति भवत्येषा परिभाषा भाव्यमानेन सवर्णानां ग्रहणं नेति। किं च ज्याद् ईयस इत्येवाऽऽन्त-

---

नन्वार्धधातुकेतिसूत्रस्थेड्ग्रहणस्य गुणरूपविकाराभावार्थत्ववत्सवर्णग्रहणप्राप्तदीर्घाभावार्थत्वमपि कुतो नोक्त तत्र भाष्ये। एव च * प्रत्याख्यानमप्यसगतमिति चेन्न। भाव्यमानेतिपरिभाषया निषेधात्। तद्ध्वनयस्तामेव तत्रत्यामवतारयति—**ननु त्यदेति। अनुनासिक इति।** ग्रहणकसूत्रादिना तस्य ग्रहणे स्थानेऽन्तरेत्यनेन स एवेत्यर्थ.। नेयमपूर्वा किं तु सूत्रार्थसिद्धेत्याह—**अणुदिदिति।** अप्रत्यय इत्यनेन, नेत्यन्वयः। ननु प्रत्यये निषिद्धेऽपि तेनाऽऽदेशादौ कथ निषेधोऽत आह—**सामर्थ्यादिति।** तत्त्वं चानुपदमेव स्फुटी भविष्यति। ननु केन प्राप्त तन्निषिध्यत इति चेत्तत्राऽऽद्यौ व्यक्तिपक्ष आह—**सूत्रेति।** जातिपक्ष आह—**जातीति।** व्यक्तिपक्ष एवानणसाधारण्येनाऽऽह—**गुणेति। च प्राप्तमिति।** प्राप्त चेत्यर्थः। सवर्णाना ग्रहणमिति भावः। तथा चाऽऽदेशादौ त्रिधा प्राप्त तत्तत्सूत्रस्थाप्रत्यय इति निषेधेन न। सामर्थ्यादित्यर्थः। अप्रत्यय इत्येतत्सामर्थ्यादिति पाठस्तु सुगम एव। उक्त समूलयति—**अत एवेति।** तेन सामर्थ्यात्तत्र तद्वारणेन परिभाषार्थसिद्धत्वादेवेत्यर्थः। **प्रकारान्तरेणेति।** आदेशादौ ग्राहकसूत्रप्रत्याख्यानपक्षे जातिग्रहणप्राप्तस्यानणसाधारण्येन गुणाभेदकत्वप्राप्तस्य च सवर्णग्रहणस्य वारणाय सूत्रमतेऽपि टित्प्रत्यययोर्ज्ञापकानभिधानाभ्या वारणेऽप्यन्यत्र तद्वारणायाऽऽवश्यकोक्तपरिभाषयेत्यर्थ.। **सिद्ध इति।** सूत्रमतेऽपि सिद्ध इत्यर्थ। **ज्ञापयतीति।** एकदेशानुमतिद्वारोक्तपरिभाषा बोधयतीत्यर्थः। एव चैतदर्थबोधकत्वेनैव तस्य सार्थक्यामिति नान्यत्रेवात्र ज्ञापकत्वामिति भावः। नेतीत्यस्येत्युक्त भाष्य इति शेषः। तत्रत्यकैयटादिग्रन्थास्तदनुसारिणोऽत्रत्यसीरदेवादिग्रन्थाश्च चिन्त्या एवेत्यन्यत्र स्पष्टम्। ननु गत्यन्तरसंभव एव परिभाषाबोधनमुक्तभाष्यीयमयुक्तमतोऽन्यत्र भाष्योक्तमेवाऽऽह—**किं चेति।** आन्तर्यतः, प्रमाणत आन्तर्यात्। इद च सामान्यापेक्ष ज्ञापक बोध्यम्।

---

* इ. पुस्तके नेड्वशीतिसूत्रस्थम्।

---

१ क. °तोऽत्रसभ°।

र्घतो दीर्घे सिद्धे 'ज्यादादीयसः' ( ६ । ४ । १६० ) इति दीर्घोच्चारणमस्या ज्ञापकम् । अणुदित्सूत्रे ज्यादादिति सूत्रे च भाष्ये स्पष्टैषा । 'चोः कुः ( ८ । २ । ३० ) इत्यादौ भाव्यमानेनापि सवर्णग्रहणम् । विधेय उदित्करणसामर्थ्यात् । एतदेवाभिप्रेत्य भाव्यमानोऽणसवर्णान्न गृह्णातीति नव्याः पठन्ति ॥ १९ ॥

नन्वेवमदसोऽसेः ( ८ । २ । ८० ) इत्यादिनाऽमू इत्यादौ दीर्घविधानं न स्यादत आह—

भाव्यमानोऽप्युकारः सवर्णान्गृह्णाति ॥ २० ॥

'दिव उत्' ( ६ । १ । १३१ ) 'ऋत उत्' ( ६ । १ । १११ ) इति तपरकरणमस्या ज्ञापकम् । 'तित्स्वरितम्' ( ६ । १ । १८५ ) इति सूत्रे भाष्ये स्पष्टैषा ॥ २० ॥

---

अस्य चारितार्थ्यं तु स्पष्टमेव । अत एव क्रमेणाऽऽह—**अणुदिदिति ज्यादादिति च** । चेन ज्ञाजनोरिति सूत्रस्य समुच्चयः । अस्या अतिव्याप्तिं निराचष्टे—**चोः कुरिति** । **एतदेवेति** । अनण्युदिदिति तत्सामर्थ्यमेवेत्यर्थः । न तु वास्तवस्तथा पाठो भाष्येऽदर्शनात् । एवं चानणि निषेध एवेति भावः । एतेन तथा पाठं धृत्वा सीरदेवादिव्याख्यानं भाष्यरीत्येयं माऽस्त्विति भ्रान्तोक्तं चासंगतमिति ध्वनितम् ॥ १९ ॥

**एवं** तादृशेऽणि सर्वथानिषेधे । अनेन संगतिः प्रदर्शिता । **न स्यादिति** । उ इति समाहारद्वन्द्वनिर्देश इति तु न युक्तमिति त्वन्यत्र स्पष्टमिति भावः । **दिव उदिति** । तित्स्वरितमित्यत्रैतस्यैतज्ज्ञापकत्वोक्तिपरभाष्यविरोधादेतत्तपरकरणसामर्थ्यादेव द्युभ्यामित्यादौ भाविदीर्घव्यावृत्तिरिति सम्प्रसारणसञ्ज्ञासूत्रस्थकैयटादयश्चिन्त्या एवेति गूढाकूतम् । ज्ञापितेऽपि चारितार्थ्यं तु द्युभ्यामित्यादौ छ्वोरिति पूर्वमूठ्यपि तस्य ह्रस्वप्रवृत्त्या बोध्यम् । ननु छ्वोरित्यत्र क्ङितीत्यनुवृत्तिपक्षे तत्रोठेव दुर्लभोऽत आह—**ऋत उदिति** । इदं त्वान्तरतम्यादृकारारकारयोः स्थाने प्राप्तदीर्घव्यावृत्त्यर्थमिति चरितार्थमिति भावः । भाष्येऽपि क्वचिदेवमेव पाठ इति गूढाकूतम् । **तित्स्वरितमिति** । तत्र हि तिति प्रत्ययग्रहणमित्यस्य दकारेण प्रत्याख्याने सवर्णग्रहणादूत इद्धातोरित्यादौ प्राप्तदोषवारणायोक्तपरिभाषाश्रयणेऽदसोऽसेरित्यत्रोक्तदोषमाशङ्क्यानया सज्ञापकया समाहितम् । एतेन पूर्वत्र भाव्यमानोऽणीति पाठं व्याख्याय दिव उदिति तपरकरणात्तस्यानित्यत्वं स्वीकृत्यामू इत्यादौ न दोष इति सीरदेवोक्तमपास्तं भाष्यविरोधात् ॥ २० ॥

---

१ क. ख. घ. °त्तस्या अनि° ।

ननु गवे हितं गोहितमित्यादौ प्रत्ययलक्षणेनावाद्यादेशापत्तिरत आह—

**वर्णाश्रये नास्ति प्रत्ययलक्षणम् ॥ २१ ॥**

**वर्णप्राधान्यविषयमेतत् । तत्त्वं च 'प्रत्ययलोपे' (१।१।६२) इति सूत्रे 'स्थानिवत्' (१।१।५६) इत्यनुवृत्त्यैव सिद्धे प्रत्ययलक्षणग्रहणं प्रत्ययस्येतराविशेषणत्वरूपं यत्र प्राधान्यं तत्रैव प्रवृत्त्यर्थमित्येतत्सिद्धम् । वर्णप्राधान्यं च वर्णस्येतराविशेषणत्वरूपं प्रत्ययनिरूपितविशेष्यतारूपं च । तेन गोहितमित्यादाववादिर्न चित्रायां जाता चित्रेत्यादावण्योऽकारस्तदन्तान्ङीबिति ङीप् च न । इयमल्विधौ स्थानिवत्त्वाप्राप्तावपि प्राप्तप्रत्ययलक्षणविधेर्निषेधिकेति स्पष्टं भाष्ये॥ २१ ॥**

---

वर्णप्रसङ्गाद्वर्णाश्रय इतिपरिभाषामवतारयति—**नन्विति** । द्विवचनबहुवचनान्तेन समासे तेन तदप्राप्तेराह—**गवे हितमिति** । दृष्टान्तार्थमिदमिति कश्चित् । आदिभ्यां रैकुलमित्यादावायादिसंग्रहः । **वर्णाश्रये**, विधौ कार्ये इति शेषः । तथा च बहुव्रीहिरत्र बोध्यः । नन्वेवमतृणेडित्यादाविमादि न स्यादत आह—**वर्णेति** । वर्णप्राधान्याश्रयकविधिप्रवृत्तिविषयमिद वचनमित्यर्थ. । ननु तादृशवचन एव किं मूलमत आह—**तत्त्वं चेति** । वर्णप्राधान्याश्रयकविधौ कार्येऽप्रत्ययलक्षणत्व चेत्यर्थः । द्वितीयप्रत्ययग्रहणाद्यमर्थो लभ्यते तल्लक्षणमित्येव सिद्धेरिति सीरदेवाद्युक्तेरसागत्यसूचनायाऽऽह—**स्थानीति** । यत्र, विधौ । प्राधान्य, तत्त्वेनाऽऽश्रयणम् । तत्रैव, कर्तव्ये । प्रवृत्त्यर्थ, प्रत्ययलोप इतिसूत्रस्य । **इत्येतत्सिद्धम्** । इत्येतेन सिद्धमित्यर्थः । एतेन श्रवणेतिनिर्देशोऽत्र ज्ञापक इति सीरदेवाद्युक्तमपास्तम् । ननु प्रत्ययप्राधान्यवद्वर्णप्राधान्याङ्गीकारे गोहितमित्यादिसिद्धावपि चित्रेत्यादौ ङीबापत्तिरकारस्य प्रातिपादिकविशेषणत्वादत आह—**वर्णेति ।** चस्त्वर्थे । **प्रत्ययेति** । प्रत्ययनिष्ठप्रकारतानिरूपितेत्यर्थः । क्रमेणानयोः फले आह—**तेनेत्यादि । चित्रेति ।** वार्तिकेन सधिवेलेत्यणो लुकि स्त्रीप्रत्ययलुकि टाप् । अण्योऽकार इत्यनेन द्वितीयप्रकारसत्ता सूचिता । तदन्तादित्यनेनाऽऽद्यस्यासत्त्व सूचितम्। **ङीप् च नेति ।** नः स्पष्टार्थः । क्वचित्तदपाठोऽपि । ननु भाष्यमते प्रत्ययलोप इत्यस्य नियमार्थत्वेन वर्णाश्रये प्राप्तिरेव नेतीय व्यर्थाऽत आह—**इयमिति** । अल्विधौ, यथा कथचिदल्विधौ । **विधेरिति ।** तथा चाल्विधौ विध्यर्थं तत्सूत्रमिति वार्तिकमतेनेय न भाष्यमतेनेति भावः । भाष्ये, तत्सूत्रस्थे ॥ २१ ॥

नन्वतः कृकमि (८। ३। ४६) इत्यत्र कमिग्रहणेन सिद्धे कंसग्रहणं व्यर्थमत आह—

**उणादयोऽव्युत्पन्नानि प्रातिपदिकानि ॥ २२ ॥**

**इदमेवास्या ज्ञापकमिति कैयटादयः। कंसेस्तु न कंसोऽनभिधानात्। 'प्रत्ययस्य लुक्' (१। १। ६१) इत्यादौ भाष्ये स्पष्टैषा। 'ण्वुल्तृचौ' (३। १। १३३) इत्यादौ भाष्ये व्युत्पन्नानीत्यपि। इदं शाकटायनादिरीत्या। पाणिनेस्त्वव्युत्पत्तिपक्ष एवेति शब्देन्दुशेखरे निरूपितम्। 'आयनेयी' (७। १। २) इति सूत्रे भाष्ये स्फुटमेतत् ॥ २२ ॥**

**सिद्धे।** धातौ सप्तमीनिर्दिष्टे तदादिग्रहणादयस्कंस इतिरूपे सिद्धे। **उणादयः।** तदन्तानि तदन्तत्वेनाभिमतानि वा। अव्युत्पन्नानीत्यस्याऽऽद्ये व्युत्पत्तिकार्याभाववन्तीत्यर्थः, अन्त्ये तु यथाश्रुत एव। **इदमेवेति।** कंसग्रहणमेवेत्यर्थः। एवेनार्थवत्सूत्रं ज्ञापकमिति सीरदेवाद्युक्तिनिरासः। बहुपटव इत्याद्यर्थं तस्याऽऽवश्यकत्वेन चारितार्थ्यात्। आदिना सीरदेवादिग्रहणम्। ननु नेदमपि ज्ञापक कंसेराचि कस इति सिद्धेरत आह—**कंसेस्त्विति।** न कंसो, न कंस इति शब्दः। अत एव कमेः सः कंस इत्येव तत्र भाष्य उक्तम्। ननु कुत्रेयमुक्ताऽत आह—**प्रत्ययस्येति।** प्रत्ययस्य लुक्श्लुलुप इत्यादावित्यर्थः। आदिनाऽऽयनेयीतिसूत्रपरिग्रहः। युवोरनाकावित्यादाविति त्वपपाठः। तत्र हि प्रत्ययग्रहणाभावे कसीयपरशव्ययोरित्यत्र छयतोरिति वाच्यमवश्य प्रकृतिनिवृत्त्यर्थमन्यथा कृतेऽपि प्रत्ययग्रहणे[1] सस्य, ओश्च लोपापत्तिरिति दोषोऽनया वारितः। **ण्वुलिति।** तत्र हि तृचश्चकाराभावे मात्रादिशब्दे दीर्घापादनं कृत्वा तत्समर्थनं कृतम्। नायं सिद्धान्त इत्याह—**इदमिति।** व्युत्पन्नानीत्युक्तमित्यर्थः। आदिना नैरुक्तादिसंग्रहः। सिद्धान्तमाह—**पाणिनेस्त्विति।** शब्देन्दुशेखरे, उणादय इत्यत्र। उणादय इति व्याकरणान्तरस्थसूत्रव्यवस्थापकम्। उणाद्यन्ता येन व्याकरणान्तरेण व्युत्पादिताः शब्दास्तत्र बहुलमिति वक्तव्यं वर्तमानाधिकारे च ते वाच्या भूतेऽपीति च वाच्यमिति सूत्रार्थः। स्वशास्त्रे तेषा साधुत्वबोधन[2] चैतावतैव कृतम्। सर्पिषा यजुषेत्यादौ षत्व तु बहुलग्रहणादेवेत्यादि तत्रैव स्पष्टम्। इद समूलयति—**आयनेयीति।** तत्र हि शण्ठः कण्ठ इत्यादौ दोषवारणाय प्रातिपदिकविज्ञानाच्च भगवतः पाणिनेः सिद्धमित्युक्तम्। एतत्, अस्याव्युत्पत्तिपक्ष एवेत्येतत्। एवेन तदन्यव्यवच्छेदः। विस्तरस्तत एव बोध्यः ॥ २२ ॥

---

१ ङ. °णे यञ्ञोश्च। २ क. °नं च ता°।

ननु देवदत्तश्चिकीर्षतीत्यादौ देवादेः सन्नन्तत्वादिप्रयुक्तधातुत्वाद्यापत्तिरत आह—

प्रत्ययग्रहणे यस्मात्स विहितस्तदादेस्तदन्तस्य ग्रहणम् ॥ २३ ॥

'यस्मात्प्रत्ययविधिः' (१।४।१३) इति सूत्रे यस्मात्प्रत्ययविधिस्तदादि प्रत्यय इति योगो विभज्यते। गृह्यमाण उपतिष्ठत इति शेषः। तेन तदाद्यन्तांशः सिद्धः। तदन्तांशस्तु 'येन विधिः' (१।१। ७२) इत्यनेन सिद्धः। स च शब्दरूपं विशेष्यमादाय विशेष्यान्तरासत्त्वे।

यत्तु प्रत्ययेन स्वप्रकृत्यवयवकसमुदायाक्षेपात्तद्विशेषणत्वेन तदन्तविधिरिति तन्न। इयानित्यादौ तस्य तादृशसमुदायेन व्यभिचारेणाऽऽक्षेपासंभवात्।

देवादेः। सन्नन्तस्येति शेषः। सन् अन्तो यस्येति व्युत्पत्तेः। (* आदिभिर्देवदत्तो गार्ग्य इत्यादौ तद्धितान्तत्वादिप्रयुक्तप्रातिपदिकत्वादिपरिग्रहः। यद्यपि प्रत्ययग्रहणे यस्मात्स तदादितदन्तविज्ञानमित्येवमेकपरिभाषास्वरूपं भाष्ये पठित तथापि तत्रत्यं तद्व्याख्यानमेव स्पष्टार्थमाह—प्रत्ययेति। एकपरिभाषाशद्वयस्य भिन्नमूलप्रदर्शनेन) परिभाषा समूलयति—यस्मादिति। इष्टवाक्यार्थायाऽऽह—गृह्येति। तथा च प्रत्यये गृह्यमाणे यस्मात्प्रत्ययविधिस्तदादीत्युपतिष्ठत इति वाक्यार्थः। तेन, योगविभागेन। तदाद्यन्तांश इति। तदादेरित्यन्तः समुदायघटकोऽवयवः सिद्ध इत्यर्थ.। अवशिष्टलाभोपायमाह—तदन्तांशस्त्विति। ननु सर्वत्र विशेष्यानुक्तेः कथ तल्लाभोऽत आह—स चेति। तदन्तविधिरित्यर्थ.। शब्दरूपमिति। शब्दानुशासनप्रस्तावादिति भावः।

जीर्णोक्तिं खण्डयति—यत्त्विति। स्वप्रेतिद्वद्व'। स्व, प्रत्ययः। इयानित्यादाविति। आदिना, इरित्यादिपरिग्रहः। व्यतिस इयानिति त्वपपाठ.। तत्प्रयोगस्यैवाभावात्। एवमग्रेऽपि। तस्य, श्रूयमाणप्रत्ययस्य। समुदायेन, सहेति शेष.। व्यभीति। व्यभिचारे च द्वयोः साहित्यम्। यद्वा तादृश. स्वप्रकृत्यवयवको यः समुदायस्तद्रूपो य इनो विशेष्यस्तद्व्यभिचारेणेत्यर्थः। (+ अयं भावः—कृत्तद्धितेत्यादौ प्रत्ययमात्रस्य कार्यवारणाय तावत्तदन्तांशविधिः। तदन्तश्च मुख्यो द्विविधः। इष्टोऽनिष्टश्च। द्वितीयोऽपि द्विविधोऽधिको न्यूनश्च। तदुभयवारणाय तदादीति नियमः। विनिगमनाविरहात्। तथा च ऋद्धस्य राज्ञः पुरुष इत्यादावधिकवन्न्यूनस्यापि समासन्यावृतिरिति स्वरभेदो न।

* धनुश्चिह्नान्तर्गतो ग्रन्थो घ. पुस्तकस्थः। + धनुश्चिह्नान्तर्गतो ग्रन्थो घ. पुस्तकस्थः।

**यत्र प्रत्ययो निमित्तत्वेनाऽऽश्रीयते तत्र तदादेरित्यन्तांशमात्रोपस्थितिरिति 'अङ्गस्य' (६।४।१) इति सूत्रे भाष्यकैयटयोः। एवं यत्रापि पञ्चम्यन्तात्परः प्रत्यय आश्रीयते तत्रापि तदादीत्यन्तांशोपस्थितिः परं तु तत्र पञ्चम्यन्तता। अत एव 'एङ्ह्रस्वात्' (६।१।६९) इति सूत्र एङन्तादित्यर्थलाभः।**

---

देवदत्तस्यापत्यमित्यर्थे देवदात्तिरिति च न। अत एव समुदायरूपावयवाना सुबन्तत्वेन पदत्वं नेति हयवरट्सूत्रस्थभाष्यकैयटयोरुक्तम्। एवं चेष्टस्य तत्र ग्रहणम्। न च परिभाषाफलत्वेनाधिकनिरासस्यैव प्रदर्शनान्न्यूनव्यावृत्तिर्न तदभिमतेति वाच्यम्। प्राकरोदित्युपक्रमानुरोधेन त प्रति तथैवोक्तत्वेन तस्योपलक्षणत्वात्। ऋद्धस्य राज्ञ. पुरुषो देवदत्तो गार्ग्यायण इतिवत्प्रागुक्तव्यावृत्तेरपि सभवात्तुल्यत्वात्। अन्यथा न्यूनतापत्तेः स्पष्टत्वात्। नियमेनाधिकस्यैव व्यावृत्तिर्न न्यूनस्येत्युद्द्योतादिग्रन्थास्त्वनुपेतिसूत्रस्थकैयटानुरोधिन इति न तद्विरोधः। क्वचित्तु सामर्थ्यादधिकस्यैव व्यावृत्तिर्न न्यूनस्य। तथा चौत्सर्गिकमिद मुख्यतद्व्यवहारविषयम्। अस्यापत्य युवेत्यादौ मुख्ये तत्त्वाभावेन परिभाषाविषयत्वस्यैवाभावेन च व्यावर्त्यत्वशङ्कैव नेति तत्र व्यपदेशिवद्भावेनेष्टसिद्धिरिति न दोष इति।)

ननु केऽणः, लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वित्यादौ तदन्तग्रहणाभावात्समुच्चयो भासमानोऽयुक्तोऽत आह—**यत्रेति**। उक्तस्थल इत्यर्थः। तथा च व्यवस्थितत्वान्न सर्वत्र समुच्चयः। मात्रपदेन तदन्तांशव्यावृत्तिः। तत्र स्यतेत्यादिवक्ष्यमाणरीत्या तदन्तविधे' प्रत्ययग्रहणे चापञ्चम्या इति निषेधादुपस्थिताङ्गादेरेवावधित्वेनान्वयादिति भाव.। प्रत्ययविधौ तु नास्याः प्रवृत्तिर्विहितप्रत्ययग्रहणविषयत्वादस्या इति बोध्यम्। एव च द्वे एते परिभाषे इति गूढाकूतम्। तदादेरिति तत्र षष्ठ्यन्तम्। **अङ्गस्येतीति**। तत्र ह्यङ्गस्येति सूत्रखण्डनाय स्वीकृते प्रत्यय इतिन्यासे प्राकरोदित्यादौ प्रादेः प्रागडादिव्यावृत्तये स्वीकृतैषैकदेशिना। उपस्थितपूर्वस्येत्यस्यैवावधित्वेनान्वयादपञ्चम्या इति निषेधेन तदन्तविधिर्नेति तदाद्यन्तांशमात्रोपस्थितिरिति स एव कार्यीति न तत्राडादीति कैयट। अस्य मुख्य फलं त्वान्महत इति जातीयाशे। तत्र तदादेरित्यन्ताशोपस्थित्या महदन्तस्य तदादेरित्यर्थसिद्धि। अत एवातिमहाप्रकारोऽतिमहाजातीय इत्यादिसिद्धि। तदन्ताशस्तूक्तरीत्या तत्र नेत्यादि बोध्यम्। अत एव तयोर्न्यूनता निराचष्टे—**एवमिति**। यत्र, एङ्ह्रस्वाद्द्राभ्यामित्यादौ। अपी पूर्वसमुच्चायकौ। **आश्रीति**। यथा कथचिन्निमित्तत्वेनेत्यादि'। एव तौल्येऽपि कश्चिद्विशेषमाह—**परं त्विति**। तत्र, एङ्ह्रस्वादित्यादौ। पञ्चम्यन्तता, योग्यतया तदादेरित्यस्येति भावः। एतदेव विशिष्याऽऽह—**अत एवेति**। तत्र तदुपस्थित्यङ्गीकारादेवे-

---

१ ङ °रित्यशसि°। २ ग अपिः परपदोत्तर योज्यः स च निमित्तत्वेनेत्यस्य समुच्चायकः। अभिमोऽपिः पूर्वसमुच्चायकः। एवं तौ°।

**अस्याः परिभाषायाः प्रयोजनान्तरं ' येन विधिः ' ( १ । १ । ७२ ) इत्यत्र भाष्य उक्तं परमगार्ग्यायण इति ।**

---

त्यर्थः । अन्यथा विशेष्याभावात्तथाऽर्थो न स्यात् । कौमुद्युक्तप्रकारस्तु न युक्त इत्यन्यत्र स्पष्टमिति भावः । यत्र तु प्रत्यय एव कार्यित्वेन निर्दिष्टो वतुडतिडतरडतमतयक्तद्धितेत्यादौ तत्र तदादेस्तदन्तस्य संघातस्य ग्रहण भवतीति बोध्यम् ।

( *नन्वस्या नोक्तं फलम् । अनुनासिकात्पर इत्यनेनैव परश्चेत्यनेनापि प्रत्ययानामन्तावयवत्वबोधनेन तत्र तद्वाचकान्तशब्देन बहुव्रीहिणा सनाद्यन्तावयवभाविन एव समुदायस्य ग्रहणेन द्वेवादिव्यावृत्तिसिद्धेः । किंच प्रतीषिषतीत्यादावभ्यासान्तसमुदायस्याज्झनेति दीर्घवारणायोच्चारणभेदाच्छब्दभेदेन द्वित्वनिष्पन्नोत्तरभागस्य प्रत्ययाधिकारस्थत्वाभावेनाप्रत्ययतयाऽभ्यासान्तसमुदायस्याङ्गत्ववारणपक्षे सन्त्वस्य प्रत्ययाप्रत्ययसाधारणत्वेन प्रत्ययमात्रग्रहणविषयैतत्परिभाषाया अप्रवृत्तेरिति चेन्न । अन्तशब्दस्य तत्र परसमीपबोधकत्वस्य कथनाद्यनुरोधेन तद्भाष्यानुरोधेन च स्वीकारात् । द्वितीयसनोऽप्रत्ययत्वमितिपक्षस्य प्रतीषिषेत्यादावप्रत्ययासिध्याऽयुक्तत्वाच्च । अत एवाङ्गसंज्ञासूत्रस्थभाष्यसंगतिः । अत्राऽऽदिसंग्राह्यतत्रत्यप्रातिपदिकत्वादिफलान्तरसत्त्वाच्च । तथा सत्यागमवन्मूलयुक्त्युक्तेस्तुल्यत्वापत्तया प्रत्ययानामपि प्रकृतिग्रहणापत्तेश्च । तस्मात्तत्र परशब्दस्तत्पर एव । अनुनासिकात्परः पूर्वौ तु ताभ्यामित्यत्र तु सामर्थ्यात्तयोस्तत्त्वेनाऽऽगमपरत्वम् ) । इदमेव ध्वनयितुमाह—**अस्या इति ।** समुदिताया इत्यर्थ. । तथाफलस्य पूर्वपक्षेऽत्र तत्र चान्यस्योक्तत्वादाह—**प्रयोजनान्तरमिति ।** [ + अङ्गसज्ञासूत्रस्थप्रयोजनापेक्षयाऽन्यत्प्रयोजनमित्यर्थः । ] प्रत्ययग्रहणं चापञ्चम्या इति वार्तिकेनेति शेषः । पञ्चम्यन्तात्परः प्रत्ययो यत्र कार्यान्तरविधानायानूद्यते तद्भिन्नस्थले प्रत्ययग्रहण तदन्तविधेः प्रयोजनमिति तदर्थः ।

नन्वेव यञिञोश्चेत्यत्र ङ्याप्प्रातिपदिकादित्यधिकारादपञ्चम्या इति निषेधापत्तिरिति चेन्न । यञिञोरिति पञ्चम्यर्थषष्ठ्या तस्य समानाधिकरण तद्विशेष्यमिति तदविषयत्वात् । अत्र कैयटः—गार्ग्यायण इत्येवोदाहरण न तु परमगार्ग्यायण इति । तथा सति पारमगार्ग्यायण इत्यनिष्टरूपापत्तेः । तदुपन्यासे बीज तु प्रत्ययग्रहणे यस्मादिति नियमोऽत्रापि तदन्तविधावपेक्ष्य एव । एतत्सिद्ध एव च तदन्तविधिस्तत्रानूद्यत उक्तनियमबोध-

---

* धनुश्चिह्नान्तर्गतो ग्रन्थो घ. पुस्तकस्थ. । + धनुश्चिह्नान्तर्गतो ग्रन्थो घ. पुस्तकस्थः ।

---

१ ङ. °द्वितसनाद्यन्ता इत्या° । २ घ. °म् । तदेतदुध्वनयन्विशेषं वक्तुमा° । ३ ङ. °हणे चा° । ४ घ. °ति कथमिदमिति चे° । ५ ङ. °षष्ठ्यन्तस्य ।

परमगार्ग्यस्यापत्यमिति विग्रहेऽपि गार्ग्यशब्दादेव प्रत्ययो न विशिष्टात् । निष्कृष्य तावन्मात्रेणैकार्थीभावाभावेऽपि वृत्तिर्भवत्येव । अत्र चेदं भाष्यमेव मानमित्यन्यत्र विस्तरः । प्रत्ययमात्रग्रहण एषा न तु प्रत्ययाप्रत्ययग्रहण इति 'उगितश्च' (४ । १ । ६) इति सूत्रे भाष्ये । इयमङ्गसंज्ञासूत्रे भाष्ये स्पष्टा ॥ २३ ॥

'येन विधिः' (१ । १ । ७२) इति सूत्रे भाष्य एतद्घटकतदन्तांशस्यापवादः पठ्यते—

## प्रत्ययग्रहणे चापञ्चम्याः ॥ २४ ॥

---

नाय । अन्यथा परमगार्ग्यशब्दात्फकि पारमगार्ग्यायण इति स्यादिति न्यायव्युत्पादनमेवेति । अत्र गुरुचरणाः—स्वद्रीत्या परमश्चासौ गार्ग्यायणश्चेति भाष्योदाहरणार्थः । न हीदृशेऽर्थे परमगार्ग्यशब्दस्य प्रकृतित्वसंभावनाऽपीति कथमेतन्न्यायप्रदर्शनमनेन भाष्येण । तस्मादन्यथा भाष्याशय इति । तदाह—**परमेति** । * गार्ग्यशब्दादेव, तदेकदेशादेव । स्पष्टार्थमेवव्यवच्छेद्यमेवाऽऽह—**नेति** । अनयेति भावः । ननु विशिष्टैनैकार्थीभावेऽवयवेनापि तस्य सत्त्वेऽपि न निष्कृष्य तावन्मात्रेण सोऽत आह—**निष्कृष्येति** । स एव वृत्तौ निमित्तमित्यत्र न मानमिति भावः । एवः प्रत्यासत्तौ । अनुपसर्जनादिति सूत्रे कुम्भकारीशब्दैकदेशकारीशब्दादप्युत्पत्त्यापत्तिरिति शङ्कापरभाष्यस्यापि मानत्वात् । कैयटस्याप्यत्रैव तात्पर्यमिति स्पष्टमुद्द्योते । तदाह—**इत्यन्यत्रेति । उगितश्चेति** । तत्र ह्युगितः प्रातिपदिकादिति पक्षेऽसिद्धिसत्त्वेऽप्युगिदन्तात्प्रातिपदिकादिति पक्षे निर्गोमती निर्यवमतीत्यसिद्धिरेवं परिहृता । **इयमङ्गेति** । तत्सूत्रखण्डनाय तत्राऽऽदृतेति भावः । अङ्गस्येति सूत्रे तु तत्खण्डनायैकदेशिनाऽऽदृता तत एवाङ्गसंज्ञासूत्रखण्डनपरमपि भाष्यमेकदेश्युक्तिरिति बोध्यम् ॥ २३ ॥

**एतद्घटकेति** । प्रत्ययग्रहणे यस्मादित्येतद्घटकेत्यर्थः । अपवादः, निषेधः । ननु तत्र प्रत्ययग्रहण चापञ्चम्या इति पठ्यते तस्य चार्थ उक्त एवेति कथं प्रत्ययग्रहणे चापञ्चम्या इति परिभाषा पठ्यत इत्युक्तिरिति चेन्न । तथा पाठेनैतदर्थस्य फलितत्वेनास्या अपि फलितत्वात्तथोक्तिसांगत्यात् । न च प्रत्यासत्त्या पञ्चम्यन्तनिर्दिष्टप्रत्ययाद्यत्र प्रत्ययविधिस्तत्र स नेत्यर्थ एव युक्तः । समासप्रत्ययविधाविति तु सौत्रस्यैव निषेध इति न तेनास्य

---

* क. गार्ग्यशब्दादेवेति । परमगार्ग्यायण इत्यत्र प्रातिपदिकत्वं तु परस्परान्यतराघटितं यद्वृत्तिद्वयं तत्प्रयोजकं यत्सुबन्तसमर्थं तद्विशिष्टो यः समुदायस्तस्य चेद्भवति तर्हि समासस्यैवेति नियमात् । तद्विशिष्ट इत्यत्र विशिष्टत्वं च स्ववाच्यार्थान्वय्यर्थवाचकत्वसंबन्धेनेति ।

यत्र पञ्चम्यन्तात्परः प्रत्ययः कार्यान्तरविधानाय परिगृह्यते तत्र तदन्तविधिर्नेत्यर्थः। यथा 'रदाभ्यां निष्ठातो नः' (८।२।४२) इत्यत्र। तेन दृषत्तीर्णेत्यादौ धातुतकारस्य न नत्वम्। तदन्तेत्यंशानुपस्थितावपि तदादीत्यंशस्योपस्थितौ रेफदान्तात्परस्य निष्ठातस्येत्यर्थ इति न दोषस्तदंशानुपस्थितौ मानाभावात्। तदन्तांशोपस्थितौ तूभयोरेकविषयत्वमेव स्यादिति दृषत्तीर्णेत्यादौ दोषः स्यादेव।

'स्यतासी लृलुटोः' (३।१।३३) इत्यादौ लृलुटोः परयो-

---

गतार्थतेति वाच्यम्। ञितश्च तत्प्रत्ययादित्यस्य विकारावयवविहितप्रत्ययादेवाञित्यर्थापत्त्यो-ष्ट्रविकारौष्ट्रकादञि वुञ एवाङ्गसज्ञाया वृद्धिस्वरापत्ते.। तदेतद्ध्वनयस्तमेव फलितमर्थमाह—**यत्रेति। कार्यान्तरेति।** अनेन विधिविषयतादृशप्रत्ययमादाय न प्रवृत्तिरिति सूचितम्। कार्यान्तर चाऽऽदेशादिरूप प्रत्ययरूप वेत्यन्यदेतत्। परिगृह्यते, अनूद्यते। अ इति भिन्न पदमप्रे( पे ) त्युक्तेः। तदेव फलितमाह—**नेत्यर्थ इति।** धातुतकारस्येत्युपलक्षण तत्पूर्वदस्यापि। यत्तु कैयटादिना रेफदकाराभ्यामिति सिद्धान्ते व्याख्यात तदयुक्तमिति ध्वनयितुम्, एव यत्रापीत्यस्य लक्ष्यान्तर सूचयितुम्, (*एतद्धटकेत्युक्ति सफलयितु) च सूत्रार्थमाह—**तदन्तेत्यंशेति।** तदन्तस्येत्यशेत्यर्थ'। सौत्रक्रमानुरोधेनाऽऽह—**रेफदान्तादिति।** तदादेरिति शेषः। न दोष', न तस्य नत्वम्। ननु प्रकृते तदभावे तस्याप्यनुपस्थिति' सनियोगशिष्टेति न्यायादत आह-**तदंशेति।** तदादेरित्यन्ताशेत्यर्थः। गुणानामिति न्यायादसनियोगशिष्टत्वाच्च तदप्रवृत्ते। अत एव प्रागेतद्धटकेत्युक्त तदभावे तदुपस्थितेः फलमप्यसाधारणमुक्तम्। एतत्परिभाषाया अभावे दोषमुपपादयति—**तदन्तांशोपेति।** अर्थः प्राग्वत्। रदाभ्या परो यस्तदादिर्निष्ठान्तस्तस्य तकारस्य तत्पूर्वदकारस्य च नत्वमित्यर्थस्तथा सति स्यात्। तदाह—**उभयोरिति।** अंशयोरित्यर्थः। **एकेति।** यत्र तदन्तत्व तत्रैव तदादित्वमित्यर्थ.। दृषत्तीर्णेत्यादिलक्ष्यसभवात्। असभवे खलु तयोर्भिन्नविषयत्वाङ्गीकारः। अत एवैवः प्रयुक्तः। तेन च केवलेऽप्रवृत्तिर्ध्वनिता। तथा च धातुतस्य तत्पूर्वदस्य च नत्वापत्तिस्तदवस्थैव। तदाह—**दृषदिति।** नन्वेवमपि स्यतासी इत्यादावस्या अप्राप्त्या लृलुडन्ते तदादावित्यर्थापत्तिः। न हि पञ्चम्यन्तात्परत्वेन लृादिप्रत्ययस्तत्र विशेषितः। धातोरिति तु स्यतासिविशेषणमत आह—**स्यतेति।** आदिना सुपि च रोः सुपीत्यादिपरिग्रहः। **परयोरित्यर्थ इति।** तस्मि-

---

* धनुश्चिह्नान्तर्गतो ग्रन्थो घ. पुस्तकस्थः।

---

१ घ. °र्थकथनेन तदभावमा°। २ घ. °स्थितिरेकयोगनिर्दिष्टेति न्या°। ३ घ. °यात्परिभाषासंनियोगत्वाच्च तदप्रवृत्तेरङ्गस्येतिसूत्रभाष्याच्च। अ°। ४ क. °कारात्। अ°।

रित्यर्थे नियमेनावधिसाकाङ्क्षत्वेनोपस्थितधातोरित्यस्यैवावधित्वेनान्वयान्न तदन्तविधिः । 'ङ्याप्प्रातिपदिकात्' 'ङ्याब्भ्यः' (६।१।६८) इत्यादौ तु न दोषः । तत्र कस्मादिति नियतावध्याकाङ्क्षाया अभावेन पञ्चम्यन्तस्य प्रत्ययविशेषणत्वाभावात् । अङ्गसंज्ञासूत्रे तु तदादेः प्रत्यये पर इत्यर्थे पञ्चम्यन्तस्य विशेषणत्वं स्पष्टमेव । अत एव 'उत्तमैकाभ्याम्' (५।४।९०) इत्यादिनिर्देशाः संगच्छन्ते ॥ २४ ॥

नन्वेवं कुमारी ब्राह्मणिरूपेत्यादौ घरूप (६।३।४३) इति

न्निति परिभाषयेति भावः । **अवधीति** । कस्मादितीत्यादिः । तस्य दिक्शब्दत्वादिति भावः । स्यतासिविधानाय तस्याधिकृतत्वादाह—**पस्थितेति** । एवं च तस्य शब्दतः स्यतासिविशेषणत्वेऽप्यत्राप्यर्थत आवृत्त्या शब्दतो वा तत्त्वेनान्वय इति पञ्चम्यन्तस्य तद्विशेषणत्वेन निषेधप्रवृत्तिरिति भाव. । एव सुपि चेत्यादावप्यन्यार्थमुपस्थिताङ्गादेरेव तत्त्वं बोध्यम् । तदाह—**न तदन्तेति** । द्वितीयाशस्तु केऽण इत्यादिप्रागुक्तवत्प्रवर्तत एवेति भावः । उक्तवार्तिकव्याख्यावसरे स्यतेत्यादौ धातोरित्यधिकारान्निषेधोऽय सुवच इति कैयटोक्तप्रकारस्तु चिन्त्य । तस्य स्यतासिविशेषणत्वादिति गूढाकूतमिति स्पष्टमुद्योते । नन्वेवं हल्ङ्याब्भ्य इत्यादौ ङ्याब्भ्या प्रातिपदिकाक्षेपे पञ्चम्यन्तस्य प्रत्ययविशेषणत्वेन निषेधान्ङ्यन्तादाबन्तादित्यर्थालाभापत्तिरत आह—**ङ्याब्भ्य इत्यादौ त्विति** । हल्ङ्याब्भ्य इति पाठान्तरम् । इत्याद्यश इत्यर्थः । सुतिसीत्यंशे तु निषेधप्रवृत्तिरस्त्येवेति भाव. । तत्र, ङ्याबंशे । अभावेन, परशब्दाभावात् । **पञ्चेति** । प्रातिपदिकस्य ङ्याब्विशेषणत्वाभावादित्यर्थः । आक्षेप आक्षिप्तस्य शाब्देऽन्वये च न मानम् । तथा चोक्तपरिभाषयोभयोपस्थित्या तथाऽर्थलाभ इति भावः । नन्वेव प्रत्ययसामान्यग्रहणेऽङ्गसंज्ञासूत्रेऽपि तदभावादस्या अप्राप्त्या दोषोऽत आह—**अङ्गसंज्ञासूत्रे त्विति** । सूत्रेऽपीति पाठेऽपिः प्रागुक्तस्यतेतिसमुच्चायकः । **तदादेरिति** । प्रागवत् । प्रत्यये पर इत्यर्थे नियमेनावधिसाकाङ्क्षत्वेनोपस्थिततदादीत्यस्यैवावधित्वेनान्वय इति भाव. । तत्र मानमाह—**अत एवेति** । तस्य तत्त्वेनैतत्प्राप्त्या तदन्तविध्यभावादेवेत्यर्थ. । अन्यथाऽङ्गत्वस्य तस्याभावेन दीर्घो न स्यादिति भावः ॥ २४ ॥

**एवम्** । पञ्चम्यन्तस्य प्रत्ययविशेषणत्व एव तदन्ताशमात्रनिषेधाङ्गीकारे । ( * अयं भावः—येन नाप्राप्तिन्यायेनोक्तनिषेधो वाचनिकतदन्तविधेरेवेति घरूपेत्यादावुत्तरपदस्य विशेष्यतया प्राप्ततदन्तविधिः स्यादेवेति )। **कुमारी ब्राह्मणिरूपेति** । समानाधिकरणसमासप्रदर्शनार्थं वाक्यमिदमुपात्तम् । न हि तथा सति तत्र तत्प्राप्तिः । तस्य तत्र रूढत्वात् ।

* धनुश्चिह्नान्तर्गतो ग्रन्थो ग पुस्तकस्थ. ।

ह्रस्वापत्तिरत आह—

**उत्तरपदाधिकारे प्रत्ययग्रहणे न तदन्तग्रहणम् ॥ २५ ॥**

'हृदयस्य हृल्लेखयदण्लासेषु' (६।३।५०) इत्यत्र लेखग्रहणात्। तत्र लेखेति न घञन्तमनभिधानात्। इयं च हृदयस्येति सूत्र एव भाष्ये स्पष्टा ॥ २५ ॥

नन्वेवं परमकारीषगन्ध पुत्र इत्यत्रेवातिकारीषगन्ध्यापुत्र इत्यत्र 'ष्यङः संप्रसारणं पुत्रपत्योः' (६।१।१३) इति स्यादत आह—

**स्त्रीप्रत्यये चानुपसर्जने न ॥ २६ ॥**

---

रूपं तु कुमारब्राह्मणिरूपेति। ब्राह्मणीशब्दे तसिलादिष्वितिपुवत्त्व बाधित्वा तेन ह्रस्वत्वं पूर्वत्र तु पुंवत्कर्मधारयेतिपुवत्त्वम्। घत्यागस्तु सञ्ज्ञाविधाविति निषेधसामर्थ्यात्तत्रापि तदभावसिद्ध्या बोध्यः। **ह्रस्वापत्तिरिति**। पुवद्भावाद्ध्रस्वत्व विप्रतिषेधेनेत्युक्तेः परत्वात्। तथा च कुमारिब्राह्मणिरूपेति स्यादिति भावः। **प्रत्ययग्रहण इति**। परनिमित्तत्वेन प्रत्ययग्रहण इत्यर्थः। तेनोड इत्यत्र न दोषः। **न तदन्तग्रहणमिति**। अंशान्तरं[1] तु फलसत्वे प्रवर्तते नान्यत्र। परिभाषाणां फलवत्त्वानियमात्। समुच्चयाभावस्य प्रागुक्तत्वाच्च। अत एव प्रकृतेऽप्रवृत्तिरान्महत इत्यादौ प्रवृत्तिरिति बोध्यम्।

अत्र ज्ञापकमाह—**हृदयेति**। अन्यथाऽणैव सिद्धे लेखग्रहण व्यर्थं स्यात्। लेख इत्यणन्तमेव तत्र गृह्यत इति भावः। ननु तद्घञन्तं नाणन्तामित्यज्ञापकमत आह—**तत्रेति**। उक्तसूत्र इत्यर्थः। गृह्यत इति शेषः। अनभिधाने मान सूचयन्नाह—**इयं चेति**। तत्र ह्यणन्तत्वात्सिद्धिर्लेखग्रहणेन ज्ञापितयाऽनया वारिता। अत्रेद बोध्यम्—उत्तरपदाधिकारे प्रत्यासत्त्या परनिमित्तभूतप्रत्ययस्यैव विशेष्यत्वेन तत्तद्रूपेण च ग्रहणे तदन्तग्रहणं नेत्यर्थः। ज्ञापकस्य सजातीयापेक्षत्वात्। अतोऽपि घत्यागः। एव च 'ङ्योऽनेकाचः' 'ह्रस्वोऽङ्यो गालवस्य' 'ङ्यापोः सञ्ज्ञाछन्दसोः' 'खित्यन' 'पाते ञे' 'रात्रेः कृति' 'रच्यञ्जतावप्रत्यये' तनिषु क्वावित्यादौ न दोषः। उपसर्गस्य घञ्यमनुष्य इत्यत्र तु सामर्थ्यात्तदन्तविधिर्बोध्यः। एवमेकतद्धिते चेत्यत्र चकारकरणसामर्थ्येनोत्तरपदस्य पृथङ्निमित्ततयाऽविशेष्यत्वेन तदन्तविध्यभावो बोध्य इति ॥ २५ ॥

**एवमिति**। अपीति शेषः। यद्वोक्तस्थल एव तदन्ताशमात्रे निषेधाङ्गीकार इत्यर्थः। दृष्टान्तेनेदं सूचितम्। यदि तदादिनियमस्तर्हि मुख्येऽपि न स्यादथ स न तदनुरोधात्तर्हि गौणेऽपि स्यादिति। इत्यत्र, इत्यत्रापि। नन्वनुपसर्जनस्त्रीप्रत्ययग्रहण इत्यर्थो ग्रहणपदानुवृत्त्याऽ-

---

[1] अंशान्तरमपि तत्र न फलाभावात्, असभवाच्च पूर्वांशोपस्थितेरन्त्यव्यभिचारित्वेऽपि तस्य न तद्व्यभिचारित्वमिति तावदंशोत्पत्तिरिति भावः। तत्र ज्ञा° इतीद ग. पुस्तके पाठान्तरम्।

विषयसप्तमीयम् । यः स्त्रीप्रत्ययः स्त्रियं प्राधान्येनाऽऽह तत्र तदादि-नियमो न । यस्त्वप्राधान्येनाऽऽह तत्र तदादिनियमोऽस्त्येवेत्यर्थः । प्रत्यासत्त्या यस्य समुदायस्य स्त्रीप्रत्ययान्तत्वमानेयं तदर्थं प्रत्यनुपसर्ज-नत्वमेवैतत्परिभाषाप्रवृत्तौ निमित्तम् । तेनातिराजकुमारिरित्यादौ राजकु-मारीशब्दार्थस्यातिशब्दार्थं प्रत्युपसर्जनत्वेऽपि तदर्थं प्रत्यनुपसर्जनत्वात्त-दादिनियमाभावेन ह्रस्वसिद्धिः । अत एवात्र परिभाषायां न शास्त्री-यमुपसर्जनत्वमसंभवात् ।

अस्याः 'प्रत्ययग्रहणे' (प०२३) इत्यस्यापवादत्वात्तदेकवाक्यता-पन्नत्वाच्चात्रापि ग्रहणपदसंबन्धेन स्त्रीप्रत्ययसामान्यग्रहणे विशेषग्रहणे

---

वश्यं वक्ष्यमाणया प्रतीयते स चायुक्तः । लक्ष्यभेदेनैकत्रैव सूत्र एतत्प्रवृत्त्यप्रवृत्त्योरि-ष्टत्वात् । अत आह—**विषयेति** । तथा च तद्विषयके शास्त्रे स न, तदविषयके, तु तत्रैव सोऽस्त्येवेत्यर्थः । तत्फलितमाह—**य इति** । तत्र, तद्विषयके । एवमग्रेऽपि । तद-न्ताशस्य तत्रेष्टत्वादाह—**तदादिनियम इति** । तदादिमात्रग्राहकपरिभाषेत्यर्थः । एव-मग्रेऽपि । **यस्त्विति** । अनेन चस्त्वर्थे व्युत्क्रमे चेति सूचितम् । यद्यपि तदादि-नियमेनोभयनिरासवदत्र तदभावेनोभयसंग्रहस्तथाऽप्यनुपसर्जनादित्यधिकारसामर्थ्येनाधिक-स्यैव संग्रहो न न्यूनस्येति न पाक्षिककुम्भकारेयानिष्टमित्यन्यत्र स्पष्टं तत एव बोध्यम् । अतिप्रसङ्गनिरासायाऽऽह—**प्रत्येति** । तदर्थं, तत्समुदायार्थम् । एवमग्रेऽपि । अनेनात्र तदन्ताशस्येष्टत्वं स्फुटमेवोक्तम् । एवं च मिथस्तौ व्यभिचरितावित्यन्यतरनिषे-धेऽन्यस्याप्यभावो नेति बोध्यम् । अत्र, अस्याम् । अत एवेत्यस्यार्थमाह—**असंभ-वेति** । प्रत्यासत्त्या परिभाषाघटकस्त्रीप्रत्ययनिष्ठोपसर्जनत्वस्य शास्त्रीयोपसर्जनत्वविरुद्धत्वेनासं-भवादित्यर्थः ।

एतत्प्रवृत्तिस्थलमाह—**अस्या इति** । उत्सर्गसमानदेशा अपवादा इति न्यायादिति भावः । ननु तस्य भ्रमादौ व्यभिचरितत्वमत आह—**तदेकेति** । वाक्यैकवाक्यतेत्यर्थः । तथा च गृह्यमाणे स्त्रीप्रत्यये सत्यनुपसर्जनविषये तदादिनियमो नान्यत्र तु तत्रैवास्त्येवे-त्यर्थः । अनुपसर्जन इत्येव विषयसप्तमीति न प्रागुक्तविरोध इति बोध्यम् । सामान्यग्रहणं, गोस्त्रियोरित्यादि । विशेषग्रहण, ष्यङ इत्यादि । ग्रहणे चेति पाठ. । वेति पाठेऽप्ययमे-

---

१ ग. °गतया° । २ क. तत्र स्पष्ट° । ३ ङ. °न्यतराभा° ।

च प्रवृत्तिर्न तु स्त्रीप्रत्ययास्त्रीप्रत्ययग्रहणे । ध्वनितं चेदमर्थवत् । ( १ । २ । ४५ ) सूत्रे भाष्ये । इयं वाचनिक्येव 'ष्यङः' ( ६ । १ । १३ ) इति सूत्रे भाष्ये स्पष्टा ॥ २६ ॥

नन्वेव 'तरप्तमपौ घः , ( १ । १ । २२ ) इत्यादिना तरबन्तादेः संज्ञा स्यादत आह—

संज्ञाविधौ प्रत्ययग्रहणे तदन्तग्रहणं नास्ति ॥२७॥

'सुप्तिङन्तम्' ( १ । ४ । १४ ) इत्यन्तग्रहणमस्या ज्ञापकम् । न च प्रत्यययोः पदसंज्ञायामपि प्रत्ययग्रहणपरिभाषया तदन्तग्रहणसंभवाज्ज्ञापितेऽपि फलाभाव इति वाच्यम् । पदसंज्ञायाः 'स्वादिषु' ( १ । ४ । १७ ) इति विषये प्रकृतिनिष्ठतया पदग्रहणस्य प्रत्ययमात्रग्रहणत्वाभावात् । 'सुप्तिङन्तम्' ( १ । ४ । १४ ) इति सूत्रे भाष्ये स्पष्टा॥२७॥

---

वार्थः । वा स्यादिति कोशात् । **न तु स्त्रीति** । अत एव पदस्य विभज्यान्वाख्याने सरूपसमुदायादेकविभक्तावेकशेष इति पक्ष आबन्तसमूहस्याप्रत्ययान्तत्वेन प्रातिपदिकत्वाद्यामि भिक्षा भिक्षा भिक्षा आम् अणित्यादौ सर्वविधिभ्य इत्यामो लुकि विभक्तिपरत्वाभावादेकशेषा न स्यादिति सरूपसूत्रभाष्य संगच्छते । अन्यथाऽन्यया समुदायस्याऽऽबन्तत्वेन प्रत्ययान्तत्वप्रयुक्तनिषेधेनाऽऽमोऽप्राप्तेस्तदसगतिः स्पष्टैव । किं च तत्रैतत्प्रवृत्त्यङ्गीकारे फलाभावात् । तदाह—**ध्वनितमिति । ष्यङ इतीति** । तत्र हि मुख्यदृष्टान्तेन गौणेऽतिप्रसङ्गोऽनया वारितः ॥ २६ ॥

एवमित्यस्यापीति शेषः । यद्वेत्युक्तप्रकारो वा । आदिना तौ सदित्यादि । **संज्ञाविधाविति** । सज्ञाया विधायके शास्त्र इत्यर्थः । प्रत्यययोः सुप्तिङोः । **तदन्तेति** । प्रदेशोञ्वित्यादिः । ज्ञापितेऽपि, तत्र तदन्तविध्यभाव इत्यादिः । **फलाभाव इति** । चारितार्थ्याभाव इत्यर्थ । तथा च ज्ञापकत्वासगतिरिति भाव. । **स्पष्टेति** । अस्येयमिति शेषः । ( + तत्र ह्यन्तग्रहणेनेय साधिता भगवता । तदाशयः कैयटेन प्रत्ययग्रहण इत्यनन्तरोक्तपरिभाषया वर्णितः । शब्दरूप विशेष्यमादाय तत्सिद्धिरित्युभयतात्पर्यम् । एव च पूर्वसूत्रात्तदादीत्यन्तस्यानुवृत्तिर्नाभिमता । अस्वरितत्वात् । अन्यथा तदनुवृत्त्या तद्विशेषणतयैव तत्सिद्धि ब्रूयात् । हयवरट्सूत्रस्थकैयटस्त्वर्थान्तरपर इति न विरोधः । अत एव सज्ञाविधौ प्रत्ययग्रहण इति सामान्यभूतज्ञाप्यार्थसिद्धिः । अन्यथा तत्रैव विशिष्य तदननुवृत्तिबोधनेनैवान्तग्रणहसाफल्ये भाष्याद्यसगतिरिष्टार्थासिद्धिश्च स्यात् । न चैवमपि पूर्वसूत्र-

---

+ धनुश्चिह्नान्तर्गतो ग्रन्थो घ. पुस्तस्थ. ।

---

१ घ. °वार्थो वा फ° ।

**नन्ववतप्तेनकुलस्थितमित्यादौ नकुलस्थितशब्दस्य क्तान्तत्वाभावा-त्समासो न स्यादत आह—**

## कृद्ग्रहणे गतिकारकपूर्वस्यापि ग्रहणम् ॥ २८ ॥

**अस्याश्च कर्मणि क्तान्त उत्तरपदेऽनन्तरो गतिः प्रकृतिस्वर इत्यर्थके 'गतिरनन्तरः (६ । २ । ४९) इति सूत्रेऽनन्तरग्रहणं ज्ञापकम् । तद्धि, अभ्युद्धृतमित्यादावभावातिव्याप्तिवारणार्थम् । प्रत्ययग्रहणपरि-**

---

भाष्यविरोध· । तत्र धात्वादिसज्ञावत्परिभाषाफलत्वेनानन्तरपदसज्ञाया अनुल्लेखनेन तदनुवृत्तेरेव तदभिमतत्वलाभादिति वाच्यम् । तथासिद्धिसभावनया तस्या नासाधारणफलत्वमित्याशयेन तत्त्यागात् । समासस्य फलत्वकथनेन तुल्यतया तस्या अप्युक्तप्रायत्वात् । अनुनासिकात्पर इत्यनेनेव परश्चेत्यनेन प्रत्ययाना प्रकृत्यवयवत्वबोधनेन चरमावयवत्वेन बोधकान्तशब्देन बहुव्रीहिणा सुबाद्यवयवकावयविरूपसमुदायस्यैव तेन ग्रहणेन न्यूनाधिकव्यावृत्तिसिद्ध्या तदनुवृत्तेर्न फलमित्याशयाच्च । न चैवमन्तग्रहणसाफल्ये सुप्तिङिति सूत्रभाष्यासगत्यापत्ति-रिति वाच्यम्। तस्य तत्र तावन्मात्रफलस्यान्यार्थमावश्यकोक्तपरिभाषयैव सिद्ध्याऽन्तग्रहणं व्यर्थमित्याद्याशयपरत्वात्। सनाद्यन्ता इत्यत्र त्वन्तशब्द. परसमीपबोधक इति न धातुसज्ञा-फलपरभाष्यविरोध· । इत एवारुच्या पूर्व तत्र धात्वित्युक्ति । न च कृतेऽन्तग्रहणे तदं-शाप्रवृत्त्याऽशान्तरस्याप्यप्रवृत्त्या न्यूनाधिकव्यावृत्तये तदनुवृत्तिरावश्यिकेति वाच्यम् । उक्तोत्तरत्वात् । तयाऽधिकस्यैव व्यावृत्तेर्न न्यूनस्येत्यादि तु दूषितमेवेति । एधिषीष्टेत्यादौ षीष्टेत्यादेरपि व्यावृत्ति· सिद्धा सुबन्तसमुदायवत् । एव च धातुप्रातिपदिकेतिभाष्यमुप-लक्षणमेव । सुप्तिङन्तमितिसूत्रभाष्यप्रामाण्यात् । तस्मात्तत्र तदननुवृत्तिरेव फलाभावादस्वरि-तत्वाच्चेति सिद्धम् । केवलप्रत्ययविषये मुख्यतद्व्यवहाराभावेन तत्परिभाषासस्कृतोपदेशाप्राप्ता-वपि व्यपदेशिवदित्यतिदेशेनेयानित्यादौ पदत्ववदस्यापत्य युवत्यादिविषये फगादिसिद्धिरिति तया न्यूनव्यावृत्तौ तत्र दोषसभावनाऽपि न । तथोद्द्योतादिग्रन्थास्तु कैयटानुरोधिन इत्युक्त-मेव । तस्मात्तत्र तदनुवृत्तिपराः शेखरादिग्रन्थाः प्राचामनुरोधेनैव । यदि त्वनुनासिकात्परः पूर्वौ तु ताभ्यामित्यत्र सामर्थ्यात्तयोस्तत्त्वेनाऽऽगमपरत्वेऽपि न परश्चेत्यत्र तथात्वम् । प्रातिपदिकादित्यादिपञ्चम्या दिग्योगलक्षणत्वेनानियताध्याहारप्रसङ्गे पूर्वव्यावृत्तये तस्य पर-समीपबोधकत्वलाभात् । कि च तथा सत्यागमवन्मूलयुक्तेस्तुल्यत्वात्प्रत्ययानामपि प्रकृति ग्रहणापत्तिरित्युच्यते तर्ह्यस्तु तथा पूर्वयुक्तेर्निर्दुष्टत्वेन भाष्योपलक्षणत्व एव तात्पर्यादिति दिक् ) ॥ २७ ॥

नन्वित्यस्यैवमपीति शेष· । **क्तान्तत्वाभावादिति** । प्रत्ययग्रहण इति परिभाष-येति भावः । अस्याश्चेत्यस्य ज्ञापकमित्यत्रान्वयः । **कर्मणीति** । कर्मणि यः क्तस्तदन्त इत्यर्थ. । तत्त्वमुपपादयति—**तद्धीति** । अनन्तरग्रहण हीत्यर्थ. । वारणार्थमित्यस्य क्रियत

भाषयोद्धृतस्य क्तान्तत्वाभावादेवाप्राप्तौ तदर्थं सदस्या ज्ञापकम् । न चाभ्युद्धृतमित्यादौ परत्वात्, 'गतिर्गतौ' (८ । १ । ७०) इत्यनेनाभेर्निघात एवेति वाच्यम् । पादादिस्थत्वेन पदात्परत्वाभावेन च तदप्राप्तेः । अनन्तरग्रहणे कृते तु तत्सामर्थ्याद्गत्याक्षिप्तधातुनिरूपितमेवानाऽऽन्तर्यं गृह्यत इति न दोषः । न चाभ्युद्धृतमित्यादावभिना समासेऽनन्तरस्योदः पूर्वपदत्वाभावेऽपि स्वरार्थं तदिति वाच्यम् । 'कारकाद्दत्त' [ १ । २ । १४८ ] इति सूत्रे कारकादिति योगं विभज्य गतिग्रहणमनुवर्त्य कारकादेव परं गतिपूर्वपदं क्तान्तमन्तोदात्तमिति नियमेन थाथादिस्वराप्राप्त्या कृत्स्वरेणोद उदात्तत्वसिद्धेः । तस्मादनन्तरग्रहणं व्यवहितनिवृत्त्यर्थमेवेति ज्ञापकमेव ।

---

इति शेष. । उद्धृतस्य, तच्छब्दस्य । वाप्राप्तौ, अभेः स्वराप्राप्तौ । ज्ञापकत्वं विघटयति—**न चेति** । एवेन गतिरनन्तर इत्यस्य व्यवच्छेदः । तथा च चारितार्थ्याभावादज्ञापकत्वमिति भावः । तत्त्वे मानाभावादाह—**पदादिति** । नन्वनन्तरग्रहणे कृतेऽप्यसौ दुर्वार. । ज्ञापितयैतत्परिभाषयोद्धृतस्य क्तान्तत्वेऽभेस्तदानन्तर्यस्य सत्त्वात् । तथा चाचारितार्थ्यं तदवस्थमेत आह—**अनन्तरेति** । तत्सामर्थ्यात्, अनन्तरग्रहणसामर्थ्यात् । धातुलाभोपायमाह—**गत्याक्षिप्तेति** । **गृह्यत इति** । अभिस्तु न तथेति भावः । ननु तस्यान्यार्थत्वेनैतदर्थत्वाभावेन ज्ञापकत्वासंभव इत्यस्तु तदर्थमपूर्वेयमित्याशयेनाऽऽशङ्कते—**न चेति** । **अभिना समास इति**[2] । धृतशब्दस्योच्छब्देन गतिसमासे पुरोहितमितिवद्गतिस्वरेणाऽऽद्युदात्तोद्धृतशब्दस्येति भाव' । तत्, अनन्तरग्रहणम् । अन्यथा बहुव्रीहौ प्रकृत्येत्यतः पूर्वपदग्रहणानुवृत्त्याऽत्रोदात्तो न स्यात् । सति शिष्टथाथादिस्वरेणान्तोदात्तत्व स्यात् । सूत्रं त्वेकगतिके सफलम् । तत्र कृते तु तत्सामर्थ्यात्तदसंबन्ध इति थाथादिस्वरतोऽप्यय सति शिष्ट. । एव हि स्वरक्रम. समासान्तोदात्तत्वबाधकाव्ययपूर्वपदप्रकृतिस्वरबाधककृत्स्वरबाधकथाथादिस्वरबाधको गतिरनन्तर इति स्वर इति । एव च तस्याधिकसंग्रहार्थत्वेन ज्ञापकत्वासंभव इति भावः । **गतिग्रहणमिति** । गतिकारकोपेत्यतः । अग्रे समुदितानुवृत्तावपि योगविभागस्येष्टसिद्ध्यर्थत्वेन तस्यैवात्र संबन्धः । सूपमानादित्यतः क्तग्रहण त्वनुवर्तत एवेति भावः । गते पर क्तान्तमिति शब्दार्थेन फलितमाह—**गतिपूर्वेति** । **कृत्स्वरेणेति** । गतिकारकोपपदादित्यनेनेति भाव । तदाऽपूर्व्याऽन्यार्थमावश्यिकयैतत्परिभाषयोद्धृतस्य कृदन्तत्वात्तस्य चाऽऽद्युदात्तत्वमुक्तमेव । एवं च तत्रेष्टोत्स्वरसिद्धिरित्यधिकसंग्रहार्थत्व न तस्येत्यन्यथा चारितार्थ्याभावेनैवमेव तद्वाच्यमिति तत्त्व सम्यगेव तदाह—**तस्मादिति** । **ज्ञापकमिति** । एकदेशद्वारा कृत्स्नपरिभाषाया इत्यर्थः ।

---

१ घ. पादादीति । २ ङ. 'ति हत' । ३ क. ख. घ. ङ. °र्थत्वेन । ४ क. ख. घ. ङ. °स्येत्येव° ।

यत्र गतिकारकसमभिव्याहृतं कृदन्तं तत्र कृद्ग्रहणे तद्विशिष्टस्यैव ग्रहणमपिशब्दात्तदसमभिव्याहृतस्य केवलस्यापीत्यर्थः । अन्यथाऽनया कृद्ग्रहणविषये परत्वात्प्रत्ययग्रहणपरिभाषाया बाध एव स्यादित्यपि-ग्रहणम् ।

अत एव सांकूटिनमिति 'गतिकारकोपपदानाम्' (प० ७५) इति कृद्ग्रहण इति च परिभाषाभ्यां कृदन्तेन समासे कृते विशिष्टादेवाणि सिध्यति न तु संकौटिनमितीति 'पुंयोगात्' (४ । १ । ४८) इति सूत्रे भाष्योक्तं संगच्छते । अन्यथा तत्र केवलं कूटिञ्जित्येतस्यापीनुणन्त-त्वात्ततोऽणि पाक्षिकदोषो दुर्वार एव स्यात् । स्पष्टं चेदं सर्वं 'समासेऽ-नञ्पूर्वे' (७ । १ । ३७) इति सूत्रे भाष्यकैयटयोः । 'गतिरनन्तरः'

---

परिभाषार्थमाह—**यत्रेति** । सर्थ वाक्यमिति न्यायेनाऽऽह—**विशिष्टस्यैवेति** । **तदसमेति** । तथा चापिना प्रत्ययग्रहणपरिभाषाया अन्यत्र समुच्चयो नान्यपूर्वस्य तत्र । एतेनानञ्पूर्वग्रहणेन तत्सनिधानेऽप्यपिना केवलसमुच्चय इत्युभयमेकत्रेत्यपास्तम् । अनञ्पूर्वग्र-हणस्य तत्रैव कृद्ग्रहणपरिभाषानुपस्थितिज्ञापकतया साफल्यात् । अप्रकृत्येत्यत्राप्यनापत्तेश्च । गत्यादिपूर्वस्य क्त्वान्तस्य समासस्यानञ्पूर्वस्येत्यर्थापत्तेरिति भाव. । स्यापीत्यर्थ इति पाठ । स्येतदर्थ इति क्वचित्पाठ । अन्यथा, अपिशब्दाभावे । **परत्वादिति** । सर्वं वाक्यं सावधारणमिति न्यायेन तद्ग्रहणे तत्पूर्वस्यैव ग्रहणमित्यर्थावगमाद्विरोधेन परत्वमिति भावः । एतेन तदपवाद इयमिति सीरदेवोक्त प्रत्युक्तम् । येन नेति न्यायाविषयत्वेन तत्त्वायो-गात् । व्यावचर्चीत्यादौ स्त्रीप्रत्यये चेति निषेधेन प्रत्ययग्रहण इत्यस्या अप्रवृत्तेरस्या-स्तत्र प्रवृत्तेरिति कैयट. । यद्यपि तया तदादिनियममात्रे निषिद्धे कृद्ग्रहणपरिभाषा विनाऽपि समुदायस्य तदन्तत्वात्तत्सिद्धिस्तथाऽपि तदधिकग्रहणाभावाय तद्विषयतासत्त्वमा-त्रेणावकाशो बोध्यः ।

**अत एवेति** । तत्समभिव्याहारे तद्विशिष्टस्यैव ग्रहणमित्याद्यर्थाङ्गीकारादेवेत्यर्थः । **कृदिति** । एतेनेय तदविषयविषयसग्राहिका । अत एवापिना तदर्थस्यापि सग्रह इत्येवा-स्त्विति कस्यचिदुक्तिः परास्ता । भाष्यासगते । अन्यथा, उभयोरेकत्राङ्गीकारे । सर्वम्, आदित आरभ्य यावदुक्तम् । तत्र हि क्त्वात्वाकालकादिषु प्रतिषेध इत्येतत्खण्डनाय पक्षान्तरत्वेनोक्तप्रत्ययग्रहणपरिभाषाप्रसङ्गेनेदमुक्तम् । ननु तत्समभिव्याहारे तद्विशिष्टस्यैव ग्रहणे पुरोहितमित्यादौ गतिरनन्तर इति न स्याद्विशिष्टस्य क्तान्तत्वेन ततो भेदाभावादत आह—**गतिरिति** । पूर्वाङ्गस्य, वस्तुतः पूर्वपदभूतस्य । नेदमनुवृत्तिपर तदननुवृत्तेरुक्त-

( ६ । २ । ४९ ) इत्यत्र तु गतेः पूर्वपदस्य क्तान्त उत्तरपदे परे कार्यविधानात्तत्समवधानेऽपि केवलस्य क्तान्तत्वेन ग्रहणं बोध्यम् । इयं च कृद्विशेषग्रहणे कृत्सामान्यग्रहणे च न तु कृदकृद्ग्रहण इति ' अनुपसर्जनात् ( ४ । १ । १४ ) इति सूत्रे भाष्ये स्पष्टम् ॥ २८ ॥

पदाङ्गाधिकारे तस्य च तदन्तस्य च ॥ २९ ॥

पदमङ्गं च विशेष्यं विशेषणेन च तदन्तविधिः । ' येन विधिः ' ( १ । १ । ७२ ) इत्यस्यायं प्रपञ्चः । तेनेष्टकचितं पक्वेष्टकचितमित्यादौ ' इष्टकेषीकामालानां चित ' ( ६ । ३ । ६५ ) इति ह्रस्वो महान्परममहान्परमातिमहानित्यादौ ' सान्तमहतः ' ( ६ । ४ । १० ) इति दीर्घः सिद्धः । अत एव तदुत्तरपदस्येति पाठोऽयुक्त इति भाष्ये स्पष्टम् । अत्र पदशब्देनोत्तरपदाधिकारः केवलपदाधिकारश्च । ' पादस्य पदाज्याति ' ( ६ । ३ । ५१ ) इत्यत्र न तदन्तग्रहणं लक्ष्यानुरोधादिति सर्वं ' येन विधिः ' ( १ । १ । ७२ ) इत्यत्र भाष्ये स्पष्टम् ॥ २९ ॥

---

त्वात् । **विधानादिति** । तत्सामर्थ्यादिति शेषः । **भाष्य इति** । तत्र हि प्रधानेन तदन्तविधिर्यथा स्यात्कुम्भकारीति, अन्यथाऽत्र पूर्ववचनेनावयवादुत्पत्तिः स्यादित्युक्त्वाऽनया सघातादुत्पत्तिर्भविष्यतीति शङ्कित इदमुक्तम् ॥ २८ ॥

नन्वेवमपि पक्वेष्टकचितमित्यादौ ह्रस्वादि न स्यादत आह—**पदाङ्गेति** । परिभाषार्थमाह—**पदमिति** । तथा च विशेष्यविशेषणभावव्यवस्थार्थमिदमिति नापूर्वं तदाह—**येनेति** । अत्र पदशब्देनोत्तरपदाधिकारो न गृह्यते किं तु शुद्धपदाधिकार इति प्राचा मतमसगतमिति ध्वनयितुमाह—**तेनेष्टेति** । अङ्गाधिकारोदाहरणमाह—**महानिति** । **अत एवेति** । परमातिमहानित्युदाहरणदानादेवेत्यर्थ । द्वितीयसमासे महदन्तत्वेऽपि तदुत्तरपदकत्वं नेति भाव । यद्यपि भाष्ये वार्तिककृताऽऽदौ तथा पठित तदन्तविधेरपवादोऽयमुत्तरपदविधिरत एव तस्य चेति पुनरभिहित तदन्तविधौ हि बहुचपूर्वेऽपि स्यात्तच्च नेष्टमिति वार्तिकाशयस्तदन्तविध्यपवादस्यापि विशेषण एव प्रवृत्तिस्तथाऽप्यग्रेऽस्यानर्थकेनेत्येतद्व्याख्यावसरे किं पुनरत्र ज्याय इत्यादिनैवमुक्तम् । तदाह—**भाष्य इति** । येन विधिरित्यत्रैवेत्यर्थः । तथैवोदाहरणदानाशयमाह—**अत्रेति** । **कारश्चेति** । गृह्यत इति शेषः । नन्वेवमतिप्रसङ्गोऽत आह—**पादस्येति** । **सर्वमिति** । आदित आरभ्य यदुक्तं तत्सर्वमित्यर्थः । पदाङ्गाधिकार इति वार्तिकव्याख्यावसरे सर्वमिद तत्रोक्तम् ॥ २९ ॥

नन्वेवमस्यापत्यमिरित्यादावदन्तप्रातिपदिकाभावादिञ्न स्यादत आह—

व्यपदेशिवदेकस्मिन् ॥ ३० ॥

निमित्तसद्भावाद्विशिष्टोऽपदेशो मुख्यो व्यवहारो यस्यास्ति स व्यपदेशी । यस्तु व्यपदेशहेत्वभावादविद्यमानव्यपदेशोऽसहायः स तेन तुल्यं वर्तते कार्यं प्रतीत्येकस्मिन्नसहायेऽपि तत्कार्यं कर्तव्यमित्यर्थः । तेनाकारस्याप्यदन्तत्वान्न क्षतिः । एकस्मिन्नित्युक्तेः समासन्नयन आकारस्य नाऽऽदित्वं दरिद्राधातावकारस्य नान्तत्वम् । अन्यथा समासन्नयने भव इत्यर्थे 'वृद्धाच्छः' (४ । २ । ११४) दरिद्रातेरिवर्णान्तलक्षणोऽच स्यात् । अत एव हरिष्वित्यादौ सोः पदत्वं न ।

लोकेऽपि बहुपुत्रसत्त्वे नैकस्मिञ्ज्येष्ठकनिष्ठत्वादिव्यवहारोऽयं मे ज्येष्ठः कनिष्ठो मध्यम इति किंत्वेकपुत्रसत्त्व एव । अनेन चाशास्त्रीयस्याप्य-

---

एवम् । पदाङ्गाधिकार एवोभयत्र कार्याङ्गीकारे । क्वचित्त्वेवमपीति पाठ. । तत्राप्ययमेवार्थः । अत इञित्यस्योभयबहिर्भूतत्वाद्येन विधिरित्यत्र तस्य चेत्यादि नास्तीति भावः । शेषपूरणेन व्याचष्टे—**निमित्तेति** । वेरर्थमाह—**विशिष्टेति** । क्रमेणानयोरर्थमाह—**मुख्य इति** । एकपदार्थमाह—**असहाय इति** । तेन, व्यपदेशिना । **कार्यं प्रतीति** । कार्यार्थमेवातिदेशाङ्गीकारादिति भावः । तदेवाऽऽह—**एकस्मिन्निति** । तदर्थमाह—**असेति** । तत्कार्यं, मुख्यकार्यम् । उक्तदोषमुद्धरति—**तेनेति** । **अकारेति** । भगवद्वाचकस्येत्यर्थः । अपिना दक्षादिसमुच्चयः । समासन्नयने, तच्छब्दे । अन्यथा, एकस्मिन्नित्यस्याभावे । अयं भावः—समासन्नयने यस्याचा वृद्धिरित्यंशसत्त्ववदादित्वस्यापि व्यपदेशिवद्भावेन स्वापेक्षया तत्र सत्त्वमिति तत्समुदायस्य वृद्धसज्ञा दुर्वारा । एवं दरिद्रातेरिवर्णस्यान्तत्वं स्वापेक्षयाऽस्तीति धातोरिवर्णान्तत्वमक्षतमिति । ननु तत्राऽऽदिग्रहणसामर्थ्येन मुख्यादेरेव ग्रहणमिति नायं दोषोऽत आह—**दरिद्रातेरिति** । फलान्तरमाह—**अत एवेति** । एकस्मिन्नित्युक्तेरेवेत्यर्थः । पदत्व, पदत्वमपि । अन्यथा यस्माद्विहितस्तदादित्वस्याशास्त्रीयस्यानयाऽतिदेशात्तत्व दुर्वारमिति भावः ।

एवमेव लोकन्यायेन सिद्धमित्याह—**लोकेऽपीति** । व्यवहारस्वरूपमाह—**अयं मे ज्येष्ठ इति** । एकपुत्रसत्त्व एवेति पाठः । एकपुत्रत्व एवेति पाठे तु निमित्तसप्तमी कर्मधारयाद्बहुव्रीहेर्वा त्वः । कैयट खण्डयितुं स्वसिद्धान्तमाह—**अनेन चेति** । चस्त्वर्थे । तेनान्यत्रातिदेशो नैवमिति बोध्यम् । अपि. शास्त्रीयधर्मसमुच्चायकः । अत्र शास्त्रीयत्वं च शास्त्रविधेयत्वम् । अस्ति चैतद्घटकतदन्तत्वे । आद्यन्तवदित्यनेन तस्य विधानात् । नैवं

---

१ °तत्तदघट° ।

तिदेशः । अत एवेयायेत्यादावेकाच्त्वनिबन्धनद्वित्वसिद्धिः । अत एव भवतीत्यादौ भू इत्यस्याङ्गत्वम् , इयानित्यादौ कार्यकालपक्षे तद्धितान्तत्वनिबन्धनप्रातिपदिकत्वं च सिध्यति । अन्यथा यस्माद्विहितस्तदादित्वाभावान्न स्यात् ।

यत्तु योऽर्थवांस्तत्रार्थस्य त्यागोपादानाभ्यामेकाज्व्यपदेशो यथेयायेत्यादावर्थवतो धातोरयं वर्णरूप एकोऽजिति कैयटस्तन्न । तस्यैकपदा ऋगित्यत्र भाष्योक्तरीत्या मुख्यव्यवहारत्वात् । एकपदा ऋगित्यत्रार्थेन युक्तो व्यपदेश इति भाष्य उक्तम् । ऋक्त्वादेरर्थशब्दोभयवृत्तित्वेन तस्याः शब्दमात्ररूपं पदमेकोऽवयव इत्यर्थ इति तदाशयः । तस्मादेकस्मिंस्तत्तद्धर्मारोपेण युगपद्यथा ज्येष्ठत्वादिव्यवहारो यथा च शिलापुत्रकस्य शरीरमित्यादावेकस्मिन्नारोपितानेकावस्थाभिः समुदायरूपत्वाद्यारोपेणैतस्य शरीरमित्यादिव्यवहारस्तथाऽत्रैकाच्त्वादिव्यवहारोपपत्तिरि-

---

यस्माद्विहितस्तदादित्व इति बोध्यम् । तत्फलमाह—अत एवेति । अशास्त्रीयस्यातिदेशादेवेत्यर्थः । एवमग्रेऽपि । अस्याऽऽवश्यकता सूचयितुं फलान्तरमाह—अत एवेति । ध्यातिस इत्यादिपदत्वमित्यन्तोऽपाठः । लोके तत्प्रयोगस्यैवाभावादिति भावप्रकाशे विशदीकृतम् । इयानित्यादाविति । आदिनाऽधुनेत्यादिपरिग्रहः । कार्यकालेति । तस्यैव मुख्यत्वादिति भावः । अन्यथा, अशास्त्रीयातिदेशानङ्गीकारे । न स्यादिति । तथा चैतदर्थं तथाऽवश्यं वाच्यम् । इयायेत्यादावप्ययमेव प्रकार इति कैयटाद्युक्तिरयुक्तैवेति भावः ।

तदेवाऽऽह—यत्त्विति । तस्य, तथैकाच्त्वव्यवहारत्वेनाभिमतस्य । मुख्यव्यवहारत्वादिति । तथा च तथोपपादनेन तत्र परिभाषायोजनं कैयटीयमयुक्तमिति भावः । व्यवहारसत्त्वादिति पाठे तस्येत्यस्यार्थवत इत्यर्थो बोध्यः । तदेव भाष्यमाह—एकेति । युक्तत्वमुपपादयति—ऋक्त्वादेरिति । आदिना मन्त्रत्वादिपरिग्रहः । उभयेत्यनेन विशिष्टनिरासः सूचितः । तस्या[1], ऋचः । इत्यर्थ इति । एकपदा ऋगित्यस्येति भावः। तदाशयः, भाष्याशयः । उपसहरति—तस्मादिति । एकस्मिन्, पुत्रे । एकस्मिन्, शिलापुत्रके । वयःकृतावस्थानामपि प्राणिनिष्ठत्वेन वस्तुनस्तत्रासत्त्वादाह—आरोपितेति । समुदायरूपत्वेति । अनेकावस्थाविशिष्टशिलापुत्रकत्वेत्यर्थः । आदिनैकावस्थाविशिष्टशिलापुत्रकत्वपरिग्रहः । एतस्येति । अनेकावस्थाविशिष्टशिलापुत्रकस्यैकावस्थाविशिष्टमिदं शरीरमवयव इत्यादिव्यवहार इत्यर्थः । तथाऽत्रैकेति । इयायेत्यादावुक्तप्र-

---

१ क. ख. ङ. याच्य इया° ।

तिलोकन्यायसिद्धेयम्। न चासहाय एवैतत्प्रवृत्तौ भवतीत्यत्र भू इत्य-स्याङ्गत्वानापत्तिः ससहायत्वादिति वाच्यम्। शपमादायाङ्गत्वे कार्ये यस्माद्विहितस्तदादित्वे तस्य ससहायत्वाभावाल्लोके विजातीयकन्यादि-सत्त्वेऽप्येकपुत्रस्य तस्मिन्नेवायमेव ज्येष्ठ इत्यादिव्यवहारवत्। न चैवं निजौ चत्वार एकाच इति भाष्यासंगतिरिकारस्यासहायत्वाभावेन तत्रैकाच्त्वानुपपादनादिति वाच्यम्। एकस्मिन्नित्यस्यापर्यालोचनया तत्प्रवृत्तेः।

अर्थवता व्यपदेशिवद्भाव इत्यत्रार्थवत्पदेनाप्यसहायत्वमुपलक्ष्यते। अर्थबोधकेन शब्देन व्यपदेशिसदृशो भावः कार्यं लभ्यत इति तदर्थः। प्रायोऽसहाय एवार्थवत्त्वात्। कुरुत इत्यादौ तशब्दाकारोऽचामन्त्य इति

---

कारद्वयेनेत्यर्थ। **इति लोकेति**। न तु कैयटोक्तरीत्येति भावः। **अङ्गत्वेति**। शब्-निरूपितेत्यादि। **ससहायेति**। शबादिनेति भाव.। **अङ्गत्वे कार्ये**। जन्यजनकभावः सप्तम्यर्थः। तज्जनकीभूत इति यावत्। तदादित्वे, तद्व्यवहारे कर्तव्ये। तस्य, भू इत्यस्य। **ससेति**। कार्यित्वेन सजातीयसहायसहितत्वाभावादित्यर्थः। निमित्तत्वेन विजातीयसहाय-सत्त्वेऽपि न क्षतिरिति भावः। लोकन्यायेनाप्येवमेव लभ्यत इत्याह—**लोक इति**। एकपुत्रेति बहुव्रीहि। तस्मिन्नेव, एकस्मिन्पुत्र एव। **न चैवम्**। असहाय एवैतत्प्रवृत्तौ। तत्र, इकारे। नुपेति। अनया परिभाषयेति भावः। तत्प्रवृत्ते., उक्तभाष्यप्रवृत्ते.। एव च पूर्वपक्ष्युक्तत्वेन तदसागत्य न दोषावहमिति भाव.।

नन्वर्थवता व्यपदेशिवद्भाव इति भाष्योक्तेः कैयटोक्तपरिभाषार्थ एव भगवदभिमत इति लभ्यते। सत्येकवाक्यत्वे वाक्यभेदस्यान्याय्यत्वादेव च कथ तत्खण्डनमत आह—**अर्थ-वतेति**। अपिनैकपदसमुच्चयः। तदर्थमेवाऽऽदौ शाब्दार्थमाह—**अर्थेति**। बोध्यबोधक-भावसंबन्धस्य मत्वर्थत्वमित्याह—**बोधकेनेति**। वत्यर्थमाह—**सदृश इति**। भाव-पदस्यार्थः कार्यमिति। तदर्थ, उक्तभाष्यार्थ.। नन्वेवमपि कथमेतदुपलक्ष्य तेनात आह—**प्रायोऽसहाय एवेति**[1]। द्योतकसमभिव्याहारेऽधीत इत्यादौ धात्वादे. ससहायस्यार्थवत्त्वद-र्शनादाह—**प्राय इति**। तथा च तत्र तथात्वेऽप्येतत्प्रवृत्तिविषये सर्वत्र तथा सत्त्वम-स्तीति तेनैतदुपलक्षणं सम्यगेवेति भावः। नन्वेवमपि कुरुत इत्यादावात्मनेपदस्याकारस्य टिसंज्ञा न स्यात्ससहायत्वेनास्या अप्रवृत्तेरत आह—**कुरुत इति**। एवं च विजातीय-सहायसत्त्वेऽपि न सजातीयसहायसत्ताऽऽत्मनेपदसंबन्धिनोऽन्त्यस्याचोऽभावादिति न दोष

---

१ ग. °ति। आगमस्थल अर्थवदागमिनः स°। २ क. ख. ग. °थात्वेऽप्ये°।

व्यवहारे स आदिर्यस्येति व्यवहारे चासहाय एवेति तत्र व्यपदेशिवद्भावेन टिसंज्ञासिद्धिरित्यन्यत्र विस्तरः ॥ ३० ॥

ननु गर्गादिभ्यो विहितो यञ् तदन्तविधिना परमगर्गादिभ्योऽपि स्यादत आह—

**ग्रहणवता प्रातिपदिकेन तदन्तविधिर्नास्ति ॥ ३१ ॥**

इयं च समासप्रत्ययविधौ प्रतिषेध उगिद्वर्णग्रहणवर्जमिति वार्तिकस्थप्रत्ययांशानुवादः । अत एवायं प्रत्ययविधिविषय एव । अत एव 'येन विधिः' ( १ । १ । ७२ ) इति सूत्रभाष्ये प्रत्ययविधिभिन्ने 'अप्तृन्' ( ६।४।११ ) इत्यादौ गृह्यमाणप्रातिपदिकेनापि तदन्तविधिप्रतिपादनं स्वसा परमस्वसेत्याद्युदाहरणं च संगच्छते । अत एव च तदन्तविधिसूत्रे भाष्ये समासेत्यादिनिषेधस्य कथनवदस्य न कथनम् । सोऽपि

---

इति भावः । नन्वचामन्त्य इति व्यवहारः प्रकृतिमादायापि सुलभोऽत आह—**स आदिरिति** । तत्र, तशब्दाकारे । एतेनेदं परिभाषान्तरमित्यप्यपास्तम् । तदाह—**इत्यन्यत्रेति** । उद्योतादावित्यर्थः ॥ ३० ॥

यद्यपि पदाङ्गेत्यस्य येनेतिसूत्रप्रपञ्चत्वात्तत्प्रसङ्गेन तत्र[1] प्राग्दोषस्फूर्तेस्तदग्रे ग्रहणवतेति वाच्यं न व्यपदेशिवदेकेति युक्त तथाऽपि परिभाषाघटके तस्य चेत्यशे श्रुते तदन्यत्र तत्रैव प्राग्दोषोपस्थितिर्न तु मूलभूतत्वेनोपस्थितसूत्र इति सा पूर्वमुक्ता । न चैवमपि तदग्रे तदतिव्याप्तिनिवारकाग्रिमपरिभाषैव वक्तु युक्ता नेयमिति वाच्यम् । तदनन्तरं तत्सूत्रातिव्याप्तिरूपदोषस्यैव प्रागुपस्थितिर्न तदतिव्याप्तिदोषस्येत्येतदुत्तरमेव तदुक्तेः । तदेतदभिप्रेत्याऽऽह—**ननु गर्गेति** । गर्गादीनामधिकृतप्रातिपदिकविशेषणत्वेन येनेत्यस्य प्राप्तेरिति भावः । अपिः केवलसमुच्चायकः । तत्र व्यपदेशिवद्भावो बोध्यः । ग्रहणवता, विशिष्य तत्तद्रूपेणोच्चारणवता । इदं च सौत्रस्य येनेत्यस्य विशेषणम् । एवमग्रेऽपि । इद समासप्रेति च भिन्नं वचनद्वयमिति जीर्णोक्तिश्चिन्त्येति ध्वनयितुमाह—**इयं चेति** । अत एव, तदशानुवादत्वादेव । अयं , ग्रहणेतिनिषेध. । उक्त समूलयति—**अत एवेति** । अस्याः प्रत्ययविधिविषयत्वादेवेत्यर्थः । एवमग्रेऽपि । अपिरगृह्यमाणप्रातिपदिकसमुच्चायकः । उदाहरण च , तत्प्रतिपादन च । अत्र युक्त्यन्तरमाह—**अत एव चेति** । अस्य , ग्रहणवतेतिनिषेधस्य । ननु प्रत्ययविधावितिनिषेधस्यागृह्यमाणप्रातिपादिकतत्सूत्रेऽपि प्रवृत्तेः कथमस्य तदनुवादकत्वमत आह—**सोऽपीति** । प्रत्ययविधावित्यपीत्यर्थ. । अपिरस्य समुच्चायकः ।

---

१ क. °त्र द्राग्दो° ।

निषेधो विशिष्य तत्तद्रूपेण गृहीतप्रातिपदिकसूत्र एव । ध्वनितं चैवम् 'असमासे निष्कादिभ्यः' ( ५ । १ । २० ) इति सूत्रे भाष्ये। अत्र च ज्ञापकं 'सपूर्वाच्च' ( ५ । २ । ८७ ) इति सूत्रम् । अन्यथा 'पूर्वादिनिः' ( ५ । २ । ८६ ) इत्यत्र तदन्तविधिनैव सिद्धे किं तेन ॥ ३१ ॥

नन्वेवं 'सूत्रान्ताट्ठक्' ( ४ । २ । ६० ) 'दशान्ताड्डः' [ ५ । २ । ४५ ] 'एकगोपूर्वात्' [ ५ । २ । ११८ ] इत्यादेः केवलसूत्रशब्द-दशञ्शब्दैकशब्दादिष्वपि प्रवृत्तिर्व्यपदेशिवद्भावात्स्यादत आह—

**व्यपदेशिवद्भावोऽप्रातिपदिकेन ॥ ३२ ॥**

पूर्वात्सपूर्वादिनिरित्येकयोग एव कर्तव्ये पृथग्योगकरणमस्या ज्ञापकम् । न च 'इष्टादिभ्यः' ( ५ । २ । ८८ ) इति सूत्रेऽनुवृत्त्यर्थं तथा पाठोऽत एवानिष्टीत्यादिसिद्धिरिति वाच्यम् । ज्ञापकपरभाष्यप्रामाण्येनानिष्टीत्यादिप्रयोगाणामनिष्टत्वात् । एकयोगेऽपि तावत उत्तरत्रानुवृत्तौ बाधकाभावाच्च । अत एव 'नान्तादसंख्यादेः ( ५ । २ । ४९ ) इति चरितार्थम् । अन्यथा पञ्चम इत्यादावपि व्यपदेशिवद्भावेन संख्यादि-

विशिष्येत्यस्य व्याख्या—तत्तदिति । गृहीतेति । बहुव्रीहिगर्भः कर्मधारयः । क्रतु वैकल्पिकत्वान्न । एवं च समव्यासत्वमुभयोः सिद्धमित्यत इन्नित्यादौ तदन्तविधि सिद्ध इत्युगिद्वर्णेत्यत्र नापूर्वं वर्णग्रहणमिति बोध्यम् । ननु तत्र प्रातिपदिकग्रहणाभावात्कथमेतदत आह—**ध्वनितमिति** । तत्र ह्यसमासग्रहणप्रयोजनोक्त्यवसरे प्राग्वतेष्ठञित्यत्र तदन्तविधौ परमनिष्कशब्दाट्ठञ्सिद्धिरिति फलं ग्रहणवतेति निषेधो न विशिष्य प्रकृत्यनिर्देशादिति सिद्ध एव तदन्तविधिरिति खण्डितम् । यदि च तस्य साधारणत्वं स्यात्तदा तद्विषयत्वसत्त्वेन भाष्यासंगतिः स्पष्टैव । एवं वाक्यार्थमुक्त्वाऽत्र मूलमाह—**अत्र चेति** । अन्यथा, एतदभावे । सिद्धे, कृतपूर्वीत्यादिप्रयोगे सिद्धे ॥ ३१ ॥

**एवम्** । प्रातिपदिकेन[1] तदन्तविधिमात्रनिषेधाङ्गीकारे । तथा च व्यपदेशिवद्भावस्यातिव्याप्तिः । आदिना गोशब्दपरिग्रहः । अर्थस्य स्पष्टत्वाज्ज्ञापकमाह—**पूर्वादिति** । भाष्योक्तं दोषं खण्डयति—**न चेति** । तथा पाठः, पृथक्सूत्रपाठः । अत एव, इष्टादिभ्यश्चेत्यत्र सपूर्वादित्यस्यानुवृत्तेरेव । **ज्ञापकपरेति** । येन विधिरितिसूत्रस्थोक्तसमानाकारतथाभाष्येत्यर्थः । इदं चैकयोगनिर्दिष्टाना सह[2] वेतिन्यायावलम्बेनोक्तम् । एकदेशोऽपीतिन्यायावलम्बेन तेषामिष्टत्वेऽप्याह—**एकेति** । इदं च प्राक्प्रतिपादितम्[3] । प्राचामनुरोधेनात्र ज्ञापकान्तरं सूचयन्नुक्तार्थं द्रढयति—**अत एवेति** । प्रातिपदिकेन तन्निषेधादेवेत्यर्थः । **इतीति** । इतिसूत्रमित्यर्थः । अन्यथा, एतन्निषेधाभावे । प्राचीनोक्त्यसंगतिं

1 ख. °दिकत्वेन । 2 घ. सहैव° । 3 ग. °दिकग्रहणेन ।

त्वात्तद्वैयर्थ्यं स्पष्टमेव । इयं च प्रातिपदिकग्रहण एव न तु प्रातिपदिकाप्रातिपदिकग्रहणे । तेन ‘उगितश्च’ (४ । १ । ६) इत्यत्र न दोष इति तत्रैव भाष्ये स्पष्टम् । इयं ‘ग्रहणवता’ (प० ३१) इति च परिभाषा प्रत्ययविधिविषयैवेति ‘असमासे निष्कादिभ्यः’ (५।१।२०)

---

ध्वनयितुं विशेषविवक्षयाऽतिप्रसङ्गवारणद्वारा सिद्धान्तमाह—**इयं च प्रातीति** । ग्रहणवतेत्यनुवृत्त्या यथाकथञ्चिद्ग्रहणवता प्रातिपदिकेन व्यपदेशिवद्भावो नेत्यर्थाङ्गीकारादिति भावः, (* न तु पूर्ववत् । ) तदर्थमपि तथा क्रमादर इत्यपि बोध्यम् । **उगितश्चेति** । उगित्त्वस्य प्रत्ययादिसाधारणत्वात्प्रातिपदिकादित्यस्यानुवृत्तावपि सूत्रे तस्य स्वरूपेणानुच्चारणाच्चेति भावः । तत्रैव, उगितश्चेत्यत्रैव । तत्र ह्युगितः प्रातिपदिकादुगिदन्ताद्वेत्यर्थद्वयमुक्त्वा द्वितीयपक्षस्य व्यपदेशिवद्भावेन समर्थनावसर एतत्परिभाषाप्रवृत्तिवारणाय कण्ठतस्तथोक्तम् । पूर्ववदेव सिद्धान्तान्तरमाह—**इयं ग्रहेति** । **परिभाषेति**[1] । प्रत्येकान्वयाभिप्रायमेकवचनम् । एवमग्रेऽपि । **असमास इति** । तत्र ह्यसमासग्रहणप्रयोजनोक्त्यवसर आर्हाद्गोपुच्छेत्यत्र तदन्तविधौ पारमगोपुच्छिकमित्यत्र ठक्प्रतिषेधाट्ठञ्फलमिति खण्डनाय विधौ प्रतिषेधः, प्रतिषेधश्चायमित्युक्तम् । तेन चानयोर्द्वयोस्तद्विषयता स्पष्टमेव ध्वनिता । अन्यथा तदन्तविधिदौर्लभ्येन केवलेऽसाधनेन च तदसंगति स्पष्टैव । एवं चात एव नान्तादित्यादिप्राचोक्तिरसङ्गतैव । अत्र तदनुवादस्त्वेतत्सिद्धान्ताभावे यथाश्रुतार्थाभिप्रायकस्तदसंगतिध्वननफलक उक्तार्थस्य सर्वाभिमतत्वध्वननफलकश्च । अत एव शब्दरत्ने तदवतरणमध्य उक्तम् । एवं च स्पष्टमेवेत्यग्र इति केचिदिति शेषो बोध्य इति तत्त्वम् । यत्तु प्रत्ययविधीत्यस्य प्रत्ययकर्मकविधीत्यर्थवत्प्रत्ययसंबन्धिभावरूपविधीत्यप्यर्थः । अत एव विधौ प्रतिषेधः प्रतिषेधश्चायमित्येवोक्तं भाष्ये न तु प्रत्ययेत्यपीति[2] । अत एव च येन विधिरित्यत्र ज्ञापकस्य सजातीयापेक्षत्वात्सूत्रोपात्तान्ताद्यादिशब्दविषयत्वमेवास्य कैयटेनोक्तम् । अत एव पूर्वादिनिरित्येव तदन्तविधिना सिद्धे सपूर्वाच्चेत्यस्य ग्रहणवतेतिपरिभाषाज्ञापकत्वं[3] कैयटोक्तं संगतमिति तन्न । एवमप्युगित इत्यतो नान्तादित्यत्रावैलक्षण्येनोक्तसिद्धान्तेन तदर्थमवश्याश्रयणीयेन तत्रैतत्प्रवृत्तेर्दुर्वचत्वात् । अत एव स कैयटोऽत्र[4] संमतित्वेन[5] नालेखि[6] । नान्तादित्यादौ त्वसंख्यादेरितिविशेषणसामर्थ्यात्सूत्रवैयर्थ्याद्वा व्यपदेशिवद्भावाप्रवृत्तिरिति बोध्यम् । ननु समासप्रत्ययविधावित्यस्य विशेषणविशेष्यभावव्यत्यासमात्रतात्पर्यग्राहकतया नान्तादित्यादाविवात्रापि तदन्तविधिसंभवेनान्तग्रहणसामर्थ्यादेव केवलेऽप्रवृत्ताविदं व्यर्थम् ।

---

* वनुश्चिह्नान्तर्गतो ग्रन्थो घ पुस्तकस्थ ।

---

१ ग °ति । जातावेक° । २ घ. ङ. °त्यपि । अ° । ३ ङ °त्व च कै° । ४ घ. °टोऽस° । ५ ङ. °मतत्वेनाऽऽले° । ६ ङ. °ले खितः । ना° । ७ घ. °याऽदि° ।

इति सूत्रे भाष्यकैयटयोः । तेन 'अहन्' (८।२।६८) इत्यादेः परमाहन्शब्दे केवलाहन्शब्दे च प्रवृत्तिरित्यन्यत्र विस्तरः ॥ ३२ ॥

ननु 'वान्तो यि' (६।१।७९) इत्यादौ यादौ प्रत्यय इत्यर्थः कथमत आह—

**यस्मिन्विधिस्तदादावल्ग्रहणे ॥ ३३ ॥**

तदन्तविधेरपवाद इयम् । वाचनिक्येषा 'येन विधिः' (१।१।७२) इत्यत्र भाष्ये पठिता । अस्याश्च स्वरूपसती सप्तमी निमित्तम् । अत एव 'नेड्वशि कृति' (७।२।८) इत्यादौ वशादेः कृत इत्यर्थलाभः । इयं च 'आर्धधातुकस्येट्' (७।२।३५) इति सूत्रे वलादेरित्यादिग्रहणसामर्थ्याद्विशेषणविशेष्ययोरुभयोः सप्तम्यन्तत्व एव प्रवर्तते । तेन 'डः सि धुट्' (८।३।२९) इत्यादौ सादेः पदस्येति

---

एतेन ग्रहणवतेतिनिषेधात्तदन्तविधिर्दुर्लभ इत्यपास्तम् । किं च परमदित्यादिभ्य[1] इवानभिधानेन केवलेऽप्रवृत्तेर्व्यर्थमेवेदमिति चेन्न । विशेषणविशेष्यभावव्यत्यासतात्पर्यग्राहकतया समासेत्यादिप्रतिषेधवचनवदस्याप्यावश्यकत्वात् । सूत्रवार्तिकभाष्यारूढतात्पर्यग्राहकाभावेऽपि तदन्तविधिकल्पनेऽतिप्रसङ्गापत्तेः । अत एवोगिद्वर्णग्रहणवर्जमित्यादेश्चारितार्थ्यम्[2] । अनभिधानेनात्र प्रत्याख्यानं तु न चमत्कारमावहतीति दिक् । तदाह—**इत्यन्यत्रेति** । उद्योतादावित्यर्थः ॥ ३२ ॥

एवं सप्रपञ्चं तदन्तविधिं प्रतिपाद्य तत्प्रसङ्गात्तदपवादमवतारयति—**नन्विति** । **कथमिति** । तदन्तविधेः प्रसङ्गादिति भावः । अत एवाऽऽह—**तदन्तेति** । **पठितेति** । कात्यायनेनेति शेषः । अल्ग्रहण इत्यस्याले ग्रहण उच्चारण इति नार्थः । प्रत्याहारग्रहणे दोषापत्तेः । किं त्वल. प्रतिपादकशब्द इत्यर्थः । अत एवेकोऽचीति सूत्रे भाष्येऽचि किं व्यञ्जने मा भूदित्यत्र व्यञ्जनादाविति भगवता व्याख्यातम् । यद्यपि परिभाषायामत्र यस्मिन्नितीतिं विना तस्मिन्नितिसूत्रस्थतस्मिन्नितिवन्निर्वाहस्तथाऽपि विशेषमाह[3]—**अस्याश्चेति** । **स्वरूपेति** । न तु स्वार्थविशिष्टेति भाव. । तत्र मानमाह—**अत एवेति** । स्वरूपसत्सप्तम्या एतन्निमित्तत्वादेवेत्यर्थः । अन्यथा तस्याः षष्ठ्यर्थत्वान्न स्यादिति भावः । विशेषान्तरमाह—**इयं चेति** । नन्वेव तीषसहेत्यादावेतदप्रवृत्त्यापत्तिर्विशेष्यस्याऽऽर्धधातुक-

---

[1] ग. °दित्यादिभ्य । [2] क. ङ. °देरचति । [3] क, °षणमा° । [4] क. °तस्मिन्नि° ।

नार्थः । 'तीषसह' (७ । २ । ४८) 'सेऽसिचि' (७ । २ । ५१) इत्यादौ यथा तादेरित्याद्यर्थलाभस्तथा शब्देन्दुशेखरे निरूपितम् ॥३३॥

घटपटं घटपटावित्यादिसिद्धय आह—

**सर्वो द्वन्द्वो विभाषयैकवद्भवति ॥ ३४ ॥**

'द्वन्द्वश्च प्राणि' (२ । ४ । २) इत्यादिप्रकरणाविषयः सर्वो द्वन्द्व इत्यर्थः । 'चार्थे द्वन्द्वः' (२ । २ । २९) इति सूत्रेण समाहारेतरेतरयोगयोरविशेषेण द्वन्द्वविधानाद्न्यायसिद्धेयम् । 'तिष्यपुनर्वस्वोः' (१ । २ । ६३) इतिसूत्रस्थं बहुवचनस्येति ग्रहणमस्या ज्ञापकम् । तद्धीदं तिष्यपुनर्वस्वित्यत्र तद्व्यावृत्त्यर्थम् । न चैवमप्यत्र 'जातिरप्राणिनाम्'

---

स्यातत्त्वादत आह—**तीषेति** । **शब्देन्दुशेखर इति** । वलादेरित्यनुवृत्तविशेषणीभूतवलपदार्थस्य सौत्रत्वात्तत्कारेण विशेषणात्तकाररूपवलादेरिति वाच्योऽर्थ. । एतत्फलितार्थ. सः । सप्तमी तु प्रथमार्थ एव । एव सेऽसिचीत्यादावपीति हि तत्रोक्तम् । वस्तुतस्तु तकाराव्यवहितपरकेच्छत्यादे परवलाद्यार्धधातुकस्येडितिसूत्रार्थान्न काऽपि कल्पनेति बोध्यम् । इदमेव ध्वनयितु तत्रालमित्युक्तम् । एव हुझल्भ्यो हेर्धिरित्यत्र हलीत्यनुवृत्त्या हलादेर्हेरिति व्याख्यानपक्षे हल्ग्रहणानुवृत्तिसामर्थ्याद्धिस्तदन्तत्वासभवात्तल्लाभ इति बोध्यम् ॥ ३३ ॥

प्रागुक्तातिदेशप्रसङ्गादेवाग्रिमेति ध्वनयन्नाह—**घटेति** । नन्वत्र जातिरप्रेतिनित्यैकवद्भावेन नोभयामिति चेन्न । जातिप्राधान्ये तस्यैव सत्त्वेऽपि व्यक्तिप्राधान्य उभयमित्यस्य स्वीकारात् । अनुपदमेवैतद्व्यक्ती भविष्यति । **इत्यादीति** । इत्युभयादीत्यर्थ । आदिना बाभ्रवशालङ्कायन बाभ्रवशालङ्कायनावित्यादिपरिग्रह । **सर्वो द्वन्द्व इति** । ननु सर्वपदोक्त्या द्वन्द्वश्च प्राणीत्यादिप्रकरणविषयस्यापि वैकल्पिकत्वापात्तिरत आह—**द्वन्द्वश्चेति** । अन्यथा तत्प्रकरणवैयर्थ्यं स्पष्टमेव । तदविषयता च तदप्राप्त्या । सा च तन्निमित्ताभावेन पर्युदासेन जातिप्राधान्य एवेत्यादिना चानेकधा । अत एव सर्वत्वोक्तिः । तथा च सर्वत्वं चार्थे द्वन्द्व इत्येतल्लक्ष्यनिष्ठ न तु लक्षणनिष्ठम । अस्या न्यायसिद्धार्थबोधकत्वेन सर्वशब्दस्येदृशासकृचद्वृत्तिताया एव युक्तत्वाच्चेति भाव । इदमेव ध्वनयन्नत्र मूलमाह—**चार्थ इति** । अविशेषेण, तत्प्रकरणाविषयलक्ष्यविशेषानादरेण । न्यायसिद्धेऽर्थे लिङ्गमप्याह—**तिष्येति** । ज्ञापक, ज्ञापकमपि । क्वचित्तथैव पाठ । तदुपपादयति—**तद्धीति** । बहुवचनस्येतिपदं हीत्यर्थ. । तिष्येति समाहारद्वन्द्व । क्लीबता स्फुटयितुमिदशब्द । तस्य चोदितामित्यर्थ । **तदिति** । द्विवचनेत्यर्थ । अन्यथा पुनर्वस्वोर्द्वित्वात्सामान्यसूत्रेणेतरेतरद्वन्द्वे सदा बहुवचनस्यैव सत्त्वेनोक्तप्रयोगस्यैवाभावात्तदानर्थक्य स्पष्टमेवेति भाव । सर्वशब्द सफलयन्नुक्तमेव प्रतिपादयितुं शङ्कते—**न चैवमिति** । तेन चार्थे द्वन्द्व इत्यस्य वैकल्पिकत्वबोधनेऽपी-

---

१ ग. इत्याद्युभयेत्य° ।

( २ । ४ । ६ । ) इति नित्यैकवद्भावेन बहुवचनाभाव इदं सूत्रं व्यर्थमिति वाच्यम् । तद्वैकल्पिकत्वस्याप्यनेन ज्ञापनात् । न चैते प्राणिन इति वाच्यम् । आपोमयः प्राण इति श्रुतेरद्भिर्विना ग्लायमानप्राणानामेव प्राणित्वात् । स्पष्टं चेदं ‘ तिष्यपुनर्वस्वाः ’ ( १ । २ । ६३ ) इति सूत्रे भाष्ये । अत एव ‘ द्वन्द्वश्च प्राणि ’ ( २ । ४ । २ ) इत्यादेः प्राण्यङ्गादीनामेव समाहार इति विपरीतनियमो न ॥ ३४ ॥

## सर्वे विधयश्छन्दसि विकल्प्यन्ते ॥ ३५ ॥

‘ व्यत्ययो बहुलम् ’ ( ३ । १ । ८५ ) इति सूत्रे भाष्ये बहुलमिति योगविभागेन ‘ षष्ठीयुक्तश्छन्दसि ’ ( १ । ४ । ९ ) इति सूत्रे वेति योगविभागेन चैषा साधिता । तेन प्रतीपमन्य ऊर्मिर्युध्यतीत्यादि सिद्धम् । युध्यत इति प्राप्नोति ॥ ३५ ॥

---

व्यर्थ.। अत्र, तिष्येतिलक्ष्ये। एते चाप्राणिनः। अप्राणिजातिवाचिना समाहार एवेति नियमाङ्गीकारात् । एवं च बहुवचनग्रहणस्य सार्थक्येऽपि सूत्रमेव व्यर्थं भवतीति भावः । अत एवाऽऽह—**इदमिति** । तिष्यपुनरितीत्यर्थ. । **तद्वैकेति** । जातिरप्राणिनामिति वैकेत्यर्थ. । अत्र लक्ष्य इति शेष. । यावता विनाऽनुपपत्तिस्तावन्मात्रस्य ज्ञाप्यत्वात् । तेन जातीत्यस्य न वैयर्थ्यम् । यद्वा जातिप्राधान्य एव स नियमो व्यक्तिप्राधान्ये तूभयमित्येवं फलितवैकेत्यर्थ. । एव च न त्रयाणा मध्ये कस्यापि वैयर्थ्यम् । अपिना चार्थ इत्यस्य तेन तत्त्वस्य सग्रहः । अनेन[1], तिष्येतिसूत्रेण । चैते, तिष्यादय· । तथा च तयोः सार्थक्येऽपि तदविषयत्वान्नात्र तद्वैकल्पिकत्वज्ञापनमिति भावः । **आपोमय इति** । अत्राप्शब्दसमानार्थादप्[2]प्रकृतिकासुन्नन्तादाप शब्दान्मयट् । आपोमयमिद सर्वमापोमूर्तिः शरीरिणामितिवत् । छान्दस वेति भाव. । **ग्लायमानेति** । बहुव्रीहि । **स्पष्टमिति** । प्रागुक्तं परिभाषादिसर्वमित्यर्थः । तत्कृत्यावसर इति भावः । नन्वेतेषा प्राणित्वपक्षे तद्वैकल्पिक[3]त्वज्ञापनेऽपि द्वन्द्वश्चेत्यादीना समाहारः प्राण्यङ्गादीनामेवेति नियमार्थत्वेनेदं तिष्यपुनर्वस्विति प्रयोगाभावाद्बहुवचनस्येति व्यर्थमेवात आह—**अत एवेति** । बहुवचनग्रहणादेवेत्यर्थः । अन्यथोक्तरीत्या तदानर्थक्यं स्पष्टमेवेति भावः ॥ ३४ ॥

विभाषाप्रसङ्गादेवाऽऽह—**सर्व इति** । न केवलं समाहारद्वन्द्व एवेति भावः । विकल्प्यन्त[4] इति पाठः । अत्र मानमाह—**व्यत्येति** । एकसूत्रेण विकरणव्यत्ययविधानादाह—**योगेति** । ततोऽपि लाघवादाह—**षष्ठीति** । एव च व्यत्ययो बहुलमित्यपि न वक्तव्यमिति भावः ॥ ३५ ॥

---

१ ग. °न बहुवचनस्यैत्सनेन । चै° । २ ङ. °दाप्त्वप्र° । ३ घ. °क·त्वा° । ४ घ. ङ. °कल्पन्त ।

ननु 'क्षियः' (६।४।५९) (८।२।४६) इत्यादावियङ्कथमत आह—

**प्रकृतिवदनुकरणं भवति ॥ ३६ ॥**

क्षिय इतीयङ्निर्देशोऽस्या ज्ञापकः। तत्रैव प्रातिपदिकत्वनिबन्धनविभक्तिकरणादनित्या चेयमिति 'क्षियो दीर्घात्' (८।२।४६) इति सूत्रे भाष्ये स्पष्टम् ॥ ३६ ॥

ननु रामावित्यादौ वृद्धौ कृतायां कार्यकालपक्षेऽपि कथं पदत्वं यस्माद्विहितस्तदादितदन्तत्वाभावादुभयत आश्रयणेऽन्तादिवत्त्वाभावादत आह—

**एकदेशविकृतमनन्यवत् ॥ ३७ ॥**

अनन्यवदित्यस्यान्यवन्नेत्यर्थः। तत्रान्यसादृश्यनिषेधेऽन्यत्वाभावः सुतराम्। अत एव तादृशादर्थबोधः। अन्यथा शक्ततावच्छेदकानुपूर्व्य-

---

प्रागुक्तातिदेशप्रसङ्गादेव तथेति सूचयन्नाह—**ननु क्षिय इति**। सौत्रप्रयोग इति भावः। **कथमिति**। अनुकरणतया शब्दपरत्वेनाधातुत्वादिति भावः। **निर्देश इति**। स सौत्रनिर्देश एवेत्यर्थः। नन्वेवं तत्र विभक्तिरेवाऽऽदौ न स्यादिति तदनुपपत्तिरेवात आह—**तत्रैवेति**। क्षिय इति सौत्रप्रयोग एवेत्यर्थः ॥ ३६ ॥

अतिदेशप्रसङ्गादेव तथेत्याह—**नन्विति**। अफलत्वात्पूर्वं न पदत्वमित्याह—**वृद्धाविति**। स्वादिष्वितिपदादिसञ्ज्ञासु यथोद्देशस्यैव सत्त्वेऽपि सुप्तिङन्तमिति पदत्वे कार्यकालत्वस्यैकाचो द्वे अन्तादिवच्चेतिसूत्रभाष्यादौ स्पष्टत्वादाह—**कार्यकालपक्षेऽपीति**। अपिना यथोद्देशसमुच्चयः। निरपिपाठे तुमूलक्षणमिदं तस्यापि। तदनुक्तिबीजं तु कैयटरीत्या तत्पक्षस्याप्रयोजकत्वम्। फलं तु रामौ पश्येत्यादौ निघातादीति बोध्यम्। ननु तथाऽपि सुबन्तत्वेन तत्त्वमत आह—**यस्मादिति**। अतिप्रसङ्गनिरासाय तदादिनियमाशाप्रवृत्तेरिति भावः। नन्वन्तादिवद्भावेनोभयं सुवचमत आह—**उभयत इति**। प्रकारान्तरमप्यन्यत्र स्पष्टम्। **विकृतमिति**। भावे क्तः। बहुव्रीहिः। सामान्ये नपुंसकम्। आहिताग्न्यादिः। कर्मक्तान्तेन तृतीयासमासः पूर्वनिपातभिया कैयटादिनोक्तः। नन्वनन्यवदित्यस्यान्यभिन्नवदित्यर्थेऽसंभवो वैयर्थ्यं चास्या अत आह—**अनन्येति**। नन्वेवमन्यसादृश्यनिषेधेऽप्यन्यत्वसत्त्वादन्त्यदोषस्तदवस्थ एवात आह—**तत्रेति**। एकदेशविकृत इत्यर्थः। अन्यत्वाभावः, अन्यत्वनिषेधः। केचित्तु वृत्तिविषयेऽत्रान्यशब्दस्य धर्मपरत्वेन मतुपा

---

१ घ. कालेति। फ°। २ क. ङ. मू। अत्र हेतुः–य°। ३ क. ङ. °ति। अनुवृत्तेरिदं लक्ष्यमिति भा°। ४ घ. °ति। कर्मणि क्तः। ५ घ. °दिः। द्व°।

**ज्ञानात्ततो बोधो न स्यात् । एवं च राम् इति मान्तस्य यस्माद्विहित-स्तत्त्वम् औ इत्यस्य परादिवत्त्वेन सुप्त्वमिति तदादितदन्तत्वमार्थसमाज-ग्रस्तम् । छिन्नपुच्छे शुनि श्वत्वव्यवहारवन्मान्ते तत्त्वं लोकन्यायसि-द्धम् । अत एव 'प्राग्दीव्यतः' (४ । १ । ८३) इति सूत्रे भाष्ये दीव्यतिशब्दैकदेशदीव्यच्छब्दानुकरणमिदमित्युक्त्वा किमर्थं विकृतनि-र्देश एतदेव ज्ञापयत्याचार्यो भवत्येषा परिभाषैकदेशविकृतमनन्यवदि-त्युक्तम् । एतेनायं न्यायः शास्त्रीयकार्य एव शास्त्रीयविकार एवेत्यपा-स्तम् । विकृतावयवनिबन्धनकार्ये तु नायम् । छिन्नपुच्छे शुनि पुच्छवत्त्व-व्यवहारवद्विकृतावयवव्यवहारस्य दुरुपपादत्वात् । एवमक्तपरिमाणग्र-**

चान्यत्वस्यैव निषेधोऽनयेत्याहुः । अत एव, फलितान्यत्वाभावादेव । तादृशात्, विकृतात् । अन्यथा, अन्यत्वे । **बोधो नेति** । इद च मञ्जूषाया स्पष्टम् । एव च, सुतरामन्यत्वा-भावे च । नन्वेवमपि तदन्तत्वं कथमत आह—**तदन्तेति** । अत्र मूलमाह—**छिन्नेति** । तत्त्वं, यस्माद्विहितस्तत्त्व व्यवहाररूपम्[1] । **लोकन्यायसिद्धमिति** । भूयोवयवदर्शनं जातिव्यञ्जकमितिमूलकोक्तरूपलोकन्यायेत्यर्थः[2] । एतादृशाश्रयण प्रमाणयति—**अत एवेति** । लोकन्यायसिद्धैतदङ्गीकारादेवेत्यर्थः । **विकृतेति** । इकारा[3]भावरूपविकारविशिष्टनिर्देश इत्यर्थः । **एतदेवेति** । लोकन्यायसिद्धार्थाश्रयणमेवेत्यर्थः । ज्ञापयति, बोधयति । परिभाषात्वेनात्राऽऽश्रयण सूचितम् । एतेनाय न्यायोऽपि स्थानषष्ठीनिर्दिष्ट एवेत्यपास्तम् । **भवत्येषेति** । एव चैकदेशविकृतोऽप्यर्थबोधकः । अन्यथा न्यायेन शब्दस्वरूपाभेदप्रति-पादनेऽप्युक्तरीत्याऽर्थाबोधकत्वेनार्थस्यावधित्व न स्यादिति तात्पर्यम् । **एतेनेति** । लोकन्यायसिद्धस्य प्राग्दीव्यत इत्यनेन ज्ञापितत्वेनेत्यर्थः । तत्रोभयोरभावादिति भावः । नन्वेवं विकृतावयवप्रयुक्तमपि कार्यं स्यादत आह—**विकृतेति** । व्यवहारवदिति पाठः । **दुरुपपेति** । जातिव्यञ्जकभूयोवयवदर्शनस्यैतदव्यञ्जकत्वादिति भावः । व्यवहाराभावव-दिति पाठे तूक्तहेतोर्यथा तत्र तद्व्यवहाराभावस्तथाऽत्र तद्व्यवहारो दुरुपपाद इत्यर्थः । एवम्, तत्रैव । **अक्तेति** । अत्र परिमाणमानुपूर्वीविशेषोऽपि [ * तथा च परिच्छिन्नानुपूर्वी-विशेषकसञ्ज्ञिभूतशब्दग्रहणेऽपीत्यर्थः । भाष्ये ] परिमाणेत्युपलक्षणं च परिच्छेदकमात्रस्य । तथा च परिच्छिन्नपरिच्छेदककार्यग्रहण[4] इत्यर्थः । अत एव द्रोणादिवत्सङ्ख्याया अपि

* धनुश्चिह्नान्तर्गतो ग्रन्थो घ. पुस्तकस्थः ।

१ क. °तत्त्व तत्त्व । २ घ. °र्थः । अस्या अत्र ऽऽश्र° । ३ घ. °कारत्यागेनाभावरूपविशि° । ४ घ. °र्थग्रामीति तत्त्वार्थः ।

हणेऽपि नायम्, उक्तयुक्तेः । एतत् ‘ येन विधिः ’ ( १ । १ । ७२ ) इत्यत्र भाष्यकैयटयोर्ध्वनितम् ।

यत्र त्वर्धं तदधिकं वा विकृतं तत्र जातिव्यञ्जकभूयोवयवदर्शनाभावेन तत्त्वाप्रतीतौ कार्यसिद्ध्यर्थं विकृतानल्परूपावयवत्वप्रतीत्यर्थं च स्थानिवत्सूत्रम् । क्वचित्तु लक्ष्यानुरोधान्न्यायानाश्रयणम् । तेनामीयादित्यादिसिद्धिः । स्पष्टं च क्वचिन्न्यायाप्रवृत्तिः ‘प्रथमयोः पूर्वसवर्णः’

---

भाष्ये दृष्टान्तत्वेनोल्लेखः । **उक्तेति** । उक्तरीतेरित्यर्थः । जातिव्यञ्जकभूयोवयवदर्शनस्य सर्वकादौ सत्त्वेऽपि सर्वाद्यानुपूर्वीविशेषोपादानेन क्रियमाणसर्वनामसञ्ज्ञायास्तत्र तत्त्वेन[1]दन्तत्वयोरभावेन दुरुपपादत्वादिति यावत् । अत्र मानमाह—**एतदिति** । अव्यवहितोक्तमित्यर्थः । **भाष्येति** । इदमुपलक्षणं यस्मात्प्रत्ययविधिरित्यत्रत्यभाष्यादेरपि । तत्र हि पञ्चद्रोणादिदृष्टान्तेनोक्तस्थले तदभावमाशङ्क्य तदेकदेशभूत तद्ग्रहणेन गृह्यत इति परिभाषयाऽक्तोरिति ज्ञापितया समाहितम्[2] । ( * तत्र भूतशब्द उपमार्थः । एकदेशसादृश्यं च मध्यपातित्वेन । तद्वक्ष्यति तन्मध्येति । यदागमा इति त्वमध्यपातिविषय इति भेदः । यद्यक्तपरिमाणग्रहणेऽप्येकदेशविकृतन्यायप्रवृत्तिस्तर्हि तत्र मूलयुक्तिसाम्येन विनिगमनाविरहेण च न्यूनसमाधिकरूपत्रिविधविकारस्यापि ग्रहणेन शास्त्रे लोपस्याविकारत्वेऽपि प्राग्दीव्यत इति भाष्यप्रामाण्यादभावस्य विकारत्वेन ग्रहणवदधिकस्यापि तत्त्वेन ग्रहणादधिक ) गड्वादिसत्त्वेऽपि शुनः श्वत्ववदे[3]कजाधिकस्य सर्वकस्य सर्वशब्दत्वमक्षतमेवेति भाष्यासगतिरेवातस्तथाऽर्थ इति तदाकृतमिति भावः ।

नन्वेवमन्यत्र सर्वत्र न्यायप्रवृत्तौ तेनैव सिद्धे स्थानिवत्सूत्रं व्यर्थमत आह—**यत्र त्विति** । अर्धम्, एरुरित्यादिना । तदधिक, ज्वरत्वरेत्यादिना स्त्रिव्यादौ । **तत्रेति** । उभयत्रेत्यर्थः । अस्य सिध्यर्थमित्यादावन्वयः । फलान्तरमाह—**विकृतेति** । इदमुभयमनेनासिद्धमिति द्युक्तमिति भावः । नन्वेवमप्यनयाऽभीयादित्यादौ भान्त उपसर्गत्वेन परादित्वेनेण्त्वेन ह्रस्वापत्तिदोषोऽत आह—**क्वचित्त्विति** । [ + अक्तपरिमाणस्थलेऽधिकविषय एवैतदप्रवृत्तिर्न न्यूनविषय इत्यभिमानः ] । **न्यायेति** । एतन्न्यायेत्यर्थः । उक्त द्रढयितु सामान्यरूपेण दृष्टान्तमाह—**स्पष्टं चेति** । **न्यायेति** । न्यायत्वावच्छिन्नन्यायेत्यर्थः । तत्र हि जस्शसोः पररू[4]पबाधाय प्रथमयोरिति योगविभागेऽप्यतिप्रसङ्गपरिहारायाऽऽश्रितमध्येपवादन्यायव्याख्यावसरे न्यायश्चाय न तु वचन यद्वक्ष्यति यद्येतदस्तीति न

---

* धनुश्चिह्नान्तर्गतो ग्रन्थो घ. पुस्तकस्थः । + धनुश्चिह्नान्तर्गतो ग्रन्थो घ. पुस्तकस्थ ।

---

१ घ. °त्वव्यवहारयोर्दुरुपपादत्वेन दुर्वचत्वादिति या° । २ क. ङ. °म् । यदि तत्रैतत्प्रवृत्तिस्तर्ह्यधिकगड्वा° । ३ घ. °दर्केऽधिकस्योपजनेऽपि स° । ४ घ. °रूपाबा° ।

**( ६ । १ । १०२ ) इत्यत्र कैयटेन दर्शितेत्यन्यत्र विस्तरः ॥ ३७ ॥**

---

हि वचनस्यासत्तासभावना न्यायस्तु क्वचित्[1]कश्चिदाश्रीयत इति युज्यते वक्तुमिति तेनोक्तम्[2]। वस्तुतोऽभीयादित्यादेरनभिधानमेव। अभिधानेऽपि यथा तत्र तदप्राप्तिस्तथाऽन्यत्र स्पष्टम्। एव च क्वचि[3]दिति न सिद्धान्तोक्तिः किं तु कैयटानुरोधेन। अत एव तद्दृष्टान्तकथनं सफलम्। (*एवमक्तेत्यादिनोक्त चाविकवत्तुल्यन्यायान्न्यूनविषयेऽप्येतदप्रवृत्तिलाभात्)। आयसशब्दाढणन्ताद्द्विवचने आयसावित्यत्र वृद्धौ सान्तस्योगित्वेनानेन न्यायेनाङ्गतया परस्य परादित्वेन सर्वनामस्थानतया च प्राप्तस्य नुम पूर्वसम्बन्धित्वेनाच· परेतिस्थानिवत्त्वेन तत्रैव + भाष्ये वारणाद्भाष्यसमताऽपीयम्। एतदभावे त्वङ्गत्वमेव दुर्लभमित्यादि शब्देन्दुशेखरे स्पष्टमिति बोध्यम्। तदाह—**अन्यत्रेति** ॥ ३७ ॥

---

* धनश्चिह्नान्तर्गतोग्रन्थो घ पुस्तकस्थ । + भाष्ये इत्यस्याग्रे परिभाषासमाप्तिपर्यन्त-मय ग्रन्थो घ पुस्तके—वारण कृतमियय न्याय आवश्यक । एतदभावेऽङ्गत्वनेत्र तत्र दुर्लभमिति तदसगाते । गुडोदकनिर्जरसावित्याद्यर्थ चाऽऽवश्यक इत्याहु । वस्तुतस्त्वस्य न्यायस्य लक्ष्यासिद्ध्यर्थमावश्यकत्वेऽप्युक्तभाष्यप्रामाण्यादक्तपरिमाणग्रहणे नैव प्रवृत्ति तद्विषये मध्यवातत्व इष्टसिद्ध्यर्थ तन्मध्यपतित इति ज्ञापकसिद्धपरिभाषास्वीकार । अमध्यवर्तित्वे तत्सिद्ध्यर्थ लोकज्ञापकसिद्धाया यदागमा इतिपरिभाषाया स्वीकार । द्रोणादीना न्यूनाधिक-योरप्रवृत्तिमुक्त्वा प्रकृते दार्ष्टान्तिक उभयसूत्रेऽधिके कथमित्येवाऽऽशङ्क्य शब्दान्तरेणाऽऽ-धोक्ता । न तु न्यूने कथमिति शङ्काऽपि । द्वितीया तु तादृशाधिकविषयैव न न्यूनविषयेति स्पष्टमेव दाधा धिवति सूत्रभाष्ये । सर्वाद्युपादानवद्दावेत्युपादानात् । घुसज्ञाया अक्तपरिमाणनिष्ठत्वात्। एवं चास्य न्यायस्योभयविधाविकाभिन्नयावद्विषयत्वं समन्यूनसाधारण तत सिद्धम् । किंचाविकस्य विकारत्वमपि न शास्त्रसिद्धलोपवत्। एव च तत्रैतदविषयता युक्तैव । तथा समन्यूनविकार· शास्त्रीयभावरूप एव। तथाऽपीह विकारो द्विविध । लौकिक. शास्त्रीयश्च। प्राग्दीव्यत इतिसूत्र-स्थभाष्यप्रामाण्यात्। शास्त्रीयोऽपि द्विविध । लोपादिकृतोऽभावरूप आदेशरूपश्च । द्वितीयोऽपि द्विविध । एकस्थानिक पूर्वापरस्थानिकश्च। अय द्विविधोऽपि विद्यमानैकदेशापगमाविद्यमानैकदेशो-पगमरूपत्वेनावान्तरभावाभावरूपतया प्रत्येक द्विविध । तत्र भावरूपसर्वान्त्यभिन्नसर्वविधविकारेऽ· ऽस्य प्रवृत्तिर्नान्त्यविकारे। तत्र यदनन्यत्व यत्राऽऽनेय तदेकदेशमात्रविकारात् । जातिव्यञ्जक-भूयोवयवदर्शनमितिमूलकाच्छिन्नपुच्छदृष्टान्तेन तत्रैवैतत्प्रवृत्तिलाभात् । अन्तादिवच्चेतिसूत्रस्थभा-ष्याच्च। तत्र हि गुडोदकमित्यादावुकारादिरूपतदेकदेशम त्रविकारमादायैतत्प्रवृत्त्योदकत्वमाभिप्रेत्यो-कारान्ते पूर्वपदत्वमन्तवत्त्वेनेत्युक्तम्। तथा सौमेन्द्रेऽन्तरङ्गत्वाद्गुणेऽव्यपवर्गेण नेन्द्रस्येति व्यर्थ सत्पू-र्वोत्तरपदेतिपरिभाषाज्ञापकमित्युक्तम्। अन्यथा मान्तेऽभावमादायानेन पूर्वपदत्ववदेव द्वन्द्वेऽभाव-मादायोत्तरपदत्वन तत्सार्थक्ये भाष्यासगति स्पष्टैव। तथाऽनेनैवौकारान्त पूर्वपदत्वस्यापि सिद्ध्या तद्भाष्यासगतिः स्पष्टैव। तदेकदेशमात्रविकारवत्त्व च तदेकदेशा याविकारत्वे सति तदेकदेशविकार-त्वम्। मात्रसमभिव्याहारे तथैव व्युत्पत्ते । तथा चानेन त भावरूप गृहीत्वा निर्जरसावित्यादि-सिद्धि· । अभावरूप त गृहीत्वा गुडोदकमित्यादि सिद्धि । रामाविन्यादौ मान्ते तत्त्वमप्यभावमादाये वानेन कार्यकाले सिद्धम् । पदसज्ञाया निशिष्टरूपोपादानेनाभिधानेनाक्तपरिमाणनिष्ठत्वात्।

---

१ क. °चित्काचिदा° । २ घ. °म् । केचित्घर्भा° । ३ घ. °चित्बाति ।

**पूर्वपरनित्यान्तरङ्गापवादानामुत्तरोत्तरं बलीयः ॥ ३८ ॥**

**पूर्वात्परं बलवत्। विप्रतिषेधशास्त्रात्पूर्वस्य परं बाधकमिति यावत्॥३८॥**

**नन्वेवं भिन्धकीत्यत्र परत्वाद्धिना बाधितोऽकज्न स्यादत आह—**

**पुनःप्रसङ्गविज्ञानात्सिद्धम् ॥ ३९ ॥**

---

निषेधप्रसङ्गादाह—**पूर्वपरेति** । इत आरभ्योपसर्जनिष्ठेतिपर्यन्तमस्यैव क्रमेण प्रपञ्च-स्तदाह—**पूर्वादिति** । परिभाषाया हेत्वनुक्तेराह—**विप्रेति** । एवमग्रेऽपि । ननु बलव-त्त्वमात्रोक्त्या नेष्टसिद्धिरत आह—**पूर्वस्येति** ॥ ३८ ॥

एवं परस्य पूर्वबाधकत्वाङ्गीकारे । भिन्धकीत्यत्र परत्वाद्धिना बाधितोऽकज्न स्यादिति पाठ । भिन्धीत्यत्र परत्वात्तातङा बाधितो धिर्न स्यादिति त्वपपाठः । अचश्चेतिसूत्रस्थभा-ष्यकैयटादिविरोधात् । तत्र ह्यच्समुदायनिवृत्त्यर्थमूकाल इत्यत्राज्ग्रहणं तेन तितउच्छत्र-मित्यादौ दीर्घात्पदान्ताद्वेति वा तुङ्नेति भाष्ये। परत्वाद्दीर्घलक्षणे वैकल्पिके तुकि सकृद्गतावि-तिन्यायाद्ध्रस्वलक्षणः पुनर्न प्रवर्तते । यतो नेदृशे विषये पुनःप्रसङ्गन्यायः । नित्यविकल्पयो-र्विरोधात् । पश्चाज्जातेन पूर्वेण पूर्वजातस्य परस्य प्रवृत्त्यफलत्वलक्षणबाधप्रसङ्गात् । तस्मा-द्विकल्पविधिप्रवृत्तेर्वैयर्थ्यापत्त्या नित्यस्य बाध एव । क तर्हि पुनःप्रसङ्गविज्ञानमिति चेत् । शृणु । यत्र पूर्वो विधिः परं न बाधते तत्र क्वचित्तदाश्रीयते । यथा भिन्धकीत्यादौ पर-त्वाद्धौ कृते पुनःप्रसङ्गविज्ञानादकच् । न हि तत्र ध्यकच्प्रवृत्त्योर्विरोधः । एवमीमतुरि-त्यादावपि बोध्यम् । तदुक्तं लुटः प्रथमस्येति सूत्रे भाष्ये ।

> ' डारौरसः कृते टेरे यथा द्वित्व प्रसारणे ।
> सप्रसस्येन नार्थोऽस्ति सिद्धा स्थानेऽर्थतान्तरा '

इतीति कैयटेनोक्तमितीति केचित् । वस्तुतस्त्वयुक्तः स कैयट ई च द्विवचन इतिसूत्र-स्थभाष्यकैयटवृत्तिहरदत्तादिग्रन्थविरोधात् । तत्र ह्यक्षी ते इन्द्र पिङ्गले इत्यादावाक्षि औ

---

इममेव प्रकारमभिप्रेत्य वृक्ष इत्यादौ परादिवत्त्वेन सुप्त्वात्तदन्तत्वेन पदत्वमुक्तम् । अन्यथा तदस-ङ्गतिरपि स्पष्टैव । यथोद्दृशे तु मनोरमाद्युक्तप्रकारेणैव पदत्वम् । एवरीत्या श्रायसावित्यादौ सान्ता-द्यावनेनाङ्गत्व सम्भावितम् । तथाऽपि यस्मात्प्रत्ययविधिस्तदादीतिविशिष्टरूपपरिग्रहेण क्रियमाणाङ्गस-ञ्ज्ञाया भक्तपरिमाणनिष्ठत्वस्य यस्मात्प्रत्ययविधिरितिसूत्रे कण्ठतो भगवतोक्तत्वेन तत्रैतदप्रवृत्त्याऽ-ङ्गत्वं तत्र दुर्लभमेवेति तद्भाष्यमेकदेश्युक्तिरेव । एवमुपसर्गादिसञ्ज्ञाया अपि सर्वनामादिसञ्ज्ञावद्भक्त-परिमाणनिष्ठतयाऽनेन न्यूनेऽभावेनाभीयादित्यादौ न दोष इति क्वचिदित्यादि कैयटानुरोध्येव । एवं चाभीयादित्ययाभिधानमेव । उभयत इति तत्सिद्धेश्चेति बोध्यम् । तदाह—अन्यत्रेति भाष्या-दावित्यर्थः ॥ ३७ ॥

---

१ घ. °वृत्त्युपलक्ष° । २ क. ङ. °ध्यमिति कै° ।

**नन्वेवं तिसृणामित्यत्र परत्वात्तिस्रादेशे पुनस्त्रयादेशः स्यादत आह—**

**सकृद्गतौ विप्रतिषेधे यद्बाधितं तद्बाधितमेव ॥ ४० ॥**

**तत्र क्वचिच्चरितार्थयोरेकस्मिन्युगपदुभयोः कार्ययोरसंभवेन बाध-**

---

इति स्थिते नुमः परत्वादीकारे सकृद्गतिन्यायात्पुनस्तदभावे शीभावे पूर्वसवर्णे रूपासिद्धिरित्युक्तम्। भवद्रीत्या तु तत्र पुनःप्रसङ्गविज्ञानस्य विषयो नापरस्य। किं च साक्षात्प्रमृतीनीतिसूत्रस्थभाष्यकैयटविरोधः। तत्र हि 'च्व्यन्तस्य प्रतिषेधो वाच्यः' लवणीकृत्य। अन्यथाऽत्र परत्वाद्विकल्पः स्यात्। नित्या गतिसञ्ज्ञेष्यते। न वा पूर्वेण कृतत्वादस्त्वनेन विभाषा पूर्वेण नित्या भविष्यति परत्वाद्विकल्पेऽपि तदभावे पुन.प्रसङ्गविज्ञानान्नित्यविधिप्राप्त्या न दोष इत्युक्तम्। भवद्रीत्या तु तत्र सकृद्गतिन्यायस्य विषयो नापरस्य। स्पष्टं चेदं भावप्रकाशे। तस्मादेतदन्यतरन्यायाश्रयणे लक्ष्यानुरोध एव बीजमिति तत्त्वम्। इदमेव ध्वनयितुमग्रे वक्ष्यति तत्र लक्ष्यानुसारादित्यादि। तत्रत्योद्द्योतस्तु कैयटानुरोधेन। तद्भाष्य त्वेवमपि सुयोजम्। एव च प्रचुर. स पाठोऽपि युक्त एव। योजना त्वित्थम्—भिन्धीत्यत्र धिर्न स्यात्। तत्र हेतुगर्भविशेषणमाह—परत्वात्तातङा बाधित इति[1]। यतः पक्षान्तरे भिन्तादित्यादावित्यादि। लक्ष्ययो साजात्येनैक्यात्। विकल्पशास्त्रस्य लक्ष्यद्वये तात्पर्येणोभयलक्ष्यकत्वाच्च। अत एव पुन'प्रसङ्गेतिन्यायसचारेण सिद्धान्तोक्तिसंगतिरपि। न चैव भिन्तादित्यत्रापि तदापत्ति. स्थानिवत्त्वादिति वाच्यम्। प्रतिलक्ष्यं लक्षणभेदेन तद्विषयतातङ्शास्त्रस्याऽऽनर्थक्यापत्ते'। एतेन भवताच्चिनुतादित्यादौ चरितार्थमित्यपास्तम्। तत्राप्यतो हेरुतश्चेति लुकः प्राप्तत्वाच्च। किं च परिभाषाणामिष्टसिद्धिमात्रफलकत्वम्। अत एव कुरुतादित्यत्र पुनर्लुगभावः सकृद्गतिन्यायेन साधितो विप्रतिषेधसूत्रे कैयटेन। अन्यथाऽन्तरङ्गानपीतिन्यायेन परादपि लुको बलवत्त्वेन तदसगतिः स्पष्टैव। एव चैतन्न्यायाश्रयणे लक्ष्यसिद्धेरेव मूलत्वेनात्रैवाशभेदेनोभयोराश्रयणमपि सुवचमितीति बोध्यम् ॥३९॥

**एवं**, सर्वत्र पुन.प्रसङ्गविज्ञानाङ्गीकारे। **पुनरिति**। स्थानिवद्भावेनेति भावः। **सकृदिति**। गतौ शास्त्रयोः प्राप्तौ सत्यां यो विप्रतिषेधस्तस्मिन्सति सकृदेकवारं यद्बाधितं तद्बाधितमेवेत्यर्थः। यद्वा गत्यभिन्ने विप्रतिषेधे। अन्यत्र लब्धावकाशयोरेकस्मिन्युगपदसभावितप्राप्तेरेव विप्रतिषेधपदार्थत्वेनोक्तत्वात्। अन्यत्प्राग्वत्। पूर्वपरिभाषार्थस्तु स्पष्ट इति नोक्तः। तथा च लक्ष्यानुरोध एवान्यतरन्यायाश्रयणे बीजमिति नोक्तदोष इति भावः। अनयोरन्त्यमूलं प्रत्यासत्त्याऽऽह—**तत्रेति**। तयोर्मध्य इत्यर्थः। क्वचित्, अन्यतराविषये। एकस्मिन्, लक्ष्ये। असंभवप्रसङ्गयोरविरोधाय कार्यशास्त्रयोर्निवेशः। **असंभवे-**

---

[1] ग. °ति। ततः पाठान्त°।

कामावात्पर्यायेण तृजादिवच्छास्त्रद्वयप्रसङ्गे नियमार्थं विप्रतिषेधसूत्र-मिति सकृद्गतिन्यायसिद्धिः। यथा तुल्यबलयोरेकः प्रेष्यो भवति स तयोः पर्यायेण कार्यं करोति। यदा तमुभौ युगपत्प्रेषयतो नानादिक्षु च कार्ये तदोभयोर्न करोति यौगपद्यासंभवात्तथा शास्त्रयोर्लक्ष्यार्थयोः क्वचिल्लक्ष्ये यौगपद्येन प्रवृत्त्यसंभवादप्रतिपत्तौ प्राप्तायामिदं परविध्यर्थं, तत्र कृते यदि पूर्वप्राप्तिस्तदपि भवत्येवेति पुनःप्रसङ्गविज्ञानसिद्धिरिति विप्रतिषेधसूत्रे भाष्ये स्पष्टम्।

यत्तु कैयटादयो व्यक्तौ पदार्थे प्रतिलक्ष्यं लक्षणोपप्लवादुभयोरपि शास्त्रयोस्तत्तल्लक्ष्यविषययोरचारितार्थ्येन पर्यायेण द्वयोरपि प्राप्तौ परमे-वेति नियमार्थमिदमिति सकृद्गतिन्यायसिद्धिः। अत्र पक्ष एतन्नियमव-शादेतल्लक्ष्यविषयकपूर्वशास्त्रानुपप्लव एव। जातिपक्षे तूद्देश्यतावच्छेद-काक्रान्ते क्वचिल्लक्ष्ये चरितार्थयोर्द्वयोः शास्त्रयोः सत्प्रतिपक्षन्यायेन

---

नेति। विरोधादिति भाव। बाधकाभावादित्यनेनोत्सर्गापवादवैधर्म्यं दर्शितम्। स च दृष्टान्त-दार्ष्टान्तिकयोः पर्यायप्रसङ्गे हेतु। वचनद्वयप्रामाण्यादिति तदाशय। ननु शास्त्रप्रसङ्गोऽपि कार्यार्थ एवेति कार्ययोर्युगपदसंभवे कथं शास्त्रयोः प्रसङ्गोऽत आह—**तृजादीति।** एव च युगपदसंभवः पर्यायेणोभयप्रसङ्ग इति तात्पर्यम्। तथा च पक्षे प्राप्त्या तन्त्रान्तरप्रसिद्धनियमविधिरेवायमित्यप्राप्तांशपरिपूरकत्वमेवास्येतरनिवृत्तिस्त्वार्थी तद्द्योतक एवकार इति बोध्यम्। आद्यमूलमाह—**यथेति।** अस्य न करोतीत्यत्रान्वयः। ननु तदाज्ञोल्लङ्घनेन तावचरितार्थावत आह—**तुल्येत्यादि करोतीत्यन्तेन।** तथा च तुल्यबलत्वादेव पर्यायेणैव प्रेरणया प्रेष्यस्य मिथोऽविरुद्धकार्यकरणेन स्वामिनौ चरितार्थौ यथा तद्वदिति भाव। एकत्र तत्संभवादाह—**नानेति।** उक्त आशयः। तत्रापि प्रदेशे संभवादाह—**दिक्ष्विति।** कार्ये, स्त इति शेष। **यौगेति।** तयोर्यौग-पद्येनासंभवादित्यर्थः। **लक्ष्यार्थेति।** अन्यत्र लक्ष्ये चरितार्थयोरित्यर्थः। इदं, विप्रति-षेधसूत्रम्। तत्र, परस्मिन्।

**कैयटादय इति।** आदिना सीरदेवहरदत्तकौस्तुभकृदादयः। अभिधेयवाच्यर्थशब्दस्या-जहल्लिङ्गत्वादाह—**पदार्थ इति।** प्रतिर्वीप्सायाम्। उपप्लवस्तेषामाविर्भाव। अपिर्विष-ययोरित्यग्रे योज्यः। द्वितीयोऽपि प्राप्तावित्यग्रे। मिथः समुच्चायकत्वेन यथाश्रुतावेव वा। इद, विप्रतिसूत्रम्। एवमग्रेऽपि। नन्वेव तद्विषयकपूर्वलक्षणस्याप्रमाणत्व स्यादत आह—**अत्रेति।** नियमपक्ष इत्यर्थः। **एतदिति।** विप्रतिषेधसूत्रेत्यर्थः। क्वचित्, तत्तद-विषये। **सदिति।** साध्याभावसाधकं हेत्वन्तरं यस्य स सत्प्रतिपक्षः। तत्र यथा मिथः प्रतिबन्धादनुमितिद्वय नैवमत्रापीति भावः। अप्यप्राप्तौ, अप्राप्तावपि। यथाश्रुत वा। शास्त्रं

युगपदुभयासंभवरूपविरोधस्थल उभयोरप्यप्राप्तौ परविध्यर्थमिदमिति पुनःप्रसङ्गविज्ञानसिद्धिरित्याहुस्तन्न । व्यक्तिपक्षे सर्वं लक्ष्यं शास्त्रं व्याप्नोति न जातिपक्ष इत्यत्र मानाभावात् । न ब्राह्मणं हन्यादित्यादौ जात्याश्रयसकलव्यक्तिविषयत्वार्थमेव जातिपक्षाश्रयणस्य भाष्ये दर्शनात् । अत एव सरूपसूत्रे भाष्ये जातौ पदार्थेऽनवयवेन साकल्येन विधेः प्रवृत्तेर्गौरनुबन्ध्य इत्यादौ सकलगवानुबन्धनासंभवात्कर्मणो वैगुण्यमुक्तम् । द्रव्यवादे चासर्वद्रव्यावगतेर्गौरनुबन्ध्य इत्यादावेकः शास्त्रोक्तोऽपरोऽशास्त्रोक्त इत्युक्तम् । किं च न हि भाष्योक्ततृजादिदृष्टान्तस्य व्यक्तिपक्ष एव सर्वविषयत्वं न जातिपक्ष इत्यत्र मानमस्ति । अपि च व्यक्तिपक्षेऽप्यन्यव्यक्तिरूपविषयलाभेन चरितार्थयोरियं व्यक्तिविरोधात्स्वविषयकत्वं न कल्पयतीति वक्तुं शक्यम् । जातिपक्षेऽपि

---

कर्तृ । सर्वं लक्ष्यं कर्म । ननु व्याख्यानमेव तत्र मानमत आह—**न ब्राह्मेति ।** **व्यक्तीति ।** व्यक्तिविषयकत्वार्थमित्यर्थः । सर्वब्राह्मणहनननिषेधायेति यावत् । भाष्ये, एकशेषसूत्रस्थे । तत्रैव[२] हेत्वन्तरं सूचयन्नाह—**अत एवेति ।** जातिपक्षस्य व्यापकत्वादेवेत्यर्थः । अनवयवेनेत्यस्य व्याख्या—**साकेति ।** जात्याश्रया व्यक्तिविशेषा अवयवा इत्युच्यन्ते । तथा च व्यक्तिविशेषानालम्बनेनेति तदर्थो बोध्य । एवं च साकल्यं फलितम् । **सकलेति ।** देशकालादिभेदेनाऽऽनन्त्यादिति भावः । गवानुबन्धनेति पाठः । गोः पुंस्त्वात् । **वैगुण्यमिति ।** तथा च फलानवाप्तिरिति भावः । प्रत्युत वैपरीत्ये मानमस्तीत्याह—**द्रव्येति ।** चस्त्वर्थे । **एकः शास्त्रोक्त[३] इति ।** एकः शब्दः प्रत्यर्थनिवेशित्वादेकं द्रव्यं गोरूपं बोधयेत्तस्य केनचिदनुबन्धे कृते शास्त्रार्थसपत्त्या परैस्तेन वाऽन्यदा गवान्तरा[४]नुबन्धोऽशास्त्रार्थः स्यादित्यर्थः । त्वन्मते त्वेतदसंगतिः स्पष्टैव । पक्षद्वयसाधारण्येन प्रतीयमानं विप्रतिषेधसूत्रभाष्यमपि विरुद्धमित्याह—**किं चेति ।** अयं भावः—उक्तभाष्यं पक्षद्वयसाधारण्येन दृष्टान्तभेदेन पर्यायाप्रतिपत्ती ये प्राप्ते तदाश्रयेण तद्वचनोपपत्तिपरं न तु जातिव्यक्त्याश्रयेणेति स्पष्टमेव । अन्यथा जातिपक्षप्रवृत्तामप्रतिपत्तिमुपक्रम्य तृव्यादिदोषशङ्कापरभाष्यासंगत्यापत्तेः । अनवकाशत्वेनैषा न परत्वेन व्यवस्थेति कैयटाद्युक्त्यसंगत्यापत्तेश्च । अग्रे तृजादितुल्यतया एव तेषु प्रतिपादनाच्च । न हि तृजादयो व्यक्तिपक्ष एव सर्वविषया अपि तु जातिपक्षेऽपीति । त्वदुक्तयुक्तिद्वयमपि मिथो व्यभिचरितमित्याह—**अपि चेत्यादिगमकाभाव इत्यन्तेन । अन्येति ।** विरोधाधारान्येत्यर्थः । इयं, विरोधाधारभूता । **कत्वमिति ।** चरितार्थयोः शास्त्रयोरिति भावः ।

---

१ ङ °तस्तत्र हेतौ हेतुमाह । २ ङ. °व मानाभावे हे° । ३ ग. °चिदालम्भे कृ° । ४ घ. °रालम्भोऽशा° । घ. °रालम्भेऽशास्त्रार्थसपत्त्याऽऽह—किंचेति ।

तज्जात्याश्रयतद्व्यक्तिविषयकत्वमेव नैतद्व्यक्तिविषयकत्वमित्यत्र विनिगमकाभावः। तत्र लक्ष्यानुसारात्क्वचिच्छास्त्रीयदृष्टान्ताश्रयणं क्वचिल्लौकिकदृष्टान्ताश्रयणमिति भाष्यसंमतमार्ग एव युक्त इति बोध्यम्।

द्वयोः कार्ययोर्यौगपद्येनासंभव एव विप्रतिषेधशास्त्रोपयोगी। इदम् 'इको गुण' ( १। १। ३ ) इति सूत्रे कैयटे स्पष्टम्। यथा शिष्टादित्यादौ तातङ्शाभावयोर्युगपत्प्रवृत्तौ स्वस्वनिमित्तानन्तर्यासंभवः। यद्यपि तातङादेः स्थानिवत्त्वेनास्त्येव तत्तथाऽप्यादेशप्रवृत्त्युत्तरमेव स, न तु तत्प्रवृत्तिकाले। एवं नुम्तृज्वत्त्वयोः प्रियक्रोष्टूनीत्यादौ युगपदसंभवो 'यदागमाः' ( प० ११ ) इत्यस्य नुम्प्रवृत्त्युत्तरं प्रवृत्तेः। एवं भिन्धीत्यत्र तातङ्धिभावयोर्युगपदेकस्थानिसबन्धस्याङ्गरूपनिमित्तान-

---

**तद्व्यक्तीति**। मिथोऽविषयव्यक्तीत्यर्थः। **नैतदिति**। विरोधाधारव्यक्तीत्यर्थः। शास्त्रस्येति शेषः। उपसंहरति—**तत्रेति**। तयोर्मध्य इत्यर्थः। तस्मादित्यादिः। क्वचित्, तिसृणामित्यादौ। शास्त्रीयदृष्टान्तः, तृजादिरूपः। क्वचित्, भिन्धीत्यादौ। लौकिक, दूतरूपः। **युक्त इति**। अत एव कुरुतात्त्वमिति कैयटोक्तसकृद्गतिन्यायोदाहरणसगति.। अन्यथा कुरुशब्दाद्धेर्लुगितिवचनस्य तातङभावपक्षे चारितार्थ्येऽपि कुरुशब्दाद्धेस्तातङितिवचनस्यानवकाशत्वेन विप्रतिषेधाप्रसक्त्या तदसगतिः स्पष्टैवेति दिक्।

भाष्यस्थ एकस्मिन्नित्यस्य लक्ष्य इत्यर्थोऽभिमतो न तु कार्यद्वययोगिनीति सूचयितुमाह—**द्वयोरिति**। अन्यत्र लब्धावकाशयोरित्यादिः। एवेनैकस्य कार्यद्वययोगित्वव्यवच्छेदः। **शास्त्रोपेति**। शास्त्रप्रवृत्त्युपेत्यर्थः। **कैयट इति**। नावश्यं द्विकार्ययोग[1] एव विप्रतिषेधः किं तर्ह्यसंभवोऽपीति भाष्ये द्विकार्ययोगत्वाभावे केवलोऽप्यसभवो विप्रतिषेध इति हि तेनोक्तम्। तमुपपादयति—**यथेति**। आदिना शाभावपरिग्रहः। तत्, तत्तदानन्तर्यम्। सः, स्थानिवत्त्वपदवाच्यः स्थानिवद्भावः। एतेनान्यतरस्मिञ्जाते निमित्तविघातादन्यतरन्न स्यादिति दण्ड्यादीना विरोधोपपादनमपास्तम्। इदमेव ध्वनयितुं बहुषु तमुपपादयति—**एवमित्यादिना**। एवं, स्वस्वनिमित्तानन्तर्यासंभवरूपोक्तप्रकारेण। **प्रवृत्तेरिति**। अङ्गत्वसपादकस्थानिवत्त्वस्य तृज्वद्भावप्रवृत्त्युत्तरं प्रवृत्तेश्चेत्यपि बोध्यम्। एवं, पूर्वत्रेव। प्रकारान्तरमप्यत्र सभवतीति प्राचामुक्तिमनुसृत्याऽऽह—**युगपदिति**। ननु बुद्धिविपरिणामस्य सिद्धान्तत्वेन वास्तवस्थानिसबन्धः क्वापि न, प्रकृत उभयबुद्धिप्राप्तावपि वाचः क्रमवृत्तित्वादैच्छिकक्रमेण स्थिति. सभवतीति नेद युक्तमतः पागुक्तमेवाऽऽह—**अङ्गरूपेति**। नुटोरपीत्यस्यासंभवादावन्वयः। पूर्वात्परं प्रबलमिति यत्या सार्वत्रिकतामाह—

---

१ घ. 'योगादावेव वि°।

न्तर्यस्य चासंभवो बोध्यः । नुम्नुटोरपि नुड्यजादिविभक्त्यानन्तर्यबाधो नुमि ह्रस्वान्ताङ्गबाध इत्यसंभवाद्विप्रतिषेधः । क्वचिदिष्टानुरोधेन पूर्वशास्त्रे स्वरितत्वप्रतिज्ञाबलात्स्वरितेनाधिकं कार्यमित्यर्थात्पूर्वमेव भवति । तेन सर्वे पूर्वविप्रतिषेधाः संगृहीता इति 'स्वरितेन' ( १ । ३ । ११ ) इति सूत्रे भाष्ये । विप्रतिषेधसूत्रस्थपरशब्दस्येष्टवाचित्वात्तत्संग्रह इति विप्रतिषेधसूत्रे भाष्ये ॥ ४० ॥

नन्वेवमेधत इत्यादौ परत्वाद्विकरणे 'अनुदात्तङितः' ( १ । ३ । १२ ) इत्यादिनियमानुपपत्तिस्तेन व्यवधानादत आह—

**विकरणेभ्यो नियमो बलीयान् ॥ ४१ ॥**

अत्र 'वृद्भ्यः स्यसनोः' ( १ । ३ । ९२ ) इति सूत्रेण स्ये विभाषाऽतङ्विधानं ज्ञापकम् । अन्यथा स्यव्यवधाने नियमाप्रवृत्तौ सामान्य-

---

**क्वचिदिति** । पूर्वविप्रतिषेधविषय इत्यर्थः । अनेन परस्यैव निरासो न नित्यादेस्तुल्यजातीयत्वात् । किं च यादृशदौर्बल्ये प्रसक्ते प्राबल्याय स्वरितत्व प्रतिज्ञायते तादृशमेव दौर्बल्य तेनापनीयते । तदेतद्ध्वनयन्नाह—**पूर्वमेवेति** । तेन तथार्थेन । प्रकारान्तरमाह—**विप्रेति** । **तत्संग्रह इति** । सकलपूर्वविप्रतिषेधसग्रह इत्यर्थः । नन्वेव स्वरितेनेति सूत्र तथार्थकमपि व्यर्थमिति चेन्न । अन्यार्थ तथार्थकस्य तस्याऽऽवश्यकत्वस्य तत्र भाष्य एव स्पष्टत्वात् । उपायस्योपायान्तरादूषकत्व हि तदाकूतमिति भाव. ॥ ४० ॥

**एवं,** पूर्वविप्रतिषेधविषयादन्यत्र सर्वत्र परस्य पूर्वबाधकत्वे । **एधत इत्यादाविति** । आदिना पचत इत्यादिसग्रहः । पचत इत्यादाविति त्वपपाठः । धातुपाठे प्राक्पठितत्यागे मानाभावात् । अत एवानुदात्तेति दोषसगति. । तदपि प्रागेव सूत्रपाठे पठितम् । स्यादेः परत्वाल्लस्य तिबादिषु सत्स्विति शेष. । यथा नियमत. स्यादेः परत्व तथा स्यादितो लादेशानामिति बोध्यम् । तेन, विकरणेन । अत्र, परिभाषायाम् । स्ये, परत इति शेषः । अताङितिच्छेदः । परस्मैपदेति तदर्थ. । तङित्यस्याऽऽत्मनेपदोपलक्षणत्वात् । एवमुक्ते. फल तु तस्य प्रतिप्रसवविधित्वसूचनम् । तङिति च्छेद. परस्मैपदविकल्पेन पक्षे तङ्विधानमित्यर्थ इति कश्चित् । क्वचित्तु विकल्पविधानमिति पाठः । तत्र विकल्पेन परस्मैपदविधानमित्यर्थः । उपपादनपर्यालोचनया त्वयमेव पाठो युक्त इति भाति । तत्त्वमुपपादयति—**अन्यथेति** । परिभाषाविरह इत्यर्थः । **नियमेति** । अनुदात्तङित इत्यादीनामित्यर्थः । **सामान्येति** ।

---

१ घ. ङ. तदेव । २ क. तथाऽऽव° ।

शास्त्रेणोभयसिद्धौ विकल्पविधानं व्यर्थं स्यात् । अत्रार्थे ज्ञापिते तु स्य इति तत्र विषयसप्तमी बोध्येति 'अनुदात्तङितः' (१ । ३ । १२) इत्यत्र भाष्यकैयटयोः स्पष्टम् । विकरणव्यवधानेऽपि नियमप्रवृत्तेरिदं ज्ञापकमिति 'शदेः शितः' (१ । ३ । ६०) इत्यत्र भाष्ये ध्वनितम् । वस्तुतोऽस्माज्ज्ञापकात् 'अनुदात्तङितः' (१ । ३ । १२) इत्यादिप्रकरणं तिबादिविध्येकवाक्यतया विधायकम् । तत्र 'धातोः' (३ । १ । ९१)

---

प्राक्प्रवृत्तेन तिप्तस्झीत्यनेनेत्यर्थः । **उभयेति** । पदद्वयेत्यर्थ. । **विकल्पेति** । विकल्पेन परस्मैपदविधानमित्यर्थः । नन्वेवमपि स्य इति परसप्तमीति तदानीं तदभावेन तदप्राप्त्या चारितार्थ्याभावात्कथं ज्ञापकत्वमत आह—**अत्रेति** । अस्मिन्नर्थ इत्यर्थः । तत्र, सूत्रे । **इतीति** । उक्त सर्वमित्यर्थः । मतान्तरमाह—**विकरणेति** । **प्रवृत्तेरिति** । परिभाषाया इत्यर्थ. । इद, प्रागुक्त तद्विकल्पविधायक सूत्रम् । **ध्वनितमिति** । तत्र ह्युपसर्गनिमित्तकनियमेऽड्व्यवाय उपसंख्यानं न्यविशतेत्युक्तम् । यदि तथेयं भवेत्तर्हि प्राङ्नियमे नित्यत्वाद्विकरणेऽडागम इति वार्तिक व्यर्थं स्यात् । इदानीं तु परत्वनित्यत्वाभ्या द्वाभ्यां यथासख्य प्राग्विकरणे नित्यत्वादडागमे चानया द्वितीयया विकरणस्याव्यवधायकत्वेऽप्यटा व्यवहितत्वान्न प्राप्नोतीति तत्सफलम् । लावस्थायामडित्यनाश्रित्य चेदं बोध्यम् । इत एवारुच्या यदि पुनरियं परिभाषा विज्ञायेतेत्यनुदात्तेत्यत्र सिद्धान्तभाष्योक्तम् । अत आह—**वस्तुत इत्यादि तत्त्वमित्यन्तेन** । अस्मात्, प्रागुक्ततद्विकल्पविधायकसूत्रात् । **एकेति** । वाक्यैकवाक्यतयेत्यर्थः । अत एव भाष्येऽपि लस्य तिबादयो भवन्तीत्युपस्थितमिद भवत्यनुदात्तेत्याद्युक्तम् । अत एव कार्यकालपक्ष इद बोध्यं यथोद्देशे वाक्यभेदस्यैव सत्त्वात् । सा चेत्थ धातोर्लस्य स्थाने तिबादयो भवन्ति ते चानुदात्तङितो लस्य स्थाने तादृशा भवन्ति येषा जातानामात्मनेपदसज्ञा भवतीति । अयं भावः—कार्यकालेऽप्यनुदात्तङित् इत्यादिप्रकरणमेव स्वाकाङ्क्षया तेनैकवाक्यतामनुभवति । भाष्ये परिभाषेत्यस्य तद्वदित्यर्थ. । यथा परिभाषा कार्याकाङ्क्षावशात्तेनैकवाक्यतापन्ना तथा तदपि स्वाकाङ्क्षावशात् । आकाङ्क्षोत्थापके च लिङ्गत्वव्यवहारः । प्रकृते च तस्य तदाकाङ्क्षोत्थापकावात्मनेपदत्वादिना बोधकौ तौ शब्दाविति तत्र लिङ्गत्वव्यवहारः । एतेन सर्वत्र परिभाषालिङ्गविधे. परिभाषाकाङ्क्षोत्थापक विधौ दृष्ट न चात्र तथा विधिसूत्र आत्मनेपदत्वादिनाऽनुपस्थितेरेव च यदि पुनरिति भाष्यमयुक्तमित्यपास्तम् । उक्तरीत्या भाष्योपपत्तेः । एव च भूवादय इतिसूत्रस्थधातुपदस्य नियमेषु सबन्धार्थं मण्डूकप्लुतिर्विभक्तिविपरिणामश्च नाऽऽश्रयणीयाविति । तदेतदाह—**तत्रेति** । तिबादिसूत्र इत्यर्थः । लावस्थायां स्यादावस्या

---

१ क. घ. °भ्या प्रा° ।

**इति विहितपञ्चमीति तत्समानाधिकरणम् । 'अनुदात्त' ( १ । ३ । १२ ) इत्यादि विहितविशेषणमेव । एव च लावस्थायां स्येऽपि तद्व्यवधाने तङ्सिद्धिः । शबादिभ्यस्तु पूर्वमेव नियमः ।**

**यद्वा लमात्रापेक्षत्वादन्तरङ्गा आदेशा लकारविशेषापेक्षत्वात्स्यादयो**

---

आवश्यकत्वात् । उत्तरसूत्रानुरोधाच्चेति भावः । एव च, विहितविशेषणत्वे च । स्येऽपीति । यद्यप्यत्र पक्षे परत्वान्नित्यत्वाच्च तिबादिविधिः । स्यादिविधिस्तु न नित्यः । शब्दान्तरेण लक्षणान्तरेण च प्राप्ते । तादृशानित्यत्वानाश्रयणेऽपि द्वयोर्नित्ययो. परत्वात्स एव । अन्तरङ्गत्वमप्याद्यद्वयप्रकाराभावेऽपि तृतीयान्त्यरीत्या द्विविधतुरीयरीत्या च तस्यैव । न चापवादत्वं स्यादिविधेर्विशेषविहितत्त्वादिति वाच्यम् । चारितार्थ्यात् । अत एव परत्वविषयः । **अत एव च स्येऽपीति** स्यमात्रोल्लेखः । तासावपवादत्वस्य सुवचत्वात् । एव च कथ लावस्थायां स्य' किमर्थं च विहितविशेषणत्वम् । अत एवानुदात्तमितिसूत्रभाष्यसगति । तथाऽपि श्यनादितः स्याद्योऽन्तरङ्गाः काऽन्तरङ्गता लावस्थायामेव विधानादिति स्यतेतिसूत्रभाष्योक्त्याऽऽर्धधातुक इत्यस्याऽऽयादय इत्यतोऽनुवृत्त्याऽऽर्धधातुकत्वावस्थाया स्यादय इत्यस्यान्तरङ्गास्त इत्यर्थिकयाऽऽर्धधातुकत्व विशेषण नोपलक्षणमित्याशयिकया सूत्रस्थतदनुवृतेश्च सामर्थ्याल्लावस्थायामेव तत्प्रवृत्ति । अन्यथा तद्वैयर्थ्यं स्पष्टमेव । अत एव विहितविशेषणावश्यकत्वम् । एव च तत्र भाष्येऽन्तरङ्गशब्दो गौण' । अत एव काऽन्तरङ्गतेति प्रश्नो न तु कथमिति । बहिरङ्गशब्दस्य परिभाषायाश्चानुक्तिश्च । एव च परिभाषायाः स विषय एव न । एतेनोक्तपक्षचतुष्टयासंभवात्तद्भाष्यतत्पक्षयोरसगत्यापत्तिरित्यपास्तम् । उक्तरीत्योपपादनात् । तत्रत्यकैयटस्य तु प्रमाद एवेत्यन्यत्र विस्तर । **ताङिति** । आत्मनेपदेत्यर्थ । एधिष्यत इत्यादाविति भावः । ननु शबादिव्यवाये तत्सिद्धिरपि तत्फलं कुतो नोक्तमत आह—**शबादिभ्यस्त्विति** । कर्त्रादौ सार्वधातुके तद्विधानादिति भाव. । नियमः, तत्त्वेनान्याभिमतो वाक्यैकवाक्यतया विधिः ।

एवं तदनुवृत्तिमभिप्रेत्य लादेशानामन्तरङ्गत्वमनपेक्ष्य च तस्य विहितविशेषणत्वमुक्तम् । तदननुवृत्तावनुपदोक्तद्विविधैतदाश्रयणेनेदानीं वैपरीत्येन धातोरिति परपञ्चम्यामपीष्टसिद्धिरिति वक्तु पक्षान्तरमाह—**यद्वेति** । कैयटानुरोधेनाऽऽह—**लमात्रेति** । वस्तुतस्त्वत्र मात्रशब्देन परनिमित्तमात्रव्यवच्छेद । तथा चापरनिमित्तकत्वादित्यर्थ । आदेशा', लादेशाः । **लकारेति** । लकाररूपो यो विशेष परस्तदपेक्षत्वादित्यर्थ । परनिमित्तकत्वादिति यावत् । एव चानुपदोक्त द्विविधमन्तरङ्गत्वमेव तेषामनेनोक्तमिति बोध्यम् । यथाश्रुत तु न युक्तं

---

१ घ. °त्वाश्र° । २ घ. °त्रस्यात्तद° । ३ घ °नाभिप्रेक्ष्य । ४ घ. °विव्रत° ।

बहिरङ्गा इति दिग्योगलक्षणपञ्चम्यामपि न दोषः । अत्र पक्षे 'वृद्भ्यः स्य' (१ । ३ । ९२ । ) इति सूत्रं स्वविषय इति व्याख्येयम् । आत्मनेपदशब्दादौ भाविसंज्ञाऽऽश्रयणीयेति तत्त्वम् । भिन्नवाक्यतया सामान्यशास्त्रविहितानां नियमे तु लुगादिनेव नियमेन जातनिवृत्तिरङ्गीकार्या । भुक्तवन्तं प्रति मा भुक्था इति ब्रूयात्किं तेन कृतं स्यादिति न्यायस्तु नात्र शास्त्र आश्रयितुं युक्तो नियमादिशास्त्राणां वैयर्थ्यापत्तेः । ध्वनितं चेदं 'स्थानेऽन्तरतमः' (१ । १ । ५० ) इति सूत्रे भाष्ये । शास्त्रानर्थक्यं तु वृद्धिसंज्ञासूत्रे भाष्ये तिरस्कृतम् । सामान्यशास्त्रेणोत्पत्तिस्तु सरूप-

---

कैयटश्च चिन्त्य इत्यनुपदमेवाग्रे स्फुटी भविष्यति । **न दोष इति** । शत्रादेरिव स्यादितोऽपि तस्य प्राक्प्रवृत्तेस्तत्रापि न दोष इत्यर्थ. । अत्र पक्षे, सिद्धान्तपक्षान्तरभूत-द्वितीयपक्षे । **व्याख्येयमिति** । तस्य परत्वासम्भवादिति भावः । नन्वेवमपीतरेतराश्रयोऽत्र पक्षे प्राक्तेषामसत्वेन तत्सज्ञयोर्दुर्वचत्वादत आह—**आत्मनेपदेति** । न चावान्तरवाक्यार्थबोधोत्तर तेषा लस्थानिकत्वज्ञानादात्मनेपदादिसज्ञोत्तरमेवैकवाक्यताऽस्तु किं भाविसज्ञाश्रयणेनेति वाच्यम् । तस्य तत्रोपस्थितौ तावत्पर्यन्त तेनासंबद्धतयाऽवस्थाने मानाभावात् । अन्तरङ्गतया तेन सबन्धानुभवोत्तरमेव तिबादिभिः सज्ञानुभवाच्चेति भावः । चरमपक्षस्योक्त तत्त्व प्रतिपादयितुमाद्यपक्षयोर्दोषानाह—**भिन्नेत्यादिगौरवमित्यन्तेन** । नियमे त्विति पाठः । नियमे त्वङ्गीक्रियमाण इत्यर्थ. । ननु जातनिवृत्तौ भुक्तवन्तमिति न्यायविरोधोऽत आह—**भुक्तेति** । यो भुक्तवन्तं प्रति तथा ब्रूयात्तेन किं साधित स्यादपि तु न किमपीति लौकिकन्यायार्थः । **भुक्था इति** । निरनुस्वारः पाठः । लुङो रूपमेतत् । **नियमादीति** । आदिना निषेधादिपरिग्रहः । उक्तार्थस्य तस्यात्रानाश्रयणस्य[2] सूत्रारूढस्य[3] भाष्यारूढत्वमपि[4] । निर्मूलत्वनिरासायाऽऽह—**ध्वनितमिति** । तत्र[5] हि तस्यान्यसिद्धादेशानिवर्तकत्व इष्टशब्दमात्रनिर्वृत्त्यसिद्धौ[6] तद्वैयर्थ्यमुक्तन्यायेनोवत्वोक्त वेति समाहितम् । तत्र वाशब्देनायमर्थ. सूचित. । अन्यथा पक्षान्तरानुक्तेस्तदसंगतिः स्पष्टैव । ननु नियमादिशास्त्रवैयर्थ्य इष्टापत्तिरत आह—**शास्त्रेति** । प्रमाणभूत आचार्यो दर्भपाणिरित्यादिग्रन्थेनेति भावः । नन्वेकस्याः प्रकृतेरनेकप्रत्ययानामव्यवहितपरत्वासंभवादुत्पत्तिरवाऽऽदौ सर्वेषा दुर्लभेति कथ जातानां नियमेन निवृत्तिरत आह—**सामान्येति** । तुश्चार्थोनया कार्येत्यग्रे योज्यः । **सरूपेति** । तत्र हि यथैव बहवो

---

१ घ. तत्सत्तयो° । २ घ. यणं सू° । ३ घ. °रूढ भा° । ४ घ. °ढमपि । ५ ब. °त्र ह्यादे° । ६ क. निर्वर्त्यसि° । घ. °निवृत्यसि° । ७ क. °तप्रवृत्यस° ।

सूत्रस्थकैयटरीत्या प्रधानानुरोधेन गुणभेदकल्पना तावत्प्रकृतिकल्पनया कार्या प्रत्ययनिवृत्तौ च तत्कल्पितप्रकृतेरपि निवृत्तिः कल्प्येति गौरवमित्यन्यत्र विस्तरः ॥ ४१ ॥

## परान्नित्यं बलवत् ॥ ४२ ॥

कृताकृतप्रसङ्गित्वात् । तत्राक्लृप्ताभावकस्याभावकल्पनापेक्षया क्लृप्ताभावकस्यैव तत्कल्पनमुचितमिति नित्यस्य बलवत्त्वे बीजम् । तदाह—कृताकृतप्रसङ्गि नित्यं तद्विपरीतमनित्यम् । अत एव तुदतीत्यादौ परादपि गुणान्नित्यत्वाच्छप्रत्ययादिर्भवति ॥ ४२ ॥

यद्व्यक्तिसंबन्धितया पूर्वं प्रवृत्तिस्तद्व्यक्तिसंबन्धितयैव पुनः प्रवृत्तौ कृताकृतप्रसङ्गित्वमित्याशयेनाऽऽह—

## शब्दान्तरस्य प्राप्नुवन्विधिरनित्यो भवति ॥ ४३ ॥

इदं 'शदेः शितः' ( १ । ३ । ६० ) इति सूत्रे भाष्ये स्पष्टम् । तत्र हि न्यविशतेत्यत्र विकरणे कृते तदन्तस्याङ्कृतेे धातुमात्रस्येत्यडनित्य इत्युक्तम् ॥ ४३ ॥

---

[1]येन एव प्रकृतयोऽपीत्यत्र भाष्य एकैकस्यापत्यस्य प्रकृत्यर्थेन योगात्प्रधानभेदे च गुणावृत्त्या गार्ग्यशब्दानामेवैकशेषः क्रियत इति तेनोक्तम् । प्रातिपादिकोद्देशेन तद्विधानात्प्रातिपदिकार्थस्य तत्र विशेषणत्वाद्गुणतेति तदाशयः । तदाह—**प्रधानेति** । किंचैकस्मादनेकेषां परत्वासंभवादित्यपि बोध्यम्—**निवृत्तौ चेति** । च कल्प्येत्यग्रे योज्यः । एवं च दोषत्रयं तत्र सिद्धम् । **तत्केति** । प्रत्ययकल्पितेत्यर्थः । यदि तु लुगादिवन्नियमेनाप्यनुत्पत्तिरेवान्वाख्यायते तदाऽऽद्यपक्षावपि निर्दुष्टावित्यादि बोध्यम् । तदाह—**अन्यत्रेति** । उद्द्योतादावित्यर्थः ॥ ४१ ॥

**कृतेति** । तथा चाऽऽवश्यकत्वमिति भावः । कृताकृतप्रसङ्गित्वस्य बलवत्त्वप्रयोजकत्वं न वाचनिकं किं तु युक्तिसिद्धमित्याह—**तत्रेति** । परनित्ययोर्मध्य इत्यर्थः । **तत्कल्पनमिति** । अभावकल्पनमित्यर्थः । **उचितमिति** । उपस्थितिलाघवादिति भावः । इति, इदम् । नित्यस्य, आवश्यकस्य । अत्राऽऽद्यांशफलमाह—**अत एवेति** । आदिभ्या रुणद्धीत्यादौ श्नमादिपरिग्रहः ॥ ४२ ॥

द्वितीयांशं प्रपञ्चयितुमाह—**यद्व्यक्तीति** । **तद्व्यक्तीति** । गुणान्नित्यैकादेश इत्याशयेन सार्वधातुकमपिदितिभाष्योदाहृते च्यवन्त इत्यादौ संध्यावन्दनादौ चेत्यर्थः । **एवं च** न्यायभूतेयं न वाचनिकीति भाव । इदं, न्यायरूपं वचनम् । **स्पष्टमिति** । एतन्न्यायसत्त्वं[2] कृत्वेति शेषः ॥ ४३ ॥

---

१ ष. जस॰ ए॰ । २ ब ॰ति बिशे॰ ।

एतत्तुल्यन्यायेनाऽऽह—

**शब्दान्तरात्प्राप्नुवतः शब्दान्तरे प्राप्नुवतश्चानित्यत्वम् ॥ ४४ ॥**

एतन्मूलकमेवाऽऽह—

**लक्षणान्तरेण प्राप्नुवन्विधिरनित्यः ॥ ४५ ॥**

अतिदेशविषय इयमसिद्धवत्सूत्रे कैयटेनोक्ता ॥ ४५ ॥

यदा तु शास्त्रव्यतिरेकेण तद्विधेयकार्ययोरेव नित्यत्वादिविचारो यदाऽपि व्यक्तिविशेषाश्रयणाभावस्तदाऽऽह—

**क्वचित्कृताकृतप्रसङ्गमात्रेणापि नित्यता ॥ ४६ ॥**

कृते द्वितीये नित्यत्वेनाभिमतस्य पुनः प्रसङ्गमात्रं नित्यत्वव्यवहारे प्रयोजकं न तु बाधकाबाधितफलोपहितप्रसङ्गोऽपि तथेति भावः ॥४६॥

---

**तुल्यन्यायेनेति** । प्रागुक्तवचनमूलभूतयुक्तितुल्यतयेत्यर्थः । यद्व्यक्तिसबन्धितया पूर्वं प्रवृत्तिस्तद्व्यक्तिसबन्धितयाऽप्राप्त्या कृताकृतप्रसङ्गित्वाभाव इति हि प्रागुक्ते वचने मूलम् । तच्च शब्दान्तरात्प्राप्नुवदादावपि तुल्यमिति भावः । **वतश्चेति** । विधेरिति शेषः । एव च तद्विपरीतमित्यस्यैव प्रपञ्चभूते एते इति बोध्यम् । इय भाष्ये स्पष्टा ॥ ४४ ॥

**एतदिति** । उक्तपरिभाषाद्वयमूलकमेवेत्यर्थ. । एवेनापूर्वत्वनिरासः । **लक्षणान्तेति** । उपदेशान्येनेत्यर्थः । तदाह—**अतीति** । **असिद्धवदिति** । असिद्धवदत्राभादित्यत्रेत्यर्थ. । तत्र हि कुर्व इत्यादौ नित्यत्वात्प्रागुकारलोपस्ततो गुण । कृते हि तत्र प्रत्ययलक्षणेन गुण इत्येतन्न्यायेनानित्य स इत्युक्तम्—**कैयटेनेति** । अनेनात्र भाष्याक्तत्वनिरास । अत एवैतन्मूलकमेवेत्यवतरण उक्तम् ॥ ४५ ॥

नन्वेव तुदतीत्याद्यसिद्धिरेव शब्दान्तराल्लक्षणान्तरेण च तत्र कृते प्राप्तेरत आह—**यदा त्विति** । **शास्त्रव्यतीति** । अनेन लक्षणान्तरेणेत्यस्याविषयता सूचिता । **व्यक्तिविशेषेति** । यद्व्यक्तीत्याद्युक्तेत्यर्थः । अनेन तन्न्यायद्वयाविषयता सूचिता । **तदाऽऽहेति** । तदाऽऽहेत्यर्थः । **क्वचिदिति** । तुदतीत्यादावित्यर्थः । मात्रपदेन शास्त्रव्यक्तिविशेषैतदुभयवैशिष्ट्यस्य कार्ये व्यवच्छेदः । अपि सार्वत्रिकयद्व्यक्तीत्यादिसमुच्चायकः । परिभाषान्तर वक्तु मात्रपदव्यवच्छेद्यत्वेन सभावितपूर्वान्याधिकाशघटितमस्या आशयमाह—**कृत इति** । अभिमतस्य, कार्यस्य । मात्रपदव्यवच्छेद्यमाह—**न त्विति** । बाधकाबाधितत्वेऽपि कारणान्तराभावेन फलानुपहिततन्निरासायाऽऽह—**फलोपेति** । प्रसङ्गोऽपीति पाठः[1] । अपिः प्रागुक्तसमुच्चायकः । तेन तस्यापि व्यवच्छेदः । अत एव पूर्वसगतिः । तथा, तद्व्यवहारे प्रयोजकः ॥ ४६ ॥

---

१ क. °चनद्वये मू° ।

तदाह—

यस्य च लक्षणान्तरेण निमित्तं विहन्यते न तदनित्यम् ॥४७॥

केचित्तु बाधकाबाधितफलोपहितप्रसङ्ग एव गृह्यते तदाह—

यस्य च लक्षणान्तरेण निमित्तं विहन्यते तदप्यनित्यम्॥४८॥

सप्तमे कैयटेनैतदुपष्टम्भकं लोकव्यवहाररूपमुदाहृतम् । वालिसुग्रीवयोर्युध्यमानयोर्भगवता वालिनि हतेऽपि सुग्रीवस्य वालिनः प्राबल्यं न व्यवहरन्ति । भगवत्सहायैः पाण्डवैर्जये लब्धेऽपि पाण्डवानां प्राबल्यं व्यवहरन्ति चेति । सर्वं चेदं लक्ष्यानुरोधाद्व्यवस्थितम् ॥ ४८ ॥

'लुटः प्रथमस्य' ( २।४।८५ ) इति सूत्रे भाष्ये

स्वरभिन्नस्य प्राप्नुवन्विधिरनित्यो भवति ॥ ४९ ॥

इति पठ्यते । यत्र त्वेकस्यैव कार्यस्य परत्वं नित्यत्वं च तत्रेच्छयाऽन्यतरत्तदुभयं वा तस्य बलवत्त्वे नियामकमुल्लेख्यम् । अत एव तत्र तत्र

---

**तदाहेति** । अधिकाशाशयकमाहेत्यर्थः । एव च तत्प्रपञ्चभूतैवेयमिति भावः । **यस्य चेति** । कार्यस्येत्यर्थः ॥ ४७ ॥

एवेन प्रागुक्तप्रसङ्गव्यावृत्तिः । **गृह्यत इति** । तद्व्यवहारप्रयोजकत्वेनेति भावः । अपिस्ताद्विपरीतप्रागुक्तरूपसमुच्चायकः । अनयोर्न वाचनिकत्व किं तु लोकन्यायसिद्धत्वमित्याह—**सप्तम इति** । स्वमोर्नपुंसकादिति सूत्र इत्यर्थः । तत्र हि तत्कुलमित्यत्रात्वलुकोः प्राप्तौ परादत्वान्नित्यत्वाल्लुगित्युक्तेऽनित्यो लुक् । न हि कृतेऽत्वे प्राप्नोति । अमा भाव्यमित्युक्तं भाष्ये । **एतदुपेति** । उभयोपेत्यर्थः । **वालीति** । सत्सप्तमी निर्धारणे षष्ठी वा । भगवता, श्रीरामेण । वालिन इति पञ्चमी । व्यवहरन्ति, शूरमानिन इति शेषः । **भगवदिति** । वासुदेवेत्यर्थः । प्राबल्य, कौरवेभ्य इति शेषः । नन्वेवमप्यतिप्रसङ्गः सर्वेषा तदवस्थोऽत आह—**सर्वं चेदमिति** । कृताकृतेत्यारभ्य यदुक्तमित्यर्थः ॥ ४८ ॥

**प्रथमस्येतीति** । इत्यादिसूत्र इत्यर्थः । आदिनाऽऽद्युदात्तश्चेत्यादिसूत्रपरिग्रहः । श्वः कर्तेत्यादौ तास्यनुदात्तेदित्योपाद्य तस्य डादिभिर्विप्रतिषेधविचारे द्वयोर्नित्यत्वमुक्त्वा निघातस्यानित्यत्वमुक्तरीत्योक्त्वा डादीनामेवमनित्यत्वमुक्त तत्र भाष्ये । **स्वरभिन्नस्येति** । स्वरेण भिन्नस्येत्यर्थः । रूपवत्स्वरोऽपि श्रुतिभेदहेतुत्वाच्छब्दान्तरत्वमेव करोतीति भावः । विशेषमुभयसाधारणमाह—**यत्र त्विति** । तदुभयं, परत्वनित्यत्वोभयम् ।

---

१ क. °त्याद्युदात्तस्य । ह. °त्वाद्याद्युत° ।

परत्वान्नित्यत्वाच्चेति भाष्य उच्यते । वस्तुतस्तत्र परत्वादित्युक्तिरेकदेशिनः । स्पष्टं चेदं विप्रतिषेधसूत्रे कैयटे । 'णौ चङि' ( ७।४।१ ) इति ह्रस्वापेक्षया नित्यत्वान्तरङ्गत्वयुक्तद्वित्वस्य प्रथमतः प्रवृत्तौ नित्यत्वादित्येव भाष्य उक्तम् । एवं नित्यान्तरङ्गयोर्बलवत्त्वमपि यौगपद्यासंभव एवेति बोध्यम् ॥ ४९ ॥

**नित्यादप्यन्तरङ्गं बलीयोऽन्तरङ्गे बहिरङ्गस्यासिद्धत्वात् । तदाह—**

**असिद्धं बहिरङ्गमन्तरङ्गे ॥ ५० ॥**

अन्तर्मध्ये बहिरङ्गशास्त्रीयनिमित्तसमुदायमध्येऽन्तर्भूतान्यङ्गानि

---

तस्य, कार्यस्य । तत्र तत्रेत्यस्य भाष्य इत्यत्रान्वयः । तत्र, भाष्ये । **एकदेशिन इति ।** नित्यानित्ययोर्विप्रतिषेधासंभवादिति भावः । तदाह—**स्पष्टं चेदमिति** । तत्र हि कार्यमित्यत्रार्हार्थे कृत्यः करणयोग्यं कार्यं तुल्यबल च तथेति नित्यानित्योत्सर्गापवादान्तरङ्गबहिरङ्गेष्वस्य सूत्रस्याव्यापार इत्युक्त तेन । एव च तत्र नित्यत्वादित्येव वाच्यम् । यत्राप्युभयसंभवः प्रकारान्तरेण तत्रोक्तरीत्या विकल्पेनेष्टसिद्धावपि प्रथमोपस्थितत्यागो नोचित एव । तदाह—**णौ चेति** । भाष्ये, णौ चङीति सूत्रे । **एवमिति ।** परस्येवेत्यर्थः । बोध्यमित्यत्रान्वयः । यद्वा विशेषान्तरमाह—**एवमिति** । उक्तवदित्यर्थः ॥ ४९ ॥

अपिः परससुच्चायकः । यत्तु सीरदेवादयो नित्यादप्यन्तरङ्ग बलीय इति परत्वफलं न त्वपूर्वम् । अत एवान्तरङ्गबहिरङ्गयोरित्यस्य नाजानन्तर्य इति न निषेधः । अन्तरङ्गत्वात्तुको दीर्घस्य नित्यत्वात्प्राप्तावपि परत्वाद्दीर्घस्यैव प्राप्तेः । तन्न । युक्त्यन्तरस्यानुपदमेव वक्ष्यमाणत्वात् । तद्ध्वनयन्नाह—**अन्तरङ्ग इति** । कर्तव्य इति शेषः । बहिरङ्गस्य, जातस्य तत्कालप्राप्तिकस्य चेति शेषः । वाक्यार्थबोधे पदार्थधियो हेतुत्वादादौ तामाह—**अन्तरित्यादिनिरूपितमित्यन्तेन** । तत्राऽऽदावन्तःशब्दार्थमाह—**मध्य इति ।** कस्येत्याकाङ्क्षायामाह—**बहिरिति** । उपस्थितत्वादिति भावः । **शास्त्रीयेति** । तद्घटकेत्यर्थः । अन्तर्भूतानीति शेषपूरणम् । तत्त्व च पूर्वस्थितत्वात्परनिमित्ताभावादल्पत्वात्पूर्वोपस्थितत्वाद्वा । अत्र तृतीयं घटकत्वेन सख्यया वा । अन्त्यमपि प्रक्रियाक्रमेण प्रयोगीयोच्चारणक्रमेण वा । आद्यमप्येव द्विधा । निमित्तानीत्ययं निमित्तशब्दः स्थान्यादेर्विशेषणपरोऽपि । कार्यानुभववतस्तत्त्वेनानाश्रयणस्यान्यत्र विधिषु न हि कार्यीतिन्यायेन स्वीकारवदिहापि तस्य स्वीकारेण स्थान्यादेस्तत्त्वाभावेऽपि तद्विशेषणस्य तत्त्वेनाऽऽश्रयणाद्भाष्यसंमतत्वाच्च । यद्यपि गुणानामितिन्यायेनेह तदप्रवृत्त्या तस्यापि तद्विशेषणस्येवानाश्रयणे

---

१ ग. °र्विहितत्वाप्सदभा° । २ क. °त्त्वेनाऽऽश्र° ।

**निमित्तानि यस्य तदन्तरङ्गम्। एवं तदीयनिमित्तसमुदायाद्बहिर्भूताङ्गकं बहिरङ्गम्। एतच्च 'खरवसानयोः' (८।३।१५) इति सूत्रेऽसिद्धवत्सूत्रे च भाष्यकैयटयोः स्पष्टम्।**

**अत्राङ्गशब्देन शब्दरूपं निमित्तमेव गृह्यते शब्दशास्त्रे तस्यैव प्रधान-**

---

मानाभावात्तस्य तत्परत्वमपि सभवति तथाऽप्यनित्यतया गुणानामित्यस्याप्रवृत्तिः। न हि कार्यीत्यस्य लोकसिद्धत्वं च। इदमनुपदमेव स्फुटी भविष्यति। तत्र सर्वान्त्यपक्षेणै तत्त्वं युगपत्प्रवृत्तौ पूर्वप्रवृत्तिनियामकमेव न तु परत्वाज्जातस्य बहिरङ्गस्य तादृशेऽन्तरङ्गे कार्येऽसिद्धतानियामकम्। तावतेष्टसिद्धावपि लोकतस्तथैव लाभात्। तत्र कृते पुनर्बहिरङ्गप्राप्तौ भवत्येव तत्। अन्यथा तु न तत्। आद्यपक्षेण तु तत्त्व तत्रैवासिद्धतानियामकम्। आङ्ग्रहणात्तथैव लाभात्। अत एव तदनन्तर बहिरङ्ग नैव। एव चेदमुभयं युगपत्प्राप्तिविषयकम्। द्विविधसर्वाद्यपक्षेण तत्त्व तु क्वचित्पूर्वप्रवृत्तिनियामक क्वचिदसिद्धतानियामकम्। अत एवेदं जातयौगपद्यस्वमात्रप्राप्तिकत्वरूपात्रितयाविषयकम्। अत एव तदनन्तरं क्वचित्तत्प्रवृत्तिः क्वचिन्न। एतल्लाभस्तु लोकतो ज्ञापकाच्च यथायथ बोध्यः। लक्ष्यानुरोधेन सर्वेषां व्यवस्थेति न दोषः क्वापि। एतदन्यपक्षद्वये तु तत्त्वमसिद्धतानियामक जातस्यैवेति पुनर्बहिरङ्गस्य प्रसङ्ग एव न। ऊठ्ग्रहणात्तथैव लाभात्। एव चेद द्वयं युगपत्प्राप्तिविषयक न। तत्राऽऽद्य पक्षः पट्व्येत्यादौ क्रमेणान्वाख्याने। अन्यलक्ष्याण्यग्रे द्रष्टव्यानि। द्वितीयः पचावेदमित्यादौ। तृतीयाद्यः स्योन इत्यादौ। तद्द्वितीयो विश्वौह इत्यादौ। तुरीयाद्यः खट्वोढ इत्यादौ। तदन्त्यो विभज्यान्वाख्याने पट्व्येत्यादौ प्रादुद्रुवदित्यादौ चेति बोध्यम्। अङ्गशब्दः सञ्ज्ञिविशेषस्य शरीरावयवस्य वा न वाची किं तूपकारकवाची तदाह—**निमित्तानीति**। बहुवचन लक्ष्याभिप्रायम्। बहुव्रीहिणा सर्वलिङ्गत्वमनयोः सिद्धम्। **एवमिति**। उक्तरीत्येत्यर्थः। **तदीयेति**। अन्तरङ्गशास्त्रीयेत्यर्थः। इदं शेषपूरणलभ्यम्। **बहिरिति**। बहिर्भूतान्यङ्गानि यस्येत्यर्थः। बहिःशब्दार्थो बहिर्भूतत्व तच्चोक्तवैपरीत्येन। एव च परस्परापेक्षया व्याप्यनिमित्तकमन्तरङ्ग व्यापकनिमित्तक च बहिरङ्गमित्युत्सर्गः। अल्पनिमित्तक बहुनिमित्तक चेति यावत्। उक्तार्थं समूलयति—**एतच्चेति**। उक्तार्थद्वयमित्यर्थः। **खरेति**। तत्र ह्यन्तरङ्ग बहिरङ्गमिति प्रतिद्वन्द्विभाविनावेतावर्थावित्युक्तम्।

निमित्तत्वस्यार्थादावपि सत्त्वेन तत्कृतातिप्रसङ्ग निराचष्टे—**अत्राङ्गेति**। परिभाषायामित्यर्थः। **निमित्तमेवेति**। सप्तम्याद्यन्तोपात्तप्रयोगस्थशब्दरूपमेव निमित्तमित्यर्थः। तस्य, शब्दस्य। एवं च प्रधानाप्रधानयोरितिन्यायेन सामान्यरूपेण विशेषग्रहणमिति

---

१ क. °द्भुत्वाभ्य। २ घ. °ग तत्त्वात्°। ३ घ. ङ. °द्वन्द्वभा°।

स्वात् । तेनार्थनिमित्तकस्य न बहिरङ्गत्वम् । अत एव 'न तिसृचतसृ' (६।४।४) इति निषेधश्चरितार्थः । अन्यथा स्त्रीत्वरूपार्थनिमित्तकतिस्रपेक्षयाऽन्तरङ्गत्वात्त्रयादेशे तदसंगतिः स्पष्टैव । अत एव त्रयादेशे स्रन्तस्य प्रतिषेध इति स्थानिवत्सूत्रस्थभाष्यवार्तिकादि संगच्छते । एतेन गौधेरः पचेदित्यादावेयादीनामङ्गसंज्ञासापेक्षत्वेन बहिरङ्गतयाऽसिद्धत्वाद्वलि लोपो न स्यादिति परास्तम् । एयादेशादेरपरनिमित्तकत्वेनान्तरङ्गत्वाच्च ।

ननु 'येन विधिस्तदन्तस्य' (१।१।७२) इति सूत्रे भाष्य 'इको यणचि' (६।१।७७) इत्यादावपि तदन्तविधौ स्योन इत्यत्रान्तरङ्गत्वाद्यणो गुणबाधकत्वमिष्यते तन्न सिध्येत्, ऊनशब्दमाश्रित्य यणा-

---

भावः । तेन, तद्ग्रहणेन । रङ्गत्व, परिभाषाप्रवृत्त्युपयोगीति शेषः । अत्रार्थे पाणिनिसंमतिं ध्वनयितुमाह—**अत एवेति** । तस्य तत्त्वानङ्गीकारादेवेत्यर्थः । अन्यथा, तस्य तत्त्वाङ्गीकारे । तदसगतिः, निषेधवैयर्थ्यम् । एव पाणिनिसमत उक्तार्थे भाष्यवार्तिकारूढत्वमप्याह—**अत एवेति** । उक्तोऽर्थः । **त्रयेति** । त्रेस्त्रय इति त्रयादेशे कार्ये स्रन्तस्य स्थानिवत्त्व नेति वार्तिकार्थः । न चैव समानाधिकरणसमासाद्बहुव्रीहिरिति वार्तिकस्य विप्रतिषेधपरतयोक्तस्य खण्डनाय स्वपदार्थे कर्मधारयोऽन्तरङ्गोऽन्यपदार्थे बहुव्रीहिर्बहिरङ्ग इति वर्णो वर्णेनेति सूत्रे भाष्योक्त विरुध्येतेति वाच्यम् । तथा सत्यपीष्टसिद्ध्यभावेन विप्रतिषेधपरता संखण्ड्येष्टिपरतायास्तदग्रे व्यवस्थापितत्वेनैतदशे सूक्ष्मेक्षिकाया अकरणेन तस्यैकदेशयुक्तित्वादिति भावः । **एतेनेति** । सप्तम्याद्यन्तोपात्तप्रयोगस्थशब्दरूपनिमित्तस्यैवात्र ग्रहणेनेत्यर्थः । पचेदित्यादाविति पाठः । पचेरन्नित्यपपाठः । सीयुटोऽनङ्गाधिकारस्थत्वात् । प्रसिद्धत्वाद्भवेदित्यस्य त्याग । **एयादीनि** । आदिना इयादेशादिपरिग्रहः । बहुवचन लक्ष्याभिप्रायम् । **परास्तमिति** । सज्ञाया. प्रयोगस्थशब्दरूपत्वाभावादिति भाव. । वैपरीत्यमेव प्रत्युतास्तीत्याह—**एयादेशादेरिति । रपरेति** । तथा च प्रागुक्तद्वितीयप्रकारेण तत्त्व बोध्यम् ।

ननु तद्वत्सज्ञाकृतमपि तत्त्व भाष्याद्यारूढमिति कथमत्र तस्यैव ग्रहणमित्याशयेन शङ्कते—**नन्विति । इको यणिति** । शब्दानुशासनप्रस्तावाच्छब्दरूप विशेष्यमादायेति भाव. । इष्यते, सिद्धान्त इति शेष. । विप्रेतिसूत्रे भाष्योक्तेरिति भावः । इदमनुपदमेव स्फुटी भविष्यति । **तन्नेति** । वर्णमात्राश्रयत्वेन वार्णस्यान्तरङ्गत्वमिष्ट तदपि चेत्समुदायाश्रित तदेष्टसिद्धिर्न स्यादिति भावः । तत्र हेतुमाह—**ऊनेति** । अस्य यत इत्यादिः । तदादिविधिरपि स्यादत्र पक्षे । अनेन यणो बहिरङ्गत्व गुणस्यान्तरङ्गत्वं तृती-

देशो नशब्दमाश्रित्य गुण इत्यन्तरङ्गत्वाद्गुण एव स्यादित्युक्तम्। अत्र कैयटः—सिवेर्बाहुलकादौणादिके नप्रत्यये गुणवलोपोठां प्रसङ्गे ऊडपवादत्वाद्वलोपं बाधते गुणं त्वन्तरङ्गत्वाद्बाधते। गुणो ह्यङ्गसंबन्धिनीमिग्लक्षणां लघ्वीमुपधामार्धधातुकं चाऽऽश्रयति। ऊठ्तु वकारान्तमङ्गमनुनासिकादिं च प्रत्ययमित्यल्पापेक्षत्वादन्तरङ्गः। तत्र कृते यण्गुणौ प्राप्नुत इति। एवं च संज्ञापेक्षस्यापि बहिरङ्गत्वं स्पष्टमेवोक्तमिति चेत्।

न। तदन्तविधावपि बहुपदार्थापेक्षत्वरूपबहिरङ्गत्वस्य गुणे सत्त्वेन तत्र दोषकथनपरभाष्यासंगतेः। बहिरङ्गान्तरङ्गशब्दाभ्यां बह्वपेक्षत्वाल्पापेक्षत्वयोः शब्दमर्यादयाऽलाभाच्च। तथा सत्यसिद्धं बह्वपेक्षमल्पापेक्ष इत्येव वदेत्। अत एव विप्रतिषेधसूत्रे भाष्ये गुणाद्यणादेशोऽन्तरङ्गत्वादित्यस्य स्योन इत्युदाहरणं न तु गुणादूडन्तरङ्गत्वादित्युक्तम्। त्वद्रीत्या तदपि वक्तुमुचितम्। प्राथम्यात्तदेव वा वक्तुमुचितम्। मम

---

याद्यपक्षेण प्रदर्श्यते। गुण एव, पुगन्तेत्यनेन। **गुणवेति**। स्थानिक्रमेण गुणस्य पूर्वनिपात.। बाधत इत्यस्य पुनरुक्तिरनुषङ्गाकल्पनजलाञ्जलाय। तयोस्तत्त्वे आह—**गुणो ह्यङ्गेति**। इकारस्येति शेष.। सञ्ज्ञाया अप्यत्र तत्त्वेन ग्रहणे प्रकारमाह—**त्यल्पापेक्षेति**। गुण पञ्चकाश्रय ऊठ्तु चतुष्काश्रय इति विवेक.। तत्र कृते, ऊठि कृते। प्राप्नुत इत्यग्र ऊनशब्दमित्याद्युक्तिरनुसंधेया। प्रकृतमाह—**एवं चेति**। तथादोषोक्तौ चेत्यर्थः। प्रसङ्गादन्यदपि निराकर्तुमाह—**स्यापीति**। अपिर्बहुपदार्थापेक्षमसमुच्चायक।

**तदन्तेति**। एव सञ्ज्ञादिबहुपदार्थापेक्षत्वेन तत्त्वाङ्गीकार इत्यादि। **बाह्विति**। उक्तरीत्या पदार्थपञ्चकापेक्षत्वात्। यणस्त्विगन्ताजादिशब्दद्वयमात्रापेक्षत्वमित्यन्तरगत्वामिति भाव.। तत्र, तदन्तविधौ। **दोषेति**। उक्तरीत्या गुण एव स्यादिति दोषेत्यर्थ। इदं चाभ्युपेत्य तदुक्तमन्तरङ्गत्वमुक्तम्। वस्तुतस्तदेव नेत्याह—**बहिरङ्गेति**। ननु तत्तात्पर्येण लाक्षणिकप्रयोगोऽत आह—**तथेति**। तत्तात्पर्येण प्रयोगे सतीत्यर्थः। **इत्येवेति**। निर्बीजलक्षणानौचित्यादिति भाव.। उक्तार्थं द्रढयति—**अत एवेति**। तथातदर्था भावादेवेत्यर्थः। **उदाहरणमिति**। दत्तमिति शेष.। **न त्विति**। तत्रैवेति शेषः। **ऊडन्तरङ्गत्वादित्युक्तमिति**। अन्तरङ्ग बलीय इतिपरिभाषाफलकथनावसर इति भावः। त्वद्रीत्या, कैयटरीत्या। **उचितमिति**। तथा तयोस्तत्त्वयो सत्त्वादिति भाव.। ननूपलक्षण तत्तस्यापीत्यत आह—**प्राथम्यादिति**। तेन तस्यैवोपलक्षणतया ग्रहणसंभवात्। **तदेवेति**। तावताऽपि च तस्याः सफलत्वसिद्धेरिति भावः। **मम त्विति**।

---

१ ङ. °वतेव त°।

त्वन्तरङ्गपरिभाषया तद्वारणासंभवात्तन्नोक्तम् । किं च सिद्धान्ते नित्यत्वाद्गुणात्पूर्वमूठ्, गुणस्तूठि यणा बाधितत्वादनित्यः । ऊनशब्दमाश्रित्येत्यादिभाष्येण च परिभाषायामङ्गशब्देन सप्तम्याद्यन्तोपात्तं शब्दरूपं निमित्तमेव गृह्यत इति स्पष्टमेवोक्तम् । यत्तु कैयटेन तदन्तविधिपक्षे परत्वाद्गुणः प्राप्नोतीत्युक्तं तत्तूनशब्दमाश्रित्येत्यादिभाष्यासंगत्या चिन्त्यम् ।

वलि लोपेऽन्तरङ्गपरिभाषा न प्रवर्तत इति तु न युक्तम् । तत्सूत्रभाष्य एव व्रश्चादिषु लोपातिप्रसङ्गमाशङ्क्योपदेशसामर्थ्यान्न । न च वृश्चतीत्यादौ चारितार्थ्यं, बहिरङ्गतया संप्रसारणस्यासिद्धत्वेन पूर्वमेव

---

अस्य मत इति शेष. । **तद्वारणेति** । ऊठा गुणवारणेत्यर्थः । संज्ञाकृतबहिरङ्गत्वसाधकतथार्थानाश्रयणेन समत्वादिति भावः । तत्, प्राथमिकम् । ननु भाष्यान्यथानुपपत्त्या कैयटोक्तमावश्यकमत आह—**किं चेति** । यत इति शेष. । सिद्धान्त इत्यनेन तदा तदसिद्धिरपि दोष इति भाष्याशय इति सूचितम् । **यणेति** । यस्य च लक्षणान्तरेण निमित्तं विहन्यते तदप्यनित्यमिति न्यायेनेति भावः । उक्तार्थे तद्भाष्यविरोधमप्याह—**ऊनेति** । यत इत्यादि · । **ण चेति** । उक्तमित्यग्रे चो योज्यः । द्यन्तोपात्तामिति पाठः । आदिना पञ्चम्यादिपरिग्रह. । अयं भाव·—उक्तरीत्याऽङ्गशब्दो निमित्तपरो न तु स्थान्यादिपरोऽपि । निमित्तत्व चात्र शास्त्रे न हीतिन्यायेन विधिषु यथा कार्यानुभवविशिष्टमात्रस्य नाङ्गी क्रियतेऽन्यस्य त्वङ्गी क्रियते तथाऽत्रापीति न स्थानिन आगामिनश्च तत्त्वेन ग्रहणमन्यस्य तद्विशेषणस्य तु तत्त्वेन ग्रहणमस्त्येवाग्रहणे मानाभावात् । यद्यपि गुणानामिति न्यायेन प्रकृते तदप्रवृत्त्या परादिनिमित्तवत्स्थान्यादेरपि ग्रहण सुवच तथाऽप्यनित्यत्वाद्गुणानामित्यस्याप्रवृत्ति । न हि कार्यीत्यस्य लोकासिद्धत्वं चेति स्थान्यादिभिन्नस्य सर्वस्य ग्रहणम् । * [ अत एवान्तरङ्गानपीतिज्ञापकपरभाष्यसगाति । तथा च तत्र पक्षे यण्निमित्तोनशब्दावयवत्वेन नशब्दस्य ततो ] बहिष्ट्वाभाव । गुणनिमित्तनशब्दादूनशब्दस्य बहिर्भूतोकारघटितत्वात्तन्निमित्तत्वाद्यणो बहिरङ्गत्वमिति । **परत्वादिति** । तदा द्वयोः समत्वादिति भावः । **भाष्येति** । अन्तरङ्गत्वबहिरङ्गत्वबोधकभाष्येत्यर्थः ।

गौधेरादौ केनचिदुक्तसमाधिप्रकारस्य तद्विषयतामात्रेणात्रापि सत्त्वात्कैयटश्चिन्त्य एवेत्याशयिका कस्यचिदुक्तिं खण्डयति—**वलीति** । अनित्यत्वादिति भावः । **तत्सूत्रेति** । लोपो व्योरिति सूत्रेत्यर्थ. । **श्चादिष्विति** । आदिना व्रीह्यादिग्रहणम् । स्यबन्तस्योक्ता-

---

* धनुश्चिह्नान्तर्गतो ग्रन्थो घ पुस्तकस्थः ।

---

१ ग. 'श्रमीप° । २ ङ. तद्वद्ध° । ३ क. ङ. °णसतो व° ।

तत्प्राप्तेरिति भाष्योक्तेः । यत्तु नलोपस्य षट्संज्ञायामसिद्धत्वात्पञ्चेत्यत्र 'न षट्' (४ । १ । १०) इति निषेध इति तच्चिन्त्यम् । नलोपस्य हि पदसंज्ञासापेक्षत्वेन बहिरङ्गत्वं वाच्यम् । तच्च न । संज्ञाकृतबहिरङ्गत्वस्यानाश्रयणात् । पञ्चेत्यत्र निषेधस्तु स्त्रियां यत्प्राप्नोति तन्नेति व्याख्यानसामर्थ्येन भूतपूर्वषट्त्वमादायेति बोध्यम् । अत एव कृति तुग्ग्रहणं चरितार्थम् । वृत्रहभ्यामित्यादौ पदत्वनिमित्तकत्वेऽपि नलोपस्य बहिरङ्गत्वाभावात् । भ्यामः पदसंज्ञानिमित्तत्वेऽपि नलोपस्य तन्निमित्तकत्वाभावात् । परम्परया निमित्तत्वमादाय बहिरङ्गत्वाश्रयणे तु न मानम् । ध्वनितं चेदं 'नलोपः सुप्' (८ । २ । २) इति सूत्रे

---

न्वयः । आदिना वृक्णादिपरिग्रह. । संप्रसारणस्य, तदादेः । तत्प्राप्ते', वलोपप्राप्तेः । उक्तकैयटोक्तिवन्नलोपः सुप्स्वरेतिसूत्रस्थकैयटोक्तिमपि खण्डयति—**यत्त्विति । असिद्धत्वादिति** । बहिरङ्गत्वेनेति शेष' । **निषेध इति** । टाप इति भावः । एवमग्रेऽपि । तच्चिन्त्यमित्यस्य दुर्वचत्वादिति शेष' । तत्त्वमेवाऽऽह—**नलोपस्य हीति** । नन्वेवं पञ्चेत्यत्र टाबापत्तिस्तदवस्थैव । न च नलोप. सुप्स्वरेति निर्वाह । षट्सञ्ज्ञाया नलोपासिद्धत्वस्याफलत्वस्य भाष्ये तत्रैव सूत्र उक्तत्वात् । अत आह—**पञ्चेत्यत्रेति** । संज्ञाकृतत्वाभावे[1] सूत्रसमतिमप्याह—**अत एवेति** । उक्तोऽर्थः । चारितार्थ्ये युक्तिमाह—**वृत्रेति** । नलोपेत्यस्य मध्यमणिन्यायेनान्वयः । **भावादिति** । तत्कृततत्त्वानाश्रयणात् । अन्यथा क्विन्निमित्तके तुकि पदत्वहेतुकनलोपस्य बहिरङ्गासिद्धत्वेनैव सिध्या तदानर्थक्यं स्पष्टमेवेति भावः । ननु नलोपस्य न सञ्ज्ञाकृत तत्त्व किं तु क्विपो बहिर्भूतभ्यान्निमित्तकत्वेनात आह—**भ्याम इति । पदेति** । तत्पुरुषः । **तन्निमीति** । भ्यान्निमीत्यर्थः । साक्षादिति भावः । नन्वेवमपि परम्परया तत्त्वमस्त्येवात आह—**परम्परयेति** । नलोपे भ्याम इति शेषः । नन्वेनमप्यप्रतिषिद्धमितिन्यायेन तदङ्गीकारः कृतितुग्ग्रहणं प्रत्याख्यात च परम्परया तत्त्वमादाय तत्त्वाश्रयणस्य क्वचिदावश्यकत्व चात आह—**ध्वनितमिति** । तत्र हि तुग्विधौ वृत्रहभ्यामिति फलमुक्त्वा तुग्विधौ चोक्तं किमुक्तं संनिपेत्यादिना कृन्मेजन्त इति सूत्रे ग्रामणिकुलमित्यादौ तुगभावफलकत्वेनोक्तया सनिपातपरिभाषया खण्डित न तु तत्रैव सञ्ज्ञाविधौ पञ्च ब्राह्मण्य इत्यादौ टाब्निषेधरूपप्रयोजनस्य तुग्विधौ वृत्रहभ्यामित्यादिप्रयोजनस्य च खण्डिकात्वेन कैयटोक्तयाऽनया । तथा चायमेव तदाशय. । तथा च क्वचिद्भाष्यादिप्रामाण्यात्तदङ्गीकारेऽप्यत्र भाष्यप्रामाण्यात्तदनङ्गीकार[2]

---

१ ग. °वे सूत्रमते सू° । २ ख. ङ. घ. °भ्याम् हेतुकत्वे° ।

माष्य इति तत्रैव भाष्यप्रदीपोद्द्योते निरूपितम् ।

अन्तरङ्गे कर्तव्ये जातं तत्कालप्रासिकं च बहिरङ्गमसिद्धमित्यर्थः । वृश्चत्यादिषु पदसंस्कारपक्षे समानकालत्वमेव द्वयोरिति बोध्यम् । एतेनान्तरङ्ग बहिरङ्गाद्बलीय इति परिभाषान्तरमित्यपास्तम् । एनामाश्रित्य विप्रतिषेधसूत्रे भाष्ये तस्याः प्रत्याख्यानाच्च । अन्तरङ्गशास्त्रत्वमस्या लिङ्गम् ।

इयं च त्रिपाद्यां न प्रवर्तते त्रिपाद्या असिद्धत्वात् । अस्यां च वाह ऊठ्सूत्रस्थमूठ्ग्रहणं ज्ञापकमित्येषा सपादसप्ताध्यायीस्था । अन्यथा संप्रसारणमात्रविधानेन लघूपधगुणे 'वृद्धिरेचि' (६।१।८८) इति वृद्धौ विश्वौह इत्यादिसिद्धेस्तद्वैयर्थ्यं स्पष्टमेव । सत्यां ह्येतस्यां बहिरङ्ग-

---

इति भावः । एतेनान्यथा[1] तत्र कैयटेनोक्तं चिन्त्यम् । तदाह—**तत्रैवेति** । नलोप इति सूत्र एवेत्यर्थः ।

एव पदार्थं निश्चित्य वाक्यार्थमाह—**अन्तरङ्ग इति** । नन्वेव लोपो व्योर्वलीतिसूत्रस्थप्रागुक्तभाष्यविरोधः । तत्र हि वलोपस्योपदेश एव प्राप्त्या तदानी सप्रसारणादेर्जाततत्कालप्रासिकत्वयोरभावेनासिद्धत्वासमवादत आह—**वृश्चत्यादीति** । आदिना पट्व्यादिपरिग्रहः । एव च तत्पक्षाशयकमेव[2] तादिति न विरोध इति भाव. । कैयटप्रभृतिदीक्षितान्तोक्तिं खण्डयति—**एतेनान्तेति** । अर्थद्वयस्यानयैव क्रोडीकारादफलत्वेनेत्यर्थः । नन्वर्थभेदाच्छब्दभेदे तद्भेदः फलित एवात आह—**एनामिति** । असिद्धमितीमामित्यर्थः । तस्याः, अन्तरङ्गमित्यस्याः । तथा[3]चोत्तरमुनिप्रामाण्यात्तथैवोचितमिति भावः । परिभाषाया लिङ्गवत्त्वनियमादाह—**अन्तरङ्गेति** ।

कैयटाद्यर्वाचीनान्तोक्तिं न चेत्यादिना खण्डयितुं सिद्धान्तमादावाह—**इयं चेत्यादिदिगित्यन्तेन** । नन्वस्या न सपादसप्ताध्यायीस्थत्वमिति हेत्वसिद्धिरत आह—**अस्यां चेति** । तत्त्वमुपपादयति—**अन्यथेति** । एतदभाव इत्यर्थः । **संप्रेति** । वसोः सप्रेत्यतोऽनुवृत्त्येत्यादि । मात्रपदेनोठो व्यावृत्तिः । लघूपधगुणे हेतुरयम् । परिभाषाङ्गीकारे तत्सार्थक्यमाह—**सत्यामिति** । ह्येतस्यामिति पाठः । हिस्त्वर्थे । **बहिरङ्गेति** । न च भसज्ञाकृत तत्त्व वाच्यम् । तच्च न । तद्धि नाऽऽश्रीयत इति कथ तत्त्वमिति वाच्यम् । ज्ञापकपरभाष्यप्रामाण्याद्यजादिप्रत्ययनिमित्तभत्वनिमित्तकत्वेन परम्परया यजादिप्रत्ययनिमित्तकत्वाश्रयणेन तत्त्वस्यात्र सुवचत्वात् । यथैव पूर्वापराविरोधस्तथाऽनुपदमेवोक्तम् । न चैवमपि परनिमित्तकत्वस्य तुल्यत्वात्कथ तत्त्वम् । कप्रत्ययावधीत्यादिविशेषणबाहुल्येन तस्या-

---

[1] घ. 'नानया त°। [2] घ. °क्षाश्रय°। [3] ङ. थाचेत्तर°।

संप्रसारणस्यासिद्धत्वाल्लघूपधगुणो न स्यात् । न च 'पुगन्त' (७ । ३ । ८६) इति सूत्रे निमित्तमिको विशेषणमत एव भिनत्तीत्यादौ न गुणः, एवं च 'नाजानन्तर्ये' (प० ५१) इति निषेधात्कथं परिभाषाप्रवृत्तिरिति वाच्यम् । प्रत्ययस्याङ्गांश उत्थिताकाङ्क्षत्वेन तत्रैवान्वयात् । पुगन्तेत्यादौ कर्मधारयाश्रयणेन प्रत्ययपराङ्गावयवलधूपधारूपेको गुण इति 'इको गुणवृद्धी' (१ । १ । ३) इति सूत्रभाष्यसंमतेऽर्थे भिनत्तीत्यादावदोषाच्च । अकारान्तोपसर्गेऽनकारान्ते चोपपदे वहेर्वाहेर्वा ण्विविचावनभिधानान्न स्त एव । वार्यूह इत्यादि तूहतेः क्विपि बोध्यम् । धातूनामनेकार्थत्वान्नार्थासंगतिः । प्रौह इत्याद्यसाध्वेव वृद्धेरप्राप्तेः । अस्योहस्याऽऽनर्थक्यान्न 'प्रादूहोढो' (६ । १ । ८९, ३ वा० ) इत्यस्यापि प्रवृत्तिः ।

---

धिकनिमित्तकत्वेन सख्याकृतनत्त्वेन तत्त्वसत्त्वात् । उभयथाऽपि परास्थितत्वेन तत्त्वाच्च । तुरीयस्य तु नाय विषयः । युगपदन्वाख्यानेऽपि कार्ययोर्यौगपद्याभावात् । उभयोर्यौगपद्य एव तद्विषयताङ्गीकारात् । **न स्यादिति** । तथा च वृद्ध्यभावे रूपासिद्धिरिति वृद्ध्यर्थमूठ्ग्रहणमिति साफल्यमिति भावः । नाजेत्यंशे सिद्धान्तरीत्याऽन्यांशे प्राचीनरीत्या तत्त्व विघटयति—**न चेति** । निमित्त, सार्वधातुकादिकम् । **न गुण इति** । येन नाव्यवधानमिति न्यायादिति भावः । **एवं चेति** । तस्य तद्विशेषणत्वेनाचोऽन्यानन्तर्यसत्त्वे चेत्यर्थः । **तत्रैवेति** । अङ्ग एवेत्यर्थः । तथा चाङ्गस्य तदानन्तर्यसत्त्वेऽपि नाच इति न दोष इति भावः । नन्वेव तत्पराङ्गावयवस्येको गुण इत्यर्थे भिनत्तीत्यादौ दोष एवेति तदन्यथानुपपत्त्या तदङ्गीकार आवश्यक इत्ययं दोषस्तदवस्थ एवात आह—**पुगन्तेत्येति** । प्रकृतमाह—**कर्मेति** । लघ्वी चासावुपधा चेतीत्यर्थः । **प्रत्ययेति** । सार्वधातुकादीत्यर्थः । इदं चाङ्गविशेषणम् । नन्वेवमपि प्रौहः शाल्यूह इत्यादिसिद्ध्यर्थमूठ्विधान सफलम् । आद्येऽन्यथा पररूपप्रसङ्गोऽन्त्य ऊरूपदीर्घश्रवणं न स्यात् । एव च कथ ज्ञापकतेत्यत आह—**अकारान्तोपेति** । **नकेति** । उपसर्गे तद्भिन्ने चेत्यर्थः । वाशब्दः समुच्चये । वा स्याद्विकल्पोपमयोरेवार्थेऽपि समुच्चय इति कोशात् । यथासख्यमन्वयः । ज्ञापकपरभाष्यप्रामाण्यादिति भावः । नन्वेव वार्यूह इत्याद्यसिद्धिरत आह—**वारिति** । **ऊहतेरिति** । वह्यर्थकादिति भावः । तदाह—**धातूनामिति** । नन्वेवं प्रौह इत्याद्यपि स्यात्तथाऽत आह—**प्रौह इति** । **वृद्धेरिति** । ऊठोऽभावादिति भावः । नन्वेवमपि प्रादूहोढेत्यनेन वृद्धिः सुलभाऽत आह—**अस्योहेति** । शसन्तैकदेशस्येत्यर्थः । तस्य समुदायाद्विधेस्तस्य तत्त्वस्य कथमप्यप्राप्तेरिति भावः ।

---

न च कार्यकालपक्षे त्रिपाद्यामेतत्प्रवृत्तिर्दुर्वारेति वाच्यम्। पूर्वं प्रति परस्यासिद्धत्वादन्तरङ्गाभावेन पूर्वस्य तन्निरूपितबहिरङ्गत्वाभावात्तया तस्यासिद्धत्वप्रतिपादनासंभवात्। न चानया पूर्वस्यासिद्धत्वात्तदभावेन तं प्रति परासिद्धत्वं 'पूर्वत्र' (८।२।१) इत्यनेन वक्तुमशक्यमिति वाच्यम्। एवं हि विनिगमनाविरहादुभयोरप्यप्रवृत्त्यापत्तेः। किं च पूर्वत्रेत्यस्य प्रत्यक्षत्वेन तेनाऽऽनुमानिक्या अस्या बाध एवोचितः। अतः कार्यकालपक्षेऽपि त्रिपाद्यामस्या अनुपस्थितिरेव। अत एव कार्यकालपक्षमेवोपक्रम्योक्तयुक्तीरुक्त्वाऽतोऽयुक्तोऽयं परिहारो न वा बहिरङ्गलक्षणत्वादितीत्युक्तं विसर्जनीयसूत्रे भाष्ये सिद्धान्तिना। त्रिपादीस्थेऽन्तरङ्गे कर्तव्येऽयं परिहारो न युक्त इति तदर्थः। किं तु वचनमेवाऽऽरब्धव्यमिति तदाशयः। अत एव निगाल्यत इत्यादौ लत्वार्थं तस्य दोष

---

प्रागुक्तं सर्वं यथोद्देशपक्षे न कार्यकालपक्ष इति[1] कैयटाद्युक्तिं खण्डयति—**न चेति**। तदसिद्धत्वरूपहेत्वभावादिति भावः। एतत्प्रवृत्ति, असिद्धमित्यस्याः प्रवृत्तिः। **पूर्वमिति**। पूर्वत्रासिद्धमित्यनेनेति भावः। तया, तत्रोपस्थितयाऽनया। तस्य, बहिरङ्गस्य पूर्वस्य। चानया, असिद्धं बहिरित्यनया। **एवं हीति**। द्वाभ्यां मिथः प्रवृत्तिप्रतिबन्धे क्रियमाणे हीत्यर्थः। अन्यतरस्य तत्त्वस्येष्टत्वेऽप्यन्यतरस्यानिष्टत्वादाह—**आपत्तेरिति**। एव तदभावमभ्युपेत्योक्तम्। प्रत्युत विनिगमकमस्तीत्याह—**किं चेति**। यत इति शेषः। **प्रत्यक्षेति**। सूत्रेषु पाठाच्छ्रावणत्वेनेत्यर्थः। तेन, पूर्वत्रेत्यनेन। अस्या ज्ञापकसिद्धत्वेनाऽऽनुमानिकीत्वम्। उपसंहरति—**अत इति**। हेतुद्वयादित्यर्थः। अपिर्यथोद्देशपक्षसमुच्चायकः। एवमुक्तेऽर्थे भाष्यसंमतिमप्याह—**अत एवेति**। उभयत्राप्येतदनुपस्थितेरिष्टत्वादेवेत्यर्थः। एवेन यथोद्देशपक्षव्यावृत्तिः। उपक्रम्येत्यनेनोपसंहारस्य यथोद्देशपरत्वं निरस्तम्। तयोरैकरूप्यस्यौचित्यात्। क्तयुक्तीः पूर्वं प्रति, एवं हि, किंचेतिप्रागुक्तयुक्तीरित्यर्थः। अत इत्यारभ्य भाष्यमुपसंहारपरं युक्तित्रयादिति तदर्थः। **विसर्जेति**। खरवसानयोरितिसूत्र इत्यर्थः। एकदेश्युक्तत्वनिरासायाऽऽह—**सिद्धान्तीति**। **न युक्त इति**। सयोगान्तस्य रदाभ्यामित्यादौ यत्रयत्रोक्तः स सर्वो न युक्त इत्यर्थः। **वचनमिति**। एकवचनं प्रकृताशयेन जातौ वा। वचनानी[3]त्यर्थः। तानि च विसर्जनीयोऽनुत्तरपद इत्यादीनि बोध्यानि। उक्तस्य सिद्धान्तभाष्याशयत्वे गौरवं परिहर्तुमाह—**अत एवेति**। तत्रैतदसंचारादेवेत्यर्थः। **लत्वेति**। अचीति वा लत्वे-

---

१ क. °ति ता कै°। २ घ इय वा। अन°। ३ ङ. वादीनि।

इति वचनमेवाऽऽरब्धम्। अन्यथाऽन्तरङ्गत्वाण्णिलोपात्पूर्वं वैकल्पिकलत्वे तद्वैयर्थ्यं स्पष्टमेव। येऽपि लक्ष्यानुरोधादानुमानिक्याऽप्यन्तरङ्गपरिभाषया प्रत्यक्षसिद्धस्य पूर्वत्रेत्यस्य बाधं वदन्ति तेऽपि लक्षणैकचक्षुर्भिर्नाऽऽदर्तव्या इति दिक्।

अत एव 'ओमाङोश्च' (६।१।९५) इत्याङ्ग्रहणं चरितार्थम्। तद्धि खट्वा आ ऊढेत्यत्र परमपि सवर्णदीर्घं बाधित्वाऽन्तरङ्गत्वाद्गुणे कृते वृद्धिप्राप्तौ पररूपार्थम्। साधनबोधकप्रत्ययोत्पत्त्यनन्तरं पूर्वं धातोरुपसर्गयोगे पश्चात्खट्वाशब्दस्य समुदायेन योगाद्गुणस्यान्तरङ्ग-

---

स्यर्थः। **आरब्धम्**। वार्तिककृतेति शेषः। अन्यथा तत्रैतत्प्रवृत्तौ। एवं च प्रामाणिकं गौरवं न दोषायेत्यर्थः। कैयटाद्युक्तिं खण्डयति—**येऽपीति**। तथा च युक्त एवायं परिहार इति भावः पूर्वपक्षस्य। वस्तुतस्तु प्रत्यक्षस्य प्राबल्यात्तथा वक्तुमेवाशक्यम्। एतेन लक्ष्यैकचक्षुषा तदादरो युक्त इत्यपास्तम्। उक्तयुक्तेः। भगवदतिरिक्ते तत्त्वाभावात्। शास्त्रस्यास्मदादीन्प्रति प्रवृत्तेश्च। एव च तथा हरदत्ताद्यर्वाचीनान्तोक्तिस्तत्र तत्रासङ्गतैवेति बोध्यम्। तदाह—**दिगिति**।

ननूक्तज्ञापकेनाऽऽद्यार्थलाभेऽपि नान्त्यार्थलाभोऽतः स निर्मूलोऽत आह—**अत एवोमेति**। द्वितीयार्थस्वीकारादेवेत्यर्थः। विभज्यान्वाख्यान एवात्र समकालप्राप्तिसंभव इत्याह—**खट्वेति**। गुणे कृते, आद्गुणे कृते। **वृद्धीति**। वृद्धिरेचीत्यनेनेति भावः। ननु न गुणस्यान्तरङ्गत्वमल्पापेक्षत्वेन। उभयोरुभयापेक्षत्वेन तस्य समत्वात्। नाप्याद्यप्रकारद्वयेन। तस्यासत्त्वात्। तुरीयान्त्यप्रकारेण प्रत्युत पूर्वोपस्थितनिमित्तकत्वरूपान्तरङ्गत्वस्य सवर्णदीर्घ एव सत्त्वाच्च। निमित्तानां कार्याणां च यौगपद्यसत्त्वात्। अत आह—**साधनेति**। **रूपेति**। तच्छब्देत्यर्थः। **समुदायेनेति**। उपसर्गद्योत्यार्थसहितधात्वर्थकेन आ ऊढेत्यनेनेत्यर्थः। तस्य क्रियाकाङ्क्षत्वादुपसर्गस्य पृथगर्थाभावाच्च। एव च तुरीयाद्यप्रकारेणान्तरङ्गत्वं धातूपसर्गकार्यस्य गुणस्यैव न तु तस्य यथाकथंचित्। धातूपसर्गकार्यत्वं तु नान्तरङ्गताप्रयोजकं प्रेद्ध इत्यादौ व्यभिचारात्। धातूपसर्गयोः कार्यमन्तरङ्गमित्यस्य तु नायं विषयः। स ह्यनुपदमेव स्फुटी भविष्यति। न चोपसर्गयोगे दीर्घनिमित्तमप्युपस्थितमेवेति वाच्यम्। तस्य परनिमित्तोपस्थितावपि पूर्वनिमित्तानुपस्थितेः। अत एव सप्तम्याद्यन्तेत्यत्राऽऽदिशब्दः पञ्चमीसंग्राहकः प्रागुक्तः। न चैवमपि तुरीयान्त्यरीत्या दीर्घस्य तत्त्वमाद्यरीत्या गुणस्येति द्वयोरन्तरङ्गयोः परत्वाद्दीर्घ एवेति तद्वैयर्थ्यमेवेति वाच्यम्। गुणस्य नित्यत्वात्। तत्र सवर्णत्वस्यापि निमित्तत्वेन सख्याकृततत्त्वस्य गुणे सत्त्वाच्च। ज्ञापकपरभाष्यप्रामाण्येन धातूपसर्गकार्यत्वस्य तत्त्वाप्रयोजकत्वेऽपि तदुपोद्बलकत्वस्यान्त्यप्रकारस्यैकपद एव वा स्वीकाराच्च। तत्प्रामाण्यादन्त्यत आद्यस्य बलवत्त्वमिति तु न। पट्व्ये-

---

१ ङ. भव°। २ घ. °न स°। ङ. °न तत्स°। ३ घ. °ततथार्थ°। ४ क. तस्य।

त्वमिति 'संप्रसारणाच्च' (६।१।१०८) इति सूत्रे भाष्ये स्पष्टम्। एहीत्यनुकरणस्य शिवादिशब्दसंबन्धे तु नास्य प्रवृत्तिर्ज्ञापकपरसंप्रसारणाच्चेतिसूत्रस्थभाष्यप्रामाण्येनानित्यं प्रकृतिवदनुकरणमित्यतिदेशमादाय लब्धाङ्त्व एतदप्रवृत्तेः।

यत्तु पूर्वं धातुरुपसर्गेण युज्यते पश्चात्साधनेन। उपसर्गेण तत्संज्ञकशब्देन। साधनेन कारकेण तत्प्रयुक्तकार्येण। अत एवानुभूयत इत्यादौ सकर्मकत्वात्कर्मणि लकारसिद्धिरिति तन्न। क्रियायाः साध्यत्वेन बोधात्साध्यस्य च साधनाकाङ्क्षतया तत्संबन्धोत्तरमेव

---

त्यादिसिद्धावपि प्रादुद्रवदित्याद्यसिद्ध्यापत्तेः। अयज इन्द्रमित्यादौ तु गुणस्यैव द्विविधमन्तरङ्गत्वमस्तीति न दोषः। अत एव धातूपसर्गयोर्यत्कार्यं तदन्तरङ्गमिति प्रतिज्ञाय कुत एतदिति प्रश्ने तथोपपादितं भाष्य इति भावः। नन्वेहीतिवदेत्याद्यनुकरणके शिवसंबोधनके एहीत्यनुकरणके शिवघटितषष्ठीसमासे वा शिव एहीत्यादावाङ्ग्रहणं सफलम्। तत्र हि प्रकृतिवदितिन्यायेनाऽऽङ्त्वाद्वृद्धिं बाधित्वा तत्प्रवृत्तेः। एतेनानुकार्ये एकादेशशास्त्रप्रवृत्त्याऽऽन्तवद्भावेनाऽऽङ्त्वलाभेऽप्यनुकरणे तदभाव इत्यपास्तम्। एवं च कथं ज्ञापकत्वमत आह— **एहीतीति**। नास्य, ओमाङोश्चेत्यस्य। **नानित्यमिति**। तत्त्वं च तस्याऽऽवश्यकं, अत एव यत्तदेतेभ्य इति निर्देशसंगतिः। भाष्यप्रामाण्यमनित्यत्वेऽप्रवृत्तौ च हेतुः। लब्धाङ्त्व इति बहुव्रीहिः। अभिव्यक्तपदार्था य इति न्यायोऽप्यत्र निवारको बोध्यः। वस्तुतस्त्वाङ्त्वस्य तत्रैकदेशनिष्ठत्वेऽपि समुदायानिष्ठत्वेन प्रकृत्यधर्मत्वात्पररूपस्याऽऽङ्मात्रकार्यत्वाच्चात्रातिदेशस्यैवासंभव इति भाष्यं यथाश्रुतं सम्यगेव। अत एवाभिव्यक्तेतिन्यायस्याप्यविषयः। फलाभावात्। एवं चेदं प्राचामनुरोधेनेति बोध्यम्।

ननु वहधातोः क्त ऊढेतिसिद्धावाङ्ङूट्वाशब्दयोर्युगपदन्वये गुणदीर्घयोर्युगपद्भाष्योक्तसंप्रधारणा युक्ता। स एव न। धातूपसर्गयोः कार्यमन्तरङ्गं पूर्वं हि धातुरुपसर्गेण युज्यते, पश्चात्साधनेनेति सुट्कात्पूर्वमितिर्गतावित्यत्र भाष्योक्तेरिति कथं ज्ञापकत्वमित्याशयेनाऽऽह— **यत्त्विति**। मतान्तरविरोधाय कैयटाद्यभिमतं तदर्थमाह—**उपेत्यादि**। साधनशब्दस्य करणमात्रपरत्वभ्रमनिरासायाऽऽह—**कारेति**। तावताऽप्यर्थासिद्धेराह—**तदिति**। प्रत्ययेनेत्यर्थः। **अत एवेति**। तयोर्योगयोः पूर्वापरीभावनियमादेवेत्यर्थः। सुखमिति शेषः। आदिनोपास्यते गुरुरित्यादिपरिग्रहः। **क्रियाया इति**। धातुत इति शेषः। साध्यस्य, तत्त्वेन प्रतीयमानस्य। **साधनेति**। आदौ नियमत इति शेषः। साध्यत्वं च, निष्पाद्यत्वरूपमेवेति तयोर्मिथो निरूप्यनिरूपकभावादिति भावः। **काङ्क्षतयेति**। काङ्क्षत्वादिति पाठान्तरम्। **तत्संबन्धोत्तरेति**। साधनप्रयुक्तकार्यसंबन्धोत्तरमित्यर्थः।

---

१ ग. °क्ता सैव। २ ग. °रमवि°।

निश्चितक्रियाबोधेन साधनकार्यप्रवृत्त्युत्तरमेव क्रियायोगनिमित्तोपसर्गसंज्ञकस्य संबन्धौचित्यात्। अत एव 'सुट्कात्पूर्वः' (६।१।१३५) इति सूत्रे पूर्वं धातुरुपसर्गेणेत्युक्त्वा नैतत्सारं पूर्वं धातुः साधनेन युज्यते पश्चादुपसर्गेणेत्युक्त्वोक्तयुक्त्याऽस्यैव युक्तत्वमुक्तं साधनं हि क्रियां निर्वर्तयतीत्यादिना भाष्ये।

उपसर्गद्योत्यार्थान्तर्भावेन धातुनैवार्थाभिधानादुक्तेषु कर्मणि लकारादिसिद्धिः। पश्चाच्छ्रोतुर्बोधाय द्योतकोपसर्गसंबन्धः। एवं चान्तर-

---

एवस्तत्पूर्वव्यवच्छेदाय। एवमग्रेऽपि। तत्सबन्ध विना साध्यत्वेन प्रतीतरपर्यवसानादिति भाव'। तदाह—**निश्चितक्रियेति**। निश्चिते साध्यत्वे तेन प्रतीयमानत्वरूपक्रियात्वनिश्चये सदृशक्रियेत्यर्थ। अत्र हेतुविभक्त्यन्ताना क्रमेणोत्तरोत्तरहेतुत्वम्। **क्रियायोगेति**। क्रियाविशेषणीभूतार्थद्योतकत्वेत्यर्थः। ज्ञकस्य, शब्दस्य। साध्यत्वेन निश्चयं विना क्रियायोगविहितोपसर्गसज्ञकशब्दैर्योगाज्ञानादिति भाव.। **अत एवेति**। उक्तहेतोरेवेत्यर्थः। सुट्कादित्युपलक्षण गतिर्गतावित्यस्यापि। पूर्वं हीति पाठ उभयत्र। इत्युक्त्वा, इत्याद्युक्त्वा। साधनेनेत्यादेरुक्त एवार्थः। उक्तयुक्त्या, क्रियाया इत्याद्युक्तयुक्त्याशयेन। अस्यैव, द्वितीयमतस्यैव। एव चोक्तार्थक निर्युक्तिक तदश्रद्धेयमिति भावः। **साधनं हीति**। तृतीयान्त पूर्वान्वयि। क्रिया, तत्प्रतीतिम्। साधनयोगेन हि साध्यत्वेन धात्वर्थस्य प्रतीतिः। साध्यत्वस्य साधनत्वनिरूप्यत्वात्। क्रियायोगे चोपसर्गत्वात्[2]।

नन्वेव प्रक्रान्तधातूपसर्गकार्यान्तरङ्गत्वस्य कथ सिद्धिरत आह—**उपेति**। **द्योत्येति**। अनुभवादीत्यर्थ.। एव उपसर्गसज्ञकशब्दसबन्धनिवृत्तये[3]। **अर्थाभीति**। तद्विशिष्टव्यापाराभीत्यर्थः। उक्तेषु, अनुभूयते सुखमित्यादिषु। पश्चात्, लादिसिद्ध्यनन्तरम्। **द्योतकोपेति**। तद्द्योतकतत्सज्ञकशब्दसबन्ध इत्यर्थः। अय भावः—वक्ता धातोरेव विशिष्टमर्थं बुद्धौ कृत्वा साधनसबन्धप्रयुक्तकार्यप्रत्यययोगेन तत्र[4] साध्यत्वावगतौ श्रोतृबोधाय क्रियायोगनिमित्तोपसर्गसज्ञकशब्दयोगं करोति, अन्यथा केवलधातुतः सर्वत्राप्रतीयमानतया श्रोतुस्तत्तत्तद्बोधो[5] न स्यादिति। एव च पूर्वमुपसर्गयोगो नाम तदर्थसबन्ध, ततस्तत्संज्ञकशब्दयोगात्पूर्वं साधनप्रयुक्तकार्यप्रत्यययोग, तत उपसर्गसज्ञकशब्दयोग इति वचनद्वयार्थ इत्येकवाक्यतैव द्वयोर्न मिथो विरोध। एतेन तयोर्यथाश्रुतार्थकत्वेऽप्यध्ययने प्रत्यय इत्यादिनिर्देशेन क्वचित्साधनप्रयुक्तकार्यात्प्रागुपसर्गनिमित्तककार्यप्रवृत्तेर्ज्ञापनेन पूर्वं धातुः साधनेनेत्यस्य तद्विषयत्वमपरस्य तदन्यविषयत्वमिति न विरोध इति दीक्षिताद्युक्तमपास्तम्। एकवाक्यतयैव निर्वाह एवमनौचित्यात्। तद्ध्वनयन्नाह—**एवं चान्तेति**। उक्तार्थ-

---

१ ङ. 'तुतृतीयान्ता°। २ ङ. °र्गत्वम्। न°। ३ घ. 'निरपेक्षयैव। अ°। ४ क. 'त्रतत्र सा°। ५ घ. °तुस्तद्बो°।

ङ्गतरार्थकोपसर्गनिमित्तः सुट् संकृतीत्यवस्थायां द्वित्वादितः पूर्वं प्रवर्तते ततो द्वित्वादि । अत एव प्रणिदापयतीत्यादौ णत्वं 'यदागमाः' (प० ११) इति न्यायेन समाहितं भाष्ये ।

**अत एव प्रत्येति प्रत्यय इत्यादिसिद्धिः**, । अन्यथाऽन्तरङ्गत्वात्सवर्णदीर्घे रूपासिद्धिः । यदुपसर्गनिमित्तकं कार्यमुपसर्गार्थाश्रितं विशिष्टोपसर्गनिमित्तकत्वात्तदन्तरङ्गम् । यत्तु न तथा तत्र पूर्वागतसाधननिमित्तकमेवान्तरङ्गम् । अत एव 'न धातु' (१।१।४) इति सूत्रे प्रेद्ध

सिद्धौ चेत्यर्थः । उपसर्गार्थस्यान्तरङ्गत्वमुक्तरीत्या बोध्यम् । एव च पूर्वोपस्थितान्तर्भूतार्थकनिमित्तकत्वात्सुडादेस्तत्त्वं बाह्यसाधनप्रयुक्तकार्यप्रत्ययनिमित्तकत्वाद्वित्वादेर्बहिरङ्गत्वम् । अयमेव धातूपसर्गयोः कार्यमन्तरङ्गमित्यस्य विषय । अत एवैतत्प्रतिपक्षभूतमर्थं यदुपेत्यादिना वक्ष्यतीति भावः । निमित्तः, निमित्तकः । सक्र इत्यवस्थाया सुडिति कैयटोक्तेरुक्तरीत्याऽयुक्तत्वमिति ध्वनयन्नाह—**संकृतीति** । **तत इति** । एवं च सुट्कात्पूर्व इत्यादि न वक्तव्यमिति भावः । पूर्वं ततः साधनयोग इत्युक्तार्थं द्रढयति—**अत एवेति** । पूर्वमुपसर्गयोगे तु प्रागेवान्तरङ्गत्वाण्णत्वसिद्ध्या शङ्काया एवाभावः । अज्ञानेन शङ्कायामपि तथा समाधेर्वाच्यत्वेन न्यायेन तत्साधन व्यर्थमेव स्यादिति भावः । ननु त्रैपादिकेऽन्तरङ्ग एतदप्रवृत्त्या पूर्वत्रोतिणत्वासिद्धत्वेन पुगेवाऽऽदाविति भाष्य युक्तमेव । त्रि च सख्याकृततत्त्वेन पुकोऽपि तत्त्वम् । एव चोभयोरन्तरङ्गयोर्नित्यत्वात्पुगादौ । किं च तद्भाष्यप्रामाण्यात्तुरीयात्तृतीयस्य प्राबल्यमिति चेन्न । तत्र पक्षे णिच एवाऽऽदौ दौर्लभ्यात् । एव च तन्निमित्तस्यैव सत्त्वेन तत्सिद्धिस्तदानी तत्र पक्षे । सिद्धान्ते तु तद्विना साधनप्रत्ययासभवेन तेन तदाक्षेपेण तस्य भावार्थकत्वेन पूर्वमुत्पत्तिरिति न्यायं विना तत्सिद्धिरिति दिक् ।

एव भाष्यसमते सूत्रसमतिमपि ध्वनयन्नाह—**अत एवेति** । उक्तार्थाङ्गीकारादेवेत्यर्थः । **अन्यथेति** । उक्तार्थानङ्गीकार इत्यर्थः । अत्रोभयत्र द्विविधोद्यरीत्याऽन्तरङ्गत्वम् । पट्व्यस्तीत्यादावपीदमन्तरङ्गत्व बोध्यमिति न पूर्वविरोधः । नन्वेव न धात्वितिसूत्रभाष्यविरोधोऽत आह—**यदुपेति** । अत्रान्वयव्यतिरेकाभ्यामुपसर्गस्य तद्भावभावितामात्रेणापि निमित्तता बोध्या न तु सूत्रे तस्य तत्त्वेनोल्लेखोऽपेक्षित एवेत्याग्रहः । अत एव तत्र लादिसिद्धिरिति बोध्यम् । साक्षादर्थाश्रितत्वस्य सर्वत्राभावादाह—**विशीति** । समुदितोपेत्यर्थ । एवं चार्थवत्परिभाषयाऽर्थस्यापि निमित्तत्व बोध्यम् । **यत्तु न तथेति** । उपसर्गीयवर्णसबन्धिकार्यमुपसर्गानाश्रितत्वेन सुतरा तदर्थाश्रित नेत्यर्थः । तत्र, तद्विषये । **पूर्वागतेति** । एव च पश्चादागतपदान्तरनिमित्तकस्य खट्वोढत्यादौ नान्तरङ्गत्वमिति भावः । **साधनेति** । साधनप्रयुक्तप्रत्ययेत्यर्थः । एवेन भिन्नपदवाच्यकारकसबन्धानिमित्तकव्यावृत्तिः ।

१ घ णत्व स्यादिति भा° । २ ङ. च्यसभवेन । सू° । ३ ङ. धातुरायाद्य° । ४ घ. ङ. °म् । यद्यस्ति ।

इत्यत्र गुणो बहिरङ्ग इति भाष्य उक्तम् । किं च पूर्वमुपसर्गयोगे धातूपसर्गयोः समास ऐकस्वर्याद्यापत्तिरिति 'उपपदमतिङ्' ( २ । २ । १९ ) इति सूत्रे भाष्ये स्पष्टम् । भावार्थप्रत्ययस्यापि पूर्वमेवोत्पत्तिः । अत एव 'णेरध्ययने' ( ७ । २ । २६ ) इति निर्देशः संगच्छते । इदं च सामान्यापेक्षं ज्ञापकं भावतिङोऽपि पूर्वमुत्पत्तेः । अन्यथा तत्र समासापत्तिः । तिङि त्वतिङिति निषेधान्न दोषो यदि भावतिङ्युपसर्गयो-

---

**उक्तमिति** । न धात्वितिनिषेधस्यान्तरङ्गत्वमुक्त्वेति भावः । यत्त्वितिमते दोषान्तरमाह—**किं चेति** । यत इति शेष. । समासे, सहेतियोगविभागेन कुगतीति वा । आदिनैकपद्यपरिग्रहः । नन्वेवमप्यध्ययनमित्याद्यसिद्धिस्तत्र साधनप्रयुक्तप्रत्ययाभावादत आह—**भावार्थेति** । तदर्थककृतोऽपीत्यर्थः । **पूर्वमिति** । उपसर्गसज्ञकशब्दयोगादिति शेषः । एव च तत्राप्यन्तरङ्गत्वात्तत्कार्यं उपसर्गयोग इति ततस्तत्कार्यमिति नाधिना धातोः समास इति भावः । नन्वेवमप्युक्तनिर्देशस्य सजातीयापेक्षज्ञापकत्वेन भावतिङन्ते दोष एवात आह—**इदं चेति** । उक्तनिर्देशरूपमित्यर्थः । उत्पत्तेरित्यस्येष्टत्वादिति शेषः । अन्यथा, पूर्वं तदुत्पत्त्यनङ्गीकारेणोपसर्गयोगे । तत्र, तद्विषये । धातुनोपसर्गस्येति शेषः । वस्तुतो विशेषापेक्षत्वेऽपि न दोषस्तत्र तद्योगस्यैवाभावादित्याह—**यदीति** * । अत्रेदं

---

* यदीतीत्यस्याग्रे घ पुस्तकेऽय ग्रन्थ —एतेन विरुद्धपक्षद्वयप्रतिपादक भाष्यद्वय मिथो विरुद्धमित्यपास्तम् । भाष्यस्य पक्षाभेदस्यैव गुडाभिमतत्वेन विरोधस्यैवाभावात् । तथा हि—उपपदमितिसूत्रे गतिरित्यत्र चातिङ्ग्रहणात्सुप्सुपेति निवर्त्य गतिकारकोपपदानामितिपरिभाषां प्रत्याख्याय यद्येतज्ज्ञाप्यते केनेदानीं समासो भविष्यति । समर्थेन । यद्येव धातूपसर्गयोरपि समासः प्राप्नोति पूर्वं धातुरुपसर्गेण युज्यते पश्चात्साधनेनेति । नैतदस्ति । पूर्वं धातु साधनेन युज्यते पश्चादुपसर्गेण । साधनं हि क्रिया निर्वर्तयति । तामुपसर्गो विशिनष्टि । अभिनिर्वृत्तस्य चार्थस्योपसर्गेण विशेष शक्यो वक्तुमित्युपपदमतिङितिसूत्रे भाष्यम् । तदर्थस्तु—यद्येतादीति । अतिङ्ङित्यस्य समासविशेषणतया शब्देनोत्तरपदस्यानुपादानात्प्रश्नः । समर्थेनेति । उपपदस्य सुबन्तत्वेन सुवित्यनुवृत्त्या वा पदविधित्वेन समर्थपरिभाषोपस्थानात् । यद्येवमिति । ततश्चैकस्वर्यादिप्रसङ्गः । न चातिङित्यस्य पर्युदासत्वेन तिङ्भिन्नप्रत्ययान्तः समास इत्यर्थान्न दोषः । अपिपठिषतीत्यादौ प्रकृष्टा पठनेच्छेत्यर्थके सन्नन्तधातुनोपसर्गस्य समासापत्तेर्दुर्वारत्वात् । तिङ्भिन्न. कृत्प्रत्यय एवेत्यत्र न मानम् । तथा सत्युपपद कृदित्येव सूत्रयेत् । धातुप्रकृतिकत्वातिरिक्तसाजात्यस्य कृत्स्वप्यभावाच्च । पूर्वं धातुरिति । उपसर्गेण, तत्संज्ञकेन शब्देन । ततस्तयोः सामर्थ्यमस्ति, उपसर्गार्थविशिष्टायाः क्रियायाः साधनेन योगात् । नैतदस्तीति । पूर्वं धातुरुपसर्गेणेत्येतन्नास्तीत्यर्थः । अन्यथा नैष दोष इत्येव वदेत् । पूर्वं धातु साधनेनेति । साधनेन, कर्तृकर्मरूपकारकेण । साध्यत्वेन प्रतीतस्य पूर्वं साधनाकाङ्क्षोदयेन तत्सबन्धस्यान्तरङ्गत्वात् । ततश्च पूर्वं साधनाभिधायिप्रत्ययोत्पत्तिः । पश्चात्साधनसंसृष्ट एव धातुरुपसर्गेण युज्यते न केवल इति तयोः समासाभावः । तत्र कृदन्तेन समासो भवत्येव तिङन्तेन त्वतिङितिनिषेधान्न

---

१ घ. °मुक्तमिति ।

गोऽस्तीत्यलम् ।

भाष्यम्—नेर्विंश' सपृचेत्यादेर्ने' परत्वयोग्याद्विशेः संपूर्वत्वयोग्यात्पृचेरित्यादिक्रमेणार्थः । गोसदाय इत्यादावपि सद्योत्यार्थविशिष्टाद्धातोः कर्मणि बोद्ध उपपदेऽण ततः समा योगे गतिसमास उपपदेन योग उपपदसमासो बोध्यः । सर्वथाऽपि भिन्नपदवाच्यकारकत्रोधक- पदसंबन्धस्तूक्तप्रनाड्योपसर्गसंज्ञकशब्दयोगोत्तरमेव संप्रसारणाच्चेतिसूत्रस्थोक्तभाष्यप्रामाण्या- दिति तत्त्वम् । तदाह—**अलमिति** ।

भवति । पूर्वं धातोः साधनेन योगे युक्तिमाह—**साधनं हीति** । क्रिया, तत्प्रतीतिम् । निर्वर्तयति, निष्पादयति । न च धातोर्भू सत्तायामित्यादितो व्याकरणाद्गृहीतशक्तिकस्य तत्प्रतीतिः कारकसबन्धं विनाऽपि सिद्धैवेति वाच्यम् । साध्यत्वविशिष्टस्य कारकसबन्धसाध्यत्वात्क्रियान्तराकाङ्क्षानुत्था- पकतावच्छेदकवैजात्यरूपमपि साध्यत्व पश्चादेव ज्ञायते । पाकं इत्यादौ क्रियान्तराकाङ्क्षोत्थापनस्य साधनसबन्धोत्तरमेव जायमानत्वेन तदनुत्थापनस्यापि तदुत्तरकालिकस्यैव ग्रहीतुमौचित्यात् । उपसर्गस्य तु क्रियागतविशेषद्योतकत्वरूपक्रियायोगनिमित्तत्वम् । लकाराणामपि कारकार्थकतायाः शास्त्रसिद्धत्वात्तत्सबन्धेनैव साध्यत्वबोध उपसर्गसबन्धे समासो दुर्वारः । न च काल्पनिक तत् । विभक्तेरपि काल्पनिकमेव तदित्यर्थस्यार्थवत्सूत्रे भाष्यकैयटयो' स्पष्टत्वादिति वाच्यम् । तेषा भावा- र्थकत्वस्यापि सत्त्वेन तत्प्रतीतित्वे नियामकत्वात् । किं चात्र साधनस्य संख्याविशिष्टत्वनियमात्त- न्निमित्तकातिङ्पूर्वमिति न दोष. । अत एवाध्यैयातामित्यादौ लावस्थायामाट्यपि पूर्वं न वृद्धिः । साधनकार्यस्याऽऽताम एव पूर्वं प्रवृत्तेः । साध्यस्य साधकाङ्क्षानैयत्येनान्तरङ्गत्वात् । ततो वार्णा- दाङ्गमितीयडि यणि वृद्धाविष्टसिद्धेः । न चैवमपि परमगार्ग्यस्यापत्यमित्यर्थे परमगार्ग्यायण इत्यादौ परमससृष्टस्यापि गार्ग्यस्य केवलस्यापत्येनैकार्थीभावाद्गार्ग्यशब्दादेव फक्, अत एव पकाराकारस्य न वृद्धिरिति येन विधिस्तदन्तस्येति सूत्रे भाष्ये स्पष्टम्, तद्रीत्याऽत्रापि धातूपसर्गयोः समासो दुर्वार , तिडर्थरहितेनापि सामर्थ्यसत्त्वादिति वाच्यम् । तिङा कर्त्रादिद्योतकत्वेन विशिष्टस्य धात्व- र्थतया तस्य वक्तुमशक्यत्वात् । ता, साध्यत्वेन गृहीताम् । उपसर्ग', तत्सज्ञकशब्द. । द्योतकत्वेन विशिनष्टीत्यर्थः । तत्र युक्तिमाह—अभिनिर्वृत्तस्य चेति । निष्पन्नज्ञानस्येत्यर्थः । विशेष', विशेषणं प्रकर्षादिः । उपसर्गेण, प्रजयतीत्यादौ । शक्यो वक्तु, शक्यो द्योतयितुम् । बोद्धारं प्रतीति शेषः । नन्वेव सचस्करतुरित्यादौ सुटोऽन्तरङ्गत्व सुट्कात्पूर्व इति भाष्योक्त भज्येतेति चेन्न । तत्र भाष्य एव समाहितत्वात् । एव हि तत्र भाष्यम् । धातुपसर्गयोः कार्यमन्तरङ्गम् । पूर्वं धातुरुपसर्गेण युज्यते पश्चात्साधनेनेति । नैतत्सार पूर्वं धातु. साधनेनेत्यादिविशेषः शक्यो वक्तुमित्यन्तमुक्त्वा सत्यमेवमेतत् । यस्त्वसौ धातूपसर्गयोरभिसबन्धस्तमभ्यन्तरं कृत्वा धातु. साधनेन युज्यते । अवश्य चैतदेव वक्तव्यम् । यो हि मन्यते पूर्वं धातु साधनेन युज्यते पश्चादुपसर्गेणेति । आस्यते गुरुणेत्यकर्मकं', उपास्यते गुरुरिति केन सकर्मक स्यादिति । अस्यायमर्थः—सत्यमित्यादिना पूर्वं धातुः साधनेनेत्यङ्गीकृत्यान्तरङ्गत्व सुटो दर्शयति । धातूपसर्गयोरभिसबन्ध. । तत्संबन्धकृतत्वेन योऽर्थस्तत्राभिमतस्त केवलधातुरेवाभ्यन्तर कृत्वा स्वार्थत्वेनाङ्गीकृत्य तस्य साध्यत्वबोधाय कारकेण युज्यते तत उपसर्गेण । एव च सकृतस् इत्यस्यामवस्थायामन्तरङ्गतरार्थकसशब्दनिमित्तत्वाद्द्वित्वाद्य- पक्षयाऽन्तरङ्गः सुडित्यर्थः । एव च प्रकृष्टजयार्थकधातोः प्रत्यये कृते पश्चाद्द्योतकोपसर्गसंबन्ध इति बोध्यम् ।

१ ग. °देरपि नेः प° ।

यत्तु विशेषापेक्षात्सामान्यापेक्षमन्तरङ्गं विशेषापेक्षे विशेषधर्मस्याधिकस्य निमित्तत्वात्। यथा 'रुदादिभ्यः सार्वधातुके' (७।२।७६) इत्यत्र रुदादित्वं सार्वधातुकत्वं च। तत्र सार्वधातुकत्वज्ञानाय प्रकृतेर्धातुत्वज्ञानं प्रत्ययस्य प्रत्ययत्वज्ञानं चाऽऽवश्यकमिति यासुडन्तरङ्गः। एतेन यत्, 'अनुदात्तङित:' (१।३।१२) इति सूत्रे कैयटेनोक्तं लमात्रापेक्षयाऽन्तरङ्गास्तिबादयो लकारविशेषापेक्षत्वाद्बहिरङ्गाः स्यादय इति तत्परास्तम्। विशेषापेक्षत्वेऽपि तस्य सामान्यधर्मनिमित्तकत्वाभावेन तत्त्वस्य दुरुपपादत्वात्। परनिमित्तकत्वेन स्यादीनां बहिरङ्गत्वाच्चेति तन्न। विशेषस्य व्याप्यत्वेन व्यापकस्यानुमानेनोपस्थितावपि तस्य निमित्तत्वे मानाभावेनाधिकधर्मनिमित्तकत्वानुपपादनात्। भाष्य एवंविधान्तरङ्गबहिरङ्गभावस्य क्वाप्यनुल्लेखाच्च।

---

दीक्षिताद्युक्तिं खण्डयति—**यत्त्विति**। अधिकस्य, सामान्यधर्मतः। **कत्वं चेति**। निमित्तमिति शेषः। तत्र सामान्यधर्मनिमित्तत्वमप्यस्तीत्याह—**तत्रेति**। उक्तसूत्र इत्यर्थः। धातो. प्रत्ययस्य चाधिकाराद्धातुविहितप्रत्ययसंज्ञकतिङादेस्तत्सञ्ज्ञाविधानादिति भावः। प्रकृते:, रुदादेः। प्रत्ययस्य, तिङः। इतिर्हेतौ। तथा च यत्सामान्यधर्मापेक्षशास्त्रापेक्षया कश्चिद्विशेषधर्मोऽधिको निमित्तकोटौ यत्र विशेषापेक्षशास्त्रेऽस्ति तत्ततो बहिरङ्गमिति फलितम्। एव चेड्बहिरङ्ग इति यासुटस्तत्त्वं सिद्धम्। तदाह—**यासुडिति**। एतेनेत्यस्यार्थमाह—**विशेषेति**। तस्य, स्यादिविधेः। तत्त्वस्य, बहिरङ्गत्वस्य। नन्वेवमनुदात्तङित इति प्रकरणस्य लादेशविध्येकवाक्यतापक्षे यदि पुनरित्यादिना भाष्योक्ते लावस्थाया स्यादय इति पक्षे विहितविशेषणत्वेन निर्वाहेऽपि पक्षान्तरे बह्वपेक्षत्वेन लादेशानां बहिरङ्गत्वात्कथ स्यादिषु निर्वाहोऽत आह—**परेति**। तथा च प्रागुक्तरीत्या विपरीततत्त्वं न तु तथा। बह्वपेक्षत्वेन तत्त्वं तु नैवेत्युक्तमिति भाव.। **अनुमानेनोपेति**। तत्र तस्यैव सम्भवादिति भावः। तस्य, व्यापकस्य। **मानेति**। शब्दानुपात्तत्वादतिप्रसङ्गादेरभावाच्चेति भावः। **अधिकेति**। एकैक पञ्चम्यन्तमुभयत्र निमित्तमिति समनिमित्तकत्वात्प्रकारान्तरं तु नैवात्रेति भावः। ननु सम्भवमात्रेण तस्य निमित्तत्वमूरी क्रियते रूपसिध्यर्थमन्यथानुपपत्त्याऽत आह—**भाष्य इति**। यासुट्तु नित्यत्वात्तत्र बोध्य.। अडाटौ तु यासुटि कृतेऽनच्कत्वेनाप्राप्त्याऽनित्याविति तत्त्वम्।

यत्तु मतुप्सूत्रे भाष्ये पञ्च गावो यस्य सन्ति स पञ्चगुरित्यत्र मतुप्प्राप्नोतीत्याशङ्क्य प्रत्येकमसामर्थ्यात्समुदायादप्रातिपदिकत्वात्समासात्समासेनोक्तत्वादिति सिद्धान्तिनोक्ते नैतत्सारमुक्तेऽपि हि प्रत्ययार्थ उत्पद्यते द्विगोस्तद्धितो यथा पाञ्चनापितिरिति पूर्वपक्ष्युक्तिः। 'द्विगोर्लुगनपत्ये' ( ४ । १ । ८८ ) इति लुग्विधानात्तद्धितार्थद्विगोस्ताद्धितो भवति पञ्चगुशब्दश्च द्विगुरिति तदाशयं कैयटः। ततो द्वैमातुरः पाञ्चनापितिः पञ्चसु कपालेषु संस्कृत इत्यादौ सावकाशद्विगोर्बहुव्रीहिणा प्रकृते परत्वाद्बाध इत्याशयेन नैव द्विगुः कस्तर्हि बहुव्रीहिरिति सिद्धान्तिनोक्ते तमवकाशमजानानोऽपवादत्वाद्विगुः प्राप्नोतीति पूर्वपक्षी। अन्यपदार्थे सुबन्तमात्रस्य विधीयमानबहुव्रीहेः संख्यायास्तद्धितार्थे विधीयमानो द्विगुर्विशेषविहितत्वाद्बाधकः प्राप्नोतीति कैयटः। ततः सिद्धान्त्येकदेश्याह। अन्तरङ्गत्वाद्बहुव्रीहिः। काऽन्तरङ्गता, अन्य-

---

नन्वन्त्यहेत्वसिद्धिर्मतुप्सूत्रे भाष्य एव तस्य स्पष्टत्वादित्याशङ्कानिरास ध्वनयन्दूषयितुं तद्भाष्यमनुवदति—**यत्त्वित्यादिना कैयट इतीत्यन्तेन। त्याशङ्क्येति**। तदाशङ्कां श्रुत्वा। ननु किं समासादापाद्यतेऽथ वा वाक्यादन्त्येऽपि किं प्रत्येकमुत समुदायात्तत्र न मध्य इत्याह—**प्रत्येकमिति**। असामर्थ्यात्, मिथोपेक्षत्वेन। नान्त्य इत्याह—**समुदेति**। नाऽऽद्य इत्याह—**समेति**। नेति शेषः सर्वत्र। हि, यतः। पञ्चाना नापितानामपत्यमिति तद्धितार्थद्विगोरपत्य इञि अनपत्य इति निषेधान्न लुक्। यद्यपि तद्धितार्थे इति विषयसप्तमी सिद्धान्ते न तु वाच्य इति, अत एव तत्र तद्धितस्तथाऽपि पूर्वपक्षी वाच्य इत्येवार्थं मन्यत इति न दोषः। पूर्वपक्ष्युक्तिरित्यग्रे द्विगोरिति पाठ.। **विधानात्**। ज्ञापकादिति शेषः। अन्यथोक्तार्थत्वात्तदभावे तद्वैयर्थ्यं स्पष्टमेव। तद्धितार्थद्विगोरिति पाठः। नन्वेवमपि पञ्चगुशब्दो बहुव्रीहिर्न द्विगुरत आह—**पञ्चेति**। समासान्तस्त्वनित्यत्वान्न। द्विगोर्लुगिति मतोर्लुगिति तु न। अप्राग्दीव्यतीयत्वादिति[1] भावः। तदाशयं, पूर्वपक्ष्युक्त्याशयम्। **कैयट इति**। अस्याऽऽहेति शेषः। एवमग्रेऽपि। उक्तस्य पूर्वपक्ष्युक्तित्वं ध्वनयति—**तत इति**। अस्योक्त इत्यत्रान्वयः। **सावकाशेति**। तत्राप्रथमान्तत्वेन बहुव्रीह्यप्राप्तेः। प्रकृते, पञ्चगुरित्यादौ। परत्वादिति युक्तः पाठः। **तमिति**। द्वैमातुरः पाञ्चनापितिरित्यादिरूपमुक्तमित्यर्थः। ननु द्विगोरप्यन्यत्तद्धितार्थे सावकाशत्वात्कथं तत्त्वमतोऽपवादत्वमुपपादयति—**अन्येति**। तथा चापवादत्वादित्यस्य विशेषविहितत्वमात्रादित्यर्थ इति भावः। **सिद्धान्त्येकेति**। किंचिदंशे तत्त्वं किंचिदंशेऽतत्वमिति भावः।

---

[1] क. °व्यत्वादिति पाठान्तरम्।

पदार्थे बहुव्रीहिर्विशिष्टेऽन्यपदार्थे द्विगुस्तस्मिंश्चास्य तद्धितेऽस्तिग्रहणं क्रियत इति । अधिकास्त्यर्थापेक्षमत्वर्थनिमित्तो द्विगुर्बहिरङ्ग इति कैयट इति ।

नैषा सिद्धान्त्युक्तिरेतावताऽप्यपवादत्वाहानेः । अच्सामान्यापेक्षयणो विशिष्टसवर्णाजपेक्षदीर्घेण बाधदर्शनात् । किं चोक्तरीत्या परत्वेनैव बाधसिद्धेः । किं चात्राधिकापेक्षत्वेनैव बहिरङ्गत्वं न केवलविशेषापेक्षत्वेनेति नैतद्भाष्यारूढं विशेषापेक्षस्य बहिरङ्गत्वम् । अत एव

---

पूर्वोक्तेरेकदेशयुक्तित्व त्ववकाशाज्ञानादेव । अन्यपदार्थे, तन्मात्रे । विशिष्टे, विशेषणविशिष्टे । ननु कथ तत्र द्विगुः, तद्धितार्थ इत्येव हि तत्रोक्तमत आह—**तस्मिन्निति** । अस्य द्विगोरर्थद्वारा निमित्तभूते तस्मिंस्तद्धिते मतुब्विधायकेऽस्तिग्रहणं क्रियत इत्यर्थः । **अधिकेति** । बहुव्रीहिनिमित्तान्यपदार्थापेक्षयाऽधिको योऽस्त्यर्थस्तदपेक्षो यो मतुस्तदर्थनिमित्तक इत्यर्थः । **इति कैयट इतीति** । अस्य बहुव्रीहिस्वीकर्तृत्वेन सिद्धान्तित्वप्रकारोक्तयुक्तेरेकदेशयुक्तित्वमिति भावः ।

एवमनूद्य खण्डयति—**नैषेति** । यत्तु तत्सूत्रे भाष्ये ततोऽन्तरङ्गत्वादित्यादिकमाहैषा सिद्धान्त्युक्तिर्नेत्यर्थः । एतावता, अधिकार्थापक्षत्वेन बहिरङ्गत्वेऽपि । **व्यपेति** । पूर्वपक्ष्युक्तापवादत्वाहानेरित्यर्थः । तद्रीत्यैवाधिकापेक्षत्वेऽपि बाधकत्वमित्येतावन्मात्रेण वा । तत्र हेतुमाह—**अजिति** । **विशिष्टेति** । विशिष्टोऽधिको यः सवर्णस्तत्पदार्थप्रवृत्तिनिमित्तं सावर्ण्यं तद्विशिष्टो योऽच् तदपेक्षेत्यर्थः । यद्वा विशिष्टत्वमेवाऽऽह—**सवर्णेति** । अन्तरङ्गबहिरङ्गभावस्तु नात्र, सिद्धान्ते संज्ञाकृततत्त्वानाश्रयणादिति बोध्यम् । इदमभ्युपेत्य । वस्तुतोऽपवादत्वमेव नास्तीत्याह—**किं चोक्तेति** । सावकाशत्वस्य तत्रोक्तिरूपयेत्यर्थः । एव चान्तरङ्गत्वपर्यन्त धावनं व्यर्थमेवेत्यसिद्धान्तोक्तिरेवेयं प्रकारांश इति भावः । नन्वस्यैकदेशयुक्तित्वेऽप्यनेन सामान्यापेक्ष विशेषापेक्षादन्तरङ्गमिति सूचितमेवान्यथोक्तिसंभव एव न स्यात् । एव च कैयटदीक्षिताद्युक्तिर्युक्तैव । अत आह—**किं चात्रेति** । द्विगावित्यर्थः । **अधिकेति** । अधिकनिमित्तत्वेनेत्यर्थः तस्यापि प्राक्खण्डितत्वात् । यद्वा, एकदेशयुक्तित्वेन तदनुरोधित्वमेवास्येति यथाश्रुतमेव । **रङ्गत्वमिति** । अस्तीति शेषः । **केवलेति** । अधिकापेक्षत्वशून्येत्यर्थः । **विशेषेति** । केवलेत्यादिः । एवं च भाष्यस्योक्तिसभव इति न तथाऽङ्गीकार इति भावः । ननूभयसत्त्वे तदेवाभिमतं नेदमत्र किं मानमत आह—**अत एवेति** । तदनभिमतत्वादेवेत्यर्थः । अन्यथा तदप्युक्तं

---

१ ख. घ. ङ. 'दि स आहे' । २ ङ. °ष्ठ.व सवर्णाचो विशेषणम् । अ° । ३ क. ङ. °त सु तदत्रैव किं । घ. न तत्रेद किं ।

**सुबन्तसामान्यापेक्षो बहुव्रीहिस्तद्विशेषापेक्षो द्विगुरिति नोक्तं भाष्ये। न चार्थकृतबहिरङ्गत्वस्यानाश्रयणादिदमयुक्तम्। एकदेश्युक्तित्वेनादोषात्। अत एवास्तिग्रहणं नोपाध्यर्थं किं त्वस्तिशब्दान्मतुबर्थमिति त्वदभिमतं बहिरङ्गत्वमपि द्विगोर्नास्तीति प्रतिपाद्य सिद्धान्तिना मत्वर्थे द्विगोः प्रतिषेधो वक्तव्य इति वचनेनैतत्सिद्धमित्युक्तम्। अत एव 'तदोः सः सौ' (७। २। १०६) इति सूत्रेऽनन्त्ययोरिति चरितार्थम्। अन्यथा प्रत्ययसामान्यापेक्षत्वेनान्तरङ्गत्वादन्त्यस्यात्वेऽनन्त्यस्यैव सत्त्वे सिद्धे तद्वैयर्थ्यं स्पष्टमेव। 'पादः पत्' (६। ४। १३०) इति सूत्रे भाष्यकैयटयोरप्येतदन्तरङ्गत्वाभाव एव सूचित इति सुधियो विभावयन्तु।**

**नन्वेवमसुसुवदित्यत्र लघूपधगुणादुवङोऽल्पनिमित्तत्वाभावादुवङ्**

---

स्यात्, प्रथमोपस्थितत्वात्तदेव वोक्त स्यादिति भाव'। **इदम्**। इदमपि तथा बहिरङ्गत्वसंयोजनमपि। अत एव, एकदेश्युक्तित्वादेव। **नोपेति**। तदभावेऽपि शब्दशक्तिस्वाभाव्याद्बहुव्रीहिवदस्त्यर्थविषयकत्वलाभादिति भावः। **मतुबिति**। अस्तिमानित्यादौ। **त्वदभीति**। सिद्धान्त्येकदेश्यभीत्यर्थः[1]। तथा सति तयोः समत्वादिति भावः। अपिरपवादत्वसमुच्चायकः। **सिद्धान्तिना**। तत्त्वेन तवाभिमतेनैकदेशिना। एतत्, पञ्चगुरित्यादिरूपम्। अस्य सिद्धान्तत्वे तूक्तरीत्या परत्वेनैव निर्वाहे वचनाङ्गीकारो व्यर्थ एव स्यात्। तस्मादुक्तस्थले सावकाशाद्द्विगोः परत्वात्तत्र बहुव्रीहिणा बाध इति तत्त्वमिति भावः। सूत्रानारूढत्वमपि तस्याऽऽह—**अत एवेति**। अन्यथा, तदङ्गीकारे। **प्रत्ययेति**। विभक्तीत्यर्थः। भाष्याद्यनारूढत्वमपि[2] द्योतयन्नाह—**पाद इति**। **एतदन्तरङ्गेति**। सामान्यापेक्षत्वरूपान्तरङ्गेत्यर्थः। तत्र हि निर्दिश्यमानपरिभाषाप्रयोजनकथनावसरेऽरुदितामित्यादावन्वित्तामाद्योः सम्प्रधारणायां परत्वादिटमादङ्ख्यान्तरङ्गत्वं तामादीनामुक्तम्। कैयटेन च प्राग्लादेशेभ्यो भात्वधिकारात्तेषां तत्त्वमुपपादितम्। तत्सत्त्वे तु तदधिकारेऽपि तेषा तत्त्व सिद्धमेवेति तथोक्तिरफला स्यादिति भावः।

**एवमिति**। प्रागुक्तज्ञापकद्वयेन ज्ञाततत्कालप्राप्तिकयोरिव यथासिद्धान्तरङ्गत्वादेरङ्गीकार इत्यर्थः। तत्राऽऽद्यज्ञापकेन ज्ञातस्येत्यस्यैव पूर्वविहितत्वाद्यल्पनिमित्तत्वयोर्लाभः। अल्पनिमित्तत्वमपि सङ्ख्यया लब्धम्। येन विधिरितिसूत्रस्थोक्तभाष्यप्रामाण्याद्घटकत्वेनेत्यस्यापि लाभः। अल्पनिमित्तस्य तत्त्वे परनिमित्तस्यैवाभावेनानैमित्तिकस्य तत्त्व कैमुतिकन्यायेन सिद्धमिति तस्यापि लाभः। द्वितीयज्ञापकेन प्रक्रियाक्रमेण पूर्वोपस्थितनिमित्तकत्वस्य लाभ इति बोध्यम्। इत्यत्र, इत्यादौ। **निमित्तेति**। इदमुपलक्षणं प्रागुक्तप्र-

---

१ ड. 'र्थं.। उक्तरीत्या त°। २ क, घ. 'पि ध्वनय°।

न स्यादिति चेत् । न । तत्रान्तःकार्यत्वरूपान्तरङ्गत्वसत्त्वात् । अन्तः-कार्यत्वं च पूर्वोपस्थितनिमित्तकत्वमङ्गशब्दस्य निमित्तपरत्वात् ।

इदमन्तरङ्गत्वं लोकन्यायसिद्धमिति मनुष्योऽयं प्रातरुत्थाय प्रथमं स्वशरीरकार्याणि करोति ततः सुहृदां ततः संबन्धिनाम् । अर्थानामपि जातिव्यक्तिलिङ्गसंख्याकारकाणां बोधक्रमः शास्त्रकृत्कल्पितस्तत्क्रमेणैव च तद्बोधकशब्दप्रादुर्भावः कल्पित इति तत्क्रमेणैव तत्कार्याणीति पटूव्ये-त्यादावन्तरङ्गत्वात्पूर्वं पूर्वयणादेशः परयणादेशस्य बहिरङ्गतयाऽसिद्ध-त्वादित्यनेन 'अचः परस्मिन्' (१।१।५७) इतिसूत्रे भाष्ये स्पष्टम् । तदपि युगपत्प्राप्तौ पूर्वप्रवृत्तिनियामकमेव यथा पटूव्येत्यत्र पदस्य विभ-ज्यान्वाख्याने । न तु जातस्य बहिरङ्गस्य तादृशेऽन्तरङ्गेऽसिद्धतानियाम-

---

करमात्रस्य । प्रत्युत गुणस्य प्रक्रियाक्रमेण प्रागुक्त तदस्तीति स एव स्यात् । तत्र, उवङि । अन्तःकार्यत्वस्यानेकविधत्वात्प्रागुक्तरीत्या तस्य तत्त्वस्य दुर्वचत्वाच्चाऽऽह— **अन्तःकार्यत्वं चेति । पूर्वोपेति** । लौकिकप्रयोगीयोच्चारणक्रमेण पूर्वश्रुतनिमित्तक-त्वमित्यर्थः । यथाश्रुते तस्य प्रागुक्तत्वेन प्रक्रियाया गुणनिमित्तस्यैव प्रागुपस्थित्या चासगतिः स्पष्टैव । ईदृशस्यैव ग्रहणे प्रागुक्तमपि स्पष्टत्वाय नियामकमाह—**अङ्गेति** ।

नन्वस्य पूर्ववन्न ज्ञापकसिद्धत्वम् । किं चाग्राऽऽङ्ग्रहणसिद्धार्थेन न निर्वाहस्तत्र प्रक्रियया पूर्वोपस्थितत्वस्यैव धर्मिग्राहकमानलब्धत्वात् । पटूव्येत्यादौ यद्यपि तत्सम्भवोऽस्ति तथाऽपि तदप्रवृत्तिः । परयणादेशाभावापत्तेः । तत्रासिद्धत्वस्य बोध्यताप्रयोजकत्वात् । यत्रान्तरङ्गे कृते बहिरङ्ग न तत्रैव तद्विषयत्वस्य तन्मानलब्धत्वाच्च । प्राद्रुद्रुवदित्यादावगतेश्च । एव च कथ-मेतत्सत्त्वमत आह—**इदमिति । शरीरेति** । तस्य सुखादिसाक्षात्कारायतनत्वात् । **सुहृदामिति** । तस्य प्रथमोपस्थितिहेतुत्वात् । **संबन्धिनामिति** । अवश्यकर्तव्यत्वा-दिति भावः । **कल्पित इति** । अनेन वस्तुतो युगपदुपस्थितिः सूचिता । अनेन प्रका-रेण तु निमित्तस्य प्रागुपस्थित्याऽन्तरङ्गत्वप्रतिपादनम् । दृष्टान्तेऽप्येवमेव । **तत्क्रमेणैव चेति** । बोधक्रमेणैव चेत्यर्थः । **पटूव्येत्यादाविति** । विभज्यान्वाख्यान इति भावः । अन्तरङ्गत्वात्, पूर्वोपस्थितनिमित्तकत्वात् । **पूर्वं पूर्वेति** । परयणादेशात्पूर्वमित्यर्थः । **बहिरङ्गेति** । पश्चादुपस्थितनिमित्तकत्वेनेत्यर्थः । असिद्धत्वात्, प्रागप्राप्ते । **इत्यने-नेति** । ग्रन्थेनेत्यर्थः । **तदपीति** । तत्र भाष्ये स्पष्टमुक्तमिदमन्तरङ्गत्वमपीत्यर्थ । **युगपदिति** । प्राद्रुद्रुवदित्यादाविति भावः । **पूर्वेति** । अन्तरङ्गस्येत्यादिः । अत्र दृष्टान्त माह—**यथेति** । पटूव्येत्यत्र, पटूव्येत्यादौ । एवेनोभयोरुभयं व्यवच्छेद्यमाह—**न त्विति** ।

---

१ इ. बाधकता° ।

मकं प्रागुक्तलोकन्यायेन तथैव लाभादिति 'बाहू ऊठ्' (६।४।१३२) सूत्रे कैयटे स्पष्टम्। अत एव वाय्वोरित्यादौ वलि लोपो यणः स्थानिवत्त्वेन वारितोऽचः परस्मिन्नित्यत्र भाष्यकृता। क्रमेणान्वाख्याने तूक्तोदाहरणे पूर्वप्रवृत्तिकत्वमप्यन्तरङ्गत्वं बहिरङ्गस्यासिद्धत्वमपि निमित्ताभावादप्राप्तिरूपं बोध्यम्।

यत्त्वेवंरीत्या पूर्वस्थानिकमप्यन्तरङ्गमिति तच्चिन्त्यम्। स्रजिष्ठ इत्यादौ विन्मतोर्लुकि टिलोपस्यापवादविन्मतोर्लुक्प्रवृत्त्या जातिपक्षाश्रयणेन

---

तादृशे, पूर्वोपस्थितनिमित्तकत्वरूपे तद्भाष्योक्ते कर्तव्ये। * तत्रापीष्टसिद्धेः सत्त्वादाह—प्रागुक्तेति। मनुष्योऽयमित्यादिसंबन्धिनामित्यन्तेत्यर्थः। तस्य युगपदुपस्थित्यादिविषयत्वात्। एवं चानन्तरं यदि बहिरङ्गप्राप्तिस्तर्हि भवत्येव तत्, अन्यथा नेति दृष्टान्ततो लब्धम्। न त्वन्यत्रेव क्वचित्स्वप्रवर्तकं क्वचित्स्वनिवर्तकं तदितीति भावः। अत एवेति। तस्य तत्र तदनियामकत्वादेवेत्यर्थः। अन्यथाऽसिद्धत्वाद्वारणे तदसंगतिः स्पष्टैव। न चैवमपि प्रागुक्तरीत्याऽसिद्धमित्यस्याः प्रवृत्तिर्दुर्वारेति वाच्यम्। परनिमित्तकत्वेनोभयोः समत्वेनातत्त्वात्, प्रकारान्तरस्याभावाच्च, प्रत्युत पूर्वोपस्थितनिमित्तकत्वस्य यणि सत्त्वाच्च। न पदान्तेति निषेधस्तु न, स्वरदीर्घयलोपेष्विति निषेधादिति भावः। नन्वेवमपि क्रमेणान्वाख्याने कथं परिभाषया निर्वाहो भाष्याद्युक्तोऽत आह—क्रमेणेति। उक्तोदाहरणे, पट्व्येत्यादौ। प्रादुद्रुवदित्यादौ तूभयथाऽपि प्रागुक्तरीतिरेवेति बोध्यम्। पूर्वप्रेति। असंदिग्धप्रथमप्रेत्यर्थः। 'पूर्वयणादेशस्य बोध्यम्। तत्र कर्तव्ये परयणादेशस्य' इति शेषः। वृप्राप्तिरिति। तदानीमित्यादि। एवं चोक्तभाष्यस्य साधारण्येन युगपत्क्रमेण वोपस्थितिविषयत्वेऽप्यन्तरङ्गप्रवृत्त्युत्तरबहिरङ्गप्रवृत्तिविषयत्वमन्त्येन तु बहिरङ्गप्रवृत्त्युत्तरान्तरङ्गप्रवृत्तिविषयत्वमिति नैवंव्यवच्छेद्यपरप्रागुक्तग्रन्थविरोधः। अत्रान्तरङ्गत्वं न प्रागुक्तरूपमसम्भवात्। पूर्वप्रवृत्तिकत्वेन तु न तत्त्वम्। अङ्गशब्दस्य निमित्तपरत्वात्। किं तु पूर्वास्थितनिमित्तकत्वरूपम्। अत एव तुः प्रयुक्तः। पूर्वत्वं च यथाकथंचित्। तस्य साधारणत्वात्। अत एव दृष्टान्तसंगतिः। दृष्टान्तेऽप्यत्र पक्षे क्रमेणोपस्थितावप्यासत्तिवशादेव पूर्वं पूर्वं तत्तदुपस्थितिरिति बोध्यम्।

दीक्षिताद्युक्तिं खण्डयति—यत्त्विति। स्रजिष्ठे स्रग्विन्शब्दान्मतुप्। लुकीति। विन्मतोरिति विनो लुकि सतीत्यर्थः। यद्वा, आदिना गविष्ठ इत्यादिपरिग्रहाद्यथाश्रुतमेव। सूत्रणे तेनेति शेषः। अग्रे तु तत्सूत्रपरमेव। टिलोपेति। स्रज इति भावः। ननु विषयभेदेन टिलोपस्य भिन्नत्वात्पूर्वटिलोपस्य तेन बाधेऽप्यपरबाधः कथमत आह—जातीति।

---

* ङ. पुस्तके—असिद्धतानियामकत्वेऽपि इति पाठान्तरम्।

---

१ घ. ङ. पूर्वस्थि°। २ क. °ण विने°। ख. °णानेने°।

वारणप्रयासस्य 'प्रकृत्यैकाच्' ( ६ । ४ । १६३ ) इतिसूत्रप्रयोजनखण्डनावसरे भाष्यकृत्कृतस्य नैष्फल्यापत्तेः। त्वदुक्तरीत्या विन्मतोर्लुको बहिरङ्गासिद्धत्वेनानायासतस्तद्वारणात् । भाष्य ईदृशरीत्या बहिरङ्गासिद्धत्वस्य क्वाप्यनाश्रयणाच्च । परिभाषायामङ्गशब्दस्य निमित्तपरत्वाच्च ।

इयं चोत्तरपदाधिकारस्थबहिरङ्गस्य नासिद्धत्वबोधिकेति 'इच एकाचोऽम्' ( ६ । ३ । ६८ ) इतिसूत्रभाष्ये पूर्वपक्ष्युक्तिरिति सा नाऽऽदर्तव्या । परंतप इत्यादावनुस्वारे नासिद्धत्वं मुमश्चिपाद्यां तदप्रवृत्तेः ।

---

अनपेक्षितविषयभेद टिलोपशास्त्र लुका बाध्यते । तन्न्यायस्य तथैव स्वरूपात् । तथा च नाप्राप्ते टिलोप[1] आरभ्यमाणः स इति न्यायसचारः । **प्रयासेति** । तस्य स्वरसतो लाभादिति भावः । **कृतस्येति** । प्रकृत्यैकाजिति सूत्र इति भाव. । बहिरिति धर्मपरम् । एवमग्रेऽपि । तत्र[2] प्रयासपदोक्तेरत्र तद्विपक्षमाह—**अनायासत इति । तद्वारणादिति** । प्राप्तपुनष्टिलोपवारणसभवादित्यर्थः[3] । ननूपायस्योपायान्तरादूषकत्व उपाया इत्युपेयेति[4] च हर्युक्तेरत आह—**भाष्य इति** । नन्वेवमप्यप्रतिषिद्धमनुमतमिति न्यायेन तदप्यस्त्वत आह—**परीति** । तत्र तस्य तत्परत्वस्य प्रतिपादितत्वाच्चेत्यर्थः ।

**इयं चेति** । असिद्ध बहिरङ्गमिति चेत्यर्थः । **पूर्वपक्ष्युक्तिरिति** । पूर्वपक्षिण उक्तिरित्यर्थः । इति, एवरूपा । तत्र योक्तिः सा पूर्वपक्षिण इति हेतोर्नाऽऽदर्तव्येत्यन्वयः । समासेऽप्युद्देश्यविधेयभावप्रतीतेर्नासगतिः । तत्र हि कथ भाव्यमिहेति प्रश्ने श्रियमन्यमिति भाव्यमिति सिद्धान्त्युक्तौ स्वमोरिति लुक्कुतो नेति पूर्वपक्ष्युक्तौ नाप्राप्ते लुक्यम्विधेरस्याऽऽरम्भात्सुपो धात्वितिवत्स्वमोरित्यस्याप्यनेन बाध इति बाध्यसामान्यचिन्तया सिद्धान्त्युक्तौ बाध्यविशेषचिन्तयैतद्विषय आद्यस्य नाप्राप्तिर्नान्त्यस्येति वैषम्यामिति तदुक्तौ पूर्वस्थितनिमित्तकमन्तरङ्ग परस्थितनिमित्तक बहिरङ्ग पूर्वत्वादि च यथाकथचिदित्याशयिकाया तत्राप्यसिद्ध बहिरङ्गमिति निर्वाह इति सिद्धान्त्युक्तौ नैवेहोत्तरपदाधिकारे विज्ञातु शक्या द्विषतपः परतप इत्यत्र हि दोष. स्यात्। तस्माच्छ्रियमन्यमित्येव भाव्यमित्युक्तिः पूर्वपाक्षिण. । कार्यकालपक्षेऽपि त्रैपादिकेऽन्तरङ्ग एतदप्रवृत्तेर्विसर्जनीयसूत्रे भाष्ये वार्तिकखण्डकसिद्धान्त्युक्ते, यथोद्देशपक्षेण तस्य सुसाधत्वाच्चेति भावः । एतदेव ध्वनयन्नाह—**परमिति । त्वं मुम इति** । अत्र घटकत्वेन तत्त्वं बाध्यम् । **तदप्रवृत्तेरिति** । सर्वथा तदप्रवृत्तिरित्यर्थः ।

---

१ क ख. ग ङ लोपत्व आ° । २ ङ. अत्र । ३ क. ख घ °रणास° । ४ क. °पेय इति ।

नव्यमतेऽपि यथोद्देशपक्षाश्रयणेनान्यथासिद्धोदाहरणदानेन तस्य तदुक्तित्वमावश्यकमित्याहुः। आभीयेऽन्तरङ्ग आभीयस्य बहिरङ्गस्य समानाश्रयस्य नानेनासिद्धत्वमसिद्धत्वादित्यसिद्धवत्सूत्रे भाष्ये स्पष्टम्। एवं सिचि वृद्धेर्येन नाप्राप्तिन्यायेनान्तरङ्गबाधकत्वमूलकं न सिच्यन्तरङ्गमस्तीति 'इको गुण' (१।१।३) इति सूत्रे भाष्ये स्पष्टम्॥ ५०॥

नन्वेवमक्षद्यूरित्यादौ बहिरङ्गस्योठोऽसिद्धत्वादन्तरङ्गो यण् न स्यादत आह—

## नाजानन्तर्ये बहिष्ट्वप्रक्लृप्तिः॥ ५१॥

नव्यमतेऽपि दीक्षितादिमतेऽपि। अन्यथेत्यस्य व्याख्या—**यथोद्देशेति**। तथा च तद्रूपं यत्प्रकारान्तर तेन सिद्धेत्याद्यर्थ.। **दाहरेति**। तत्रैतदप्रवृत्तेः परंतप इत्याद्युदाहरणेत्यर्थः। तस्य, उक्तभाष्यस्य। तदुक्तित्वं, पूर्वपक्ष्युक्तित्वम्। **आहुरिति**। भाष्यसिद्धान्तानुयायिन इत्यर्थः। **समानाश्रयेति**। व्याश्रयस्य तु भवत्येवेति भावः। **नानेनेति**। असिद्धमिति वचनेनेत्यर्थः। असिद्धत्वात्, आभीयासिद्धत्वात्। **भाष्य इति**। तत्र हि वसुसम्प्रसारणमज्विधौ सिद्ध वाच्यमन्यथाऽऽभीयासिद्धत्वाद्बहिरङ्गासिद्धत्वाच्चाल्लोपादीनि पपुषश्चिच्युष्यो लुलुवुष इत्यादौ न स्युरित्युक्त्वाऽसमानाश्रयत्वेनाऽऽद्य सखण्ड्य बहिरङ्गमन्तरङ्गमिति च प्रतिद्वन्द्विभाविनावेतावर्थावित्यादिनाऽन्त्यमपि खण्डितम्। तस्याय भावः—इयं परिभाषा वाह ऊठ्सूत्रस्थत्वादाभीयेत्येतस्या कर्तव्याया समानाश्रयस्य बहिरङ्गसम्प्रसारणस्याऽऽभीयत्वेनासिद्धत्वमिति निमित्ताभावादप्रवृत्तिः। तत्प्रत्याख्याने त्वनित्यत्व शरणमिति। यस्यासिद्धत्व तन्निमित्तमिमित्तकत्वं परिभाषाया अपि भाष्यप्रामाण्यादिति समानाश्रयत्व बोध्यम्। अत एव परम्परया निमित्तत्वेन तत्त्वं क्वाचित्क प्रागुक्तम्। आल्लोपादीनामन्तरङ्गत्व त्वल्पनिमित्तकत्वेन पूर्वस्थितनिमित्तकत्वेन च बोध्यम्। एव, पूर्ववत्। सिचि वृद्धेरित्यस्य बाधकत्वेऽन्वयः। **अन्तरङ्गेति**। गुणेत्यर्थः। तस्य तत्त्व च सख्यया घटकत्वेन चाल्पनिमित्तत्वेन बोध्यम्। ज्ञापकमप्यत्रातो हलादेरित्यत्रादग्रहणं णिश्रिप्रतिषेधश्च। अन्यथाऽकोषीदित्यादौ गुणेऽलघुत्वादश्वयीदित्यादौ गुणायादेशयोर्यान्तत्वात्तदभावसिद्धिरिति तद्व्यर्थम्। तेनानेनायीदित्यादौ वृद्धिसिद्धिः। अन्यथा गुणायादेशयोर्यान्तत्वान्न स्यादिति बोध्यम्॥ ५०॥

**एवं,** सिजाभीयत्रिपाद्यन्यत्र प्रागुक्तान्यतमान्तरङ्गत्वेन तत्प्रवृत्त्यङ्गीकारे। **बहिरङ्गेति**। यण्निमित्ताचो बहिर्भूतक्विन्निमित्तकस्योठ इत्यर्थः। अत्र च परस्थितनिमित्तकत्वरूप बहिरङ्गत्व पूर्वस्थितनिमित्तकत्वरूपमन्तरङ्गत्व बोध्यम्। अत्र, परिभाषायाम्। यद्यपि भाष्ये यदयं षत्वतुकोरसिद्ध इत्याहेत्युक्त तथाऽपि षत्वग्रहण समासनिर्दिष्टत्वान्न तु ज्ञापक

१ क. ग °म्। अक्षो। २ ग. 'रविहितत्व°। ३ ग. °वैविहितत्व°।

अत्र 'षत्वतुकोः '(३।१।८६) इति सूत्रस्थतुग्ग्रहणं ज्ञापकम्। अन्यथाऽधीत्य प्रेत्येत्यादौ समासोत्तरं ल्यप्प्रवृत्त्या पूर्वं समासे जाते तत्र संहितायां नित्यत्वाल्ल्यबुत्पत्तिपर्यन्तमप्यसंहिततयाऽवस्थानासंभवेनैकादेशे ल्यपि तुगपेक्षया पदद्वयसंबन्धिवर्णद्वयापेक्षैकादेशस्य बहिरङ्गतयाऽसिद्धत्वेन तद्वैयर्थ्यं स्पष्टमेव। पदद्वयसंबन्धिवर्णद्वयापेक्षैकादेशस्य बहिरङ्गत्वमिति प्रेद्ध इत्यादौ गुणो बहिरङ्ग इति ग्रन्थेन 'न धातुलोप' (१।१।४) इति सूत्रे 'संयोगान्तस्य लोपः' (८।२।२३) इति सूत्रे च भाष्ये स्पष्टम्।

यत्तु षत्वग्रहणमपि ज्ञापकम्। अन्यथा कोऽसिचदित्यादौ पदद्वयसंबन्धिवर्णद्वयापेक्षत्वेन बहिरङ्गस्यैकादेशस्यासिद्धत्वेन षत्वाप्रवृत्तौ किं

---

वक्ष्यमाणयुक्तेरत आह—**तुग्ग्रहणमिति**। तत्त्वमुपपादयति—**अन्यथेति**। परिभाषानङ्गीकार इत्यर्थः। समासस्य पूर्वत्वे हेतुमाह—**समेति**। तत्र, समासे। अपिना तदनन्तरं सुतरां तदसंभवः सूचितः। तन्नित्यत्वं तदसंभवे हेतुः। तद्वैयर्थ्यं, तुग्ग्रहणवैयर्थ्यम्। ननु पदद्वयसंबन्धिवर्णद्वयापेक्षत्वं बहिरङ्गत्वे हेतुस्तदेव दुर्वचं भाष्यानुक्तत्वात्, प्रागुक्तबहिरङ्गत्वसाधकाभिन्नत्वाच्चात आह—**पदेति**। **इत्यादाविति**। आदिनोपेद्ध इत्यस्य संग्रहः। तृतीयान्तमव्यवहितेनैवान्वेति। तत्रैव तत्सत्त्वात्। **लोप इति सूत्र इति**। तत्र ह्यार्धधातुकनिमित्ते लोपे गुणवृद्धी नेत्यर्थे प्रेद्ध इत्यादावतिप्रसङ्गमाशङ्क्येत्थं समाहितम्। ननु तत्र नेदृशं बहिरङ्गत्वं किं तु यदुपसर्गनिमित्तकमित्यादिना प्रागुक्तरूपमत एव वस्तुतस्तथा स्थितमपि तथा तत्र नोक्तमत आह—**संयोगान्तस्य लोप इति सूत्रे चेति**। तत्र हि यणो लोपमाशङ्क्य प्रतिषेधाद्युक्त्वा दध्यत्रेत्यादौ बहिरङ्गो यणादेशोऽन्तरङ्गो लोप इति समाहितम्। तत्र चैकपदीयवर्णाश्रयत्वं लोपस्य पदद्वयसंबन्धिवर्णद्वयाश्रितत्वं यणः स्पष्टमेव। यद्यपि तत्र न पदद्वयस्य तत्त्वमुक्तं तथाऽपि तल्लक्ष्ये पदद्वयाश्रयो यण्। द्वे पदे आश्रित्य सवर्णदीर्घत्वमपि भवत्याद्गुणोऽपीति[3] भाष्यस्य संप्रेतिसूत्रस्थस्यापीदमेव तात्पर्यम्। एवं प्रागपि। एवं च न तत्त्वेन तत्त्वं किं तु तत्र परनिमित्ताभावकृतनैमित्तिकत्वेनाधीत्येत्यादौ सख्यया घटकत्वेन वाऽल्पनिमित्तकत्वेनान्तरङ्गत्वं बोध्यम्। पदद्वयसंबन्धीत्यस्य[4] विशेषणस्य तत्रानुपादानेऽपि लक्ष्ये वस्तुतस्तत्त्वस्य सत्त्वेन विशेष्यस्य तत्त्वेन घटकत्वनिर्वाहः।

कैयटदीक्षिताद्युक्तिं खण्डयति—**यत्त्विति**। अपिना प्रागुक्तसमुच्चयः[1]। आदिना कोऽस्येत्यादिपरिग्रहः। एकादेशस्य, पूर्वं जातस्य। तं विना तस्यैवाप्राप्तेः। त्वाप्रवृत्तौ,

---

१ क. °भवसमुच्चयः। त°। २ ग. °ङ्गत्वानाक्रान्तत्वा°। ङ. ङ्गत्वासा°। ३ क. ख. घ. °दीर्घगुणेऽपी°। ४ ङ. °बन्धित्वस्य।

नेति तन्न । इणः पूर्वपदसंबन्धित्वेन षत्वस्यापि पदद्वयसंबन्धिवर्णद्व-
ापेक्षत्वेनोभयोः समत्वात् । एकादेशस्य परादिवत्त्वेनौसिचदित्यस्य
दृत्वेन सस्य पदादित्वाभावान्न 'सात्पदाद्योः' (८ । ३ । १११)
त्यनेन निषेधः । त्रैपादिकेऽन्तरङ्गे कार्यकालपक्षेऽपि बहिरङ्गपरिभा-
ाया अप्रवृत्तेः पूर्वमुपपादितत्वाच्च ।

परिभाषार्थस्तु, अचोऽन्यानन्तर्यनिमित्तकेऽन्तरङ्गे कर्तव्ये जातस्य

---

गः परत्वाभावात् । इणः, ओकारस्य । अजपीण्मध्येऽन्तर्गतः । अपिरेकादेशसमुच्चा-
कः । तदाह—भयोरिति । ननु समत्वेऽपि मास्तु षत्वग्रहणं सिचदित्यस्यैकदेशवि-
तन्यायेन पदत्वेन सात्पदाद्योरितिनिषेधनेष्टसिद्धेरत आह—एकेति । पदादीति ।
कारस्येति शेषः । नन्वशास्त्रीये निषेधप्रवृत्तिप्रतिबन्धे कथमतिदेशः । एव च तद्यर्थमेव ।
थ तत्प्रतिबन्धोऽपि शास्त्रीय कार्ये तद्युक्करीत्यौसिचदित्यस्य पदत्वेनेणः पूर्वपदासम्ब-
त्वेन द्वयोरसमत्वाज्ज्ञापक युक्तमेव । किंच न पदद्वयसबन्धिवर्णद्वयापेक्षत्वेन तत्त्वमु
हेतो. । किं स्वल्पनिमित्तत्वादिनेति तत्र षत्वस्यैव तत्त्वाद्युक्तमेव तत् । तथा घटकत्वाङ्गी-
रे न मानम् । तुकोऽज्ञापकत्व इष्टापत्तिर्वक्ष्यते । अत एव सामान्यतो भगवतोक्तमत
ाह—त्रैपेति । अपिर्यथोद्देशसमुच्चायकः ।

यत्तु हरदत्तसीरदेवादयो द्विवचनान्तेन समासः, द्वयमस्तीत्यध्याहारः । तथा चाचोरा-
न्तर्ये यत्र द्वयमस्ति बहिरङ्ग प्रवृत्तमन्तरङ्ग प्राप्नोति, अन्तरङ्ग प्रवृत्त बहिरङ्ग वा तत्र
हिरङ्गपरिभाषा नेति परिभाषार्थ. । तथा चान्तरङ्गे बहिरङ्ग उभयत्र वाऽचोऽजानन्तर्ये
हिरङ्गपरिभाषाप्रवृत्तिर्नेति फलितमित्याहुः । तन्न । एतज्ज्ञापकपरकृतितुग्ग्रहणवैयर्थ्यापत्तेः,
ावेदमित्याद्यसिध्यापत्ते', न धातुलोप इतिसूत्रस्थभाष्यविरोधापत्ते', धर्मिग्राहकमानवि-
ापत्तेश्च । यदपि सीरदेवादय. संहिताधिकारीये कार्ये कर्तव्ये प्रागुक्तस्थले तस्य तदा-
तर्ये तदप्रवृत्तिरित्यर्थान्तरमाहुः । तदपि न । अक्षरमर्यादया तथाऽर्थालाभात्,
काद्यान्त्यदोषावारणात्, ज्ञापितेऽपि तस्याचारितार्थ्याच्च । यत्तु कैयटमान्यादय
कवचनान्तेन समासो न तु तथा गौरवात्, फलाभावाच्च । एवं चोत्तरकालप्र-
त्तिकेऽच आनन्तर्ये तत्प्रतियोगिकानन्तर्ये निमित्तत्वेनाऽऽश्रिते तदप्रवृत्तिरित्यर्थमाहुः ।
न । अनुपदोक्ताद्यान्त्यदोषद्वयापत्तेरत आह—परीति । अच इति सबन्धसामान्ये
ठी न तु स्थानषष्ठी मूलविरोधापत्तेः । अन्तरङ्गे, आनन्तर्ये चान्वयः । अस्यः तस्यान्यप्रतियोगि-
ानन्तर्य इत्यर्थ. । ज्ञापकस्य सजातीयविषयत्वादाह—जातस्येति । परिशेषादाह—

---

१ घ नन्वेव शा० ।

**बहिरङ्गस्य बहिष्प्रक्लृप्तिर्न । बहिष्पदेन बहिरङ्गम् । तस्य भावो बहिरङ्गत्वं तत्प्रयुक्तासिद्धत्वस्य न प्रक्लृप्तिः, न प्राप्तिरिति । असिद्धं बहिरङ्गमित्युक्त्वा नाजानन्तर्य इति वक्ष्यामीति भाष्योक्त्या तत्रत्यस्यान्तरङ्ग इत्यस्यानुवृत्तिसूचनात् । तेन पचावेदमित्यादौ न दोषः । अन्तरङ्गस्याचूस्थानिककार्यस्यैत्वस्यान्यानन्तर्यनिमित्तकत्वाभावात् । जातस्य**

---

**बहिरङ्गस्येति** । यद्यपि तादृशेऽन्तरङ्गे कार्ये बहिःशब्देन परिभाषा गृहीत्वा तदप्रवृत्तिरित्यर्थः सुवचस्तथाऽपि त्वासगतिर्जातस्येति तत्सजातीयार्थालाभश्च स्यादत आह—**बहिष्पदेनेति** । भाव इत्यग्रे बहिष्ट्वमिति शेष. । क्वचित्तथा पाठ एव । तदर्थमाह—**बहिरिति** । ब्रह्मणाऽपि तस्य निषेद्धुमशक्यत्वादाह—**तत्प्रेति** । नन्वन्तरङ्ग इत्यस्य लाभ उक्तार्थलाभः । स एव न । अक्षरमर्यादया तदप्रतीतेः । ऐच्छिकार्थकल्पने तु किमिति प्राचोक्तार्थत्यागोऽत आह—**असिद्धमिति । इति भाष्योक्त्येति ।** विशिष्टभाष्योक्त्येत्यर्थः[1] । एव च भाष्यानुपूर्व्यैवेदृशीति तत्र क्त्वाप्रत्ययेन तदानन्तर्यमत्रानुवृत्त्यर्थमुक्तमन्यथा क्त्वान्तासगति. स्पष्टैव । तदाह—**तत्रेति** । यदंशेन वारणं तत्सूचयितु तद्रूप तेनेत्यस्यार्थमाह—**अन्तरङ्गेति** । यद्यपि धातोरिति प्रकृतमधिकारप्राप्त तत्र तथाऽपि तद्विहितविशेषणम् । एव च तत्र तत्त्वमपरनिमित्ताभावकृतानैमित्तिकत्वेन पूर्वनिमित्तकत्वेनाल्पनिमित्तकत्वेन वा बोध्यम् । जातस्येति[2]मात्रस्य फलमाह—**जातेति** । यत्तु सीरदेवादयोऽसिद्धमित्येकस्या एवाङ्गीकारेऽयज इन्द्रमित्यादौ दोषोद्धारः पदसंस्कारपक्षेण । यदाहु 'सुविचार्य पदस्यार्थं वाक्य गृह्णन्ति सूरयः, इति । युक्त चैतत् । अन्यथा तत्र पक्षे भिन्नपरिभाषाङ्गीकारेऽपि शब्दपरविप्रतिषेधेनान्तरङ्गत्वात्प्राप्त गुण बाधित्वा दीर्घ एव स्यान्न्यायतो वचनस्य प्राबल्यादित्याहुः । तन्न । तावताऽप्यन्यत्रानिर्वाहात् । शब्दतः परत्वमादाय विप्रतिषेधसूत्राप्रवृत्तेरचः परेतिसूत्रे भाष्ये ध्वनितत्वाच्च । तदेतद्ध्वनयंस्तस्य फलान्तरमाह—**धियतीति** । आदिना प्राद्रुद्रुवदित्यादिसग्रह. । अत एवात्रोभयत्र तत्रोक्तमेवान्तरङ्गत्व बोध्यम् । यद्यपीयङ्विधावजादौ प्रत्यय इति धातोर्विशेषणमिति न तस्यान्यानन्तर्यं तथाऽपि विशेषणतया तस्य तदस्त्येव । यदि तु प्राधान्येनाच एवान्यानन्तर्येत्याद्यर्थः सभवात् । इयङ्विधौ तु न तथेति विभाव्यते तदाऽऽद्यमेव प्रत्युदाहरणम् । अत एवोद्द्योतविरोधो[3] न । पुगन्तेत्यत्र सिद्धान्ते प्राधान्येनाप्राधान्येन च[4] न तस्य तदाश्रयणमिति[5] नोठ्ग्रहणज्ञापकत्वपरभाष्यासंगतिः[6] । दीक्षितमते त्वयमपि तत्र दोषो बोध्यः । एतेनेयङ्विधावचोऽन्यानन्तर्यानाश्रयणादिद[7] फल चिन्त्यम् । यथाकथचित्तत्त्वे तु प्रागुक्तोठ्ग्रहण-

---

१ घ. ङ. °र्थ. । तथा च । २ क. °स्येत्यस्य । ३ क. ङ °रोधोऽपि न । ४ ङ. च त° । ५ घ. °ति चोठ° । ६ क. °भाष्यस° । ७ ग. °र्यानिमित्तकत्वादि° ।

बहिरङ्गस्येत्युक्त्याऽयज इन्द्रं धियतीत्यादौ बहिरङ्गदीर्घगुणादेरसिद्धत्वं सिद्धम् ।

अत एवेण्ङिशीनामाद्गुणः सवर्णदीर्घत्वाच्छचङन्तस्यान्तरङ्गलक्षणत्वादित्यादि संगच्छते । अत एव 'ओमाङोश्च' ( ६ । १ । ९५ ) इत्याङ्ग्रहणं चरितार्थम् । तद्धि शिव आ इहीति स्थिते परमपि सवर्णदीर्घं बाधित्वा धातूपसर्गकार्यत्वेनान्तरङ्गत्वाद्गुणे वृद्धिबाधनार्थम् ।

न चाक्षद्यूरित्यत्र यणि कृत ऊठोऽसिद्धत्वाद्धलि लोपापत्तिरिति वाच्यम् । अचोऽन्यानन्तर्यनिमित्तकेऽन्तरङ्गे कर्तव्ये कृते च तस्मिन्यद्-

---

ज्ञापकपरस्वग्रन्थविरोध इत्यपास्तम् । ननु प्रादुद्रुवदित्यादौ सार्वधातुकेतितिङ्निमित्तकगुणात्प्रागिनत्यत्वाच्चाङि द्विर्वचनेऽचीति निषेधादुवङभावे द्वित्वात्परत्वाल्लघूपधगुणो दुर्वार इति चेन्न । अन्तरङ्गत्वाद्द्वित्वस्यैव प्राप्तेः । तस्य तत्त्व च प्रयोगीयोच्चारणेत्याद्युक्तरीत्या । द्वित्वादुपधाकार्यस्य प्राबल्येऽपि यथा न दोषस्तथाऽन्यत्र स्पष्टम् । **दीर्घेति** । सवर्णदीर्घलघूपधगुणादेरित्यर्थः ।

अत्रार्थे वार्तिकमपि प्रमाणयति—**अत एवेणिति** । जातस्येत्यर्थाङ्गीकारादेवेत्यर्थः । एवमग्रेऽपि । अत्राऽऽद्यं विप्रतिषेधसूत्रस्थमन्त्यं क्ङिति चेतिसूत्रस्थम् । आदिना बहिरङ्गेण सिध्यतीत्यादिपरिग्रहः । अन्यसूत्रमप्यत्रार्थे प्रमाणयति—**अत एवोमेति** । अन्यथा तदानर्थक्य ध्वनयितुमाह—**तद्धीति** । विभज्यान्वाख्यान इदम् । **धातूपेति** । क्रियायाः साध्यतया धातुतः प्रतीत्या सर्वतः प्राक्साधनाकाङ्क्षानैयत्येन तद्बोधकप्रत्ययोत्पत्त्यनन्तर प्राक्स्वार्थद्योतकत्वेन साकाङ्क्षतया धातोरुपसर्गयोगे ततः शिवशब्दस्य समुदायेन योगाद्गुणस्यान्तरङ्गत्वामिति सम्प्रसारणाच्चेतिसूत्रभाष्योक्त्या प्रागुक्तया धातूपसर्गकार्येऽपि प्रक्रियाक्रमेण पूर्वोपस्थितनिमिकत्त्वेनैवान्तरङ्गत्वं न तु तत्त्वेन । एतेन पञ्चमान्तरङ्गत्वस्याभावेनेद चिन्त्यमित्यपास्तम् । न ह्येकेनैकमेवेति न्यायेनास्य तस्य तादृशार्थज्ञापकताऽपि प्रागुक्ताऽविरुद्धा । अन्यथाऽऽनर्थक्यं स्पष्टमेवेति भावः ।

हरदत्तादि[1]कैयटादिमतसाधारण दोषं स्वम[2]त आशङ्कते—**न चेति** । अत एवैवमित्यनुक्तिः । असिद्धत्वात्, परास्थितनिमित्तकत्वेन बहिरङ्गत्वेनासिद्धं बहिरित्यनेन । निषेधस्तु न कस्यापि मते । पूर्वस्थितनिमित्तकत्वेनान्तरङ्गस्य वलिलोपस्याच्संबन्धिकार्यत्वाभावात् । यणस्तेनैवासिद्धत्वं तु न । समत्वेनातत्त्वात् । कैयटहरदत्तादिमतेन समाधत्ते—**अच इति** । **कृते चेति** । न मु न इतिवदिति भावः । त्येतदर्थात्, प्रकृतपरिभाषार्थात् । एतदङ्गी-

---

१ ग. °दिमते दोषाभावेऽपि कैयटम°। २ ग. ङ. °मतेनाऽऽश°।

न्तरङ्गं प्राप्नोति तत्र च कर्तव्ये नासिद्धत्वमित्येतदर्थात् । असिद्धपरिभाषाया अनित्यत्वेन तद्वारणे त्वस्या वैयर्थ्यं तेनैव सिद्धेः । अत एव 'नलोपः सुप्' ( ८ । २ । २ ) इति सूत्रे कृति तुग्ग्रहणं चरितार्थम् । अन्यथा वृत्रहभ्यामित्यादौ बहिर्भूतभ्यान्निमित्तकपदत्वाश्रयत्वेन बहिरङ्गतया नलोपस्यासिद्धत्वेन सिद्धेस्तद्वैयर्थ्यं स्पष्टमेव । मम तु तुक्यजानन्तर्यसत्त्वान्न दोषः ।

न चैवं सति 'ह्रस्वस्य पिति' ( ६ । १ । ७१ ) इतिसूत्रस्थभाष्यविरोधः । तत्र हि ग्रामणिपुत्र इत्यत्र 'इको ह्रस्वोऽङ्यः' ( ६ । ३।६१) इति ह्रस्वे कृते तुकमाशङ्क्य ह्रस्वस्य बहिरङ्गासिद्धत्वेन समाहितम् । नाजानन्तर्य इत्यस्य सत्त्वे तत्र तदप्राप्तेरसंगतिः स्पष्टैवेति वाच्यम् । तेन भाष्येणास्या अनावश्यकत्वबोधनात् । एतज्ज्ञापकेनान्तरङ्गपरिभाषाया अनित्यत्वबोधनस्यैव न्याय्यत्वात् । अत एव 'अचः परस्मिन्' ( १ । १ ५७ ) इति सूत्रे भाष्ये पटु ई आ इत्यत्र परयणादेशस्य तयाऽसिद्धत्वा-

---

कर्तृ बृहद्विवरणकारोक्तिं खण्डयति—**असिद्धेति** । अनित्यत्वेनेत्यस्याप्राप्त्येति शेषः । तद्वारणे तु, लोपापत्तिवारणे तु । अस्या , नाजानन्तर्य इत्यस्याः । तेनैव, अनित्यत्वेनैव । इष्टापत्तिं खण्डयति—**अत एवेति** । परिभाषासत्त्वादेवेत्यर्थः । अन्यथा, अनित्यासिद्धपरिभाषयैव निर्वाहादेतदनङ्गीकारे । त्वाश्रयत्वेन, तन्निमित्तकत्वेन । तथा च परम्परया निमित्तत्वेन बहिरङ्गत्वस्य क्वाचित्कस्यात्रापि स्वीकार इति भ्यान्निमित्तकत्वेन परनिमित्तकत्वाद्बहिरङ्गत्व बोध्यम् । नलोपस्यासिद्धत्वेनेति पाठ. । न चानित्यत्वात्तदप्रवृत्तिः । इष्टस्थलेऽप्यप्रवृत्तौ न्यायस्य निर्विषयतापत्तेः । अत एवेत्युक्तमर्थमाह—**मम त्विति** । परिभाषाङ्गीकर्तुरित्यर्थ. । तुकि, तद्विधायके ह्रस्वस्येति सूत्रे । **अजेति** । अचोऽन्यानन्तर्याश्रयणसत्त्वादित्यर्थः । तथा चानसिद्धत्वेन तद्वारणाय तदावश्यकमिति भावः ।

**चैवं सति** । परिभाषाङ्गीकारे सति । **तुकमिति** । प्रत्ययलक्षणेन क्विपमाश्रित्येति भावः । **बहिरिति** । ततो बहिर्भूतोत्तरपदनिमित्तकत्वेन परनिमित्तकत्वादिति भावः । एवं सतीत्युक्तार्थमाह—**नाजेति** । **तत्रेति** । ग्रामणिपुत्र इत्यत्र ह्रस्वे बहिरङ्गासिद्धत्वाप्राप्तेरुक्तभाष्यासंगतिरित्यर्थः । अस्याः, नाजानन्तर्य इत्यस्याः । ननूक्तादिफलानां ज्ञापकाना च सत्त्वात्कथमनावश्यकत्वमत आह—**एतदिति** । नाजानन्तर्य इत्येतज्ज्ञापकत्वाभिमतेन षत्वतुकोरितितुग्ग्रहणेनेत्यर्थः । **न्याय्यत्वादिति** । वचनाकल्पनजलाघवादिति भावः । एवः परिभाषान्यवच्छेदाय । न्याय्यत्वमेवोपपादयति—**अत एवेति** । अस्या अनावश्यकत्वेनासत्त्वादेवेत्यर्थः । तया, असिद्धपरिभाषया । अनयेति पाठान्तरम् ।

त्पूर्वयणादेशः साधितः । अत एवैषा परिभाषा भाष्ये पुनः क्वापि नोल्लिखिता ।

अत एवान्तरङ्गपरिभाषामुपक्रम्य विप्रतिषेधसूत्रेऽस्या बहूनि प्रयोजनानि सन्ति तदर्थमेषा परिभाषा कर्तव्या प्रतिविधेयं दोषेष्वित्युक्तं 'सम्प्रसारणाच्च' [ ६ । १ । १०८ ] इति सूत्रे भाष्ये । प्रतिविधानं च परिभाषाविषयेऽनित्यत्वाश्रयणमेवेति ध्वनितमित्यलम् ॥ ५१ ॥

---

साधित इति । एतत्सत्त्वे तु निषेधात्तदसंगतिः स्पष्टैव । ननु नेदं युक्तम् । एतत्सत्त्वेऽपि प्रागुक्तरीत्या तत्राप्राप्तेरत आह—अत एवेति । उक्तोऽर्थः । पुनः क्वापि, विप्रतिषेधसूत्रातिरिक्ते ।

नन्वेवमपि तत्र फलार्थमुल्लेखेनाऽऽवश्यकत्वमेव । न हि बहुषूल्लेख एवाऽऽवश्यकत्वसाधकोऽतिप्रसङ्गापत्तेरत आह—अत एवान्तेत्यादि भाष्य इत्यन्तेन । सम्प्रसारणाच्चेतिसूत्रे भाष्येऽन्तरङ्गपरिभाषामुपक्रम्येत्युक्तमित्यन्वयः । इतीति किं तदाह—विप्रेति । इदं तर्हि प्रयोजनं वृक्षा अत्रेत्यत्र विभज्यान्वाख्याने वृक्ष अम् अत्रेति स्थिते रुत्वे द्वयोर्युगपत्प्राप्तौ प्राद्युद्धदित्यत्रेवोत्वादन्तरङ्गत्वात्पूर्वं र्वसवर्णदीर्घो नावश्यमिदमेव फलमित्यादिः । अस्याः, अन्तरङ्गपरिभाषायाः । ननु नैतावैतैतदभावसिद्धिरनेन फलानामन्यप्रतिविधानानां च तत्रोक्तत्ववन्नाजानन्तर्य इत्यस्या अपि तत्त्वेन तत्रोक्तत्वादत आह—प्रतीति । परिभाषाविषये, असिद्धपरिभाषार्थे । एवेन विप्रतिषेधसूत्रोक्तप्रतिविधाननिरासः । ध्वनितमिति । प्रतिविधेय दोषेष्विति विधिप्रत्ययान्तप्रकृतिकैकवचनान्तेनैद्वहुवचनान्तप्रयोगेणेति शेष. । तथेष्टत्वे तु दोषेषु प्रतिविधानान्युक्तानीत्येव वदेत् । तत्रोक्तत्वात्तत्र नैव वदेत् । तस्मात्सर्वदोषेष्वेकं प्रतिविधानं ततोऽन्यत्कार्यमिति तदर्थ. । तथा तु तदनित्यत्वमेव नान्यथा । विप्रतिषेधसूत्रस्थभाष्योक्तिरेकदेशिन इति तत्तात्पर्यम् । गौरवात्तथाप्रतिपादकसीरदेवादयोऽपि चिन्त्या एव । अक्षद्यूरित्यादावपि तदनित्यत्वादेव निर्वाह इति तदर्थमप्यस्या आवश्यकता न । अत एव निर्मूलाऽपि । मूलशैथिल्यात् । तुगेकादेशयोः प्रत्येकं निमित्तद्वयापेक्षत्वेन संज्ञाकृततत्त्वानाश्रयणेनान्यथा वा समत्वात् । प्रत्युत तुक एव बहिरङ्गत्वात् । अन्यस्य तत्त्वस्य दुर्वचत्वात् । तथात्वटकत्वाङ्गीकारेऽतिप्रसङ्गापत्तेश्च । एवं चैतज्ज्ञापकपरं विप्रतिषेधे परमितिसूत्रस्थं भाष्यमेकदेश्युक्तिरेव । अत एव तत्र भाष्ये ज्ञापकानुपपादनं सामान्योक्तिश्च । अत एव तुग्ग्रहणमावश्यकमेवेति भाव. । नन्वेवं बृहद्विवरणोक्तेरीषत्समर्थनेऽपि कृति तुग्ग्रहणवैयर्थ्यापत्तिरेवेति चेदिष्टापत्तेः । सन्निपातपरिभाषयेष्टसिद्धिमाश्रित्य भाष्ये तस्य प्रत्याख्यानादिति केचित् । तस्या अनित्यत्वमेव तेन ज्ञाप्यत इति तस्य न वैयर्थ्यमिति सीरदेवादयः । वस्तुतस्तु संज्ञाकृतं बहिर्भूतनिमित्तकसंज्ञाकृतं व्यवहितनिमित्तकृतं

---

१ घ. °वता सि° । २ ङ. °तङ्ग° । ग. °तबहु° । ३ ङ °येमगौ° । ४ क सास्याक्ति° ।

नन्वेवं गोमत्प्रिय इत्यादौ पदद्वयनिमित्तकसमासाश्रितत्वेन बहिरङ्गं लुकं बाधित्वाऽन्तरङ्गत्वाद्वृद्ध्यादिलोपे नुमादयः स्युरत आह—

**अन्तरङ्गानपि विधीन्बहिरङ्गो लुग्बाधते ॥ ५२ ॥**

अत्र च 'प्रत्ययोत्तरपदयोश्च' ( ७ । २ । ९८ ) इति सूत्रं ज्ञापकम् । त्वत्कृतमित्यादौ लुगपेक्षयाऽन्तरङ्गत्वाद्विभक्तिनिमित्तकेन 'त्वमावेकवचने' ( ७ । २ । ९७ ) इत्यनेन सिद्ध इदं व्यर्थं सदेतज्ज्ञापकम् । ननु तव पुत्रस्त्वत्पुत्र इत्यादौ तवममादिबाधनार्थं तदावश्यकमिति चेत् । एवं तर्ह्यत्रत्यमपर्यन्तग्रहणानुवृत्तिस्तज्ज्ञापिकेति भाष्यकृतः ।

---

च बहिरङ्गत्व नाऽऽश्रीयत इत्यर्थज्ञापकतया तत्साफल्यस्य प्रागुक्तत्वेनासिद्धपरिभाषया वृत्रहभ्यामित्यादेः सिद्ध्यभावः । तया[1] सिद्धिमाश्रित्य तत्प्रत्याख्यातमिति त्वन्यदेतदिति न दोष.।एव चासिद्धेत्यादि न दोष इत्यन्ता प्रागुक्तिः प्राचां तथाबहिरङ्गत्वमङ्गीकुर्वतामर्वाचीनानामनुरोधेन । अत एव पूर्वापरग्रन्थविरोधो न । किं चैतत्सत्त्वेऽपि कृते चेत्यादिद्वितीयार्थानुपयोगः । अक्षद्यूरित्यत्रोठोऽसिद्धत्वाद्वलि लोपप्राप्तेरचः परेतिस्थानिवद्भावेन सुवारत्वात् । प्रत्यैषिषन्नित्यादौ जुसोऽभावाय पञ्चमीसमासस्याऽऽवश्यकत्वात् । प्रविगणय्येत्याद्यर्थं तदनित्यत्वेऽपीष्टस्थले प्रवृत्तेरप्रत्यूहात्[2] । पूर्वस्मान्निमित्तत्वेनाऽऽश्रितादितिकैयटस्योद्द्योते दूषितत्वात् । स्वविधावित्यस्य स्वोद्देश्यकविधौ प्रवृत्तेः । न च न पदान्तेति निषेध· । उक्तोत्तरत्वात् । एव च तथार्थकरण प्रागुक्तोद्द्योतादौ[3] च पञ्चमीसमासानङ्गीकर्तृमतानुरोधेनेति न तद्विरोध इति सुबोध्यम् । तदाह—**इत्यलमिति** ॥ ९१ ॥

**एवम्**, अनित्यासिद्धपरिभाषायाः सिजादाविवाजानन्तर्य एवानङ्गीकारे । आदिना गोर्मत्पतिरित्यादिसग्रहः । साश्रितत्वेन, तत्प्रयोज्यत्वेन । परम्परया तत्त्वस्य क्वचिदङ्गीकारात् । अन्तरङ्गत्वात्, समासान्तर्गतैकदेशनिमित्तकत्वादित्यादिः । आदिना दीर्घादिपरिग्रहः । **गानपीति** । अपिः परनित्यसमुच्चायकः । अत्र च, परिभाषाया च । तत्त्वमेव विशदयति—**त्वदिति** । आदिना त्वया कृतस्त्वदीय इत्यादिसग्रहः । **लुगेति** । उक्तरीत्येति भाव. । एकवचन इत्यस्यार्थपरत्वादाह—**विभक्तीति** । अष्टन आ इत्यतोऽनुवृत्तेः[5] । तत्फलं तु युष्मद्ध्रडित्थपुत्र इत्यादौ[6] त्रिपदबहुव्रीहौ[7] नेति भावः । इद, प्रागुक्त सूत्रम् । **एतदिति** । परिभाषेत्यर्थः । क्वचिदेतद्रहितः पाठः । एवमग्रेऽपि । आदिना तुभ्य हित त्वद्धित तवाय त्वदीय इत्यादिपरिग्रहः । अग्रिमादिना तुभ्यादिसग्रहः । तेषा तद्बाधकत्वात् । तत्, सूत्रम् । **अत्रत्येति** । प्रत्ययोत्तरेतिसूत्रस्थेत्यर्थ· । तत्रत्येति पाठान्तरम् ।

---

१ ङ. तथा । २ क ख. °त्यूहः । पू° । ३ ख ग. घ ङ °गुद्यो° । ४ घ °मत्यतीत्या° । ५ ग. ङ. °वृत्तेरिति भावः । त° । ६ ङ. °त्यादित्रि° । ७ ङ व्रीह्यादावादेशाभाव इति बोध्यम् । इ° ।

युष्मदादिभ्य आचारक्विप् तु न। संपूर्णसूत्रस्य ज्ञापकतापरभाष्यप्रामाण्यात्।'ह्रस्वनद्यापः'(७।१।५४) इति नुड्विधायकसूत्रस्थभाष्यप्रामाण्येन हलन्तेभ्य आचारक्विबभावाच्च। एवमेवैकार्थकाभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां प्रातिपदिकप्रकृतिकणिचोऽप्यनभिधानं बोध्यम्। एतेन तत्राऽऽदेशार्थं प्रत्ययग्रहणं चरितार्थमित्यपास्तम्।

ननु मपर्यन्तानुवृत्तिरपि सर्वादेशत्ववारणेन चरितार्था। न चोत्स-

---

यत्त्वत्र सूत्र न ज्ञापकं प्रत्ययग्रहणस्य क्विबादौ तत्सपादकतया साफल्यात्। किं तूत्तरपदग्रहणमिति प्राञ्चस्तत्खण्डयितु भाष्ये प्रागुक्त यथाश्रुतं सपूर्णसूत्रस्य ज्ञापकत्वं समर्थयन्नुभयविषये तदनुवृत्तेस्तत्त्व द्रढयति—**युष्मेति**। **आचारेति**। प्रातिपदिकप्रकृतिकेत्यादिः। न केवलमिदमेव साधक किं त्वन्यदप्यस्तीत्याह—**ह्रस्वेति**। तत्र हि कास्प्रत्ययादित्यामोऽत्र ग्रहण सानुबन्धकत्वान्न। मस्येत्वाभावस्तु न तत्फल फलाभावात्। यतः प्रत्ययान्तादयं विधीयते तत्र नास्ति विशेषो मिदचोऽन्त्यादिति परत्वे प्रत्ययः परश्चेति वाऽऽस्कासोरामविधानाच्चेत्युक्तम्। प्रत्ययान्ता अजन्ताः। हलन्तेभ्य आचारक्विप्च न। सर्वप्रादिपदिकेभ्य इत्यस्यैकीयमतत्वात्तन्मताश्रयणेऽप्येतद्भाष्यात्तेभ्यस्तदभाव एवेति कैयटः। अवगल्भादौ त्वकारान्तरस्य प्रश्लिष्टस्यानुबन्धत्वस्वीकारान्न हलन्ततेति तद्भावः। **एवमेवेति**। क्विब्वदेवेत्यर्थः। एकार्थकाभ्या प्रातिपदिकाभ्या, युष्मदस्मद्भ्याम्। हरदत्तमतनिरासायाऽऽह—**प्रातीति**। तदा हि प्रागुक्ततुल्यतैव भवेत्। अपिनाऽत्यन्तस्वार्थिकतरबादेरपि संग्रहः। **अनभिधानमिति**। आद्यहेतोरिति भावः। ( * अत्र बोध्यमित्यनेन सूचिताऽरुचिस्तु तस्यैकदेशयुक्तत्वरूपोक्तैवेति नेदं युक्तमिति ) प्राचोक्त खण्डयति—**एतेनेति**। क्विबाद्यभावेनेत्यर्थः। **तत्रेति**। क्विबादौ त्वमादेशार्थमित्यर्थः।

यत्तु कैयटादयस्तदनुवृत्तिः केवला न ज्ञापिका। तदभावे ह्यादेशान्तराणामपि बाधकौ तौ सर्वादेशौ स्यातामनेकाल्त्वात्। उत्सर्गसमानेति तु श्मादौ व्यभिचरितम्। तस्मात्त्वादीनां प्रसङ्ग इत्यर्थद्वारा स्थानिप्रक्लृप्त्यर्थं या तवाद्यनुवृत्तिस्तत्सहिता तदनुवृत्तिर्ज्ञापिका। केवला हि तदनुवृत्तिर्लाघवाय स्यात्। गरीयसी हि तवाद्यनुवृत्त्या स्थानिप्रतीतिरिति तज्ज्ञापनाय न भवेदिति तदयुक्तम्। अतिगुरुत्वाज्ज्ञापितेऽपि तवाद्यनुवृत्तेः सार्थक्यस्य दुरुपपादत्वाच्च। तदेतद्ध्वनयन्नाह—**नन्विति**। अपिः सूत्रसमुच्चायकः। मुन्यसमतत्वेना-

---

* धनुश्चिह्नान्तर्गतो ग्रन्थो ङ. पुस्तकस्थः।

---

१ ग. ननु तद्भाष्यस्योक्तरीत्यैकदेशयुक्तित्वेन कथमिष्टसाधकत्वमत आह—हर°। ङ, पुस्तकेऽप्येवमेव पाठान्तरम्।

र्गसमानदेशा अपवादा इति न्यायेनासिद्धवत्सूत्रस्थभाष्यसंमतेन भपर्यन्तस्यैवाऽऽदेशे सिद्धे तदनुवृत्तिर्व्यर्थेति वाच्यम् । तस्य श्नमकजादौ व्यभिचारादिति चेन्न । श्नमि मित्त्वेन बहुचि पुरस्ताद्ग्रहणेनाकचि प्राक्टेर्ग्रहणेन तस्य बाधेऽप्यत्रोत्सर्गस्य त्यागे मानाभावात् । अत एव 'तस्मिन्नणि च' (४ । ३ । २) इत्यनेन युष्माकाद्यादेशविधानं चरितार्थम् । अन्यथाऽऽकङादेशमेव विदध्यात् । आकङि तवकाद्यादेशयोरेतदपवादयोरुक्तन्यायेनान्त्यादेशत्वापत्तिः । अतस्तद्विधानमिदमेव च तज्ज्ञापकम् ।

यद्यपि विरोधे बाधकत्वमिति वार्तिकमतेऽयं न्यायो भाष्यकारस्तु विनाऽपि विरोधं सत्यपि संभवे बाधकत्वमिच्छतीत्यनभिहितसूत्रस्थ-

---

प्रामाण्यनिरासायाऽऽह—**असिद्धवदिति** । तदनुवृत्तिः, भपर्यन्तग्रहणानुवृत्तिः । तस्य, उत्सर्गसमानेति न्यायस्य । आदिना बहुचो ग्रहणम् । **श्नमीति** । अवयविनोऽधिकरणत्वविवक्षया सप्तमी । यद्वा तस्य बाधेऽपीत्यत्रान्वयः । अत एव बहुचीत्यादिसंगतिः । **पुरस्तादिति** । तद्विधिसूत्र इति भावः । एवमग्रेऽपि । तस्य, उत्सर्गेतिन्यायस्य । अत्र, त्वमयोः । उत्सर्गस्य, बाधाभावे सर्वत्र प्रवर्तमानस्योत्सर्गेतिन्यायस्य । अत एव वक्ष्यति—उत्सर्गः स्वी क्रियत इति । प्रत्युत तदङ्गीकार एव मानमित्याह—**अत एवेति** । तस्य तादृशसार्वत्रिकत्वाङ्गीकारादेवेत्यर्थः । अन्यथा, तत्र व्यभिचारेण तस्यैवानङ्गीकारे । प्रतिपत्तिलाघवायाऽऽह—**आकङिति** । अन्यथाऽकङमेव विदध्यात् । अस्य ङित्वादन्त्यादेशत्वेऽप्यपवादयोरनेकाल्त्वात्सर्वादेशत्वसिद्धिरिति भावः । तद्ध्वनयन्नाह—**आकङीति** । क्रियमाणे सतीति शेषः । **उक्तेति** । उत्सर्गेत्यर्थः । तद्विधान, युष्माकाद्यादेशविधानम् । ननु तस्य भाष्यसंमतत्वतत्साफल्यकारित्वयोरपि मूल एव कुठारोऽत आह—**इदमेव चेति** । युष्माकाद्यादेशविधानमेव चेत्यर्थः । ज्ञापिते चारितार्थ्यं तूक्तमेव ।

उक्तमेव शङ्कासमाधिभ्यां द्रढयति—**यद्यपीत्यादिना** । कैयटग्रन्थमाह—**विरोधे** । तत्रैव । **अयमिति** । उत्सर्गेतीत्यर्थः । विरोधोऽप्यपवादत्वेन बाधे कारणं न विशेषविधानमेव । स च समानदेशत्वे सत्येव घटते नान्यथेति तन्मते तस्याऽऽवश्यकत्वमिति भावः । **विनापीति** । अपिना विरोधसमुच्चयः । अग्रिमापिनाऽसंभवसमुच्चयः । **बाधकत्वमिति** । विशेषविधानमात्रेणेति शेषः । तच्चकौण्डिन्यन्यायमूलकेन येननेति न्यायेनेति भावः । ननु सत्यपीत्याद्यपिभ्यामसंभवे विरोधस्यापि बाधहेतुत्वस्योक्तत्वान्न्यायाभावोऽत्र मते दुर्वचोऽत

---

१. घ. 'भवति'।

कैयटरीत्या नाय नियमस्तथाऽपि युष्माकाद्यादेशविधानज्ञापित उत्सर्गः स्वी क्रियत एवेति प्रकृते न दोषः। एतद्भाष्यमपि तत्स्वीकारे मानम्। एवं च मपर्यन्तानुवृत्तिस्त्वत्कृतमित्यादौ मपर्यन्तस्याऽऽदेशविधानार्था। तत्र चान्तरङ्गत्वात् 'त्वमौ' (७।२।९७) इत्येव सिद्धे व्यर्था सैतज्ज्ञापिका। ज्ञापिते त्वस्मिन्नेतद्विषये तवादीनामप्राप्त्या तदपवादत्वाभावेन मपर्यन्तस्यैवाऽऽदेशार्थं सा चरितार्थेति तदाशयः। यत्तु हरदत्तेनान्तरङ्गप्रवृत्तौ प्रत्यय उत्तरपदे च मपर्यन्तासंभवेन तदनुवृत्तिर्व्यर्था सती ज्ञापिकेत्युक्तं तन्न। अन्तरङ्गाणामप्यपवादबाध्यत्वेन तद्विषये

---

आह—**नायं नियम इति**। एवं च तैनानिर्वाहान्मपर्यन्तानुवृत्तिः सफलेति कथं तस्या ज्ञापकतेति भावः। उत्सर्गः, उक्तोऽर्थः। **एवेतीति**। एवेनास्वीकारव्यवच्छेदः। अन्यथा तदानर्थक्यापत्तिरेवेति भाव.। प्रकृते, त्वादिविषये। ननु यथोत्तरं मुनीनां प्रामाण्यादनियम एव युक्तो नोत्सर्गस्विकारोऽत आह—**एतदिति**। मपर्यन्तग्रहणानुवृत्तिज्ञापकपरोक्तभाष्येत्यर्थः। एव च द्वयोः समत्वेनेष्टतो व्यवस्थायां युष्माकाद्यादेशविधानसहकृतभाष्येण प्रकृते तथैवाङ्गी क्रियत इति तदनुवृत्तिज्ञापकता सुस्था। तदाह—**एवं चेति**। प्रकृते तन्न्यायाङ्गीकारेण त्वत्पुत्र इत्यादौ बाधकबाधनार्थेन[1] सूत्रेण निर्वाहेण सूत्रसाफल्ये चेत्यर्थः। **विधानार्थेति**। अस्य वाच्येति शेषः। तत्र, त्वत्कृतमित्यादौ। **चान्तरङ्गत्वादिति**। उक्तरीत्या लुगपेक्षयेत्यादिः। तत्र तदनुवृत्ते. सत्त्वादिति भाव। अस्मिन्, अन्तरङ्गानपीति न्याये। एतद्विषये, प्रत्ययोत्तरपदयोरित्येतद्विषये। अप्राप्त्या, विभक्तिपरत्वाभावात्। अभावेन, असभवेन। उत्सर्गेति न्यायाविषयत्वेनेति शेषः। एवेनाधिकव्यावृत्तिः। तदाशयः, भाष्याशयः। एतेन कैयटमते ज्ञापितेऽपि तवाद्यनुवृत्तेः सार्थक्यस्योपपादयितुमशक्यत्वेन कैयटाद्युक्त चिन्त्यमेवेति प्रागुक्त सूचितम्। **अन्तरङ्गेति**। अस्यान्तरङ्गेतिन्यायाभावे प्रागित्यादिः। पदे च, परत इति शेषः। न्तासभवेन, क्वचित्त्वमयोः क्वचित्तवादेर्जातत्वात्। तत्राऽऽद्ये तथेष्टसिद्धावप्यन्त्ये दोष एवेत्याशयेनाऽऽह—**अन्तरङ्गेति**। अपिर्नित्यादिसमुच्चायकः। तथा चापवादप्रत्ययोत्तरेति विषये तवादेरप्राप्तौ मपर्यन्तसंभवेन तत्राधिकव्यवच्छेदाय तदनुवृत्तेः साफल्येन ज्ञापकत्वासम्भव इति मदुक्तरीत्या न्यायाश्रयणेनैव तत्त्वोपपादनं युक्तमिति भावः। ननु यथा[2] स न्यायो वार्तिकमते तथा युष्माकाद्यादेशविधानमपि तद्रीत्यैवेति

---

१ क. 'हे चेत्य'। २ क. 'था न्यासयोर्वार्ति°।

**तदप्रवृत्तेः। वस्तुत इदं ज्ञापकं वार्तिकरीत्यैव। भाष्यरीत्या तु वाचनिक एवायमर्थ इत्याहुः।**

**इयं 'सुपो धातु' (४।२।७१) इति लुग्विषयैवेति केचित्। 'एङ्ह्रस्वात्संबुद्धेः' (६।१।६९) न यासयोः (७।३।४५) इतिसूत्रस्थाकरप्रामाण्येन लुङ्मात्रविषया। आद्ये हे त्रपु इत्यादावनेन न्यायेन लोपं बाधित्वा लुग्भवतीति भाष्य उक्तम्। अन्त्येऽन्तरङ्गांश्च विधीन्सर्वोऽपि लुग्बाधते न तु सुब्लुगेव।**

---

कथं भाष्यमते ज्ञापकत्वनिर्वाहोऽत आह—**वस्तुत इति**। इदं, मपर्यन्तग्रहणानुवर्तनम्। अस्य सर्वस्याऽऽशयस्तु यद्यपीत्यादिनोक्त एव। एवं चेदं भाष्यमपि तद्रीत्यैवेति भावः। एवव्यवच्छेद्यमाह—**भाष्येति। आहुरिति**। अनेनारुचिः सूचिता। एवं सति वाचनिकत्वमपि निष्फलम्। असिद्धमित्येतस्यानित्यत्वेनैव सिद्धेर्यद्यन्तरङ्गातिरिक्तेऽस्याः फल न तदेतीति दिक्[1]।

केचिदिति सूचितारुचिमाह—**एङिति**। कैयटसंग्रहायाऽऽह—**आकरेति**। मात्रशब्दः कार्त्स्न्ये। तदुपपादयति क्रमेण—**आद्य इत्यादिना**। आद्ये, एङ्ह्रस्वादित्यत्र। लोपं, संबुद्धिलोपम्। भाष्ये, सकैयट इत्यादिः। तत्र ह्यपृक्तसबुद्धिलोपाभ्यां लुग्विप्रतिषेधेनेति सूत्रसिद्धिवार्तिकप्रत्याख्यान लुग्लोपयणयवायावेकादेशेभ्य इति विप्रतिषेधसूत्रशेषस्थवार्तिकमाश्रित्य न वा लोपलुकोर्लुगवधारणाद्यथाऽनडुह्यत इति वार्तिकेन तद्ग्रिमेण कृतं भाष्ये। तत्र कैयटेन लुग्लोपेतिवार्तिकस्यापि खण्डनायान्तरङ्गानपीति न्याय उपन्यस्तः। विप्रतिषेधसूत्रेऽप्येवम्। न च लोपलुकोः समत्वात्कथमन्तरङ्गबहिरङ्गभाव इति वाच्यम्। लोपस्य हल्मात्रनिमित्तकत्वं सबुद्धेरित्युपलक्षणमप्रधानं वा। लुक्तु समुदायनिमित्तक इति भेदादिति केचित्। अन्ये तु तस्य प्रसक्तवर्णादर्शनमात्र निमित्त लुकस्तु प्रसक्तप्रत्ययादर्शनमिति भेदेन तत्त्वादित्याहुः। वस्तुतस्त्वन्तरङ्गानपि विधीन्बाधमानो लुग्बलवानित्यतुल्यबलेन लोपेन स्पर्धा नार्हतीति विप्रतिषेधो नोपन्यसनीय इति तत्र कैयटेनोक्तम्। अन्तरङ्गानपि विधीन्बहिरङ्गो लुग्बाधत इत्यस्य प्रत्ययोत्तरेत्यत्र ज्ञापितत्वात्सिद्धमिति विप्रतिषेधसूत्र उक्तम्। तस्योभयस्याय भाव.—अपिना परनित्ययोः संग्रहात्परनित्यान्तरङ्गबाधकत्वेनापवादतुल्यत्वस्य तत्र प्रतिपादनेन विप्रतिषेधसूत्रादीना तद्विषयेऽप्राप्तिरिति न तस्यान्तरङ्गत्वाद्यपेक्षेति। अत एव तत्रान्तरङ्गत्वाद्यनुपपादमिति बोध्यम्। अन्त्ये, न यासयोरित्यादौ। **ङ्गांश्चेति**। चोऽप्यर्थे।

---

[1] घ. 'सिद्धिर्यं°'।

अत एव सनीस्रंस इत्यादौ नलोपो न भवति। पञ्चभिः खट्वाभिः क्रीतः पञ्चखट्व इत्यादावेकादेशात्प्रागेव टापो लुक्। अन्यथा कृतैकादेशस्य लुक्यकारश्रवणं न स्यादिति कैयट उक्तम्।

एतद्विरोधाद्यत् 'तद्राजस्य' (२।४।६२) इति सूत्रे कैयटेनोक्तमङ्गानतिक्रान्तोऽत्यङ्ग इत्यत्र सुपो लुकि बहुवचनपरत्वाभावात्तद्राजस्येति लुङ्न स्यादिति शङ्कापरभाष्यव्याख्यावसरेऽन्तरङ्गानपीति न्यायेनायं लुक्सुब्लुको बाधकः स्यादित्याशङ्क्य सुब्लुक एवानेन बलवत्त्वं बोध्यत इति तत्प्रौढ्येति द्रष्टव्यम्। लुगपेक्षया लुको बलवत्त्वस्य वक्तुमशक्यत्वादिति तदाशङ्कासमाधानं वक्तुं युक्तम्।

---

उक्तार्थं द्रढयति—**अत एवेति**। न्याये लुङ्मात्रग्रहणादेवेत्यर्थः। अस्योभयत्रान्वयः। **नलोप इति**। अन्यथा यङन्तादचि पूर्वोपस्थितनिमित्तकत्वेनान्तरङ्गत्वाद्यङोऽचीति लुकः प्रागचः प्रागेव वाऽनिदितामिति स्यादिति भाव.। एकेत्यस्य टापा सहेत्यादिः। **लुगिति**। लुक्च भवतीत्यर्थः। अन्यथा, अत्रोक्तरीत्या न्यायाप्रवृत्तौ। **कृतैकादेशस्येति**। टाप इत्यर्थः। विभज्यान्वाख्याने क्रमेणान्वाख्याने च पट्व्येत्यादाविवान्तरङ्गत्वादिति भावः। आदिवत्त्वाट्टाब्ग्रहणेन ग्रहणाल्लुक्तद्धितेतीति शेषः। तत्र हि स्यकनः प्रतिषेध, इति वार्तिकखण्डनाय मृदस्तिकन्निनीत्वनिर्देशस्य ज्ञापकत्वे भाष्योक्ते ज्ञापकताखण्डनाय, पञ्चमृत्तिक इत्यादौ क्रीतार्थकठकोऽध्यर्धेति लुकि लुक्तेति टापो लुकि, हेत्वभावादित्वाप्राप्तावित्वनिर्देशः सफल इत्युक्त्वा तदुपपादनायान्तरङ्गाश्चेत्याद्युक्त तेन।

नन्वेवं कैयटयो. पूर्वापरविरोधोऽत आह—**एतदिति**। उक्तसभाष्यकैयटद्वयेत्यर्थः। अयं च प्रौढत्वे हेतुः। तत्सूत्रे तदवसर इत्याशङ्क्येति यत्तेनोक्त तदुक्तविरोधात्प्रौढ्येति द्रष्टव्यमित्यन्वयः। अङ्गानित्यस्य प्रत्ययग्रहणपक्ष इत्यादिः। सुपः, शसः। अयं लुक्। तद्राजस्येति लुक्। एवं च शसमेवाऽऽश्रित्य घटकत्वेनान्तरङ्गत्वात्तस्मात्प्राक्स लुगिति भावः। एवेन तदन्यलुको व्यावृत्तिः। अनेन, न्यायेन। तस्यैव तत्र सम्भवेन ज्ञापकस्य विशेषापेक्षत्वात्। ननु तर्हि न्यायेन शसवस्थायां स्यादेव स ज्ञापकस्य सामान्यापेक्षत्वादित्यङ्गानित्यादिभाष्यासंगतिरेवात आह—**लुगिति**। तदाशङ्का, कैयटीयाशङ्का। वक्तु युक्तं, तेनैव। अयं भावः—यद्यप्युक्तभाष्यकैयटोक्त्या ज्ञापकस्य सामान्यापेक्षता तथाऽपि तद्राजेतिसूत्रभाष्यप्रामाण्यात्कार्यान्तरनिमित्तविनाशकलुक एव कार्यान्तरापेक्षया प्राबल्यबोधकोऽयं न्यायो ज्ञापकस्य सजातीयापेक्षत्वादेव च न भाष्यासंगतिरिति।

---

१ क. ख. 'ध्योक्तज्ञा°।

अनेन न्यायेनान्तरङ्गनिमित्तविनाशकलुकस्तत्प्रयोजकसमासादीनां च प्राबल्यं बोध्यत इत्यन्यत्र विस्तरः ॥ ५२ ॥

नन्वेवं सौमेन्द्रेऽन्तरङ्गत्वादाद्गुणे पूर्वपदात्परेन्द्रशब्दाभावेन 'नेन्द्रस्य' (७।३।२२) इति वृद्धिनिषेधो व्यर्थः। अन्तादिवद्भावस्तूभयत आश्रयणे निषिद्धः। किं च वृद्धिरप्यत्र न प्राप्नोति। अन्तादिवत्त्वोभया-

---

तदेतद्ध्वनयन्नाह—अनेनेति। अन्तरङ्गानपीत्यनेनेत्यर्थः। तरङ्गेति। लुगन्येत्यादिः। अन्तरङ्गादीत्यर्थ। लुक, लुङ्मात्रस्यैव। धर्मिग्राहकमानात्। अत एव प्रातिपदिकाधिकाराभावेऽनुदात्तादेरित्यस्य सुबन्तविशेषणत्वेन सर्वस्य सुपीत्याद्युदात्तत्वेन सर्वस्य विकारः सार्व इत्यत्राप्राप्तिर्भाष्येऽभिहिता। तस्य लुको घटकत्वेनान्तरङ्गाद्युदात्तत्वाविनाशकत्वात्। सौवर्यसप्तम्यास्तदन्तसप्तमीत्वेन विशिष्टकार्यत्वेन न लुमतेतिनिषेधाप्राप्त्या प्रत्ययलक्षणेन तस्य सौलभ्यात्। अन्यथाऽनेन न्यायेन लुग्वेतुप्रत्ययात्प्रागाद्युदात्ताप्राप्त्या तस्य तद्विशेषणत्वेऽप्यदोषेण तदसगतिः स्पष्टैवेति भावः। नन्वेवमपि गोमत्प्रियइत्यादौ समासात्प्राङ्नुमादयः स्युरेव। न हि तदा लुक्प्राप्तिः। समासादि तु ततो बहिरङ्गमेव। एव च न्यायो विफल एव। उत्तरपदग्रहण तत्र तदनुवृत्तिश्च व्यर्थैवेति तत्त्वासमवश्चात आह—तदिति। तादृशलुगित्यर्थः। प्रातिपदिकस्य द्वारभूतत्वादाह—प्रयोजकेति। आदिना तद्धितादिपरिग्रहः। उक्तज्ञापकेनैवायमप्यर्थो ज्ञाप्यते। अन्यथा तदानर्थक्यं स्पष्टमेव। अत एवैकेनैकमेव ज्ञाप्यमिति नियमोऽत्र न। अय चानित्यः। ज्ञापकसिद्धस्यासार्वत्रिकत्वात्। अत एव न यासयोरितिसूत्रस्थप्रागुक्तभाष्यसगतिः। तत्रत्यप्रागुक्तकैयटस्तु चिन्त्य एवेत्यादि स्पष्टमुद्द्योतादौ। तदाह—इत्यन्यत्रेति ॥ ५२ ॥

एवं, तद्वत्प्रागुक्तोभयत्रैव तदप्रवृत्तौ। सौमेन्द्रे, सौमेन्द्र इति तल्लक्ष्ये। अत्रान्तरङ्गत्वं पट्व्येत्यादिवदुभयथाऽपि बोध्यम्। नन्वन्तादिवद्भावेन तस्य ततः परत्वमत आह—अन्तादीति। उभयत इति। पूर्वपरशब्दाभ्यामन्तादिशब्दाभ्यां च विरोधस्य पुरःस्फुर्तिकत्वाद्विरुद्धातिदेशद्वयस्यैकत्र युगपदसभवात्। यथा द्वयोरेकः प्रेष्यस्ताभ्यां युगपद्भिन्नदेशकार्ययोः प्रेरितोऽविरोधार्थी कस्यापि कार्यं न करोति तद्वदिति न्यायसिद्धमिदम्। ननूभयत आश्रयणेऽन्तादिवत्त्वाभावेऽपि तद्वत्त्वे व्यपवर्गाभावेऽपि वा विकारविशिष्टे सोमय्यन्तवद्भावेन पूर्वपदत्वे न्द्रशब्द एकदेशेतिन्यायेनेन्द्रशब्दत्वात्सामर्थ्यादस्य देवतेतिप्राप्तवृद्धिनिषेध एवास्त्वत आह—किं चेति। अपिरेवार्थे। अत्र सौमेन्द्र इत्यत्र। देवताद्वन्द्वे चेत्यनेनेति भावः। अन्तादीति। एतद्रूपोभयेत्यर्थः। उक्तनिषेधादिति भावः।

---

१ घ. °पीति न्यायेने°। २ ख. ग. ङ. °त्वे स°।

**भावेऽपि पूर्वान्तवत्त्वेनैकादेशविशिष्टे पूर्वपदत्वेन न्द्रशब्दस्यैकदेशवि-कृतन्यायेनोभयत आश्रयणे नान्तादिवादित्यस्याभावेन तदाश्रयेण वोत्त-रपदत्वेऽपि तस्यानच्कत्वात्। एकस्यैकादेशेन परस्य नित्येन 'यस्य'( ६। ४।१४८) इति लोपेनापहारात्। न च परादिवद्भावेनैकादेशविशिष्टस्यो-त्तरपदत्वमेवास्त्विति तत्संभव इति वाच्यम् । उत्तरपदाद्यच्स्थानिक-त्वाद्वृद्धेस्तदभावेनाप्राप्तेस्ताद्रूप्यानातिदेशात् । अन्यथा खट्वाभिरि-त्यादावपि पूर्वान्तवत्त्वेनादन्तत्वे भिस ऐसापत्तिरिति भाष्ये स्पष्टम् । अत एव पूर्वेषुकामशम इत्यादावन्तरङ्गत्वादाद्गुणे वृद्धिर्न स्यादित्या-**

---

न्यायेनेत्यस्योत्तरपदत्वेऽपीत्यत्रान्वयः । ननूभयत आश्रयं इति निर्मूलम्। वतिघटित-शास्त्रस्याऽऽहार्यारोपबोधकत्वेन तस्य च विरुद्धद्वयविषयकत्वस्यापि युगपत्सभवेन लौकिक-न्यायेनोक्तेनास्य सिद्ध्यभावात्। अन्तादिवत्त्वेऽपि व्यपवर्गाभावेनोपसर्गात्परत्वस्येण्यभावेना-भीयादित्यादिसिद्धेश्च। 'उपसर्गस्यायतौ' 'अन्तादिवच्च' 'न पदान्त' गोस्त्रियोरित्यादि-सूत्रभाष्ये तदुल्लेखस्त्वेकदेशिन इति स्पष्टमुद्द्योतादौ। अत आह—**उभयत इति । तदाश्रयेण वेति ।** अन्तादिवत्त्वोभयाश्रयेण वेत्यर्थ.। यद्यपि पक्षद्वयेऽप्याहार्यारोपबोध-कत्वेन व्यपवर्गो दुर्निरूपस्तथाऽपि मूलमेव नेत्याह—**तस्येति ।** न्द्रशब्दस्येत्यर्थः। एव च न्द्रशब्दस्येत्येव पूर्व पाठो बोध्यः। अलोपाज्ञानेन सस्वरपाठो वा। अनच्कत्वे हेतुमाह—**एकस्यैकेति ।** प्रथमस्येत्यर्थः। अत एवाऽऽह—**परस्येति ।** ननु परत्वा-द्वृद्धिरत आह—**नित्येनेति । एकेति ।** एन्द्रशब्दस्यैवेत्यर्थः । एवस्यात्रान्वयात्। यद्वा यथाश्रुत एवैकादेशविशिष्टस्य पूर्वपदत्वव्यवच्छेदक. सः। एव चार्थान्मान्त एकदेशेति न्यायेन पूर्वपदत्व बोध्यम्। तत्सभव, वृद्धिप्राप्तिसभव.। एव च निषेध सफल.। तद-भावेन, आदित्वाभावेन। नन्वादित्वस्यापि तेनातिदेशोऽत आह—**ताद्रूप्येति ।** पृथग-वस्थिताभ्यामाद्यन्तघटिताभ्यां ये व्यवहाराः प्रत्ययत्वप्रातिपदिकत्वसुबन्तत्वादयस्ते कृतै-कादेशस्यापीत्यर्थ इति भाव । अन्यथा, ताद्रूप्यातिदेशे। अपिः खट्वाभ्य इत्यादि-समुच्चायक । **ऐस्त्वेति ।** भिसादीनामैसाद्यापत्तिरित्यर्थः । भाष्ये, अन्तादिवच्चेतिसूत्रे। अत एव, ताद्रूप्यानातिदेशेनाऽऽदित्वाभावादेव। **न्तरङ्गेति ।** पट्व्येत्यादिवदन्तरङ्गत्वम्। वृद्धिः, प्राचा ग्रामेत्यनेन। इषुकामशमीशब्दस्य प्राग्ग्रामवाचित्वात् । आशङ्कितम्, उभयत्र भाष्ये। समाधिस्तु परिभाषारूप एव। ननु सौमेन्द्रे यथैकदेशेतिन्यायेन मान्तस्य पूर्वपदत्व तथैकादेशविशिष्टस्योत्तरपदत्वमपि स्यादिति वक्ष्यमाणभाष्यासगतिरेवात आह—

---

१ इ. °यण इ°।

शङ्कितम् । तदेकदेशमात्रस्य विकाराभावाच्च । तदुक्तं भाष्य इन्द्रे द्वावचावेको यस्येति लोपेनापहृतोऽपर एकादेशेन ततोऽनच्क इन्द्रशब्दः संपन्नस्तत्र कः प्रसङ्गो वृद्धेरिति । मरुदादिभिरिन्द्रस्य द्वन्द्वे इन्द्रस्यैव पूर्वनिपातोऽत आह—

**पूर्वोत्तरपदनिमित्तकार्यात्पूर्वमन्तरङ्गोऽप्येकादेशो न ॥ ५३ ॥**

अत्र च 'नेन्द्रस्य' (७ । ३ । २२) इति निषेध एव ज्ञापक इति 'अन्तादिवच्च' (६ । १ । ८५) 'विप्रतिषेधे परम्' (१ । ४ । २) इति सूत्रयोर्भाष्ये स्पष्टम् ॥ ५३ ॥

नन्वेवमपि प्रधाय प्रस्थायेत्यादावन्तरङ्गत्वाद्धित्वादिषु कृतेषु ल्यप्स्यादत आह—

**अन्तरङ्गानपि विधीन्बहिरङ्गो ल्यब्बाधते ॥ ५४ ॥**

'अदो जग्धिः' (२ । ४ । ३६) इति सूत्रे तिकितीत्येव सिद्धे ल्यब्ग्रहणमस्या ज्ञापकमित्यदो जग्धिरित्यत्र भाष्ये स्पष्टम् ॥ ५४ ॥

---

तदेकेति । गुणरूपविकारस्योत्तरपदैकदेशमात्रासंबन्धित्वात्तस्योभयस्थानिकत्वादित्यर्थः । एवं च यत्रानन्यत्व तदेकदेशमात्रविकारस्य तत्र ग्रहणमित्यत्रोभय तेन कर्तुमशक्यमिति भावः । तदुक्त, तदेतत्सर्वमभिप्रेत्योक्तम् । भाष्ये, विप्रतिषेधेऽन्तादिवच्चेति सूत्रद्वयस्थे । ननु मारुदिन्द्रमित्यत्र हलन्तपूर्वपदत्वेनैकादेशाभावाद्वृद्धिप्रसङ्गे निषेधः सफलोऽत आह—मरुदादीति । ननु पूर्वनिपातप्रकरणस्यानित्यत्वात्तथेति चेन्न । ज्ञापकपरोक्तभाष्यासंगत्यापत्त्या तेषामनभिधानात् । अत आह—स्यैवेति । निमित्तेति बहुव्रीहिः । निमित्तत्वं च यथाकथंचित् । नेत्यस्य प्रवर्तत इति शेषः । अत्र च, उक्तपरिभाषाया च । यथा चैतत्तथाऽवतरण एवोक्तम् । भाष्ये इति । तत्र ह्युक्तभाष्यादग्रे पश्यति त्वाचार्यः पूर्वोत्तरपदयोस्तावत्कार्यं भवति नैकादेश इति ततो नेन्द्रस्येति निषेधं शास्तीत्युक्तम् ॥ ५३ ॥

एवमपि, स्थलत्रये निर्वाहेऽपि । आदिना प्रखाय प्रखन्येत्यादिसंग्रहः । अन्तरङ्गत्वात्, अनेकपदाश्रयसमासनिमित्तकल्यबपेक्षयैकपदीयप्रकृतिप्रत्ययापेक्षत्वेन घटकत्वेन तत्त्वात् । हित्वादिषु, दधातेर्हिरित्यादिषु । आदिना द्यतिस्यति जनसनखनामित्यादिपरिग्रहः । स्यादिति । एवं चानिष्टरूपापत्तिरिति भावः । ज्ञानपीति । अपिः कैमुतिकन्यायेन प्राग्वत्परादिसमुच्चायकः[1] । स्पष्टमिति । ननु स्थानिवत्सूत्रेऽल्विधौ स्थानिवत्त्वा-

---

[1] ख. ग. घ. ङ. °मुच्चयाय । स्प° ।

नन्वेवमपीयायेत्यादौ द्वित्वे कृतेऽन्तरङ्गत्वात्सवर्णदीर्घत्वे तदसिद्धिरत आह—

वार्णादाङ्गं बलीयो भवति ॥ ५५ ॥

तेनान्तरङ्गमपि सवर्णदीर्घं बाधित्वा वृद्धिरिति तत्सिद्धिः । 'अभ्यासस्यासवर्णे (६ । ४ । ७८) इतीयङ्विधायकसूत्रस्थमसवर्णग्रहणमस्या ज्ञापकम् । तद्धीषतुरित्यादावियङादिव्यावृत्त्यर्थम् । एतत्परिभाषाभावे त्वीषतुरित्यादावन्तरङ्गेण सवर्णदीर्घेण बाधात्तद्व्यर्थम् । इयङुवङौ ह्यभ्याससंबन्धनिमित्तकत्वाद्बहिरङ्गौ । न चेयङादिरपवादो येन नाप्राप्तिन्यायेनेयर्तीत्यादिसकललक्ष्यप्राप्तयणपवादत्वस्यैव निर्णयादिति प्राञ्चः ।

---

भावे ज्ञापकमिदमुक्तं भाष्य इति तयोर्मिथो विरोध इति चेन्न । यावता विना यदनुपपन्नं तस्य सर्वस्य ज्ञाप्यत्वम् । न ह्येकेनैकमिति नियम इति कैयटेनैवोक्तत्वात् ॥ ५४ ॥

**एवमपि**, स्यब्विषये निर्वाहेऽपि । द्विर्वचनेऽचीति निषेधेन द्वित्वात्प्राङ्न वृद्धिः । यद्वा वृद्धेर्द्विर्वचनेऽचीति रूपातिदेशेनापहार इत्याह—**द्वित्वे इति** । अन्तरङ्गत्वात्, पूर्वोपस्थितनिमित्तकत्वरूपान्तरङ्गत्वात् । दीर्घत्वे, वृद्ध्यादौ चेति शेष । तदसिद्धिः, इयायेत्यसिद्धिः । आयेत्यस्यैव प्राप्तेः । **तेनान्तेति** । वचनाङ्गीकारेणेत्यर्थः । तत्त्व प्रतिपादयितु तत्फलमाह— **तद्धीति** । यतोऽसवर्णग्रहणमित्यर्थः । आदिना, ऊषतुरित्यादिपरिग्रह । **इयङादीति** । कित्वाद्गुणाभावे सवर्णेऽचि परत इत्यादिः । आदिनोवङ्परिग्रहः । भाषाभावे त्वित्यत्राकारप्रश्लेष. । एवमग्रेऽपि । बाधादित्यस्येयङुवङोरित्यादिः । तथा च तयोरप्राप्तिरेवेत्यसवर्णग्रहण व्यर्थ सदुक्तार्थज्ञापकमिति भावः । ननु परनिमित्तकत्वस्य तुल्यत्वात्कथ तत्त्वमत आह—**इयङिति** । हि, यत । सवर्णेऽसवर्ण इति विशेषणयोरपि तुल्यत्वादाह—**अभ्यासेति** । संज्ञाकृतबहिरङ्गत्वानाश्रयणादाह—**संबन्धेति** । स्थानिता त्वनुवृत्त्या य्वोरेव नाभ्यासस्येति तत्सबन्धस्य निमित्तत्व सुवचम् । तथा च तन्निमित्तसमुदायाद्बहिर्भूतनिमित्तकत्वेन सख्यया तत्त्वमिति भावः । **न चेयङादिरपवाद इति** । सवर्णदीर्घापवाद इत्यर्थः । प्रकृतलक्ष्ये तस्यावश्यं प्राप्तेरिति भाव । स्वविषयत्वावच्छेदेनोत्सर्गप्राप्तौ येन नेत्यस्य विषयः । न चेह तथेत्याशयेनाऽऽह—**येनेति** । **ईर्तीत्यादीति** । आदिनेषतुरित्यादिसग्रह. । **त्वस्यैव** । इयङादेरिति शेषः । प्राञ्चः, सीरदेवादयः ।

---

१ प. क. °य. स चे° ।

परे त्वेतत्परिभाषाभावेऽभ्यासस्येति सूत्रमेव व्यर्थम् । न चेयेषयाथेत्यादौ चरितार्थम् । तयोरपि पूर्वप्रवृत्तगुणस्य पूर्वप्रवृत्तवृद्धेश्च 'द्विर्वचनेऽचि' (१ । १ । ५९) इति रूपातिदेशेनापहारे द्वित्वे कृते पुनः प्राप्ते गुणवृद्धी बाधित्वाऽन्तरङ्गत्वात्सवर्णदीर्घापत्तेः । न चेयर्तीत्यादौ तच्चरितार्थम् । तावन्मात्रप्रयोजनकत्व उरित्येव ब्रूयात् । य्वोरित्यनुवर्तते । इणो यणीति साहचर्याद्व्याख्यानाच्चऋधातोरेव ग्रहणम् । अर्तेरिवर्णस्येयङित्यर्थः । अभ्यासस्यार्तावित्यभ्यासस्यार्तेरिति वा गुरुत्वान्न युक्तम् ।

---

अनेन सूचितामरुचिं प्रकटयन्सिद्धान्तमतमाह—**परे त्वित्यादिनाऽऽहुरित्यन्तेन ।** **सूत्रमेवेति** । एवेनासवर्णपदमात्रव्यवच्छेदः । तयोः, इयेषयाथेत्यनयोः । अपिरादिग्राह्यस्योवोखेत्यादेः समुच्चायकः । **पूर्वेति** । द्वित्वादिति शेषः । परत्वादिनेति भावः । अपहारे, सतीति शेषः । **पुनः प्राप्ते इति** । लक्ष्यभेदादिति भावः । षाष्ठद्वित्वस्य द्विःप्रयोगरूपत्वेनाविकारत्वात्[1] । अत्रान्तरङ्गत्वं पूर्वोपस्थितनिमित्तकत्वरूपम् । **दीर्घापत्तेरिति** । एवं चाऽऽद्येऽच्परत्वाभावादेव तदप्राप्तिरिति भावः । द्वितीयादौ तु विशेषो वक्ष्यते । **तीत्यादाविति** । आदिनेयृत इत्यादिपरिग्रहः । तत्, सूत्रम् । **उरित्येवेति** । एवेनाभ्यासेति संपूर्णसूत्रव्यवच्छेदः । नन्वेवमारेत्यादावपि तदापत्तिरत आह—**य्वोरिति** । अचि श्नुधात्विति न इति भावः । नन्वेवमपि ऋधातोरेव ग्रहणे किं मानम् । ऋकारान्तस्याङ्गस्येत्यर्थेऽधातोरपि ग्रहणसंभवात् । तथा च तदनुवृत्तौ पित्र्यकरोदित्यादौ च्व्यन्तेऽपि दोषापत्तिरत आह—**इण इति** । नन्वेतदपेक्षयाऽव्यवहितत्रिया इति साहचर्यात्तादृशधातोरेव ग्रहणं स्यात् । किं च व्यवहितसूत्रान्तरसाहचर्ये मानाभावश्चात आह—**व्याख्येति** । एकदेशे स्वरितत्वप्रतिज्ञया क्लृप्तयाऽचि श्नुधात्वित्यतो धातुपदानुवृत्तेरित्यर्थः । ननु तथा सत्यपि ऋकारान्तधातुमात्रग्रहणापत्तिरेवेति नेष्टसिद्धिरतो व्याख्यानादेव लब्धं स्पष्टप्रतिपत्तये वाक्यार्थमाह—**अर्तेरिति** । विशेषणविशेष्यभावे कामचारेण धातोरित्यस्य विशेषणत्वम् । अत एव श्तिपा निर्देशेन तदभिव्यक्त्या व्याख्याने तस्याप्रवेशः । उकारस्यासंभवात्त्यागः । समासनिर्दिष्टत्वाद्विशिष्टानुवृत्तिरिति भावः । कैयटहरदत्तसीरदेवप्रकाशकृत्कौस्तुभकृदाद्युक्तिं खण्डयति—**अभ्यासेति** । विनिगमनाविरहादाह—**अभ्यासेति** । यत्त्वेव पाठे श्तिपानिर्देशाद्यङ्लुकि न स्यादिति पूर्वोक्ताः । तन्न । भवतेर इतिवत्तत्सत्त्वात्[2] । श्तिपाशपेत्यस्या भाष्येऽदर्शनाच्च । तद्ध्वनयन्नाह—**गुरुत्वादिति** । मात्रागौरवस्य पदद्वयकृतगौरवस्य च सत्त्वादिति भावः ।

---

१ क. ख. ङ. °रत्वेन भ° । २ घ. °त्तनवु° ।

न च ए ऐ ओ औ शब्देभ्य आचारक्विबन्तेभ्यो लिटीयङाद्यर्थं तत्सूत्रमावश्यकम् । तथा ओणधातोर्वुलन्तादिच्छाक्यजन्तात्सन्युवोण-कीयिषतीत्याद्यर्थमप्यावश्यकमिति वाच्यम् । षाष्ठप्रथमाह्निकान्तस्थभा-ष्यप्रामाण्येन तेषामनभिधानात् । अन्त्ये द्वितीयद्विर्वचनस्यैव सत्त्वेन त्वदुक्तप्रयोगस्यैव दुर्लभत्वात् । एवं च संपूर्णसूत्रस्य ज्ञापकता युक्ता ।

यद्यपि भाष्ये यदयमभ्यासस्यासवर्ण इत्यसवर्णग्रहणं करोतीति ग्रन्थेनासवर्णग्रहणस्यैव ज्ञापकता लभ्यते तथाऽपि न ह्यन्तरेण गुण-वृद्धी असवर्णपरोऽभ्यासो भवतीति तदुपपादनग्रन्थेन संपूर्णसूत्रस्यैव

ए ऐ इत्यादौ निःसदिग्धस्वरूपबोधनाय सन्धिर्न । हलादित्वाभावेन यङोऽप्राप्तेराचार-क्विबन्तेभ्यः सनोऽनुत्पत्तेश्चाऽऽह—**लिटीति** । तथा, उक्तवत् । **षतीत्यादीति** । आदिना, इयेजकीयिषतीत्यादिसंग्रहः । **र्थमपीति** । अपिरुक्तसमुच्चायकः । क्वचित्त-द्पाठ एव । तदा तथेत्येव समुच्चायकः । न चेजादेरित्यामापत्त्याऽऽद्यदोषः सुवारः । इजादित्वगुरुमत्त्वयोरेकैकस्यातिदेशेनालाभात् । यन्निमित्तवैकल्यकृतोपदेशाप्राप्तावतिदेशो मृग्यते तन्निमित्तान्यनिमित्तकत्वस्य तत्राङ्गीकारात् । न च धातुत्वऋच्छत्यन्यत्वे स्त एव । तथा सत्यनृच्छ इति पर्युदासादज्झलात्मकसमुदायादेव तद्विध्यङ्गीकारात् । न च कास्प्रत्य-यादिति तत्प्राप्तिः । प्रत्ययग्रहणापनयवादिमते तदसंभवात् । किं च तदपनयवादिनैकाज्भ्योऽ-नभिधानात्क्विबनुत्पत्तेरेव वाच्यत्वेनादोषात् । अन्यथा सूत्रवार्तिकयोः फलभेदापत्तेः । अधि-कमन्यत्र द्रष्टव्यम् । 'इको गुण' 'वदव्रज' 'ओतः श्यनि' 'आदेच' इत्यादिसूत्र-स्थभाष्यप्रामाण्यादेजन्तेभ्य आचारक्विबभावाच्च । एतेन पर्युदासलभ्यार्थानङ्गीकारेण तेन तदापत्त्या प्रत्ययग्रहणसत्त्वमिति सिद्धान्तमते तेन तदापत्त्या च दोष. सुवार एवेत्यपा-स्तम् । तदेतत्सर्वं हृदि निधाय तथैवाऽऽद्य आह—षाष्ठेति । षष्ठाध्यायप्रथमपादप्रथमा-ह्निकचरमदाश्वान्साह्वानित्येतत्सूत्रस्थोक्तज्ञापकपरभाष्येत्यर्थः । अन्यथा तत्र चारितार्थ्ये ज्ञापकत्वासंगतिः स्पष्टैव । तेषा, संध्यक्षरप्रकृतिकाचारक्विबन्तानाम् । अन्त्ये, उवोणकीयि-षतीत्यादौ । **द्वितीयेति** । अजादेर्द्वितीयस्येत्यादिः । यथेष्टमित्यस्याधिकसंग्रहार्थत्वेनात्रा-प्राप्तेः । नामशब्दस्य सुबन्तपरतया तत्प्रकृतिक एव तत्प्राप्तेश्चेतिभावः । एवं च, अन्यत्रा-चारितार्थ्ये च ।

अत्र मते भाष्यविरोधमाशङ्क्य परिहरति—**यद्यपीत्यादिना स्यादित्यन्तेन** । भाष्ये, दाश्वानितिसूत्रस्थे । अस्य ग्रन्थेनान्वयः । **स्यैवेति** । एवेन सूत्रव्यवच्छेदः । **तदुपेति** । ज्ञापकोपेत्यर्थः । इत्थं हि तदाकूतम्—असवर्णाचुपराभ्यासेवर्णादीनामियङा-दिविधान तथा सति व्यर्थमेव स्यात् । न चासवर्णग्रहणाकरणेनापीदं सिद्धम् । ईषतुरित्या-

१ ग. ङ. 'योरति' ।

ज्ञापकता लभ्यते । अग्रेऽपि नैतदस्ति ज्ञापकमत्यर्थमेतत्स्यादित्यनेन सूत्रसार्थक्यमेव दर्शितम् । असवर्णग्रहणस्यैव ज्ञापकत्वे तु तद्व्यावर्त्यप्रदर्शनेन तत्सार्थक्यमेव दर्शितं स्यात् ।

न चाकृतपरिभाषयेयेषेत्यादौ सवर्णदीर्घात्प्राग्यदि दीर्घो न स्यात्तर्हि गुणः स्यादिति संभावनायाः सत्त्वेन परिभाषाप्रवृत्तेः सूपपादत्वादिति कथं संपूर्णसूत्रस्य ज्ञापकतेति वाच्यम् । तस्या असत्त्वात् । सत्त्वे वैतद्भाष्यप्रामाण्येन यत्रान्तरङ्गकार्यप्रवृत्तिसमकालोत्तरमेव तन्निमित्तविनाशकबहिरङ्गविधेः प्राप्तिस्तत्रैव तत्परिभाषाप्रवृत्तिस्वीकारात् । न चान्तरङ्गत्वाद्दीर्घेऽपीयायेत्यादौ पूर्वान्तवत्त्वेनाभ्यासत्वादिवर्णत्वाच्च णल्यसवर्ण इयङ्विधानेन सूत्रं चरितार्थम् । न च 'अचि श्नु' (६।४।७७) इत्यनेन सिद्धिर्वृद्धिबाधनार्थत्वादिति वाच्यम् । प्रत्यासत्त्याऽसवर्णपदेनाभ्यासोत्तरखण्डसंबन्ध्यसवर्णाच एव ग्रहणात् । शास्त्रबाधकल्पनापेक्षया परिभाषाज्ञापकत्वस्यैवौचित्याच्चेत्याहुः ।

---

दावपीयङाद्यापत्तेः । एवं चासवर्णग्रहणविशिष्टं सूत्रमेतदर्थज्ञापकम् । उपक्रमेऽपि बहुव्रीहिणा सूत्रमेवाभिमतमितीति भावः । कार्ये त्विति । तदुक्तव्यवच्छेदे । तत्खण्डनावसर इति शेषः । तद्व्यावर्त्येति । असवर्णपदव्यावर्त्येत्यर्थः ।

उभयत्र कौस्तुभकृदाद्युक्तिं खण्डयति—न चेत्यादिना कारात्वित्यन्तेन । अकृतपरीति । अकृतेतिपरीत्यर्थः । आदिनेयायेत्यादिपरिग्रहः । ननु दीर्घे गुणाप्राप्त्या भाविनिमित्तविनाशाभावेन कथं तत्प्राप्तिरत आह—यदीति । गुण इत्युपलक्षणं वृद्धेरपि । सिद्धान्तरीत्या समाधत्ते—तस्या इति । अकृतेत्यस्या इत्यर्थः । कैयटादिरीत्या समाधत्ते—सत्त्वे वेति । वाशब्दोऽनास्थायां न तु विकल्पे । एतद्भाष्येति । न ह्यन्तरेणेत्यादिसर्वभाष्येत्यर्थः । द्वितीये तदुक्तिं खण्डयति—न चेति । अन्तरङ्गत्वात्, पूर्वोपस्थितनिमित्तकत्वेन तत्त्वात् । दीर्घे, सवर्णदीर्घे । इवर्णेत्यादेः स्वत इत्यादिः । णल्यसेति । णल्रूपेऽसवर्णेऽचीत्यर्थः । वृद्धीति । अचो ञ्णितीत्यनेनेति भावः । अत एवात्र शङ्कायां प्रागुपात्तस्येयेषेत्यस्य त्यागः । तत्र तदसंभवात् । असवर्णपदेन, असवर्णाच्पदेन । भ्यासोत्तरेति । यन्निरूपितपूर्वत्वमादायाभ्यासत्वं तदवच्छिन्नोत्तरेत्यर्थः । ननु प्रत्यासत्तिन्यायाद्व्याप्तिन्यायस्य प्राबल्यमत आह—शास्त्रेति । वृद्धिविधीत्यर्थः । तथा हि सतीयायेत्यादिस्वल्पलक्ष्यसिद्धौ व्याप्तिन्यायविरोधः स्यादिति भावः । तद्ध्वनयन्नाह—औचित्यादिति । ननु परिभाषाज्ञापनं केवलासवर्णपदेनापि सिद्धमिति तच्छास्त्रबाधार्थमेवास्त्वत आह—चेत्याहुरिति । चेन कृदतिङ्सूत्रस्थभाष्योक्तरीत्याऽचः परेति स्थानिवत्त्वेन तदप्रवृत्तेरित्यस्य समुच्चयः ।

---

१ क. दीर्घगु° । २ ग. °पवादत्वा° ।

**सा चेयं धर्मिग्राहकमानादाङ्गवार्णयोः समानकार्यिकत्व एव । यत्तु समाननिमित्तकत्वरूपसमानाश्रयत्व एवैषेति तन्न । ज्ञापितेऽपीयायेये-त्याद्यसिद्धेः । सूत्रवैयर्थ्यस्य तदवस्थत्वाच्च । स्योन इत्यत्र तु वक्ष्य-माणरीत्यास्या अनित्यत्वादप्रवृत्तौ गुणादन्तरङ्गत्वाद्यणादेशः ।**

**न चैवमपीयायेत्यादावियङ्दुर्लभस्तत्र कर्तव्ये वृद्ध्यादेः स्थानिव-**

---

केषांचिन्मतमाह—**सा चेयमिति** । सपूर्णोक्तसूत्रज्ञापितोक्तपरिभाषेत्यर्थः । धर्मी, परिभाषा तद्ग्राहकं मानमुक्तसूत्रम् । **समानेति** । वार्णयाऽऽङ्गकार्यिकार्यिकत्व इत्यर्थः । प्रवर्तत इति शेषः । अत एव सार्वधातुकमपिदिति सूत्रेऽपिदितिपर्युदासपक्षे च्यवन्ते प्लवन्त इत्यादौ गुणात्पूर्वं नित्यत्वादन्तरङ्गत्वाच्चैकादेशे कृते पिदपितोः परस्येहापित आश्रितत्वा-च्छाब्दफललाभाय परस्य कार्यं प्रत्यादिवद्भावादपित्त्वेन ङित्वप्रवृत्त्या गुणनिषेधः स्यादि-त्युक्तम् । अन्यथा तु तदसंगतिः स्पष्टैवेति भावः । एवव्यवच्छेद्यं सीरदेवादिमतं खण्डयति—**यत्त्विति** । लक्ष्यं त्वियायेत्यादावुत्तरखण्डे यणः पूर्वमकारं मत्वा वृद्धिरित्येव कुम्भकार इत्यादि च बोध्यम् । एवेनोक्तव्यवच्छेदः । शेषः प्राग्वत् । **असिद्धेरिति** । असमा-ननिमित्तकत्वेन परिभाषाया अप्रवृत्त्या दीर्घ आयेत्याद्यापत्तेरिति भावः । इष्टापत्तिमभ्युपे-त्याऽऽह—**सूत्रेति** । अभ्यासस्येतिसूत्रेत्यर्थः । एवं च स्वस्मिन्नचारितार्थ्येन ज्ञापक-त्वासंगतिरिति भावः । ऊवतुरूच इत्याद्यसिध्द्यापत्तेश्च । ह्रस्वस्य प्रत्ययाश्रयत्वेऽपि सव-र्णदीर्घस्य तदनाश्रयत्वेन तदभावादेतदप्रवृत्तावन्तरङ्गत्वात्सवर्णदीर्घे ह्रस्वापत्तेः । सिद्धान्ते तु लक्ष्ये लक्षणमिति न्यायेन नेत्यपि बोध्यम् । केषांचिन्मतेऽरुचिं ध्वनयन्नाह—**स्योन इति** । अत एव तुः प्रयुक्तः । सिवेरौणादिके नप्रत्यय ऊठि यणि गुणे च रूपम् । वक्ष्यमाणेत्यस्यानुपदमित्यादिः । अस्याः, वार्णादित्यस्याः । **यणादेश इति** । एतेना-ङ्गत्वाल्लघूपधगुणोऽत्र स्यादित्यपास्तम् ।

**एवमपीति** । उक्तपरिभाषयाऽऽदौ वृद्धिगुणादिप्रवृत्तावपि । यत्तु सीरदेवादयः परत्वाद्गुणे कृते द्विर्वचनेऽचीति स्थानिवद्भावाद्द्विर्वचनम् । तत्र कृते द्वित्व एवेत्यवधारणाद्गुणः पूर्वरूपेणावतिष्ठते न पुनर्द्वित्वेन तदुत्तरकाल पुनः क्रियते । तेनाऽचः परेतिस्थानिवत्त्वमियङु-वङोः कर्तव्ययोर्न । यदि हि स्यात्तर्ह्यर्तेरभ्यासस्येत्येव ब्रूयात् । इदमेवासवर्णग्रहणमनादिष्टादचः पूर्वविधौ स्थानिवत्त्वमित्यत्र मूलमिति । तन्न । रूपातिदेशस्यैव भाष्यसिद्धान्तत्वेन दोषता-दवस्थ्यात् । यत्तु भाष्ये दाश्वानित्यत्रैवमेवोक्तं तत्तु द्विर्वचनेऽचीति कार्यातिदेश इत्याशय-

---

१ क. °वल्लाभा° । २ ङ. ऊषतु° ।

त्वेनासवर्ण इति प्रतिषेधादिति वाच्यम्। सूत्रारम्भसामर्थ्यादेव स्थानिवत्त्वाप्रवृत्तेः। तच्च सामान्यापेक्षमभ्यासकार्ये तदुत्तरखण्डादेशस्य तत्कार्यप्रतिबन्धकीभूतं स्थानिवत्त्वं नेति। अत एवाऽऽरतीत्यादौ यणादेशस्य स्थानिवत्त्वादभ्यासस्य ढ्रलोप इति दीर्घो दुर्लभ इत्यपास्तम्। दीर्घविधौ तन्निषेधाच्च। अरिरियादित्यत्र स्थानिवत्त्वेनेयङ्भवत्येव। तस्य स्थानिवत्त्वस्याभ्यासकार्यप्रतिबन्धकत्वाभावात्।

इयं चाङ्गसंबन्धिन्याङ्ग एवेति 'स्वरितो वा' (८।२।६) इति सूत्रे भाष्ये। तत्र हि कुमार्यां इत्यादौ यणुत्तरमाडुक्तः।

---

कमिति न दोषस्तद्ध्वनयन्नाह—**सूत्रेति**। अभ्यासस्येतिसूत्रेत्यर्थः। अधिकलक्ष्यसंग्रहायाऽऽह—**तच्चेति**। अभ्यासस्येतिसूत्रं चेत्यर्थः। सामान्यापेक्षमित्यस्य ज्ञापकमिति शेष.। तदाह—**अभ्यासेति**। अतिप्रसङ्गनिरासायाऽऽह—**तत्कार्येति**। वस्तुतोऽभ्याससंबन्धिकार्यमात्रे कर्त्तव्येऽभ्यासादुत्तरस्य द्वितीयभागस्य खण्डोऽवयवो य आदेशस्तस्य तत्कार्येत्याद्यर्थः। दाश्वानितिसूत्रस्थोद्द्योतस्याप्ययमेवार्थः। तदनवयवधात्ववयवादेशस्येत्यादिशेखरस्य त्वत्र कार्येऽभ्यासस्यानवयवधातुसंबन्धिताद्दशावयवस्याचोऽभ्यासानवयवकधातोर्योऽयमवयव उत्तरखण्डसंबन्ध्यभ्यासादव्यवहितपराङ्गूपस्तस्य वा य आदेशस्तस्याभ्यासकार्यप्रतिबन्धकीभूत स्थानिवत्त्वं नेत्यर्थः। धातुत्वमुत्तरखण्डस्यैवेति ध्वनयितु तदनवयवेति तत्र बोध्यम्। अत एव यातिरित्यादिसिद्धिरिति भावप्रकाशे स्पष्टम्। **अत एवेति**। सामान्यापेक्षत्वादेवेत्यर्थ.। **आरतीति**। यङ्लुगन्तम्। एवमग्रेऽपि। यणादेशस्य, उत्तरखण्डादेशस्य। **अभ्यासेति**। रुको रो रीतिलोपे सतीति शेष.। तत्कार्यप्रतिबन्धकीभूतेत्यस्य फलमाह—**अरीति**। तस्य तत्साधकत्वादिति भावः। यदि त्वन्तरङ्गत्वेन रिङः प्रागेवेयङ् तदैतद्विशेषण निष्फलमिति बोध्यम्।

यत्तु न्यासकारादयो व्याश्रयेऽपीयं प्रवर्तते यजयाचेति नङो ङित्करणाज्ज्ञापकात्। प्रश्ने चासन्नेतिनिर्देशेन सप्रसारणस्यानिष्टत्वेन विश्न इत्यत्र गुणनिषेधार्थं क्रियमाणं तद्धि तत्र ज्ञापकम्। अन्यथाऽन्तरङ्गत्वात्तुकि गुणाप्रसङ्ग एवेति तद्वैयर्थ्यं स्पष्टमेव। अत एव च्यवन्ते प्लवन्त इत्यादावनयैकादेशात्प्राग्गुण इत्याहुस्तन्मतमपि परिहर्तुमाह—**इयं चेति**। आङ्गे, अङ्गसंबन्धिन्येव कार्ये प्रवर्तत इत्यर्थः। भाष्य इत्यस्य स्पष्टमिति शेषः। तदेवाऽऽह—**तत्र हीति**। स्वरितो वाऽनुदात्त इति सूत्रभाष्ये हीत्यर्थः। **आडुक्त इति**। तदुत्तरमुदात्तयण इत्युदात्तेन सह संप्रधारणा कृत्वा परत्वादाडुक्त इत्यर्थः। एकादेशस्वरोऽन्तरङ्गतः सिद्धो वक्तव्योऽस्याद्यर्थमित्यत्राथ कुमार्या इदम्। उदात्तयण इति कृत

---

१ क. °रिष्कर्तुं°। ड. °रिकर्तुं°।

**इयं चानित्या 'च्छ्वोः' (६।४।१९) इति सतुग्निर्देशात्। अन्यथाऽङ्गत्वात्पूर्वं तुकः शादेशे तुकोऽप्राप्त्या तद्वैयर्थ्यं स्पष्टमे-**

---

उदात्तानुदात्तयोरेकादेश उदात्तस्तस्य सिद्धत्वादायादेश उदात्तः सिद्ध इत्युक्त्वोक्तप्रयोजन-खण्डनायोरुभयोरनित्ययोः परत्वादाद्यनुदात्तैकादेशयोः परोदात्तादनित्यत्वेऽप्यन्तरङ्गत्वादेकादेश, वर्णाश्रित्यैकादेशो विभक्तेरुदात्तत्वविधानात्पदस्योदात्तत्वमिति हि तत्रोक्तम्। तच्च पूर्वं यणि सत्येव संभवति नान्यथा। तत्राप्रवृत्तिकरणेन तत्रैवैतत्प्रवृत्तिरभिमता भगवत इति भावः। धर्मिग्राहकमानात्तथैव लभ्यत इति तदाकूतम्।

वस्तुतस्तूक्तसूत्रेण परिभाषामात्रं ज्ञाप्यते न तु विशिष्य समानाश्रय एवेत्यपि। अत एव नङो ङित्करणमपि सफलमिति न तस्याऽऽनर्थक्यशङ्केति लाघवम्। इष्टानिष्टयोः प्रवृत्त्यप्रवृत्ती तु परिभाषानित्यत्वाभ्यां बोध्ये। अनित्यत्वं च स्योन इत्याद्यर्थं केषाञ्चिन्मते न्यासकारादिमते चाऽऽवश्यकमेवेति किं तथा कल्पनया। पूर्वं सा चेयमि-त्युक्तिस्तु यैः समानाश्रय एवेत्यपि ज्ञाप्यमित्युच्यते तेषामपि मध्ये सीरदेवाद्युक्तमयुक्तं केषाञ्चिन्मतं तु युक्तमिति सूचयितुं न तु सिद्धान्तं प्रतिपादयितुम्। अत्र मतेऽङ्गसम्बन्धि-न्याङ्ग एवेत्यपि कल्पना नेत्यपरं लाघवमिति सिद्धान्तो बोध्यः। तद्ध्वनयन्नाह—इयं चानि-त्येति। चस्त्वर्थे। पूर्वमिति। छनिमित्ततुकः पूर्वमित्यर्थः। अप्राप्त्या, निमित्ताभावात्। तद्वैयर्थ्यं सतुक्छनिर्देशवैयर्थ्यम्। एतेन तेन निर्देशेन समानाश्रय एव प्रवर्तत इति ज्ञाप्यत इत्यपास्तम्। स्योन इत्याद्यसिद्धेः। ऊठवतुरित्याद्यसिद्धेश्च। अङ्गस्याऽऽङ्जादीनामित्या-दिसूत्रस्थभाष्यादौ षाष्ठप्रथमाह्निकान्ते चैयायेत्यादीनां व्याश्रयसाधारणानां प्रयोजनानामु-पन्यासाच्चेति दिक्। अन्तरङ्गपरिभाषापवाद इयम्। नन्वेवमप्यध्यैयातामित्याद्यसिद्धिः। त्यवस्थायामडिति पक्षे परेयङा निमित्तस्यैवाभावेन ततः प्राक्पूर्वस्थितनिमित्तकत्वेनान्तरङ्गत्वा-द्वृद्ध्यापत्तेः। उक्तपरिभाषया तयोरयुगपत्प्रवृत्त्याऽप्राप्ते। तयोरयुगपत्प्रवृत्तावपि प्रवृत्तिरिति कथञ्चिदाश्रयणेऽप्यनेकाच्त्वाद्यणापत्तेः। न चाऽऽटोऽसिद्धत्वान्न यण्। अत्र पक्षेऽसिद्धव-त्सूत्रस्य भाष्ये प्रत्याख्यानात्। न चैरनेकाच इति योग विभज्य इणो यणित्यनुवर्त्याडा-दिसहितानेकाचश्चेद्यण्तर्हि वर्णान्तेण एवेति नियमान्न दोष इति कौस्तुभाद्युक्तं युक्तमिति वाच्यम्। शब्दमर्यादयाऽलाभात्। उक्तरीत्याऽडादिसहितानेकाजिणो यण एवाभावाच्चेति चेन्न। रूपस्यैवासत्त्वात्। तथा हि भाष्येऽसिद्धवत्सूत्रप्रत्याख्यानेऽस्य योगविभागस्य विध्यर्थत्वमाश्रित्यैतत्सामर्थ्यादायन्नित्यत्र पूर्वमाडित्युक्तम्। तस्मादीदृशे विषये पक्षयोः

---

१ घ. °त्तताऽस्य सि°। ङ. °त्तस्तस्य°। सि°। २ ङ. °त्युक्त्वा क प्र°। ३ ख. ग. घानित्यत्वानित्यत्वाभ्यां। ४ घ. ङ. °तुकनि°। ५ ङ. °ऊषतु°।

चेत्यन्यत्र विस्तरः ॥ ५५ ॥

नन्वेवं सेवुष इत्यादौ क्वसोरन्तरङ्गत्वादिटि ततः संप्रसारणेऽपीटः श्रवणापत्तिरिति चेत् । अत्र केचित्—

**अकृतव्यूहाः पाणिनीयाः ॥ ५६ ॥**

**न कृतो विशिष्ट ऊहो निश्चयः शास्त्रप्रवृत्तिविषयो यैरित्यर्थः। भाविनि निमित्तविनाश इत्यध्याहारः । बहिरङ्गेणान्तरङ्गस्य निमित्तविनाशे पश्चात्संभाविते़ऽन्तरङ्गं नेति यावत् । अत्र च ज्ञापकं 'समर्थानां प्रथ-**

फलाभेदायेङ्धातोर्लोकेऽनभिधानमेव । सम्प्रसारणाच्चेतिसूत्रोदाहृतमध्यैयातामित्यादि तु छान्दसम् । तत्र हि बहुलं छन्दस्यमाङ्योगेऽपीति बहुलग्रहणादादेशोत्तरं परत्वादियङि तत आटि वृद्धिः । न चाण्नित्यः । इयङोऽपि तत्त्वात् । अन्तरङ्गया वृद्धया बाधेऽपि लक्षणान्तरेण निमित्तविघातेऽनित्यत्वाङ्गीकारादिति बोध्यम् । केचित्तु लावस्थायामडिति पक्षेऽपि वार्णादाङ्गमिति न्यायेनाङ्गस्य तन्निमित्तभूतादेशाना च पूर्वं प्रवृत्त्या न दोषः । यथाऽन्तरङ्गानपीति न्यायो लुकस्तत्प्रयोजकसमासादीनां च प्राबल्यबोधकस्तद्वदत्राप्यङ्गी-कारात् । अतिप्रसङ्गस्त्वनित्यत्वाद्वारणीय इत्याहुः । परे त्वसिद्धवत्सूत्रारम्भस्यैव ज्याय-स्त्वेन तत्पक्षस्यैवाभावेनाऽऽदेशोत्तरमाडपेक्षया परत्वादियङि आटि वृद्धया रूपसिद्धिमाहुः । तदेतदभिप्रेत्याऽऽह—**अन्यत्रेति** । शेखरादावित्यर्थः ॥ ५५ ॥

**एवम्**, उक्तेष्वेवान्तरङ्गपरिभाषाया अप्रवृत्तौ । **पइत्यादाविति** । आदिना पपुष इत्यादिपरिग्रहः[1] । अन्तरङ्गत्वात्, पूर्वस्थितनिमित्तकत्वात् । एवमग्रेऽपि । ततः, विभ-क्त्युत्पत्त्यनन्तरम् । निमित्तसत्त्वादिति शेषः । यत्तु उस्यपदान्तादिति पररूप भविष्यतीति तन्न । अतो गुण इत्यतोऽत इत्यनुवृत्तेः । अत आह—**श्रवणेति** । केचित्, सीरदे-वदीक्षितादयः । ऊह इत्यस्य व्याख्या निश्चय इति । वैशिष्ट्यमेवाऽऽह—**शास्त्रेति** । यैः, पाणिनिप्रोक्ताध्येतृभिः । नन्वेव निमित्तं विनाशोन्मुखं दृष्ट्वेत्यस्य कुतो लाभोऽत आह—**भावीति** । सति सप्तमी । नन्वेवमपि तत्र सम्प्रसारणाद्यप्रवृत्तिरित्येवार्थः कुतो नेत्यत आह—**बहिरङ्गेणेति** । संभावनाया अपि निमित्तत्वस्य वक्ष्यमाणत्वादाह—**संभावित इति** । तत्रापीत्यर्थः । अत एव वक्ष्यति विनाशाभाव इत्यादि । **अन्तरङ्गं नेतीति** । तथा च तदपवादत्वादस्यास्तथाऽर्थो नेति भावः । यत्त्वत्र गोरतद्धितलुकीति तद्धितग्रहण ज्ञापकम् । तद्धि राजगवीयतीत्यादौ सुब्लुकि निषेधो मा भूदित्येवमर्थं क्रियते । अस्या अभावे त्वन्तरङ्गत्वाट्टचा भाव्यमिति तदानर्थक्यमेव । ज्ञापिते तु भाविलुकः सत्त्वे-नालुग्रूपनिमित्तविनाशाट्टज्न स्यादिति तत्सफलमिति सीरदेवादयः । तन्न । अन्त-रङ्गानपीतिन्यायप्राप्तानिष्टवारणेन तत्साफल्यादिति केचित् । तद्ध्वनयन्नाह—**अत्र**

[1] ङ. पूर्वोपस्थि° ।

मात्' (४।१।८२) इति सूत्रे समर्थानामिति। तद्धि सूत्थिता-दिभ्यः कृतदीर्घेभ्यः प्रत्ययोत्पत्त्यर्थम्। अन्यथाऽन्तरङ्गत्वाद्दीर्घे कृत एव प्रत्ययप्राप्त्या तद्व्यर्थता स्पष्टैव। तत्र हि माविन्यादिवृद्ध्या सवर्णाच्त्व-विनाशः स्पष्ट एव।

न चात्रैकादेशप्रवृत्तिसमये वृद्ध्यप्राप्त्यैकादेशे कृत आदेशे वृद्धेः प्राप्तावपि तन्निमित्तविनाशाभाव इति वाच्यम्। तद्द्वारैव तन्निमित्त-विनाशसत्त्वेनाक्षतेः। न च सौत्थितौ बहिरङ्गतया वृद्धेरसिद्धत्वान्न तन्निमित्तविनाश इति वाच्यम्। समर्थग्रहणेनैतद्विषये तस्या अप्रवृत्ते-रपि ज्ञापनात्।

यत्तु समर्थग्रहणेनान्तरङ्गपरिभाषाया अनित्यत्वमेव ज्ञाप्यत इति तन्न। असिद्धपरिभाषया समकालप्राप्तबहिरङ्गस्य पूर्वजातबहिरङ्गस्य

---

**चेति**। उक्तपरिभाषायामित्यर्थ.। तत्त्वमुपपादयति—**तद्धीति**। समर्थग्रहण हीत्यर्थः। अन्यथा, एतद्वचनाभावे। **प्रत्ययेति**। इञादीत्यर्थः। तद्व्यर्थता, समर्थपदव्यर्थता। ज्ञापिते चारितार्थ्यमाह—**तत्र हीति**। अस्या ज्ञापितत्वे हीत्यर्थः। च्त्वविनाशः, * सवर्णाज्विनाशः। यथा चैतत्तथा स्पष्टमन्यत्र। एव च तत्रैतदप्रवृत्त्यर्थं समर्थग्रहणं कार्यमिति भाव.।

चारितार्थ्यं विघटयति—**न चेति**। अत्र, सूत्थितादौ। वृद्ध्येत्यस्य निमित्ताभावा-दित्यादिः। आदेशे, दीर्घरूपे। इञुत्पत्तावित्यादिः। **तन्निमित्तेति**। दीर्घनिमित्त-भूतह्रस्वसवर्णाजित्यर्थ·। **तद्द्वारैवेति**। आदेशाविनाशद्वारैवेत्यर्थः। एवेन तत्र साक्षा-त्त्वव्यवच्छेदः। तन्निमित्तति पाठ। अर्थः प्राग्वत्। एवमग्रेऽपि। पुनरन्यथा तत्त्वं विघटयति। **न चेति**। घटकत्वेन पूर्वस्थितत्वेन वाऽन्तर्भूतनिमित्तनिमित्तकत्वेनान्तरङ्गाकृत-परिभाषाप्रवृत्ताविति शेषः। एव चाचारितार्थ्येनाज्ञापकत्वात्समर्थग्रहणं व्यर्थमेवेति भावः। अतएवाऽऽह—**समर्थेति**। एतद्विषये, अकृतेतिविषये। तस्याः, अन्तरङ्गपरिभाषायाः। **त्तेरपीति**। अपिरेतत्परिभाषासमुच्चायक। यावता विनेतिन्यायेनेति भावः।

नन्वेवं कृतमनया। तदनित्यत्वेनैव सेदुष इत्यादिसिद्धेरित्याशयेनाऽऽह—**यत्त्विति**। **त्वमेवेति**। एवैनैतत्परिभाषाव्यावृत्ति.। तन्नेत्यत्रासभवादित्यन्तो हेतुः। **बहिरङ्गस्य**

---

* क. पुस्तके तदवच्छिन्नविनाश इति पाठान्तरम्।

---

१ क. °तस्वरूपस्र°।

**चान्तरङ्गे कर्तव्येऽसिद्धत्वं बोध्यते न तु जातेऽन्तरङ्गे तस्य तत्त्वं बोध्यते मानाभावात्फलाभावाच्च। एवं च सूत्थितादावेकादेशस्य परिभाषासाध्यत्वाभावेन तदनित्यत्वज्ञापनासंभवात्। अन्तरङ्गानपि विधीनित्यादेरप्यस्यामेवान्तर्भावः। एतत्प्रवृत्तौ च निमित्तविनाशसंभावनाऽपि निमि-**

---

**चान्तेति**। प्रागुक्तज्ञापकद्वयादिसत्त्वादिति भाव। ननु प्रागुक्तलौकिकन्यायेन क्रमेणान्वाख्याने पट्व्येत्यादाविव पूर्वस्थितनिमित्तकत्वेनान्तरङ्गे तत्र कार्ये भाविबहिरङ्गस्यासिद्धत्वमपि परिभाषार्थ इति कथमेतदिति चेन्न। चकारेण तस्यापि सग्रहात्। तद्ध्वनयन्नाह—**न त्विति**। अत्र कथने तात्पर्यं न तु तत्रेति भावः। **तस्येति**। बहिरङ्गस्यापीत्यर्थ.। तत्त्वम्, असिद्धत्व पश्चात्प्राप्तवृद्धिनिषेधरूपम्। कृत इत्यपिशेषपूरणेनायमप्यर्थो लभ्यः स च धर्मिग्राहकमानविरुद्ध इत्याह—**मानेति**। नन्वेवमपि फलबलात्कल्प्यतेऽत आह—**फलेति**। अनन्यथासिद्धलक्ष्यसिद्धिरूपप्रसिद्धफलाभावादित्यर्थः। यद्यपि सूत्थितादावाबौ निमित्ताभावादन्यकार्याप्राप्त्या दीर्घप्रवृत्तावपरिभाषाप्रचारेण तेन तदनित्यत्व ज्ञापनासभवादित्येव हेतु सुवच इत्यसिद्धेत्यादिभावाच्चेत्यन्तग्रन्थानुपयोगः। तथाऽपि यदि तथाऽप्यर्थः स्यात्तदाऽनन्तरप्राप्तवृद्धिनिवारकत्वेनैकादेशश्रवणकसिद्धप्रयोगोऽपि[1] तत्परिभाषा फलमिति तदनित्यत्वज्ञापनं तेन सुकरमिति तदर्थाभावप्रतिपादनम्। तदाह—**एवं चेति**। तदर्थाभावे[2] चेत्यर्थ.। **परीति**। अन्तरङ्गपरीत्यर्थः। **तदनित्येति**। अन्तरङ्गपरिभाषानित्येत्यर्थः। समर्थग्रहणेनेत्यादिः। नन्वेवमपि पट्व्येत्यादिवदनुपदोक्तरीत्या परिभाषासचार एवेति तेन तदनित्यत्वज्ञापन सुवचम्। अत एवान्तरङ्गत्वादिति बहिरङ्गेणेत्यादि च प्रागुक्तिः संगच्छते। पूर्वमते तु तदुक्तेर्गौणत्व कल्प्य स्यादिति चेन्न। एकदेशियुक्तित्वेनादोषात्। विप्रतिषेधसूत्रभाष्यविरोधापत्तेश्च। वक्ष्यते चेदम्। तदेतद्ध्वनयन्नेतदङ्गीकारेऽन्तरङ्गानपीत्याद्युच्छेदापत्तिं निराचष्टे—**अन्तरङ्गानपीति**। **धीनित्यादेरपीति**। आदिना प्रागुक्तसभावितपरिग्रहः। अपि, कृतमपीत्यादिसमुच्चायक.। अस्याम्, अकृतव्यूहपरिभाषायाम्। एवेनातिरिक्तत्वनिरासः। नन्वेवमपि सेदुष इत्यादौ साक्षान्निमित्तविनाशसत्त्वेनात्र तादृशनिमित्तविनाशग्रहणे मानाभावेन सूत्थितादौ तथाऽसत्त्वेनैतदप्रवृत्त्याऽचारितार्थ्येनाज्ञापकत्वात्समर्थग्रहण व्यर्थमेवात आह—**एतदिति**। चेत्यस्य किंचेत्यर्थः प्राग्योजन च। सभावना, एककोटिकनिश्चयः। अपिः, स्वरूपसद्विनाशसमुच्चायकः। समर्थग्रहणज्ञापकपराकरप्रामाण्यात्तद्ग्रहणाच्च। तथा च यद्येकादेशो न स्यात्तर्हि वृद्धिः स्यादेवेति तत्सभावनाऽस्तीति भावः। ननु तयो[3]रुपपादितरीत्योपपत्तिरत आह—

---

१ ग. °पि उक्तप°। २ क. तथार्थो°। ३ ग. तदाकरस्थोप°। क. पुस्तकेऽप्येतत्पाठान्तरं काचित्कमित्युल्लेखः।

त्त्वम्। अत एव गोमद्दण्डीत्यादौ हल्ङ्यादिलोपो न। अन्यथा हल्ङ्यादिलोपकाले सामासिकलुकोऽप्राप्त्या तदुत्तरं चापहार्याभावादप्राप्त्या लोपस्यैवाऽऽपत्तेः। अस्ति चात्रापि यदि लोपो न स्यात्तर्हि लुक्स्यादिति संभावना।

'अल्लोपोऽनः' ( ६ । ४ । १३४ ) इति सूत्रस्थतपरकरणं तु परिभाषाऽनित्यत्वज्ञापनेन चरितार्थम्। तद्धयान इत्यादौ लोपवारणाय। अन्यथा दीर्घाभावे लोपसंभावनयैतत्परिभाषाबलाद्दीर्घाप्राप्तौ तद्वैयर्थ्यं स्पष्टमेवेत्याहुः।

समर्थानामितिसूत्रे कैयटस्तु समर्थवचनेनेयं परिभाषा ज्ञाप्यतेऽकृतव्यूहाः पाणिनीया इति। तेन पपुष इत्यादावन्तरङ्गत्वात्पूर्वं कृतोऽपीडा-

---

**अत एवेति**। तत्संभावनाया अप्येतन्निमित्तत्वाङ्गीकारादेवेत्यर्थः। गोमद्दण्डीति कर्मधारयः। आदिना भवद्दण्डीत्यादिपरिग्रहः। अन्यथा, संभावनाया अनिमित्तत्वे। अप्राप्त्या, निमित्ताभावात्। **तदुत्तरं चेति**। हल्ङ्यादिलोपोत्तर स्वित्यर्थः। यद्वा चो यथाश्रुतोऽप्राप्त्येत्यग्रे योज्यः। **आपत्तेरिति**। तथा सति नुमादि स्यात्। अत एवाऽऽपत्तिरिति भावः। अन्तरङ्गानपीत्यादि तु नातिरिक्तमित्युक्तमेव। तथाऽङ्गीकारे त्वाह—**अस्ति चेति**। चस्त्वर्थे सभावनापदोत्तरं योज्यः। क्वचिन्निश्च: पाठ.। **अत्रापि**। गोमद्दण्डीत्यादावपि। यदि लोपो न स्यादिति पाठ.। एव चात्र परम्परया निमित्तविनाशस्य न ग्रहणमिति तात्पर्यम्।

नन्वेवमकृतेत्यङ्गीकारेऽल्लोपोऽन इत्यत्रत्यतपरकरण व्यर्थमत आह—**अल्लोपोऽन इतीति**। **परीति**। अकृतेति परीत्यर्थः। भाषानित्यत्वेत्यत्राकारप्रश्लेषः। तदेवाऽऽह—**तद्धीति**। तपरकरण हीत्यर्थः। **आन इति**। अनितेः क्विप्। अन्त्वं त्वत्रैकदेशविकृतन्यायेनेति भावः। अन्यथा, एतदनित्यत्वाभावे। **दीर्घेति**। यदि दीर्घो न स्यात्तर्हि लोपः स्यादिति संभावनयेत्यर्थः। भाषाबलात्, तत्प्रवृत्तिबलात्। **इत्याहुरिति**। केचिदित्यनेनान्वयः।

परिभाषासत्त्वेऽप्यर्थभेदान्मतान्तरमाह—**समर्थेति**। अत एव तुः प्रयुक्तः। कैयट इत्यस्याभिप्रैतीत्यत्रान्वयः। तेन, परिभाषाज्ञापनेन। निवर्तत इत्यत्रान्वेति। **अन्तरङ्गत्वादिति**। उक्तोऽर्थः। वार्णादाङ्गमिति तु समानकालप्राप्तिविषयमिति भावः।

---

१ क. °तो वादप्रा° । २ ग. °चाङ्गीकारेण ।

गमो निवर्तत इति वदन् न कृतो व्यूहो विशिष्टस्तर्को निमित्तकारण-विनाशेऽपि कार्यस्थितिरूपो यैरित्यर्थमभिप्रैति। निमित्तापाये नैमित्तिक-स्याप्यपाय इति यावत्।सूत्थितादित्रि वृद्धौ दीर्घनिवृत्तौ सावुत्थितिर्मा भूदिति समर्थानामिति । लोकन्यायसिद्धश्चायमर्थः। तथा हि लोके निमित्तं द्विविधं दृष्टम् । कार्यस्थितौ नियामकं तदनियामकं च। आद्यं यथा न्यायनयेऽपेक्षाबुद्धिः। तन्नाशे द्वित्वनाशाभ्युपगमात् । वेदान्तिनये प्रारब्धस्य विक्षेपस्थितिनियामकत्वं च प्रसिद्धमेव । द्वितीयं यथा दण्डादि । तन्नाशेऽपि घटनाशादर्शनात् । शास्त्रे लक्ष्यानुरोधाद्व्य-वस्था । भाविनि निमित्तविनाशे पूर्वमनुत्पत्तौ तु न कश्चिन्न्यायो नापि संप्रतिपन्नो दृष्टान्तः । समर्थानामित्यस्यापि लोकसिद्धार्थज्ञापनेन चारितार्थ्यसंभवे लोकासिद्धापूर्वतादृशार्थज्ञापकत्वे मानाभाव इति तदाशय इति बोध्यम् ।

---

वदन्निति । कैयटविशेषणम् । वैशिष्ट्यमेवाऽऽह—निमित्तेति । तत्फलितमाह—निमि-त्तेति । अत्र पक्षे समर्थपदस्य चारितार्थ्यमाह—सूत्थितादिति । वृद्धौ, सत्यामिति शेषः । निवृत्ताविति । तथा च परम्परया तन्निमित्तविनाशसत्त्वेनैतत्प्रवृत्तावेकादेशो न स्यात्तदाह—साविति । किंचेतिपक्षे तु यद्येकादेशो न स्यात्तर्हि वृद्धिः स्यादेवेति निमित्तविनाशसंभावनासत्त्वेन कृतदीर्घनिवृत्तिरिति बोध्यम् । वस्तुतो ज्ञापकानपेक्षत्वेन लाघवमत्र-पक्ष इतीदमेव युक्तं नाऽऽद्यमतमित्याह—लोकेति । चोऽप्यर्थे । स्थिता-विति । स्वस्थितौ कार्यस्थितिसंपादकं स्वास्थितावपि तत्स्थितिसंपादकमिति क्रमेणार्थः । बुद्धिरिति । द्वित्वरूपकार्यस्थितौ नियामिका स्वस्थिताविति भावः । वेदान्तीत्यस्य तथेत्यादिः । विक्षेपः, संसारः । कत्वं चेति । चेनोपाधे स्फटिकलौहित्यादिस्थितिनिया-मकत्वसमुच्चयः । क्वचिन्निश्च. पाठ । नन्वेवमपि शास्त्रे वैपरीत्यं कुतो नात आह—शास्त्र इति । एवमत्र तत्सिद्धत्वमुक्त्वाऽऽद्ये नेत्याह—भाविनीति । विनाशे, यथा-कथंचित् । न कश्चिदिति । ननु प्रक्षालनाद्धीति न्यायसत्त्वमिति चेद्भ्रान्तोऽसि । न हि तेनोक्तार्थो बोध्यते । किं तु पूर्वमकरणं पश्चान्निवर्तनमित्यनयोर्लघुतागुरुते बोध्येते इति भावः । अत एवाऽऽह—नापीति । संप्रतिपन्नो, युक्तः । ननु न्यायाद्यभावेऽपि ज्ञापकसिद्धः सोऽर्थोऽत आह—समर्थेति । तादृशेति । प्रागुक्ताद्येत्यर्थः । तदा-शय इति बोध्यमिति । कैयटाशय इति बोध्यमित्यर्थः । क्वचित्तदाशय इतीति पाठः । तत्रेतिर्मतसमाप्तौ ।

---

१ ग. मासायामि° । २ ग. °ति । उक्तार्थेत्यागे बीजमाह–भा° । ३ ङ. °अन्यत्र सिद्ध° ।

**परे तु सेदुष इत्यादौ पदावधिकेऽन्वाख्याने सेट् वस् अस् इति स्थित इट्संप्रसारणयोः प्राप्तयोः प्रतिपदविधित्वात्पूर्वं संप्रसारणे वलादित्वाभावादिटः प्राप्तिरेव नेति तत्सिद्धिरिति समर्थानामिति सूत्रे कैयटेऽसिद्धवत्सूत्रे च कैयटे स्पष्टमेतत् । यद्यपि प्रतिपदविधित्वमनवकाशत्वे सत्येव बाधकत्वे बीजं तथाऽपि पूर्वप्रवृत्तौ सावकाशत्वेऽपि नियामकं भवत्येवेति तदाशयः । निरूपितं चैतद्बहुशः शब्देन्दुशेखरे ।**

केचित्कैयटोऽभिप्रैतीतिसूचितामुभयपक्षीयामरुचिं कथयन्सिद्धान्तमाह—**परे त्वित्यादिना दिगित्यन्तेन** । क्रमेणान्वाख्याने दोषोक्तिराह—**पदेति** । पदघटकविभक्तिपर्यन्तेऽन्वाख्येयत्वेनाऽऽदौ संस्थाप्य इत्यर्थः । पदस्य विभागपूर्वकं संस्थापनं कृत्वेऽति यावत् । वाक्यस्यात्रानुपयोगात्त्यागः । तदेवाऽऽह—**सेदिति** । प्रकृतानुपयोगादेवमुक्तम् । अन्यथा सदित्युक्तं स्यात् । यद्वा पदस्य विभज्यान्वाख्यानमिति पक्षे तत्र स्थित इत्यर्थः । यत्तु संप्रसारणं तदाश्रयं च बलीय इति पूर्वं संप्रसारणमिति कैयटसीरदेवादयस्तन्न । लिट्यभ्यासस्येति सूत्रस्थभाष्यविरोधापत्तेः । तद्ध्वनयन्नाह—**प्रतीति** । शीघ्रोपस्थिततयेति शेषः । संप्रसारणे, पूर्वरूपे चेत्यपि बोध्यम् । **तत्सिद्धिरिति** । अकृतव्यूहपरिभाषासाध्यार्थसिद्धिरित्यर्थः । एतत्, संप्रसारणं तदाश्रयं च कार्यं बलीय इति तदुक्तप्रकारान्तरसूचितोक्तप्रकारेण तत्साधनम् । न चोक्तरीत्या पूर्वं संप्रसारणेऽप्यन्तरङ्गपरिभाषया तस्यासिद्धत्वात्स्यादेवेडिति वाच्यम् । तस्या अनित्यत्वात्प्रतिपदविधिविषये तदप्रवृत्तेश्च । अत एव परनित्यान्तरङ्गप्रतिपदविधयो विरोधिसंनिपाते तेषां मिथः प्रसङ्गे परबलीयस्त्वमिति प्रत्ययोत्तरेतिसूत्रस्थकैयटसंगतिः । तथा चापवादसमकक्षत्वमस्य । तद्ध्वनयन्नाह—**यद्यपीत्यादि** । **सत्येवेति** । शेषाद्विभाषेतिसूत्रस्थभाष्यप्रामाण्यादिति भावः । **प्रवृत्ताविति** । एतत्सर्वमनुपदमेव मूले स्फुटी भविष्यति । तदाशय., कैयटाशयः । नन्वेवं प्रतिपदविधित्वेन शीघ्रोपस्थित्या पूर्वप्रवृत्त्यङ्गीकार इयायेत्यादौ द्विर्वचनेऽचीतीणो यणित्यस्य निषेधाद्वित्वे वाणादाङ्गमिति सवर्णदीर्घबाधकवृद्धेरुक्तरीत्या प्रागिणो यणिति स्यादिति चेत् । अत्र केचित्[2] । लक्ष्याधिकरणकपदसञ्ज्ञाप्रयोजकसुब्विभक्तिप्रकृतिविशेषमुच्चार्य विहितत्वं प्रतिपदविधित्वम् । एवं च न क्वापि दोष इत्याहु. । वस्तुतस्त्विणो यणित्यादीनां प्रतिप्रसवविधित्वमिको यणित्यस्य बाधकसवर्णदीर्घेयङादिबाधनार्थत्वात् । एवं चानेकाच एरनेकाच इति यणा सिध्द्योत्सर्गसमानेति प्रकल्प्येति पूर्वं ह्योति च न्यायैरेकाज्मात्रविषयकस्य यन्तीत्यादिलक्ष्यकस्येणो यणित्यस्येयायेत्यादावप्राप्त्या प्राप्तस्यैरनेकाच इत्यस्य परत्वादचो ञ्णितीत्यनेन बाधाद्वृद्धावभ्यासस्येतीयङीयायेत्यादिसिद्धिरिति न शङ्कावसर एवेति बोध्यम् । तदेतद्धृदि निधायाऽऽह—**निरूपितमिति** । बहुशः, बहुषु स्थलेषु ।

---

१ ग. °स्थिततयेति भाव° । स° । २ ख. घ. °त् । कक्ष्या° ।

समर्थानामिति सूत्रस्थसमर्थग्रहणं तु विषुण इत्यादावकृतसंधेः प्रत्ययदर्शनेन सर्वत्र तथाभ्रमवारणाय न्यायसिद्धार्थानुवाद एव । ध्वनितं चेदं विप्रतिषेधसूत्रे भाष्ये । तत्र हि वैक्षमाणिरित्यन्तरङ्गपरिभाषोदाहरणमुक्तम् ।

किंच विभज्यान्वाख्याने सु उत्थित अस् इ इति स्थिते वार्णादाङ्गं बलीय इति प्राप्तवृद्धिवारणाय समर्थग्रहणमित्यत्रैव सूत्रे कैयटे स्पष्टम् । अत एवासिद्धवत्सूत्रे वसुसंप्रसारणमज्विधौ सिद्धं वक्तव्यं पपुष इत्यादौ वसोः संप्रसारणे कृत आतो लोपो यथा स्यादिति भाष्य उक्तम् । पदस्य विभज्यान्वाख्याने पूर्वोक्तकैयटरीत्या पूर्वं संप्रसारण इटोऽप्राप्त्या उस्निमित्तक एव आतो लोप इति तदाशयः । अन्यथाऽ-

---

नन्वेव समर्थग्रहणानर्थक्यापत्तिरत आह—**समर्थनामिति । विषुण इति** । न च वार्तिक दृष्ट्वा सूत्रकृतोऽप्रवृत्तेरिदमयुक्तमिति वाच्यम् । तददर्शनेऽपि प्रयोगदर्शनस्याविघ्नत्वात् । अत एव वार्तिकानुल्लेख । दर्शनेनेत्यनेन प्रत्यक्षस्य *सर्वतो बलवत्वात्तथाभ्रमयोग्यता सूचिता । सर्वत्र, तदन्यलक्ष्येषु तद्धितविषये । तथा, अकृतसधे. प्रत्यय इति । अत एव पदस्य विभज्यान्वाख्यानेऽकृतसंधेरपि प्रत्यय. स्यादिति कैयटेनोक्तम् । **न्यायेति** । अन्तरङ्गन्यायेत्यर्थः[1] । ननु द्विविधान्वाख्यानेऽपि प्रागुक्तरीत्याऽन्तरङ्गपरिभाषाविषयत्वसत्त्वात्तदनित्यत्वज्ञापकमेवास्तु समर्थग्रहणमिति कथमनुवादत्वमत आह—**ध्वनितमिति । चेदमिति** । तदनुवादकत्वसूचनद्वारा तत्प्रत्याख्यानमित्यर्थ । **णिरितीति** । इत्यादीत्यर्थ । **अतरङ्गेति**[3] । अन्तरङ्गबहिरङ्गयोरन्तरङ्ग बलीय इति परिभाषेत्यर्थ. । वृद्धेरेकादेशोऽन्तरङ्गत्वात् वैक्षमाणिरित्यादिनेति भावः । वार्णपरिभाषा त्वनित्यत्वान्न प्रवर्तत इति तदाशयः ।

इदमेव द्रढयितु तस्य परिभाषाज्ञापकत्व विघटयितुं च वार्णादित्यस्य प्रवृत्तिमभ्युपेत्याप्याह—**किं चेति** । प्राप्तस्यैकादेश बाधित्वेत्यादि । अत्रैव, प्रागुपक्रान्ते समर्थानामितिसूत्र एव । एवं चानित्यत्वाद्वार्णादित्यस्याप्रवृत्तौ तथा प्रवृत्तौ त्वेवमिति सर्वथाकृतपरिभाषाभावः सिद्ध इति भावः । एतदभावमेव द्रढयति—**अत एवेति** । अत्राकृतपरिभाषाभावादेवेत्यर्थ. । **पूर्वोक्तेति** । प्रतिपदविधित्वादितीत्यर्थ. । **इटोऽप्रेति** । अवलादित्वादिति भाव. । एवौ मिथो व्यवच्छेदकौ । एवं च समानाश्रयत्वात्प्राप्तासिद्धत्ववारणाय वार्तिक सफलमिति भाव । **अन्यथाऽन्तेति** । पूर्वोक्तकैयटरीत्यनङ्गीकार इत्यर्थ ।

---

* ङ. पुस्तके °तो वक्तव्यत्वादिति पाठान्तरम् ।

---

१ ग. इतीत्यर्थः । अ° । २ ग °र्थ । तत्रत्यभाष्यस्यायमेवाऽऽशय इति सूचयितुमाह—ध्व° । ३ ग. वैक्षमाणिरित्यादितत्प्रयोजनम् । वा° ।

न्तरङ्गत्वादिटि तन्निमित्तक एवाऽऽतो लोप इति तदसङ्गतिः। अत एव चौ प्रत्यङ्गस्य प्रतिषेध इति वचनं वार्तिककृताऽऽरब्धं भाष्यकृता च न प्रत्याख्यातम्। प्रत्यङ्गमन्तरङ्गम्। अस्यां परिभाषायां सत्यां तु तद्वैयर्थ्यं स्पष्टमेव। अत एव 'च्छ्वोः' (६।४।१९) इति सूत्रेऽवश्यमत्र तुगभावार्थो यत्नः कार्योऽन्तरङ्गत्वाद्धि तुक्प्राप्नोतीति भाष्य उक्तम्। एतत्सत्त्वे तु तुकोऽप्राप्त्या यत्नावश्यकत्वकथनमसंगतमिति स्पष्टमेव। न चैतदनित्यत्वज्ञापनार्थमेतदिति तदाशयः। अवश्यमत्रेत्यक्षरस्वारस्य-भङ्गापत्तेः।

किं चानयैव 'प्रत्ययोत्तरपदयोश्च' (७।२।९८) 'अदो जग्धि-र्ल्यप्ति किति' (२।४।३६) इत्यनयोश्चारितार्थ्येन तज्ज्ञापकवशा-ल्लुग्ल्यपोरन्तरङ्गबाधकता भाष्योक्ता भज्येत। किं चैषा भाष्ये न दृश्यते। तदुक्तमसिद्धवत्सूत्रे कैयटेन निमित्तापाये नैमित्तिकस्याप्य-पाय इति परिभाषाया भाष्यकृताऽनाश्रयणादिति। पदसंस्कारपक्षे हरि-

---

**तन्निमित्तक एवेति**। एव चाऽऽतो लोपोत्तरं सप्रसारणे तन्निमित्तकलोपाभावेन तस्यासि-द्धत्वाप्राप्त्या ततः प्राक् सप्रसारणे तत आतो लोपे तस्यासिद्धत्वेऽपीटः सत्त्वेन तन्नि-मित्तक एवातो लोप इत्युभयथाऽपि क्रियमाण सिद्धत्वार्थं वार्तिकं तद्भाष्यं च दत्तजला-ञ्जलि स्यादिति सा रीतिरावश्यिकीति भावः। तदाह—**तदसंगतिरिति**। अत एवेत्य-स्योभयत्रान्वयः। उक्तोऽर्थः। नन्वज्ञानादारम्भेऽपि प्रत्याख्यानान्नायं सद्धेतुरत आह—**भाष्येति**। चो भिन्नक्रमः। न प्रत्याख्यात चेत्यर्थः। प्रत्यङ्गशब्दस्यानेकार्थत्वादाह—**अन्तरङ्गमिति**। अस्याम्, अकृतेत्यस्याम्। तद्वैयर्थ्यं, वार्तिकवैयर्थ्यम्। अनयैव भाष्यकारनिवृत्त्या यणादिनिवृत्तिसिद्धेरिति भावः। सूत्र इत्यस्य भाष्य इत्यत्रान्वयः। अत्र, प्रष्टेत्यादौ। यत्न[1], सतुक्च्छनिर्देशरूपः। एतत्सत्त्वे, अकृतेति सत्त्वे। सीरदे-वदीक्षिताद्युक्तिं खण्डयति—**न चैतदिति**। अकृतेत्यर्थः। एतत्, सतुक्छनिर्देशरूपयत्ना-वश्यकत्वकथनम्। तदाशयः भाष्याशय.।

परिभाषासत्त्वे दोषान्तरमाह—**किं चानयैवेति**। अकृतेत्यनयैवेत्यर्थः। **त्यनयो-रिति**। मपर्यन्तग्रहणानुवृत्तिल्यब्ग्रहणविशिष्टयोरित्यर्थः। भाष्योक्ता, तैर्विशिष्योक्ता। तयोरत्रैवान्तर्भावेऽपि तदुक्तिभङ्गो दुरुद्धर एवेति भावः। दोषान्तरमाह—**किं चैषेति**। न दृश्यते, कथमपि न दृश्यते। तदाह—**तदुक्तमिति**। पपुष इति प्रतीकं धृत्वाऽन्तरङ्ग-त्वादिटमापाद्य सप्रसारणे कृते तन्निवृत्तिरित्याशङ्कानिवृत्तौ हेतुत्वेनोक्तमित्यर्थः। नन्वकृते-त्यस्याभावे क्वचिदनिष्टापत्तिरतः फलबलकल्प्येयमावश्यिकीत्यत आह—**पदेति**। हरिरि-

---

१ ग ङ. °रणेऽपि त°। २ क. ख ङ. °तुक्नि°।

**रित्यादौ विसर्गे कृते ततो गच्छतीत्यादिसंबन्धे हरिः गच्छतीत्याद्येव साधु । तद्विषये पदसंस्कारपक्षानाश्रयणं वेति दिक् ॥ ५६ ॥**

**अन्तरङ्गादप्यपवादो बलवान् ॥ ५७ ॥**

**तत्रापवादपदार्थमाह । येन नाप्राप्ते यो विधिरारभ्यते स तस्य बाधको भवति । प्राप्त इति भावे क्तः । येन नाप्राप्त इत्यस्य यत्कर्तृकावश्यकप्राप्तावित्यर्थो नञ्द्वयस्य प्रकृतार्थदार्ढ्यबोधकत्वात् । एवं च विशेषशास्त्रोद्देश्यविशेषधर्मावच्छिन्नवृत्तिसामान्यधर्मावच्छिन्नोद्देश्यकशास्त्र-**

---

स्यादावित्यादिना रव्यादिपरिग्रहः । विसर्गे कृते, अवसानसत्त्वात् । **त्याद्येवेति ।** एवेन हरिर्गच्छतीत्यादिव्यावृत्तिः । तथाप्रयोगादर्शनात्पक्षान्तरमाह–**तद्विषय इति ।** पदान्तरसबद्धपदसबन्धिविसर्गविषय इत्यर्थः । एवं च फलाभावेन न तद्धलकरूप्यत्वमप्यस्या इति भावः । किं च सेदुष इत्यादावुक्तरीत्या पूर्वमिटि ततः सप्रसारणे नाजानन्तर्ये इति निषेधादनित्यत्वाद्वा बहिरङ्गपरिभाषाया अप्रवृत्त्या यणि बहिरङ्गतयैव संप्रसारणस्यासिद्धत्वेन वल्परत्वाद्यकारलोपे तत्सिद्धि. । यत्तु सीरदेवादयः संहितासज्ञापेक्षत्वेन बहिरङ्गतया यणादेशस्यैवासिद्धत्वेन तदभावात्कुतो वलि लोप. । किं चैव वर्तेते वर्धेते इत्यादावातो ङित इति बहिरङ्गस्येयादेशस्यासिद्धत्वाद्वलि लोपो दुर्घट । एवं च तद्विषये तदप्रवृत्तिरनित्यत्वादवश्य वाच्येति । तन्न । सज्ञाकृतबहिरङ्गत्वानाश्रयणात् । अत एवेयादेरपरनिमित्तकत्वेनान्तरङ्गत्वाच्च । तस्मात्परिभाषाया अभाव एव । अत एव च्छ्वोरिति सूत्रे न हीद वचन.नापि न्याय इति हरदत्तेनोक्तम् । एवं स्थितेऽनित्यामेतामङ्गीकृत्याऽऽभात्सूत्रस्थकैयटादिग्रन्थान्गौरवात्कृतमपीत्यभावपरतया कथंचिद्योजयित्वा ज्ञापकान्तरोपन्यासेनैना दृढी कुर्वन्तो दीक्षितादयो भ्रान्ता एवेति बोध्यम् । तदाह—**दिगिति ॥ ५६ ॥**

**अन्तरङ्गादपीति ।** अपिर्नित्यादिसमुच्चायकः । तत्र, बलवदपवादे । घटकत्वं सप्तम्यर्थः । उक्तपरिभाषैकदेशबोधको वा । कर्माद्यर्थानुपयोगादन्वयायोग्यत्वाच्चाऽऽह–**प्राप्त इतीति ।** तथा च येनेति कर्तरि तृतीया । सतिसप्तमी चेय तदाह—**येन नेति ।** अवश्यत्वलाभबीजमाह—**नञ्द्वयेति ।** अत एव येन प्राप्त इति नोक्तम् । प्राप्तावश्यत्वं चापवादप्रवृत्तेः पूर्वमनन्तर वोत्सर्गस्य स्वारसिकसबन्धित्वम् । स्वारसिकत्व चातिदेशाप्रवृत्तिनिरपेक्षत्वम् । एतदर्थमेवैवमुक्त तथा नोक्तम् । दृष्टान्ततोऽप्ययमर्थो लभ्यत इति तात्पर्यम् । फलितमाह–**एवं चेति ।** तथा शब्दार्थे चेत्यर्थः । **विशेति ।** विशेषशास्त्र उद्देश्यभूतं यद्विशेषधर्मावच्छिन्नं तन्निष्ठो यः सामान्यधर्मस्तद्विशिष्टमुद्देश्य यत्र तादृशशास्त्रस्य प्रत्यासत्त्या तेन विशेषशास्त्रेण बाध इत्यर्थः । तथा च विशेषत्वसामान्यत्वे परस्परापेक्षे इति

---

१ क. °भके वाक्ये वा° ।

स्य विशेषशास्त्रेण बाधः। तदप्राप्तियोग्येऽचारितार्थ्यं ह्येतस्य बाधकत्वे बीजम्। किं चानेन न्यायेन तत्प्रवृत्त्युत्तरमपि चारितार्थ्ये तद्बाधबोधनम्। अन्यथाऽनवकाशत्वेनैव बाधे सिद्ध एतत्कथनस्यैव वैयर्थ्यापत्तेस्तक्र-कौण्डिन्यन्यायप्रदर्शनस्यापि वैयर्थ्यापत्तेश्च।

यथा प्रथमद्विर्वचनस्य तदुत्तरं सावकाशेनापि द्वितीयद्विर्वचनेन बाधः। यथा चाऽऽदेरपि प्रवृत्त्या चरितार्थेन 'आदेः परस्य' (१।१।५४) इत्यनेन 'अलोन्त्यस्य' (१।१।५२) इत्यस्य बाधः।

---

नान्यापेक्षयोस्तयोर्बाध्यबाधकभाव इति भावः। अत्र हेतुमाह—**तदप्रेति**। सामान्य-शास्त्राप्रेत्यर्थः। हि, यत। न तु विरोधादिरिति भावः। एतस्य, अपवादस्य। नन्वचा-रितार्थ्यमित्येव सिद्धे तदप्राप्तियोग्य इति विशेषण व्यर्थमतस्तत्सफलयन्नाह—**किं चेति**। अनेन, येन नेति न्यायेन। एवमग्रेऽपि। **तत्प्रेति**। सामान्यशास्त्र[1]प्रवृत्त्युत्तरमपीत्यर्थः। * अपिना तत्पूर्वकालसमकालयोः समुच्चयः। तत्र कौण्डिन्यन्यायविषये द्वयोरेव संभवेन सत्त्वेन तद्दृष्टान्तेनात्र द्वयोर्लाभेऽपि सम्भवात्तृतीयमपि गृह्यते। अयमेव ततोऽत्र विशेष इत्येतदुक्तिसाफल्यम्। अन्यथा तेनैव सिद्धे येनेत्यपि न ब्रूयात्। चारितार्थ्ये, तत्रैव। चारितार्थ्येऽपीति पाठे त्वपिरेवार्थे। तत्प्रवृत्त्युत्तरमचारितार्थ्यसमुच्चायकत्व तु न। तत्र सर्वथाऽनवकाशत्वाद्बाधस्य वक्ष्यमाणत्वेनैतदप्राप्त्या किंचेत्यादिसर्वग्रन्थासङ्गत्यापत्तेः। तेन तत्समुच्चयेऽपि दृष्टान्ततया योजन यथा तत्र सर्वथाऽनवकाशत्वाद्बाधस्तथाऽत्रानेन बाध इति केचित्। तदप्राप्तीत्यादिसमुच्चायक इत्यन्ये। वस्तुतस्त्वपिर्व्युत्क्रमे। तत्प्रवृत्त्युत्तरमपीत्यन्वयेन प्रागुक्तार्थलाभ इति बोध्यम्। परसप्तमीपक्षे सूत्रत्रयेण भिन्नवाक्यतापक्ष आद्यद्वयनुवृत्त्यैव सिद्धे पुनरुक्तिसामर्थ्यात्पञ्चम्या विपरिणामः। सर्वथा तत्राचारितार्थ्ये सति तदुत्तरं तत्पूर्वं[2] वा स्वारसिकमतिदेशप्रवृत्तिनिरपेक्ष चारितार्थ्य यत्र तत्रानेन बाध इति सिद्धम्। अत एव शेखरविरोधो नेति बोध्यम्। अन्यथा, तत्र चारितार्थ्याभाव एव तत्त्वाङ्गी[3]कारेण तद्विशेषणत्यागे। अनवकाशत्वेनैव। सर्वथाऽनवकाशत्वेनैव। **कथनेति**। भाष्य इति शेष.। नन्वनेन सर्वथाऽनवकाशत्व एव तत्त्व प्रकाश्यतेऽत आह—**तक्रेति**। अत्र दृष्टान्ततया लौकिकेत्यादि। तुल्यत्वे हि दृष्टान्ततेति भावः।

तत्र स्पष्टार्थमस्योदाहरणद्वयमाह—**यथा प्रथमेत्यादिना**। अजादिधातोरिति शेषः। शेनापीति। अपिर्व्युत्क्रमे। तदुत्तरमपीत्यर्थः। स च प्राग्वत्। **देरपीति**। अपिरन्त्यप्रवृत्तिसमुच्चायकः[4]। कालत्रय आदेरपीत्यादिः। किंचेत्यादिनोक्तेऽर्थे संमति-

---

* अपिनेत्यारभ्य ब्रूयादित्यन्तो ग्रन्थः ख. पुस्तक एव वर्तते।

---

१ क. ग. घ. ङ. °त्र प्रेत्य° । २ ग. °र्वं तत्समकालं वा। ३ ङ. °त्त्वानङ्गी° । ४ ङ. °कः। तदुत्तरमित्यादिः।

तदुक्तं 'मिदचोऽन्त्यात्' (१।१।४७) इति सूत्रे भाष्ये सत्यपि संभवे बाधनं भवतीति। अन्यथा ब्राह्मणेभ्यो दधि दीयतां तक्रं कौण्डिन्यायेत्यत्र तक्रदानेन दधिदानस्य बाधो न स्यात्। तद्दानोत्तरं तत्पूर्वं वा तद्दानस्य चारितार्थ्यसंभवात्।

अत एव 'आयादयः' (३।१।३१) इति सूत्रे गोपायिष्यतीत्यादावायादीन्बाधित्वा परत्वात्स्यादयः प्राप्नुवन्तीत्याशङ्क्यानवकाशा आयादयः। गोपायतीत्यादावपि शप्स्यादिः प्राप्नोति। न च सति शप्यसति वा न विशेषः। अन्यदिदानीमिदमुच्यते नास्ति विशेष

---

माह—**तदुक्तमिति**। **सत्यपीति**। अपिः सर्वथानवकाशत्वसमुच्चायकः। भाष्येऽग्रेऽस्यान्वयमुखेनोपपादनसत्त्वेऽपि व्यतिरेकं विना दार्ढ्यासंभवादन्वयमुपेक्ष्य व्यतिरेकमाह—**अन्यथेति**। असंभव एव बाधकत्वाङ्गीकार इत्यर्थः। सर्वथाऽनवकाशत्व एव तत्त्व इति यावत्। **इत्यत्र**। प्रतिपादित इति शेषः। बाध इत्यत्रान्वयः। **तद्दानोत्तरमिति**। दधिदानोत्तरमित्यर्थः।

तदग्रेत्यादि प्रथममुक्तार्थं द्रढयति—**अत एवेति**। तथाऽचारितार्थ्य एवानेन बाधाङ्गीकारादेवेत्यर्थः। **गोपेति**। अस्य यथाश्रुतसूत्रं आयादेस्तदन्ताद्यदार्धधातुकं तत्र परं आयादीनां पक्षे निवृत्तिरिति पक्षे गुपिर्जुगोपेति न स्यात्। गोपा गोपाचकारेति स्यात्। आयादय इति पदोक्तिसामर्थ्यात्पृथक्पाठसामर्थ्याच्च सूत्रत्रयस्याऽऽर्धधातुक एकवाक्यता सार्वधातुके भिन्नवाक्यतेत्येवमायादिप्रकृतेर्यदार्धधातुकं तत्र परे तेषां पक्ष उत्पत्तिरिति पक्षे प्रागुक्तेष्टसिद्धावपि गोपायेतीष्टं न सिध्यतीत्युक्त्वा स्वीकृते आयादयो वा ततः सार्वधातुके नित्यमिति न्यासभेदपक्ष इत्यादिः। **परत्वादिति**। आदेशप्रवृत्त्युत्तरं स्यतासी इति पक्ष इदम्। तुल्यनिमित्तत्वादन्तरङ्गत्वानिरासः। तथा च सकृद्गतिन्यायेनाऽऽयादयो न स्युरेवेति भावः। अपवादविषय उत्सर्गाप्रवृत्त्या सार्वधातुकविषये सामान्यसूत्रतो नाऽऽयादयः। एतेन नित्यमित्यस्य परत्वाद्बाधेऽपि सामान्यसूत्रत्रयेण ते स्युर्न हि तेनापि विप्रतिषेधस्तस्यानैमित्तकत्वेनान्तरङ्गत्वादित्यपास्तम्। **आशङ्क्येति**। स्यबन्तस्योक्तमित्यत्रान्वयः। ननु गोपायतीत्यादिरवकाशोऽत आह—**गोपेति**। स्यादिसमुदायान्तर्गतः शप्प्राप्नोतीत्यर्थः। **न विशेष इति**। विशेषकृच्छास्त्रं तदभावे न

---

१ ङ. र्थः। उक्तार्थं द्र०। ग. °र्थः। द्विविधोक्तार्थं द्र०। २ घ. गोपाया च°।

इति । यदुक्तमायादीनां स्यादिभिरव्याप्तोऽवकाश इति स नास्त्यवकाश इति भाष्य उक्तम् । एवमत्र तत्प्रवृत्त्युत्तरं चारितार्थ्येऽपि तद्व्याप्तोऽवकाशो नास्तीति सममेव ।

अत एव विषयभेदेऽप्यपवादत्वम् । अत एवाचि रादेशेन नुटोऽप्यपवादत्वाद्बाधमाशङ्क्य 'न तिसृ' (६ । ४ । ४) इति ज्ञापकेन समाहितं तृज्वत्सूत्रे भाष्ये । तेन विषयभेदेऽपवादत्वाभाव एव बोध्यत इति कश्चित्तन्न । विन्मतोर्लुका टिलोपमात्रस्य बाधानापत्तेः । यत्तु 'दयतेर्दिगि' (७ । ४ । ९) इति सूत्रे द्वित्वोत्तरं दिग्यादेशस्य चारितार्थ्यं कैयटेनोक्तं तत्प्रौढया । ध्वनितं च तेनापि तस्य तथात्वं तदुत्तर-

---

प्रवर्तेत इति मन्यते । स नास्त्येति । पर्जन्यवल्लक्षणप्रवृत्तेरिति भावः । द्वितीयमपि ततो लभ्यत इत्याह—एवमिति । तत्र यथा तदुत्तरं तत्पूर्वं वाऽऽयादेश्चारितार्थ्यं तद्वदित्यर्थः । अत्र अजादिधात्वादिविषये । तत्प्रवृत्त्युत्तरं, प्रथमद्वित्वादिप्रवृत्त्युत्तरमपि । तथा च विशिष्टमपि ततो लब्धमिति तात्पर्यम् । चारीति । अन्यतरसूत्रेण शबादिकमेव मत्वाऽमत्वा वा पुनः प्रसङ्गविज्ञानेनाऽऽयादीनां चारितार्थ्येऽपि तद्व्याप्त इत्यादिग्रन्थस्तुल्य एवेत्यर्थः ।

समकालमित्यपि सर्वथाऽऽवश्यकमिति सूचयन्नाह—अत एवेति । सत्यपि संभवे बाधाङ्गीकारादेवेत्यर्थः । विषयेति । तच्चोक्तमेव । तत्र च क्वचित्तथा संभवः क्वचिद्युगपदेव संभव इति भावः । अत्र मानान्तरमप्याह—अत एवेति । विषयभेदे तत्त्वाङ्गीकारादेवेत्यर्थः । नुटोऽपीति । अपिर्गुणादिसमुच्चायकः । यथा तस्य तद्बाधकत्वं तद्वत्तद्बाधकत्वमित्यर्थः । मतान्तरं खण्डयति—तेनेति । न तिसृत्यनेनेत्यर्थः । टिलोपमात्रस्य । नस्तद्धित इत्यस्य टेरित्यस्य च । कैयटविरोधं परिहरति—यत्त्विति चारितार्थ्यमिति । तथा सति भाष्यीयविप्रतिषेधोपपत्तिरिति तद्भावः । तत्प्रौढयेति । प्रागुक्तभाष्यविरोधादिति भावः । तदभिमतमपीदमित्याह—ध्वनितं चेति । तेनापि, कैयटेनापि । तस्य, प्रागुक्तार्थस्य । तथात्वं, प्रौढत्वम् । पूर्वं सामान्यविशेषभावानाश्रयणेन सावकाशत्वमुक्तमिदानीं तु तदाश्रयेण नाप्राप्ते द्वित्व

---

१ ग. ङ. वः । नन्वितो भाष्यात्तदप्राप्तियोग्येऽचारितार्थ्ये तथेत्यस्य लाभेऽपि किंचेत्याद्युक्तार्थालाभोऽत आह—ङ. पुस्तके तु योग्यत्वेऽचारि° इति पाठान्तरम् । २ ग. °ति । उक्तप्रकारेणोक्तार्थवदित्यर्थः । ३ ग. ङ. °त्र, गोपायति गोपायिष्यतीत्यादौ । तत्प्र° । ४ ग. तदिति । शबादीत्यर्थः । चारी° । ५ ङ. °ममेवेत्य° ।

**ग्रन्थेन। असंभव एव बाधकत्वं विरोधस्य तद्बीजत्वादिति वार्तिकमतं तु भाष्यकृता दूषितत्वान्न लक्ष्यसिद्ध्युपयोगि।**

**तक्रकौण्डिन्यन्यायोऽपि तदप्राप्तियोग्येऽचरितार्थविषयो विधेयविषय एव चेति 'तद्धितेष्वचामादेः' (७।२।११७) 'धातोरेकाचः' (३।१।२२) इत्यादिसूत्रेषु भाष्ये स्पष्टम्।**

---

आरभ्यमाणदिग्यादेशस्य तदपवादत्वमुच्यत इति तदुत्तरग्रन्थेनेत्यर्थः। एवं च तद्भाष्यमप्येकदेश्युक्तिरिति बोध्यम्। नन्वेवमपि वार्तिकमते लक्ष्यभेदापत्तिरत आह—**असंभव एवेति**। विरोधस्य, तस्यैव। एवेनोक्तबीजव्यवच्छेदः।

येननेति तक्रेति च न्याययोरैक्यं प्रागुक्तं किंचिद्विशेषकथनेन द्रढयितुमुपसंहरति—**तक्रेति**। अपि[1]रेतत्समुच्चायकः। **तदप्राप्तियोग्य इति**। तदुद्देश्यतावच्छेदकाक्रान्तस्वरूपतत्प्राप्तियोग्यत्वावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदवतीत्यर्थः। अन्यथा कालभेदेन तदप्राप्ति[2]योग्यत्वस्य तत्रैव सत्त्वेनासंगतिः स्पष्टैव। एतदर्थमेव योग्यत्वनिवेशः। साधकमुभयत्र क्रमेणाऽऽह—**तद्धितेष्विति**। तत्र हि कौष्ट्रो जागत इत्यादावन्त्योपधावृद्ध्योर्निषेधमपूर्वमुक्त्वोक्तन्यायेन तयोरादिवृद्ध्या बाधमाशङ्क्य दृष्टान्ते नाप्राप्तिसत्त्वेऽपि सौश्रुत इत्यादौ तयोरप्राप्त्येह तदभाव इत्युक्तम्। सामान्यविशेषभावो बाधहेतुः स चेह नास्तीति तत्र कैयटः। निमित्तांशे तत्सत्त्वेऽपि कार्यांशे[3] तदभाव इति तदाकूतम्। **धातोरेकाच इति**। यद्यप्यत्र सूत्रे न किमपि भाष्य उक्तं तथाऽपि नित्यं कौटिल्ये लुपसेदत्यत्रार्थेभ्यः क्रियासमभिहारे यङा भवितव्यमिति प्रश्ने क्रियासमभिहारे च नैतेभ्य इत्युक्तम्। तत्र पूर्ववार्तिकस्थस्य विशेषासप्रत्ययादित्यस्य चकारेणानुवृत्तिः। तथा च भृशं जपतीत्याद्यर्थविशेषस्य तादृशयङन्तादप्रतीतिः स नेति भावः। यद्यनुवादेऽपि तन्न्यायसंचारः स्यात्तर्हि तथैव वदेत्। यतो नोक्तमतस्तस्य विधेयविषयत्वमेव। तत्रत्यकैयटस्तन्न्यायसं[4]चारपरस्त्वयुक्त एव। विशेषविहितेन सामान्यविहितस्य बाध उत्सर्गापवादस्थल इत्यत्रैव तद्दृष्टान्तस्य मिदचोऽन्त्यात्सूत्रे भाष्य उक्तत्वात्। किंच न हि विशेषानुवादेन सामान्यानुवादबाधे दृष्टान्तो लौकिकोऽस्ति। नापि तद्विषये नियमेन तत्प्राप्तिरस्ति। क्रियासमभिहाराविवक्षायाः संभवात्। क्रियासमभिहारादेर्यङ्द्योत्यतया तद्वृत्तेर्धातोरित्यर्थेनानुवाद्यत्वं स्पष्टमेव। नित्यग्रहणं त्वनभिधानमाश्रित्य भाष्ये प्रत्याख्यातम्। तत्रत्यमनोरमादिकं तु

---

१ ख. ग. घ. °पिरेतत्स°। २ क. घ. °प्तिविषयत्वस्य। ३ ख. ग. घ. कार्यांशे। ४ ग. ङ. °त्रैवैत°।

**क्वचित्तु सर्वथाऽनवकाशत्वादेव बाधकत्वं यथा ङेरामो याडादिबाधकत्वम्। न हि याडादिषु कृतेषु ङेराम्प्राप्नोति निर्दिश्यमानस्य व्यवधानात्। तत्र स्वस्य पूर्वप्रवृत्तिरित्येव तेषां बाधः। तत्र बाधके प्रवृत्ते यद्युत्सर्गप्राप्तिर्भवति तदा भवत्येव यथा तत्रैव याडादयः। अप्राप्तौ तु न यथा पचेयुरित्यादौ दीर्घबाधके निरवकाश इयादेशे दीर्घाभावः॥ ५७॥**

**तदेतत्पठ्यते—**

---

चिन्त्यमेव। तथा चेत्यादीत्यत्रातद्गुणसंविज्ञानबहुव्रीहिणा नित्यं कौटिल्य इत्यादिपरिग्रहः॥ तदुल्लेखस्तु प्राक्सामान्यशास्त्रोपस्थितेर्बाध्यत्वेन तस्यापि विषयत्वाच्चेति बोध्यम्। बहुवचनेन मिदचोऽन्त्यात्सूत्रपरिग्रहः। तच्चोक्तं प्राक्।

एवं चैतदुभयभिन्नस्थले सर्वथाऽनवकाशत्वमेवापेक्षितमिति तत एव बाधे नास्य प्रवृत्तिस्तदाह—**क्वचिदिति**। तु पूर्ववैलक्षण्ये। सर्वथा, तदप्राप्तियोग्ये तत्प्रवृत्त्युत्तरमपि चेत्यर्थः। एवः स्पष्टार्थः। **याडादीति**। आदिना आट्स्याट्परिग्रहः। **निर्दिश्येति**। ङेरित्यर्थः। याडादिनेति शेषः। यदागमा इति न्यायेन समुदायस्य तत्त्वेऽपि न निर्दिश्यमानत्वम्। याडादितः प्रागपि न तत्त्वम्। इत्सञ्ज्ञकङकारोपलक्षितस्यातिदेशप्रवृत्तिं विनाऽसत्त्वेन याडाद्यप्राप्तेः। समकालं तत्त्वं तु दूरापास्तमेव। न चाऽऽगमादेशयोर्न तत्त्वं भिन्नविषयत्वादिति वाच्यम्। उक्तोत्तरत्वात्। अपवादो नुग्दीर्घत्वस्येति दीर्घोऽकित इत्यत्र भाष्ये तयोरपि तत्त्वोक्तेश्च। पादः पदिति सूत्रस्थं शब्दान्तरप्राप्त्याऽनित्ययोराडामोः परत्वादामिति भाष्यं त्वेकदेश्युक्तिरिति भावः। नन्वेवमत्रापवादत्वाव्यवहाराद्बाधकताप्रयोजकेषु तत्त्वेनोल्लेखवादस्य तद्बहिर्भूतत्वात्कथं बाधकत्वमन्यथा न्यूनतापत्तिस्तत्रात आह—**तत्रेति**। सर्वथा निरवकाशत्वस्थल इत्यर्थः। स्वस्य, सर्वथा निरवकाशस्य। **रित्येवेति**। इतिरभेदे। एवः पूर्वोक्तबाधव्यवच्छेदे। तेषां, परादीनाम्। अत एव पूर्वतो वैलक्षण्यमिति ध्वनयन्नाह—**तत्रेति**। उक्तोऽर्थः। बाधके, सर्वथा निरवकाशे प्रागिति शेषः। तत्रैव, ङेराम्विषये रमायामित्यादावेव। **अप्रेति**। तत्र कृत उत्सर्गाप्राप्तौ तु स नेत्यर्थः। निरवेत्यस्य सर्वथेत्यादिः। **दीर्घाभाव इति**। यञादिसार्वधातुकापरत्वेनातो यञीति दीर्घाभाव इत्यर्थः॥ ५७॥

**तदेतदिति**। तदुत्तरप्राप्तिकोत्सर्गकर्तृकं[2] भवनमित्येतदेवेत्यर्थः। आधुनिकैरिति शेषः। तदप्राप्तौ तदभवनात्क्वचिदित्युक्तम्। ननु नोक्तोऽस्य वचनस्य विषयोऽत्रापवादशब्दसत्त्वा-

---

१ क. ख. ह. °तद्गिस°। २ ग. ह. °तिमदुत्स°।

## क्वचिदपवादविषयेऽप्युत्सर्गोऽभिनिविशत इति ॥ ५८ ॥

अपवादशब्दोऽत्र बाधकपरः ।

तदुक्तं 'गुणो यङ्लुकोः' (७।४।८२) इत्यत्र भाष्ये । अभ्यासविकारेष्वपवादा उत्सर्गान्न बाधन्ते । अजीगणत् । अत्र न गणेरीत्वमपवादत्वाद्धलादिःशेषं बाधते किं तर्ह्यनवकाशत्वादिति ग्रन्थेन । गणरूपाभ्यासान्त्यणस्येत्वमित्यर्थे हलादिःशेषेण तन्निवृत्तौ तदनवका-

---

तत्र तत्त्वाभावादत आह—अपेति । अत्र, उक्तवाक्ये । बाधकेति । सर्वथानिरवकाशेत्यर्थः । एतेनास्यापवादविषये तस्यान्येन निषेधेऽप्युत्सर्गो भवतीत्यर्थः । यथा रामावित्यत्र वृद्ध्यपवादपूर्वसवर्णदीर्घस्य नादिचीति निषेधेऽपि वृद्धिः । तौ सदिति निर्देशोऽत्र लिङ्गम् । नान्तःपादमिति पाठे सुजाते अश्वसूनृते इत्यादौ पूर्वरूपे निषिद्धेऽप्ययाद्यप्रवृत्तेः क्वचिदिति । यद्वा 'वा लिटीति ख्याञादेशस्य द्वित्वापवादत्वेऽपि तस्मिन्कृते द्वित्व भवति । अनेन वचनेन दिग्यादेशविषये द्वित्वाप्रवृत्तेः क्वचिदिति । इदमेवाभिप्रेत्य भ्रष्टावसरत्वान्न पुनः प्रवृत्तिरिति तत्र तत्र षष्ठसप्तमयोः कैयटादय[1] । जातिव्यक्तिपक्षमूलकं चैतत्पक्षद्वयमित्यपास्तम् । अपवादविषयपरिहारेणोत्सर्गप्रवृत्तेस्तद्विषये तस्याप्रवृत्त्या तस्य वृद्धिबाधकत्वायोगात् । आर्धधातुकीयाः सामान्येन भवन्तीति सिद्धान्तेन बाध्यबाधकभावस्यैवाभावाच्च । दिग्यादेशस्यानार्धधातुकीयत्वेनादोषाच्च । भ्रष्टावसरन्यायानाश्रयणस्य वक्ष्यमाणत्वाच्चेति दिक् ।

उक्तार्थे प्रमाणमाह—तदुक्तमिति । इति ग्रन्थेनैत्यस्यात्रान्वयः । तत्र हि डोढौक्यत इत्यादौ ह्रस्वदीर्घयोरन्यत्र सावकाशयोः परत्वादौकारस्यौकार एव दीर्घः स्यादेवं च ह्रस्वे कृते दीर्घापवादे गुणेऽपि तस्यैव दौर्लभ्यमिति दोषो न । अन्यार्थे क्रियमाणयाऽभ्यासविकारेष्वपवादा इति परिभाषया निर्वाहादित्युपक्रान्तम् । तदाह—अभ्यासेति । तदेवान्यत्फलमाह—अजीति । तदुपपादयति—अत्रेति । उक्तपरिभाषयेति शेषः । एवं च णस्य निवृत्तावस्येत्वे तत्सिद्धिरिति भावः । उक्तपरिभाषादि खण्डयति—न गणेरीत्वमिति । तत्त्वमुपपादयति—गणेति । ई च गण इत्यत्राभ्यासस्येति स्थानषष्ठी । संभवतीति न्यायेन सामानाधिकरण्यम् । तथा चालोऽन्त्यस्येत्येकवाक्यतया तथावाक्यार्थ इति भावः । इत्यर्थे इति । सत्सप्तमी । तथा चास्यानवकाशत्वे निमित्तत्वेनान्वयः । हलादिरिति । अत्राभ्यासस्येत्यवयवषष्ठी । तन्निवृत्तौ, णनिवृत्तौ । तदनवकाशम्, ईत्वमननवकाशम् । सर्वथा तदनवकाशत्वमिति काचित्कः पाठः । एवं चाऽऽदावीत्वे तदसिद्धिः ।

---

१ ग. °ये स्वस्या° ।

शम् । ईत्वे तु कृते न तस्य प्राप्तिरन्त्यहलोऽभावात् । अभ्यासविकारेषु बाध्यबाधकभावाभावेन च साधितम् । तस्मिंश्च सति लोपे कृते सामर्थ्याच्छिष्टस्यान्त्यस्येत्वमिति न दोषः ।

न च येन नाप्राप्तिन्यायेनापवादत्वमप्यस्य सुवचम् । तस्य चरितार्थविषयताया उक्तत्वात् । 'इको झल्' (१।२।९) इत्यत्र भाष्येऽपि ध्वनितमेतत् । तत्र हि 'अज्झन' (६।४।१६) इति दीर्घेण गुणोत्तरं फलाभावेनानवकाशत्वाद्गुणे बाधिते दीर्घोत्तरं गुणः स्यात् । दीर्घविधाने तु मिनोतेर्दीर्घे कृते 'सनि मीमा' (७।४।५४) इत्यत्र मीग्र-

उक्तपरिभाषायास्तु विषय एव नेति भावः । नन्वेवमपि तस्य स्थानिवत्त्वेन हलादिः शेषे लक्ष्यभेदेनाकारस्य पुनरीत्वे रूपसिद्धिरेवात आह—ईत्वे त्विति अन्त्येति । प्रकृताभिप्राय न तु तथा तत्र निवेशः । अल्विधित्वात्स्थानिवत्त्व न । णाभावात्तद्प्राप्तिश्चेति भावः । तथा च शेषपदलभ्यनिवृत्तिबाधकत्वे भाष्यस्य तात्पर्यमिति बोध्यम् । अनेन ततः प्राक्चारितार्थ्याभावः सूचितः । समकाल चारितार्थ्यं त्वसभावितमेवेति बोध्यम् । नन्वेवमजीगणदित्यस्य डोढौक्यत इत्यादेश्च कथं सिद्धिरत आह—अभ्यासेति । येन चेति । चस्त्वर्थे । पूर्ववैलक्षण्याय । अपवादाघटितपरिभाषान्तरेणेत्यर्थः । इद चाग्रे स्फुटी भविष्यति । यद्वा चो यथाश्रुतः साधितमित्यग्रे योज्य. पूर्वोक्तिसमुच्चायकः । यद्यपवादत्वमेवानवकाशत्वं तदुक्तपरिभाषयैव सिद्धे परिभाषान्तरस्वीकारेण तत्साधनोद्यसंगतिरेवेति भावः । नन्वेवमप्यादावीत्वे तदसिद्धिरेवात आह—तस्मिंश्चेति । परिभाषान्तरे तु सतीत्यर्थः । तत्र सत्यपि तस्मिन्यदीत्व स्यादादौ तदा तत्स्वीकारो व्यर्थ एवात आदौ लोपस्तदाह—लोपे इति । नन्वेव पूर्वोक्तरीत्येत्व न स्यादत आह—सामर्थ्यादिति । सूत्रारम्भसामर्थ्यादित्यर्थः । एकदेशविकृतन्यायेन गस्य गण.वेन तदन्त्याकारस्यान्त्यण्त्वादिति भावः । यद्वा तत्सामर्थ्यात्संभवतीति न्यायबाधेनोक्तार्थं विहाय गणसबन्ध्यभ्यासान्त्यस्येत्वमित्यर्थाङ्गीकारादिति भावः ।

तत्सूत्रोक्तकैयटोक्तिं खण्डयति—न चेति । त्वमपीति । अपिः सर्वथानवकाशत्वसमुच्चायकः । एवं चोक्तपूर्वपरिभाषयाऽपि निर्वाह इति भावः । तस्येति । उत्सर्गे कृतेऽपि चरितार्थस्यैवापवादत्वमिति भावः । उक्तार्थे मानान्तरमप्याह—इको झेति । भाष्येऽपीति पाठः । तत्र हीत्यस्योक्तमित्यत्रान्वयः । सूत्राभावे चिचीषतीत्यादाविति शेषः । सर्वथाऽनवकाशत्वाय सभावितमन्यथा कृते चारितार्थ्यं निराचष्टे—गुणोत्तरमिति । नन्वेवं दीर्घविधानमनर्थकं स्यादत आह—दीर्घेति । ग्रहणे, सतीति शेषः । न चास्य

१ ग. ङ. °वादत्वाय° । २ ग. घ. ङ. °नास° । ३ ग. ङ. तिरिति भा° ।

हर्णेन ग्रहणेऽर्थवत्तत्र पश्चात्प्राप्तगुणबाधनार्थमिको झलिति कित्त्वमित्युक्तम् । अन्यथाऽपवादत्वेन बाधे तद्विषय उत्सर्गाप्रवृत्तेर्भाष्यस्य सूत्रस्य चासंगतिरिति स्पष्टमेव ।

यत्तु काञ्चनीत्यादावपवादमयड्विषयेऽप्यण् भवति क्वचिदपवादविषयेऽपीति न्यायादिति तन्न । 'अण्कर्मणि च' (३ । ३ । १२) इति सूत्रस्थभाष्यविरोधात् । तत्र ह्यणः पुनर्वचनमपवादविषयेऽनिवृत्त्यर्थं

---

लाक्षणिकत्वम् । यत्र लक्षणानुसंधानेन शब्दरूपाश्रयण तत्र तत्प्रवृत्तावपि प्रयोगरूपाश्रयणे तदप्रवृत्तेः । अन्यथा गामादाग्रहणेष्वित्यस्यासंगत्यापत्तेः । मासाहवर्यान्मीशब्दांशेऽपि सा नेति तत्त्वम् । न चैवमप्यदधाति किन्तु एज्विषयत्वेनाऽऽत्वप्रवृत्त्या गामादेतिवचनान्माग्रहणेन ग्रहणादिस्भविष्यतीति तत्र मीग्रहणमेव व्यर्थमिति न तद्दीर्घविधानस्य फलमिति वाच्यम् । एवं सत्यनर्थकत्वेन तत्र गुणस्येव ज्ञीप्सतीत्यादौ णिलोपस्यापि बाधापत्तेः । अथ स्थानिवत्त्वात्तत्र कृते स दुर्वारः । बाधस्तु समानकालिकस्यैवेति चेत्तर्हि तथैव तत्प्रवृत्त्युत्तरं गुणोऽपि स्यात् । दीर्घत्व तु सामान्यग्रहणाविघातार्थमिति भावः । तत्र, चिर्जीषतीत्यादौ । एव चेत्यादि. । यद्वा तत्र तस्मिन्सति तस्य साफल्ये सति । प्रकृतमाह— **अन्यथेति** । सर्वथाऽनवकाशस्थलेऽपि येन नेतिन्यायेन बाधाङ्गीकार इत्यर्थः । प्रकृत इति शेष । अपवादत्वेन, तेनैव । तद्विषये, अपवादत्वेन बाधविषये । **अप्रवृत्तेरिति** । अस्य सिद्धान्तितत्वेनेति शेष. । भाष्यस्य, उक्तभाष्यस्य । सूत्रस्य, इको झलिति सूत्रस्य । तस्मात्सर्वथाऽनवकाशत्वविषये तदप्रवृत्तिरित्येव तत्त्वमिति भावः ।

क्वचिदपवादेति न्यायाविषयं सीरदेवाद्युक्त खण्डयति—**यत्त्विति** । आदिना प्रदीयतां दाशरथाय मैथिलीत्यादावपवादस्यात इञित्यस्य परिग्रहः । **मयडिति** । नित्यं वृद्धेतीति भावः । यत्तु वानुवृत्तेरिञभावे तस्यापत्यमित्यणा दाशरथायेति सिद्धमिति । तन्न । उत्सर्गापवादयोर्वैकल्पिकत्वेऽपवादाभाव उत्सर्गाप्रवृत्तेर्भाष्यसंमतत्वात् । यदपि तस्येदमित्यणा सिद्धमुभयमिति । तदपि न । दाशरथायेत्यस्य सिद्धावपि वृद्धाच्छस्यापवादतया काञ्चनीत्यस्यासिद्धेः । अत एव तदेवात्रोपात्त मूले । आदिग्राह्य तु तज्जातीयमेवेति पूर्वपक्ष्याशय. । यत्तु काञ्चनी वासयष्टिरित्यादावपवादमयड्विषयेऽनुदात्तादेश्चेत्यञ् भवतीति सीरदेवादयः । तन्न । काञ्चनशब्दस्य लित्स्वरेण नब्विषयस्येति वाऽऽद्युदात्तत्वादत आह— **अणिति** । प्रागुदीव्यत इतीति भावः । **अपवादेति** । कादिविषयेऽपीत्यर्थः । **अनिवृत्त्यर्थमिति** । अन्यथाऽपूर्वविधितः प्रतिप्रसवविधौ लाघवादुत्सर्गविषय एव तुमुन्ण्वुलाविति ण्वुल बाधित्वाऽण्स्यात्काण्डलावो व्रजतीत्यादाविति भावः । व्रजतीत्युक्त्या तदपि

---

१ ड. °ति । क्वचिदितिनि° । २ ग. ड. एवाण बाधि° ।

**गोदायो ब्रजतीत्याद्युक्तम्। काञ्चनीत्यादौ काञ्चनेन निर्मितेत्यर्थे शैषिकोऽण् बोध्यः।**

**अत्रेदं बोध्यम्। येन नाप्राप्त इत्यत्र येनेत्यस्य यदि स्वेतरेणेत्यर्थस्तदा स्वविषये स्वेतरद्यद्यत्प्राप्नोति तद्बाध्यं विध्यन्तराप्राप्तविषयाभावात्। इयमेव बाध्यसामान्यचिन्तेति व्यवह्रियते। अनवकाशत्वेन बाधेऽप्येषा वक्तुं शक्या यद्युदाहरणमस्ति। विनिगमनाविरहात्। यदि तु येनेत्यस्य**

---

फलं सूचितम्। तच्चापि नोक्तम्। यथा चोभयलाभस्तथा भाष्य एव स्पष्टम्। **उक्तमिति**। यदि[1] स न्याय उक्तार्थकः स्यात्तदा तेनैव तत्र सिद्धे भाष्यासंगतिः स्पष्टैव। न चैतदनित्यत्वपर[2] भाष्यम्। निर्मूलत्वात्फलाभावाच्च। तथैतस्या एवासत्त्वेन तथा वक्तुमशक्यत्वादिति भावः। एव सति काञ्चनीत्यस्यासाधुत्वं निराचष्टे—**काञ्चेति। शैषीति**। तस्य विधित्वस्यापि सत्त्वात्। वृद्धाच्छ इति तु न। घादीना जाताद्यर्थेष्वेव विशेषरूपेण तत्तत्सूत्रेण विधानात्तदन्यसग्रहार्थमेव तस्य तत्त्वाङ्गीकारात्। यद्यपि चक्षुषा गृह्यते चाक्षुषमित्यादावीवोपगोश्छात्रा औपगवा इत्यादौ शेष इति लक्षणेनाणादिसिद्धि[3]रेवं घापत्यादिचतुरर्थ्यन्तादर्थजातादन्यार्थस्य विशेष्यतया[4] भासमानस्य शेषत्वेन तद्रूपसर्वविशेषाणां सामान्यरूपेण प्रत्ययार्थत्व तस्येदमित्यत्रेदमित्यनेन बाधितमिति तस्येदमिति छः प्राप्नोति तथाऽपि तेनाणादीना पञ्चाना घादीना च सर्वेषा विधानेऽपि षष्ठ्यन्तास्संबन्धिनि विधानेन प्रकृते तथार्थाभावेन तस्याप्राप्ति.। गर्गाणा छात्रा वृद्धाच्छ इत्यादयस्तत्र तत्र ग्रन्था अपि तस्येदमित्याशयका एवेति न दोषः। अत एव शेष इति लक्षणेन छात्रार्थेऽणवद्धादन्यत्रैव। एवं च गर्गैर्निर्मितो[5] गार्ग इत्यत्रेवात्र छो न। यदा तु गर्गाणां छात्रा इतिवत्काञ्चनस्येयमिति विवक्षा तदा भवत्येव छ इति भावः।

पुरस्तादित्यादिन्यायस्वरूप वक्तु येनेत्यत्र कश्चित्सिद्धान्तमाह—**अत्रेदमिति। स्वेतरेणेति**। अपवादेतरत्वावच्छेदकावच्छिन्नेनेत्यर्थः। स्वमपवादः। **स्वेतरद्यद्यदिति**। सर्वत्र वीप्सितस्य तदा परामर्शान्नाग्रे वीप्सा। **विध्यन्तराप्राप्तेति**। बहुव्रीहिः समानाधिकरणः। आहिताग्न्यादित्वात्परनिपातः। प्राप्तेति कर्तरि क्तः। प्राप्तेति भावे क्तो व्यधिकरणबहुव्रीहिरिति कश्चित्। तदव्याप्तलक्ष्याभावादिति परमार्थः। **इयमेवेति**। स्वेतरसकलबाधिकेत्यर्थः। अपवादस्थल एतामुक्त्वा सर्वथाऽनवकाशस्थलेऽप्येनामाह—**अनवेति**। एषा, बाध्यसामान्यचिन्ता। **यद्युदाहरणमिति**। अनेन तदभाव. सूचितः। एवमग्रेऽपि। शक्यत्वे हेतुमाह—**विनीति। यदि त्विति**। तुर्वैलक्षण्यसूचक.। येनेत्यस्य

---

१ ग. ङ. यद्ययं न्या°। २ ग. °त्वज्ञापनप°। ३ ङ. °सिद्धेरे°। ४ घ. शेषत°। ५ ख. ङ. गर्गे निर्मि°। ६ ख. ग. घ. °बाधैवेत्य°।

लक्षणेनेत्यर्थः कार्येणेत्यर्थो वा तदा बाध्यविशेषचिन्ता । अनवकाशत्वेन बाधेऽप्येतद्बाधेन सार्थक्यमुत तद्बाधनेत्येवं विशेषचिन्ता संभवति यद्युदाहरणमिति ॥ ५८ ॥

तत्र कार्येणेत्यर्थे पररूपत्वावच्छिन्ने कार्य आरभ्यमाणाया वृद्धेस्तद्बाधकत्वे निर्णीते किंशास्त्रविहितस्येत्येवं तद्विशेषचिन्तायामाह—

**पुरस्तादपवादा अनन्तरान्विधीन्बाधन्ते नोत्तरान् ॥ ५९ ॥**

अवश्यं स्वपरस्मिन्बाधनीये प्रथमोपस्थितानन्तरबाधेन चारितार्थ्ये पश्चादुपस्थितस्य ततः परस्य बाधे मानाभावः । आकाङ्क्षाया निवृत्तेर्विप्रतिषेधशास्त्रबाधे मानाभावाच्चेत्येतस्य बीजम् ॥ ५९ ॥

'नासिकोदरौष्ठजङ्घादन्त' (४।१।५५) इत्यस्यौष्ठाद्यंशे

---

लक्षणेनेत्यर्थः कार्येणेत्यर्थो वेति पाठः । **लक्षणेनेति** । शास्त्रविशेषेणेत्यर्थः । प्राधान्यादाह—**कार्येणेति** । प्रागवदाह—**अनवेति** । सर्वथेत्यादिः । प्रागवदाह—**यद्युद्वेति** । इतिः समाप्तौ ॥ ५८ ॥

नन्वेव पक्षभेदेऽपि कथं पुरस्तादित्यादिसिद्धिरत आह—**तत्रेति** । तेषां त्रयाणामर्थानां मध्य इत्यर्थः । तत्र कार्येणेति पाठः । कार्येणेत्यस्य कार्यविशेषेणेत्यर्थेऽपि कार्यतावच्छेदको यो विशेषधर्मस्तदवच्छिन्नसर्वकार्यग्रहणसंभवादाह—**परेति** । अत एव लक्षणेनेत्यर्थे न संभव इति तत्त्यागः । वृद्धेः, एत्येधतीत्यस्याः । **तद्बाधेति** । पररूपबाधेत्यर्थः । निर्णीते, पूर्वन्यायेन । **तद्विशेषेति** । अवान्तरकार्यविशेषेत्यर्थः । एतेन येननेति न्यायेन यत्रोभयबाधकत्वं प्राप्तं तत्रैव वक्ष्यमाणन्यायानां व्यवस्थापकत्वमिति सूचितम् । अस्य न्यायस्य युक्तिसिद्धत्वमाह—**अवश्यमिति** । **स्वपरेति** । स्वेन स्वान्यस्मिन्नित्यर्थः । [illegible]**मेति** । यतोऽनन्तरमतः प्रथमोपस्थितमित्यर्थः । तथा च प्रत्यासत्तिन्यायमूलकत्वमस्य सूचितम् । एवमग्रेऽपि । अत एव तत्र चानुक्तिः । ततः, अनन्तरात् । **आकाङ्क्षाया इति** । बाधकस्य बाध्याकाङ्क्षाया इत्यर्थः । नन्वाकाङ्क्षा कल्प्यतामत आह—**विप्रेति** । एतस्य, न्यायस्य ॥ ५९ ॥

मध्येऽपवादा इति न्यायमवतारयति—**नासीति** । नासिकोदरयोरसंयोगोपधत्वादाह—**ओष्ठाद्यंश इति** । आदिना जङ्घादिपरिग्रहः । येन कार्ये[illegible]थोनिर्धारणेनैव प्राग्व-

---

१ ख. घ. °यैति । २ ग. °ति भावः । वृ° ।

ङीप्निषेधत्वावच्छिन्नबाधकत्वे निर्णीते किंविहितस्येत्याकाङ्क्षाया-
माह—

मध्येऽपवादाः पूर्वान्विधीन्बाधन्ते नोत्तरान् ॥ ६० ॥

तेनौष्ठादिषु पञ्चस्वसंयोगोपधाद्विति प्रतिषेध एव बाध्यते न तु सहनञ्विद्यमानलक्षण इति ' नासिकोदर ' ( ४ । १ । ५५ ) इत्यत्र भाष्ये स्पष्टम् । पूर्वोपस्थितबाधेन नैराकाङ्क्ष्यमस्या बीजम् ॥ ६० ॥

ननु ' वा छन्दसि ' ( ३ । ४ । ८८ ) इत्यनेन ' सेर्ह्यपिच्च ' ( ३ । ४ । ८७ ) इत्यनन्तरस्यापित्वस्येव हेरपि विकल्पः स्यात् । तथा ' नेटि ' ( ७ । २ । ४ ) इति निषेधोऽनन्तरहलन्तलक्षणाया इव सिचिवृद्धिर्मृजिवृध्योरपि स्यात् । अत उक्तन्यायमूलकमेवाऽऽह—

अनन्तरस्य विधिर्वा भवति प्रतिषेधो वेति ॥ ६१ ॥

अत एव ' संख्याव्ययादेः ' ( ४ । १ । २६ ) इति ङीब्ग्रहणं चारितार्थम् । तद्ध्यनन्तरस्य ङीषो विध्यभावाय । ' न क्तिचि ' ( ६।४।३९ ) इति सूत्रे दीर्घग्रहणं च चरितार्थम् । तद्ध्यनन्तरस्य ' अनुदात्तोपदेश ' ( ६ । ४ । ३७ ) इत्यस्यैव निषेधाभावाय । मध्येऽपवाद-

---

ह्याह—ङीप्निषेधेति । तेनौष्ठेति । न्यायाङ्गीकारेणेत्यर्थः । उक्तसूत्रेणेत्यर्थ इति कश्चित् । एवञ्चास्यै स्पष्टार्थमाह—न त्विति । अत्र मानमाह—पूर्वोपेति । पूर्वानुभवजन्यसंस्कारजन्यस्मृतिविषयेत्यर्थः । उत्तरस्य त्वननुभवात्स्मृत्ययोग इति भावः । बाधेनेति । अस्य चारितार्थ्ये इति शेषः । बीजान्तरमपि प्राग्वद्बोध्यम् । अस्याः, न्यायरूपपरिभाषायाः । एतेनानयोर्ज्ञापकं वदन्तः सीरदेवादयः परास्ताः । युक्त्यैव सिद्धार्थेन चारितार्थ्ये ज्ञापकत्वासंभवात् । अ[illegible]य इत्यत्रस्यकैयटविरोधापत्तेश्चेत्यनुपदमेव स्फुटी भविष्यति ॥ ६० ॥

विधिमुक्त्वा निषेधमाह—तथेति । यद्यपि मृजेर्वृद्ध्यंशे पूर्वोक्तमध्येऽपेति न्यायेन निर्वाहस्तथाऽपि सिचि वृद्ध्यर्थमावश्यकेनानेनैव तत्रापि सिद्धौ तदाश्रयणमफलमिति ध्वनयन्नाह—मृजिवृद्ध्योरपीति । उक्तन्यायेति । अनन्तरप्रथमोपस्थितबाधेन साफल्ये व्यवहितपश्चादुपस्थितबाधे मानाभाव इत्येतत्प्रथमन्यायमूलप्रत्यासत्तिन्यायमूलकमेवेत्यर्थः । एवेन ज्ञापकमूलकत्वनिरासः । अत एव, न्यायाङ्गीकारादेव । अस्य चरितार्थद्वयेऽन्वयः । अत एव चसंगतिः । तत्र विध्यंशफलमाह—संख्येति । निषेधांशफलमाह—न क्तिचीति । त्यस्यैवेति । एवेनानुनासिकस्य क्विझलोरित्यस्य निरासः । एतेन तयो-

---

१ क. पूर्वभ° ।

न्यायाद्यपेक्षयाऽनन्तरस्येति न्यायः प्रबल इति 'अष्टाभ्यः' (७।१।२१) इति सूत्रे कैयटः । प्रत्यासत्तिमूलकोऽयम् ।

लक्ष्यानुरोधाच्च व्यवस्थेत्यपि पक्षान्तरम् । तत्र तत्र क्वचित्स्वरितत्व-प्रतिज्ञानात्सामर्थ्येन वा बाध्यतेऽयं न्यायः । यथा 'टिड्ढा' (४।१।१५) इति सूत्रेण डापा व्यवहितस्यापि ङीपो विधिः । 'न षट्' (४।१।१०) इत्यादिना द्वयोरपि टाब्ङीपोः प्रतिषेधः । इयं च 'शि सर्व-नामस्थानम्' (१।१।४२) इत्यादौ भाष्ये स्पष्टेत्यन्यत्र विस्तरः ॥६१॥

---

स्तयोरेतज्ज्ञापकत्व वर्णयन्त· सीरदेवादयः परास्ताः । न्यायादीति । आदिना न्याय.व-शेषसंग्रहः । कैयट इति । यो वा तस्मादनन्तर इति भाष्यव्याख्यावसर इत्यादिः । अत्र केचित् । तैरथ न्यायमूलकत्वमस्य ज्ञापकमूलकत्वामिति तद्भाव. । कैयट इत्यनेनारुचिः सूचिता, एतद्वृत्तस्यापि ज्ञापकसम्भवेनार्धजरतीयानौचित्यरूपा । तत्राऽऽद्ये ज्ञापक पारिभा-षाख्यायामित्यत्र सर्वग्रहणम् । तद्धि एरजित्यस्यैव बाधो न किंतु ऋदोरबित्यस्यापि द्वौ काराविंत्यादावित्येवमर्थम् । द्वितीये बहुव्रीहेरूधस इत्यस्य सूत्रस्यान उपधालोपिन इत्यत्रानुवृत्त्यर्थं कृतं वृत्तिकारादिसमतं स्वरितत्वप्रतिज्ञानम् । तेन घटोध्नीत्यादौ बहुव्रीहे-रिति ङीषेव न त्वन उपधेति परो ङीप् । अत एव पक्षान्तरमाह—प्रत्येति । प्रत्यास-त्तिरुक्ता । अयम्, अनन्तरेति न्यायः ।

नन्वेवं तुल्यत्वात्प्रबलदुर्बलभावाभावे कथं व्यवस्थाऽत आह—लक्ष्येति । चस्त्वर्थे । तत्र तत्र, बहुषु सूत्रेषु कैयटादौ । यद्वैकं तत्रेति तत्सूत्रस्थकैयट इत्यर्थक पूर्वान्वयि । अपरमुत्तरान्वयि । उक्तन्यायत्रयमध्य इति तदर्थः । तत्राऽऽद्यस्य विधानुपयोगमाह—यथा टिदिति । अपिना टाबृचीति टापा व्यवहितपरामर्शः । टाब्द्वयस्यास्वरितत्वादेव नानुवृत्तिरित्याशयेनाऽऽह—ङीप इति । अन्त्यस्य निषेधे तमाह—न षडिति । अनन्तरटाबृचीति निषेधे सूत्रवैयर्थ्यापत्त्या प्रबलया ङीपः स्वरितत्वेऽपि विनिगमनाविरहा-त्संभवात्प्रागुक्तरीत्या चोभयोर्निषेध आद्ययोरिति भावः । एवं कालाध्वनोरिति द्वितीया-विधिर्हन्तेरत्पूर्वस्येति योगविभागसामर्थ्यात्सर्वनिषेध इत्यप्युदाहरणे बोध्ये क्रमेण । एतदपेक्षया येन नाप्राप्तिन्यायः प्रबल., अस्यँ पाठलक्ष्यविशेषोभयसापेक्षत्वेन बहिरङ्गत्वात् । तदाह—अन्यत्रेति । उद्योतादावित्यर्थः ॥ ६१ ॥

---

१ ग. ङ. °ना पुरस्तादपवादन्यायसं° । २ ग. ङ. इति शेषः । अ° । ३ ग. ङ. तयोर्न्याय° । ४ ग. ङ. °स्तयोरपि । ५ ख. घ. °वित्ये° । ६ ख. घ. °यि । केतिसूत्रादिभाष्यविरोधापत्तिरतः प्रागुक्तत्वमेवाऽऽह तत्रेति । प्रत्यासत्तिमूलकत्वे सतीति तदर्थः । त° । ७ ग. °इव ङ° । ८ ग. °शेषपाठोभ° ।

ननु दधतीत्यादावन्तरङ्गत्वादन्तादेशेऽल्विधौ स्थानिवत्त्वाभावादद्भावेशो न स्यादिति तद्वैयर्थ्यापत्तिरत आह—

पूर्वं ह्यपवादा अभिनिविशन्ते पश्चादुत्सर्गाः ॥ ६२ ॥

लक्षणैकचक्षुष्को ह्यपवादविषयं पर्यालोच्य तद्विषयत्वाभावनिश्चय उत्सर्गेण तत्तल्लक्ष्यं संस्करोति । अन्यथा विकल्पापत्तिरित्यर्थः । अभिनिविशन्त इत्यस्य बुद्ध्यारूढा भवन्तीत्यर्थः । 'अपवादो यद्यन्यत्र चरितार्थः' ( प० ६५ ) इति न्यायस्य तु नात्र प्राप्तिरन्तादेशाप्राप्तिविषये चारितार्थ्याभावात् ॥ ६२ ॥

लक्ष्यैकचक्षुष्कस्तु तच्छास्त्रपर्यालोचनं विनाऽप्यपवादविषयं परित्य-

---

अन्तरङ्गत्वात्, पूर्वोपस्थितनिमित्तकत्वात्पूर्वस्थितनिमित्तकत्वादल्पनिमित्तकत्वादपरनिमित्तकत्वाच्च । द्विस्त्वाद्विकरणाचेत्यादिः । यद्वा पञ्चम्यन्तनिमित्ताभावेन तत्त्वम् । एवं च द्वयोः समकालप्राप्तावपि न क्षतिः । एतेन जक्षतीत्यादौ समकालप्राप्त्या तद्बाधेन तत्साफल्ये दधतीत्यादावपवादोऽपीति न्यायेन स नैव स्यादित्यपास्तम् । कार्यकालपक्ष आद्यमतेऽप्यदोषाच्च । प्रागुक्तरीत्यैव तदभावे सिद्धे न्यायानुपयोगाच्च । तस्य युगपत्प्राप्तिविषयत्वेन प्रवृत्त्यभावाच्चेति भावः । अत एवाऽऽह—तद्वैयर्थ्येति । अदभ्यस्तादिति सूत्रवैयर्थ्येत्यर्थः । अद्ग्रहणस्योत्तरार्थत्वेऽपीह वैयर्थ्यमेवेति भावः । एतेन परिभाषायां ज्ञापकं सर्वथाऽनवकाशविषयत्वं च सूचितम् । पूर्वं ह्यपवादा इति । हिर्निश्चये । अपवादशास्त्राणीत्यर्थः । उत्सर्गा इति । प्रवर्तन्त इति शेषः ।

इदं लक्षणैकचक्षुष्काभिप्रायमित्याह—लक्षणैकचक्षुष्को ह्यपेति । अन्यथा, उद्देश्यतावच्छेदकावच्छिन्ने सर्वत्रोत्सर्गकृतसंस्कारे । विकल्पेति । शास्त्रद्वयप्रामाण्यात् । सा च नेष्टेति भावः । ननु पर्यालोच्येत्याद्यर्थलाभः कुतः । आदौ तत्प्रवृत्तेरेव लाभात् । किं च पूर्वमपवादप्रवृत्तिर्यत्र संभवति तत्र सा सर्वथाऽनवकाशत्वेनैव सिद्धा । अत एव पश्चादुत्सर्गप्रवृत्तिरपि क्वचिदपवादेति प्रागुक्तन्यायेन प्राप्तिसत्त्वे सिद्धेति तथार्थकमिदं व्यर्थम् । किं च दधतीत्यादावसंभवोऽनिर्वाहश्चात आह—अभीति । एवं च तं पर्यालोच्य तद्विषयत्वाभावेन निर्णीते विषये उत्सर्गो बुद्धिविषयः सल्लँक्ष्यं संस्करोति । एवं चोत्सर्गप्रवृत्तौ तज्ज्ञानमेव कारणमिति भावः । नात्र, दधतीत्यादौ । भावादिति । तस्य युगपत्प्राप्तिविषयत्वाच्चेत्यपि बोध्यम् ॥ ६२ ॥

द्वितीयामवतारयति—लक्ष्यैकेति । अत एव तुः प्रयुक्तः । तच्छास्त्रेति । अपवादशास्त्रेत्यर्थः । ननु लक्ष्यैकचक्षुष्कस्य लक्षणापेक्षैव नेति कथमुत्सर्गस्यापि प्रवृत्तिरत

---

१ ग. °भा, तद्दे° । २ ग. छ. °स्कारबुद्धौ । वि° ।

ज्योत्सर्गेण लक्ष्यं संस्करोति। तस्यापि शास्त्रप्रक्रियास्मरणपूर्वकप्रयोग एव धर्मोत्पत्तेः। तदाह—

**प्रकल्प्य वाऽपवादविषयं तत उत्सर्गोऽभिनिविशते ॥ ६३ ॥**

ततं इत्यस्यापवादशास्त्रपर्यालोचनात्प्रागपीत्यर्थः। प्रकल्प्येत्यस्य परित्यज्येत्यर्थः ॥ ६३ ॥

अत एव प्रातिपदिकार्थसूत्रे भाष्य इदं द्वयमप्युक्त्वा न कदाचित्तावदुत्सर्गो भवत्यपवादं तावत्प्रतीक्षत इत्यर्थकमुक्तम्। एतन्मूलकमेव नवीनाः पठन्ति—

**उपसंजनिष्यमाणनिमित्तोऽप्यपवाद उपसंजातनिमित्तमप्युत्सर्गं बाधत इति ॥ ६४ ॥**

---

आह—**तस्यापीति**। लक्ष्यैकचक्षुष्कस्यापीत्यर्थः। अपिरुक्तसमुच्चायकः। योग एवेति। एवेन तदन्यथाप्रयोगे धर्मोत्पत्तिनिरासः। स्पष्टं चेदं पस्पशाह्निके। इदमपि तत्र गमकमिति भावः। एतेनापवादेनोत्सर्गस्य बाधाविशेषात्पक्षद्वयोपन्यासो व्यर्थ इत्यपास्तम्। प्रकल्प्य चेति पाठः। वाशब्दः पक्षविकल्पे। यथाक्रम प्रकल्प्येत्यस्य बुध्यारूढं कृत्वा ततस्तदनन्तर स प्रवर्तत इत्यर्थे पूर्वतो भेदो न स्यात्। इष्टापत्तौ वाऽसङ्गतिर्वक्ष्यमाणदोषश्च। अतो व्युत्क्रमेण प्रागपीति शेषपूरणेन व्याचष्टे—**तत इति**। तस्य प्रक्रान्तपरामर्शकत्वादाह—**अपवादेति**। अत एवाऽऽह—**परीति**। अभिनिविशत इत्यस्य प्रवर्तत इत्यर्थः। एव चापवादशास्त्रविषय स्वयमेव त्यक्त्वा देवदत्तादिरुत्सर्गेण लक्ष्यं संस्करोतीत्यर्थः। प्रागेवोत्सर्गस्यापवादविषयान्यविषयं निर्णयतीति यावत्। तथा च पूर्वमते सर्वत्र प्राप्तस्योत्सर्गस्य विषयविशेषेऽपवादेन बुध्यारूढेन निवृत्तिरत्र तु प्रागेव तथेति भेद इति फलितम् ॥ ६३ ॥

**अत एव,** द्वितीयस्योक्तार्थकत्वेन प्रकारभेदेऽप्युक्तरीत्या द्वयोः फलितैक्यादेव। तावत्, आदौ। प्रतीक्षते, अपवादविषयत्वं यथाकथंचिज्ज्ञात्वा तत्रोत्सर्गबुद्धिर्निवर्तते ततोऽन्यत्र सा भवतीति तात्पर्यार्थः। **इत्यर्थकमिति**। न तावदत्र कदाचित्तिडादेशो भवति। अपवादौ तावच्छतृशानचौ प्रतीक्षत इतीति भावः। यदि द्वयोर्न्याययोर्भिन्नार्थत्वं स्यात्तर्ह्युपसहारद्वय कुर्यात्। तस्मादुक्त एवार्थ इति भावः। **एतन्मूलकमेवेति**। एतदुभयफलितमूलकमेवेत्यर्थः। एवेन मूलान्तरनिरासः। ऋण्यसमतत्वात्। अत एवाऽऽह—**नवीना इति**। दीक्षितादय इत्यर्थः। दधतीत्यत्र तन्नियामकत्वेनेति शेषः। द्वितीय-

---

१ ष. °ते तेनान्य°।

यत्त्वभ्यस्तसंज्ञासूत्रे कैयटेन प्रकल्प्य वेति प्रतीकमुपादाय यथा 'न संप्रसारणे' (६ । १ । ३७) इति परस्य यणः पूर्वं संप्रसारणं पूर्वस्य तु तन्निमित्तः प्रतिषेध इत्युक्तं तत्तु तत उत्सर्ग इत्याद्यक्षराननुगुणम्। यत्त्वपवादवाक्यार्थं विना नोत्सर्गवाक्यार्थ इति तदर्थ इति तन्न। अभिनिविशन्तेऽपवादविषयमित्यादिपदस्वारस्यभङ्गापत्तेः। पदजन्यपदार्थोपस्थितौ वाक्यार्थबोधाभावे कारणाभावाच्च। यत्र त्वपवादो निषिद्धस्तत्रापवादविषयेऽप्युत्सर्गः प्रवर्तत एव यथा वृक्षावित्यत्र 'नाऽऽदिचि' (६ । १ । १०४) इति पूर्वसवर्णदीर्घनिषेधादप्रवर्तमानस्य वृद्धिबाधकत्वाभावाद्वृद्धिः प्रवर्तते।

अत एव 'तौ सत्' (३ । २ । १२७) इत्यादि संगच्छते। अत एव निर्देशाद्भ्रष्टावसरन्यायस्यात्र शास्त्रे नाऽऽश्रयणम्। ध्वनितं चेदम्

---

वचनस्य तदेवार्थान्तरं खण्डयति—यत्त्विति। अभ्यस्तेति। उभे अभ्यस्तमिति सूत्र इत्यर्थः। यथेति। अस्यैतद्विषयभूतमित्यादिः। इतीति। इति बुद्धिस्थे सतीत्यर्थः। संप्रसारणमित्यस्य प्रवर्तत इति शेषः। इत्याद्यीति। आदिना वा प्रकल्प्येत्यादिपरिग्रहः। किंच न संप्रसारण इत्यत्र ज्ञापकादयमर्थः साधितो भगवता। यदि न्यायविषयस्तर्हि भाष्यासंगतिरेवेति तद्भाष्यविरुद्धमित्यपि बोध्यम्। तदर्थ इति। वचनद्वयार्थ इत्यर्थः। पूर्वशेषस्यापि भाष्यसमतत्वान्नासगतिः। क्रमेण बाधकमाह—अभीति। शन्त इति पाठः। तेन हि लक्ष्यसंस्कारकवाक्यार्थबोधाभावेऽपि सामान्यतः सोऽस्तीति सूच्यते। अन्यथैवमुक्तिरयुक्ता स्यात्तथैव वदेदिति भावः। आदिना ततोऽभिनिविशत इत्यस्य सग्रहः। ननु पदास्वारस्येऽपि तात्पर्यार्थ एवास्तु सोऽत आह—पदेति। आकाङ्क्षादिसत्त्व इति शेषः। अत्रोभयत्रापवादविषयता फलोपहिता ग्राह्याऽन्यथाऽनिष्टापत्तेः। तावित्यादिनिर्देशासांगत्यापत्तेश्च। अप्रवर्त्तमानस्य बाधकत्वासंभवाच्च। तस्माद्बाधकाबाधितापवादविषयता यत्र तत्र नोत्सर्गप्रवृत्तिरन्यत्र तु भवत्येवेति फलितम्। तदाह—यत्र त्विति। विषयेऽपीति। अपवादविषयत्वयोग्येऽपीत्यर्थः। अपिः प्रागुक्ततद्विषयपरामर्शकः। एवो निवृत्तिव्यवच्छेदे। अप्रवर्तमानस्य, पूर्वसवर्णदीर्घस्य।

न्यायसिद्धेऽर्थे ज्ञापकमप्याह—अत एवेति। तथार्थाङ्गीकारादेवेत्यर्थः। ननु यस्यावसरो भ्रष्टस्तन्नेति न्यायेन वृद्धिर्नैव स्यादत आह—अत एवेति। तावित्यस्मादेव निर्देशादित्यर्थः। अत्र, पाणिनीये। यावता विनेति न्यायादिति भावः। सूत्रारूढेऽर्थे भाष्यमपि प्रमाणयति—ध्वनितमिति। तत्र हि यद्यपीको गुणेति सूत्रे वृद्धिग्रह-

---

१ ख. घ. नन्वेवमपि य॰।

'इको गुण' (१।१।३) इति सूत्रे भाष्य इति भाष्यप्रदीपोद्द्योते निरूपितम्।

अत्र देवदत्तस्य हन्तरि हते देवदत्तस्योन्मज्जनं नेति न्यायस्य विषय एव नास्ति। हते देवदत्त उन्मज्जनं न। देवदत्तहननोद्यतस्य तु हनने भवत्येवोन्मज्जनम्। प्रकृतेऽपि न पूर्वसवर्णदीर्घेण वृद्धेर्हननम्। किं तु हननोद्यमसजातीयं प्रसक्तिमात्रम्। प्रसक्तस्यैव निषेधात्। प्रतिपदोक्तत्व-

---

णाभावेऽभैत्सीदित्यादौ हलन्तलक्षणाया बाधकत्वेऽप्यकोषीदित्यादौ प्राप्तायाः सिचि वृद्धिरिति वृद्धेर्बाध्यसामान्यचिन्तापक्षे नेटीति निषेधमुक्त्वा विशेषचिन्तापक्षे सिचि वृद्धिरित्यस्या बाधिकाया हलन्तलक्षणाया नेटीति निषेधादपवादे निषिद्ध उत्सर्गो नेति समाधानदार्ढ्याय नान्तःपादमिति पाठे सुजाते अश्वसूनृते इत्यत्र पूर्वरूपनिषेधेऽयादयोऽपि नेति दृष्टान्ततयोक्तं तत्र न्यायस्य साधकमेव। तथाऽपि द्वितीयपक्षः प्रौढ्युक्तिः। न्यायाभावात्। अत एव सिच्यन्तरङ्गाभावे दत्तस्यातो हलादेरित्यत्राद्ग्रहणस्य ज्ञापकस्य खण्डकनैतदस्ति ज्ञापकमित्यादि तदग्रिमभाष्यसंगतिः। अन्यथा न्यकुटीदित्यादावन्तरङ्गतया वृद्धिबाधकगुणस्य निषेधे तेन न्यायेन वृद्ध्यभावे सिद्धे तदसंगतिः स्पष्टैव। अत एव नान्तःपादमिति सूत्र एङोऽतीत्यनुवर्त्य एङोऽति यद्यत्प्राप्नोति तस्य निषेध इत्यर्थमाश्रित्य तस्य सर्वनिषेधकत्वमुक्तम्। तस्मात्तदभाव एवेति बोध्यम्। तदाह—**निरूपितमिति**।

उक्तनिर्देशाद्देवदत्तहन्तृहतन्यायोऽनित्य इति कस्यचिदुक्तिं खण्डयति—**अत्रेति**। वृक्षावित्यादावित्यर्थः। हेतुं वक्तुमभावज्ञाने प्रतियोगिज्ञानस्य कारणत्वात्तद्विषयत्वज्ञानस्याऽऽदावावश्यकत्वात्तस्य च तत्स्वरूपज्ञानाधीनत्वादादौ तच्छरीरमाह—**हत इति**। **दत्त इति**। तद्धन्तरि हतेऽपीति शेषः। उन्मज्जन नेत्यस्य देवदत्तस्येति शेषः। हतत्वस्य तद्धन्तर्यारोपे तु सुतरां तस्य नोन्मज्जनमिति भावः। **हननेति**। तदर्थमुद्यतेत्यर्थः। **उन्मज्जनम्**। देवदत्तस्येति शेषः। तदविषयत्वे हेतुमाह—**प्रकृतेऽपीति**। वृक्षावित्यादावित्यर्थः। अपिर्ह्यर्थे। प्रसक्तिमात्र, प्रसङ्गमात्रम्। मात्रपदेन हननस्थानीयलक्ष्यनिष्ठप्रवृत्तिव्यावृत्तिः। तत्र हेतुमाह—**प्रसेति**। एवेन जातव्यावृत्तिः। ननु प्रतिपदोक्तस्य द्विविधमपि बाधकत्व कथम्। उक्तेष्वपरिगणनात्। अन्तर्भाव इति चेत्क। अत आह—**प्रतीति**। पूर्वसमुच्चायकोऽपि। निरवेत्यस्य यथाकथंचिदित्यादिः। तेनोभयसंग्रहः। अत्रापि बाधः प्राग्वत्। तत्राऽऽद्यस्योक्तन्यायमूलकत्वेन सिद्धत्वात्तदुपेक्ष्य द्वितीये मान-

---

१ क. ङ. °क्त न्या°। २ क. ङ. °भाव एतस्या°। ३ घ. ङ. °ण्डक नै°। ४ क. °शादेव देव। ५ ग. घ. °ति। तावि°।

मपि निरवकाशत्वे सत्येव बाधप्रयोजकम् । स्पष्टं चेदं 'शेषाद्विभाषा' (५।४।१५४) इति सूत्रे भाष्ये । तत्र हि शेषग्रहणमनर्थकं ये प्रतिपदं विधीयन्ते ते बाधका भविष्यन्तीत्याशङ्क्यानवकाशा हि विधयो बाधका भवन्ति समासान्ताश्च कबभावे सावकाशा इत्युक्तम् ।

क्वचिदनवकाशत्वाभावेऽपि परनित्यादिसमवधाने शीघ्रोपस्थितिकत्वेन पूर्वप्रवृत्तिप्रयोजकं बलवत्त्वं प्रतिपदविधित्वेनापि । परनित्यान्तरङ्गप्रतिपदविधयो विरोधिसंनिपाते तेषां मिथः प्रसङ्गे परबलीयस्त्वमिति 'प्रत्ययोत्तरपदयोश्च' (७।२।९८) इति सूत्रे कैयटेन पाठात् । अत एव रम इत्यादौ प्रतिपदोक्तत्वात्पूर्वमेत्व आकारप्रश्लेषाद्धल्ङ्यादिलोपो न प्राप्नोतीत्याशङ्क्य 'एङ्ह्रस्वात्' (६।१।६९)

---

माह—स्पष्टमिति । शेषेति । समासान्तापेक्षयैव शेषत्वमिति भावः । यद्यपि तत्र चारितार्थ्ये सति तदप्राप्तियोग्येऽचारितार्थ्यरूपमनवकाशत्वमस्ति येन नेतिन्यायविषयभूतमिति भाष्यासंगतिरेव तथाऽप्यस्मादेव भाष्यात्तन्न्यायाविषयोऽयमिति तथाऽत्र न गृह्यत इति सर्वथानवकाशप्रतिपदोक्तस्यैव बाधकत्वमिति सर्वथाऽनवकाश एवास्यान्तर्भाव इति सार्वत्रिकोऽयमर्थ इति भावः[1] । यत्र तु प्रतिपदविधित्वे सति सर्वथाऽनवकाशत्वं न किंतु तादृश[2] तत्र येन नेति न्यायेनैव बाधः । अत एव प्रतिज्ञाया निरवेति बाधेति च सामान्येनोक्तम् । इदं च परनित्याद्यसमवधान उक्तम् ।

अथ तत्समवधानेऽपि प्रागुक्तदार्ढ्यायाऽऽह—क्वचिदिति । शास्त्रस्य तदभावेऽपि तत्समवधाने प्रतिपदविधित्वेन यच्छीघ्रोपस्थितिकत्व तेन पूर्वप्रवृत्तिप्रयोजक बलवत्त्वमप्यङ्गीक्रियत इत्यर्थः । तत्र मानमाह—परेति । विरुद्धयोर्द्वयोः शास्त्रयोः संनिपात एकलक्ष्ये प्रवृत्तौ पूर्वादितो यत्पराद्यन्यतम तद्भवति । तेषा, परादीना मध्ये । मिथः, परनित्याद्योर्युगपत्प्रसङ्ग उपात्तक्रमेण तद्बलवदित्यर्थः । एव च वाक्यद्वयमिदमिति विषय इति प्रथमोपपत्तिर्विरोधीत्यस्य साफल्य च । यत्तु विरोधिसंनिपात इत्यनेन भिन्नविषयागमादेशयोर्नापवादत्वमिति सूचितमिति केचित् । तन्न । नुम्नुटोर्बाध्यबाधकत्वानापत्तेः[3] । नित्यात्सुब्लुकोऽन्तरङ्गा आदेशा इति प्रत्ययोत्तेति सूत्र व्यर्थमिति ज्ञापक परिभाषाया इत्यत्र[4] तेनैतदुक्तम् । इति, इत्यस्य । अत एव कैयटेनेतितृतीयासंगतिरुभयेति नियमप्राप्ते । नन्वेवमपि तद्भाष्यात्प्रतिपदविधित्वस्य तत्त्व न लब्धमिति तदंशे कैयटासंगतिरेवेति कथमुक्तार्थसिद्धिरत आह—अत एवेति । उक्तार्थाङ्गीकारादेवेत्यर्थः । एत्वे, सबुद्धौ चेत्यनेन ।

---

१ क. ङ. °वः । अत्र । २ ङ. °शं यत्र । ३ क. पुस्तके °टोरपि बाध्य° इति पाठान्तरम् । ४ ग. ङ. °त्र तार्हि ते° ।

इति लोपेन समाहितम् ॥ ६४ ॥

नन्वयज इन्द्रमित्यादावन्तरङ्गस्यापि गुणस्यापवादेन सवर्णदीर्घेण बाधः स्यादत आह—

**अपवादो यद्यन्यत्र चरितार्थस्तर्ह्यन्तरङ्गेण बाध्यते ॥ ६५ ॥**

निरवकाशत्वरूपस्य बाधकत्वबीजस्याभावात् । एवं च प्रकृतेऽन्तरङ्गेण गुणेन सवर्णदीर्घः समानाश्रये चरितार्थो यण्गुणयोरपवादोऽपि बाध्यते । पूर्वोपस्थितनिमित्तकत्वरूपान्तरङ्गत्वविषय इदम् । यत्त्वागमादेशयोर्न बाध्यबाधकभावो भिन्नफलत्वादत एव ब्राह्मणेभ्यो दधि दीयतां कम्बलः कौण्डिन्यायेत्यादौ कम्बलेन न दधिदानबाध इति 'च्छ्वोः' ( ६ । ४ । १९ ) इति सूत्रे कैयटस्तन्न । अपवादो नुग्दीर्घत्वस्येति 'दीर्घोऽकितः' ( ७ । ४ । ८३ ) इतिसूत्रस्थभाष्यविरोधात् ॥ ६५ ॥

---

तत्र सबुद्धिपदोपादानात् । **समाहितमिति** । अन्यथा शङ्ककस्याज्ञानेऽपि सिद्धान्ती तथैव वदेदिति तदनुक्त्या तथोक्त्यैतदर्थस्य तदभिमतत्वमिति भावः ॥ ६४ ॥

**अन्तरङ्गस्य,** पूर्वोपस्थितनिमित्तकस्य । **अपवेति** । अनेन पूर्वसगतिः सूचिता । स्वविषये चारितार्थ्येन वैपरीत्यमित्याह—**यद्यन्यत्रेति** । अत्र बीजमाह—**निरवेति** । अयं भावः—दण्डाग्र श्रीश इत्यादौ समानस्थानिनिमित्तके सर्वथाऽनवकाशत्वेन यण्गुणयोः प्राग्दीर्घे सति तत्र तयोरप्राप्तावपि भिन्नस्थानिनिमित्तकेऽयज इ इन्द्रमित्यादौ गुणदीर्घयोः प्राप्तौ दीर्घस्य सर्वथानवकाशत्वाभावेऽपि तत्र चारितार्थ्ये सति तदप्राप्तियोग्येऽचारितार्थ्यरूपानवकाशत्वसत्त्वाद्येन नेति न्यायेन प्राप्तबाधो न । तुल्यस्थानिनिमित्तकयोरेव तेन बाध्यबाधकभावस्य मिथो विप्रतिषेधसूत्रस्थभाष्यादङ्गीकारादिति । तदाह—**एवं चेति** । तादृशबीजाभावे चेत्यर्थः । प्रकृते, अयज इ इन्द्रमित्यादौ । **समानेति** । तयोरपवादोऽपि यतस्तत्र समानाश्रये चरितार्थोऽत इत्यर्थः । उक्तहेतोरेवाऽऽह—**पूर्वोपेति** । रूपान्तरङ्गत्वविषय इति पाठः । एव च यत्र स्थानिनिमित्तैक्ये[1]ऽन्तरङ्गत्वमन्यादृशं तत्र तस्यापवादेनैव बाध इति भाव. । **यत्त्विति** । अन्यथोठाष्टित्वपक्षे नाप्राप्ते लोपे वस्याऽऽरभ्यमाण ऊडागमोऽपवादत्वाद्बाधकः स्यादिति वलोपाभावे रूपासिद्धिरिति वलोपेन तत्साधकभाष्यासगतिः स्यादिति भावः । भिन्नेति । लोपो हि स्थानिनिवृत्तिफलक ऊठ्तु न तन्निवृत्तिफलक इति भावः । एव च फलमत्रावान्तर[2] शास्त्रविहितरूप ग्राह्य न तु प्रयोगरूपम् । अन्यथैतदसगतिः स्पष्टैव । अत एव दृष्टान्तसगतिरपि । अन्यथा तत्रापि शरीररक्षणरूपफलस्य तुल्यत्वात्तदसगतिः स्पष्टैव । तदाह—**अत एवेति** । भिन्नफलत्वे तत्त्वानङ्गीकारादेवेत्यर्थः । दधि,

---

1 ख, घ, 'त्तैक्यान्त°' । 2 ख. ग. घ. °न्तररूप ।

नन्वजीगणदित्यादौ गणेरीत्वं निरवकाशत्वाद्धलादिःशेषं बाधेत तत्राऽऽह—

अभ्यासविकारेषु बाध्यबाधकभावो नास्ति ॥ ६६ ॥

'दीर्घोऽकितः' ( ७ । ४ । ८३ ) इत्यकिद्ग्रहणमस्या ज्ञापकम् । अन्यथा यंयम्यत इत्यत्र नुकि कृतेऽनजन्तत्वाद्दीर्घाप्राप्तौ तद्वैयर्थ्यं स्पष्टमेव । इयं परान्तरङ्गादिबाधकानामप्यबाधकत्वबोधिका । तेनाचीकरत्, मीमांसत इत्यादि सिद्धम् । आद्ये सन्वद्भावस्य परत्वाद्दीर्घेण बाधः प्राप्नोति । अन्त्ये 'मान्बध' ( ३ । १ । ६ । ) इति दीर्घेणान्तरङ्गत्वादित्वस्य बाधः प्राप्तः ।

यत्तु यत्रैकैकप्रवृत्त्युत्तरमपि सर्वेषां प्रवृत्तिस्तत्रैवेदमिति 'अत एक'

---

ओदनसंस्कारकम् । कम्बलः, शीतनिवारक इति भावः । सिद्धान्ते तु तद्भाष्यस्यैकदेश्युक्तित्वादन्यथाऽपि सुयोजत्वाच्च न दोष इति बोध्यम् ॥ ६५ ॥

**निरवेति** । अस्य सर्वथेत्यादिः । अनेन पूर्वसंगतिः सूचिता । अनयोः क्रमे तु पूर्वोक्तक्रम एव नियामकः । किंच तेन विपरीतो बाध्यबाधकभावः प्रतिपाद्यत इति प्राक्तदुपस्थितिः । अत्र तु तस्यैवाभाव इति पश्चादुपस्थितत्वमिति भावः । **बाधेतेति** । अस्येति चेदिति शेषः । अन्यथा, एतत्परिभाषाऽभावे । **नुकीति** । अपवादत्वात् । नाप्राप्ते दीर्घे नुक आरम्भात् । तत्र समकालं चारितार्थ्ये सति तदप्राप्तियोग्येऽचारितार्थ्यात् । ननु कृतेऽपि नुक्यन्त्यनकारस्य दीर्घ. स्यादिति चेन्न । दीर्घश्रुत्याऽच्परिभाषोपस्थानादचाऽभ्यासस्य विशेषणादजन्ताभ्यासान्त्यस्य दीर्घो भवतीत्यर्थात् । तदाह—**अनजन्तेति** । अभ्यासविकारेष्वपवादा उत्सर्गान्न बाधन्त इति त्यक्त्वैतदङ्गीकारफलमाह—**इयमिति** । **ङ्गादीति** । आदिना नित्यपरिग्रहः । एतद्रूपबाधकानामित्यर्थः । आद्ये, अचीकरदित्यत्र । अस्यान्यथेत्यादिः । सन्वद्भावावकाशोऽचिक्षणदिति । दीर्घस्यावकाशोऽदीदिपादिति । आद्येऽभ्यासस्यालघुत्वाद्दीर्घाप्राप्तिः । अन्त्ये सन्यत इत्यादिना कस्यचित्कार्यस्याविधानात्सन्वत्त्वाप्राप्तिः । दीर्घस्तु सन्वद्भावविषय उच्यते न तु तेनेति भावः । **प्राप्नोतीति** । वर्तमानसमीपे भूते लट् । अन्त्ये, मीमासत इत्यत्र । **अन्तरङ्गेति** । सन्प्रत्ययोऽभ्यासदीर्घत्वं च संनियोगेन विधीयत इत्यन्तरङ्गं दीर्घत्वम् । इत्वं तु बहिरङ्गं सनि परतो विधानात् । न च सन्प्रत्ययकालेऽभ्यासाभावेन तदप्राप्त्या कथं दीर्घस्यान्तरङ्गत्वमिति वाच्यम् । अभ्यासस्वरूपाऽऽवश्यकत्वेन तावत्पर्यन्तं दीर्घस्यावस्थानेऽपीत्वपर्यन्तमवस्थितौ कारणाभावेन तदपेक्षयाऽन्तरङ्गत्वसत्त्वादिति भावः ।

**एकैकेति** । उत्सर्गस्यापवादस्य चेत्यर्थः । यथा नर्नर्तीत्यादावुरदत्वे रुगादयस्तेषु च

(६।४।१२०) इति सूत्रे कैयटस्तन्न। नुकि कृते दीर्घाप्राप्त्या धर्मिग्राहकमानविरोधात्। मान्बधादीनां दीर्घे कृत इत्वाप्राप्त्या 'गुणो यङ्लुकोः (७।४।८२) इतिसूत्रस्थभाष्योक्ततदुदाहरणासंगतेश्चेत्यन्यत्र विस्तरः ॥ ६६ ॥

ननु तच्छीलादितृन्विषये ण्वुलपि स्यात्। न च तृन्नपवादोऽसरूपापवादस्य विकल्पेन बाधकत्वात्। अत आह—

**ताच्छीलिकेषु वासरूपविधिर्नास्ति ॥ ६७ ॥**

ण्वुलि सिद्धे निन्दहिंसादिसूत्रेणैकाज्भ्यो वुञ्विधानमत्र ज्ञापकम्। तत्र ण्वुलवुञोः स्वरे विशेषाभावात्।

---

तदिति भावः। कृते, अजन्ताभ्यासाभावेनेति शेषः। **धर्मीति**। दीर्घोऽकित इत्यकिदितीत्यादिः। मानादीनामित्येव सिद्ध एवमुक्तिर्वैचित्र्याय। **गुणो यङिति**। मान्बधेत्यपि द्रष्टव्यम्। **तदुदाहरणेति**। मीमासत इतीत्वघटितैतदुदाहरणेत्यर्थः। न चैवमन्वाचयस्य गमकाधीनत्वेन समुच्चयस्य प्रसिद्धतरत्वादभ्यासलोपश्चेति समुच्चये चप्रयोगान्नेमतुरित्याद्यर्थं लिटीत्यस्याऽऽदेशविशेषणत्वे पक्तेत्यादौ गमहनेत्यतः क्ङितीत्यनुवृत्त्या वारणेऽपि[1] पक्व इत्यादौ[2] लोपसंनियोगशिष्टत्वाङ्गीकारेण वारणेऽप्यत एकेत्यनेन पापच्यत इत्यादावेत्वादेरतिप्रसङ्गस्य परत्वाद्दीर्घत्वमत्र बाधक भविष्यतीति वारणपरस्यात एकेतिसूत्रभाष्यस्यासंगतिस्तदर्थमेव हि कैयटेन तत्र तथोक्तमिति वाच्यम्। ज्ञापकसिद्धस्यासार्वत्रिकत्वेनानित्यत्वादभ्यासविकारेष्विति परिभाषाया अनाश्रयणामिति भगवतोऽभिप्रायात्। तदाह—**इत्यन्यत्रेति**। उद्द्योतादावित्यर्थः ॥ ६६ ॥

**तृन्नपवाद इति**। आ क्वेस्तच्छीलेत्यर्थविशेषे विहितत्वादिति भावः। अनेन संगतिः सूचिता। एवमग्रिमद्वयेऽपि बोध्यम्। **ण्वुलीति**। करणस्याधिकरणत्वविवक्षाया सप्तमी। यद्वा ण्वुलि सति निन्दक इत्यादिरूपे सिद्ध इत्यर्थः। एकाज्भ्यः, कण्ड्वादियगन्तासूयाभिन्नेभ्यः। ततस्त्ववश्यं विधेयः सः। ण्वुलि प्रत्ययात्पूर्वमुदात्त वुञ्नित्वादिरुदात्त इति विशेषात्। अत एवाऽऽह—**तत्रेति**। तदन्यैकाज्विषयर्थः। रूपे विशेषाभावस्य स्पष्टत्वादाह—**स्वर इति**। सामान्यापेक्षं चेदं ज्ञापकमिति भावः।

ननु ताच्छीलिकेष्वित्यधिकरणसप्तम्यामुत्सर्गापवादयोस्ताच्छीलिकत्वमुतापवादस्यैव। आद्य उक्तज्ञापकासंगतिर्ण्वुलोऽतत्त्वात्। तथा च निन्देतिसूत्रे तेषां ग्रहणानर्थक्यापत्तिः। अनुदात्तेतश्चेति युचैव पदन इत्यस्य सिद्धौ पुनर्जुचङ्क्रम्येत्यत्र युजर्थं पदिग्रहणं हि तत्र ज्ञापकम्। न च लषपतेत्युकञा बाधे प्राप्ते पक्षेऽनेन युच्प्रतिप्रसूयत इति वाच्यम्।

---

[1] घ. °रणत्व°। [2] ग. ङ. °दौ तथार्थकस्य तस्यानुवृत्त्या लो°।

ताच्छीलिकेष्विति विषयसप्तमी । तेन ताच्छीलिकैरताच्छीलिकैश्च वासरूपविधिर्नेति बोध्यम् ।

नन्वेवं कम्रा कमनेत्याद्यसिद्धिः । 'नमिकम्पि' ( ३ । २ । १६७ ) इति रेण 'अनुदात्तेतश्च हलादेः' ( ३ । २ । १४९ ) इति युचो बाधादिति चेन्न । 'सूददीपदीक्षश्च' ( ३ । २ । १५३ ) इत्यनेन दीपयुज्निषेधेनोक्तार्थस्यानित्यत्वात् ॥ ६७ ॥

नन्वेवं हसितं छात्रस्य हसनमित्यादौ घञिच्छति भोक्तुमित्यत्र लिङ्लोटावीषत्पानः सोमो भवतेत्यत्र खल्प्राप्नोतीत्यत आह—

**क्तल्युट्तुमुन्खलर्थेषु वासरूपविधिर्नास्ति ॥ ६८ ॥**

---

वासरूपविधिना तत्सिद्धेः । एव च द्वयोस्तत्त्वाद्युक्त तत्त्वम् । किं च तथा सत्यलपूर्वात्क रोतेस्तृन्यलङ्कर्तेति न किन्त्विष्णुच्यलङ्करिष्णुरित्यस्य सिद्धावप्यनया रीत्याऽलङ्करिष्णुरितिवदलङ्कारक इत्यपि स्यात् । किं च स्थेशभासेति वरचि भास्वर इतिवदनुदात्तेतश्चेति युचा भासन इत्यस्याभावेऽपि भासक इत्यपि स्यात् । अन्त्य उक्तज्ञापकसंभवेऽपि पदिग्रहणानर्थक्यापत्तिरुक्तलक्ष्यसिद्धिवैपरीत्यापत्तिश्च । अत आह -**ताच्छीलिकेष्विति विषयेति ।** विषयता च द्वयोस्तत्त्वेनापवादस्यैव वा । उत्सर्गस्यैव तत्त्वेन तु न । असंभवात् । अपवादस्य तु सर्वथा तत्त्वमपेक्षितामिति भावः । तदाह—**तेनेति** । विषयसप्तम्यङ्गीकारेणेत्यर्थः । ताच्छीलिकानामपवादानामिति शेषः । एव चैकेनैव ज्ञापकेनोभयलाभे पदिग्रहणमपि सफल सकलेष्टलक्ष्यसिद्धिरपीति बोध्यम् ।

**एवं,** द्वयोस्तत्त्वेऽपि परिभाषायाः प्रवृत्त्यङ्गीकारे । **कम्रेति ।** एकसत्त्वेऽपि द्वयं नास्तीतिवदुभयासिद्धिरित्यर्थः । तथा च कम्रेतिवत्कमनेत्याद्यसिद्धिरित्यर्थः । फलितस्तदा वैधर्म्ये दृष्टान्तः । आदिना गन्ता गामुको विकत्थी विकत्थन इत्यादिपरिग्रहः । आद्ये तृन्नुकञौ । अन्त्ये घिनुण्युचौ । **रेण** । विशेषविहितेन सर्वथाऽनवकाशेन । सूदेति व्यधिकरणं निषेधविशेषणम् । युजित्यत्र बहुव्रीहिणा सामनाधिकरण वा । संभवेऽपि तदंशस्यैव ज्ञापकत्वात्तथा न युक्तम् । उक्तार्थस्य, परिभाषार्थस्य । अनित्यत्वात्, अनित्यत्वज्ञापनात् । अन्यथा नमिकम्पीति तादृशरेणैव दीपेरपि युचो बाधे सिद्धे तद्वैयर्थ्य स्पष्टमेवेति भावः ॥ ६७ ॥

**एवं,** ताच्छीलिकेष्वेवानित्यवासरूपविधिनिषेधाङ्गीकारे । **हसितमिति ।** छात्रस्येति मध्यमणिन्यायेनान्वेति । नपुंसके भावे क्तः । ल्युट्चेत्यस्य विषयोऽयम् । **घञिति ।** घञपीत्यर्थः । उचितक्रियाध्याहारः । एवमग्रेऽपि सर्वं बोध्यम् । तथा सति हासमित्यपि स्यात् । **भोक्तुमिति ।** समानकर्तृकेष्विति तुमुन् । **लिङिति ।** इच्छार्थेषु लिङ्लोटाविति तौ । **खलिति ।** आतो युजित्यस्य विषय इति भावः । **क्तल्युडिति ।** एतेषु

इदं च वासरूपविधेरनित्यत्वात्सिद्धम् । तदनित्यत्वे ज्ञापकं च 'अर्हे कृत्यतृचश्च' (३।३।१६९) इति । तत्र हि चकारसमुच्चितलिङा कृत्यतृचोर्बाधा मा भूदिति कृत्यतृज्ग्रहणं क्रियत इत्यन्यत्र विस्तरः। वासरूपसूत्रे भाष्ये स्पष्टा ॥ ६८ ॥

ननु श्वः पक्तेत्यत्र वासरूपविधिना लडपि प्राप्नोति कृत आदेशे वैरूप्यादत आह—

**लादेशेषु वासरूपविधिर्नास्ति ॥ ६९ ॥**

---

घञादीनामपवादभूतेषु सत्सु स नास्तीत्यर्थ. । तथा चैत उत्सर्गान्नित्यं बाधन्ते न तु वासरूपविधिना विकल्पेन । एव च यत्र क्तादय एवोत्सर्गास्तत्र सोऽस्त्येव । यथाऽज्विधौ भयादीनामुपसख्यानं नपुसके क्तादिनिवृत्त्यर्थमित्यज्विषये वासरूपविधिना ल्युडपि । तेन भय भयन वर्ष वर्षणमित्यादि सिद्धम् । अत एव वृषभो वर्षणादिति भाष्यप्रयोगः । आशिते भुव इत्यत्राऽऽशितमवन इति काशिकादिप्रयोगश्च संगच्छते । सरूपत्वात् । खचा घञेव बाध्यते न तु ल्युट् । एतेन क्तल्युडिति निषेधात्तत्र ल्युडचुक्त इति प्रकाशोक्तमपास्तम् । अत्र परिभाषाया साहचर्य नाऽऽश्रीयत इति स्पष्टमन्यत्र ।

अयमर्थो ज्ञापकाल्लभ्यत इति सीरदेवादयस्तन्न । गौरवात् । क्तादिविषये विशेषतो ज्ञापकाभावाच्च । वक्ष्यमाणतदनित्यत्वज्ञापकेनैतज्ज्ञापनासभवाच्च । तद्ध्वनयन्नाह—**इदं चेति** । परिभाषावचन चेत्यर्थः । यत्तु वासरूप इत्यत्र व्यवस्थितविभाषाश्रयणाल्लभ्यत इदमिति न्यासकृत् । तन्न । तासा परिगणनात् । तद्ध्वनयन्नाह—**अनित्यत्वादिति** । यत्तु सीरदेवादयो विभाषाऽग्रे प्रथमेत्यत्र विभाषाग्रहणादनित्यत्वलाभ इति । तन्न । तस्य पक्षे कर्त्रादिविवक्षाया ल्डादिसपादनेन चारितार्थ्यादिति स्पष्टमन्यत्र । अत आह—**तदनित्येति** । **चार्हे क्रिति** । चस्त्वर्थे । कृत्यतृज्ग्रहण ज्ञापकं न सूत्रमित्याह—**तत्र हीति** । सूत्रे हीत्यर्थः । यदि तदनित्यत्व न स्यात्तर्हि वासरूपविधिनैव पक्षे तयोः सिद्धौ तदानर्थक्य स्पष्टमेव । यदि तु शकि लिङ्चेति कृत्यानुकर्षकचेनैव लाघवात्तदनित्यत्व ज्ञाप्यत इत्युच्यते तदा कृत्यतृज्ग्रहण प्रैषातिसर्गेतिसूत्रे कृत्याश्चेति च सुत्यजम् । एतेन प्रैषेतिसूत्रे कृत्यग्रहणादुक्तोऽर्थो लभ्यत इति जयादित्योक्तमपास्तम् । एव च तदनित्यत्वेनैव ताच्छीलिकेषु लादेशेषु च निर्वाह उक्तवक्ष्यमाणपरिभाषाद्वयमनावश्यकमिति बोध्यम् । तदाह—**इत्यन्यत्रेति** । शेखरादावित्यर्थः ॥ ६८ ॥

**नन्विति** । एवमिति शेष । उभयत्रैव तदङ्गीकार इति तदर्थः । इत्यत्र, इत्यादौ । ननु नानुबन्धकृतमसारूप्यमिति सिद्धान्तात्कथं तत्प्राप्तिरत आह—**कृत इति** । तथा चाऽऽदेशनिष्ठवैरूप्यस्य तत्राऽऽरोप इति भावः । **लादेशेष्विति** । अत्र कर्मधारयः । कडारादित्वाल्लस्य पूर्वनिपातः । आदेशपद च स्वनिष्ठवैरूप्ये लाक्षणिकमर्शआद्यजित्य-

आदेशकृतवैरूप्यवत्सु लकारेषु स नास्तीत्यर्थः। अत्र च 'हशश्वतो-र्लङ्च' ( ३ । २ । ११६ ) इति लङ्विधानं ज्ञापकम्। अन्यथा 'परोक्षे लिट्' ( ३ । २ । ११५ ) इति लिटा लङः समावेशोऽसारूप्या-त्सिद्ध इति किं लङ्विधानेन। शत्रादिभिस्तिङां समावेशार्थं शतृविधा-यके विभाषाग्रहणानुवृत्तिः 'लिटः कानज्वा' ( ३ । २ । १०६ ) इति वाग्रहणं च कृतम्। तज्ज्ञापयति वासरूपसूत्रेऽपवाद आदेशत्वाना-क्रान्तः प्रत्यय एव गृह्यत इति कैयटादौ ध्वनितम्। तत्फलं तु सदा-दिभ्यो भूतसामान्ये लिटः क्वसुरेव न तु पक्षे तिङ इति बोध्यम् ॥ ६९ ॥

ननु 'ङमो ह्रस्वात्' ( ८ । ३ । ३२ ) इत्यादौ ङमः परस्याचोऽचि परतो ङम इति वेति संदेहः स्यादत आह—

**उभयनिर्देशे पञ्चमीनिर्देशो बलीयान् ॥ ७० ॥**

अचीति सप्तमीनिर्देशस्य 'मय उञः' ( ८ । ३ । ३३ ) इत्यु-

---

नाऽऽह—**आदेशेति**। नीलरूपवदितिवत्प्रयोगः। अत्र चेति चस्त्वर्थे वाक्यालकारे वा। अन्यथा, एतद्वचनाभावे। लङः, अनद्यतने लङिति विहितस्य। असारूप्यात्, उक्तरीत्या। एवं च सूत्रमुक्तार्थे ज्ञापकम्। ननु यथाश्रुतार्थ एवास्तु किं लक्षणाद्याश्रयणे-नात आह—**शत्रादिभिरिति**। आदिना कानजपि। अत एव बहुवचनम्। शतृविधायके, लटः शतृशानचाविति योगविभागे। **विभाषेति**। नन्वोर्विभाषेत्यतः सदादिभ्यो बहुलमि-ङ्धार्योर्वेति वार्तिकप्रत्याख्यानाय भाष्यकृत्कृतेत्यर्थः। सूत्ररीत्याऽऽह—**लिट इति**। कृतमित्यस्य यदित्यादिः। तत्, उभयम्। अपवादः, असरूपपदबोध्यः। **त्यय एवेति**। एवो भिन्नक्रमः। आदेशत्वानाक्रान्त एव प्रत्यय इत्यर्थः। **ध्वनितमिति**। अनेन तदनुक्तत्वं ध्वनितम्। **सामान्य इति**। अनेन तद्विशेषे यथायथं तिङो भवन्त्येवेति सूचितम्। **पक्षे तिङ इति**। अन्यथा तु पक्षे तेऽपि वासरूपन्यायेन स्युः। कानच्तु न पक्षे तस्य च्छान्दसत्वात्[1]। अस्वरितत्वात्तस्य नानुवृत्तिरिति भावः। एवं च यथाश्रु-तार्थस्य दुर्वचत्वात्तदाश्रयणमावश्यकमिति तत्त्वम् ॥ ६९ ॥

बलवत्त्वप्रसङ्गादेवाऽऽह—**नन्विति**। यत्तु सीरदेवादयो विप्रतिषेधसूत्रस्यैवोभयनिर्देश इत्यर्थ इति। तन्न। ङमो ह्रस्वादित्यादावनिर्वाहात्। तद्ध्वनयन्नत्रैव तावद्दोषमाह—**ङम इति**। **स्याच इति**। अस्येतीति शेषः। **इति वेति**। अस्यार्थ इति शेषः। ङमो वेति संदेह इति पाठे तु न किमपि। अत्र बीजमाह—**अचीति**। एवमुक्ताशये-

---

१ ग. °त्। चानुकृष्टत्वेनाग्रे ना°।

तत्र चारितार्थ्यात्पञ्चमीनिर्देशोऽनवकाश इति 'तस्मादित्युत्तरस्य' (१।१।६७) इत्यस्यैव प्रवृत्तिः। यत्र तु 'ङः सि धुट्' (८।३।२९) इत्यादावुभयोरप्यचारितार्थ्यं तत्र 'तस्मिन्' (१।१।६६) इतिसूत्रापेक्षया 'तस्मादित्युत्तरस्य' (१।१।६७) इत्यस्य परत्वात्तेनैव व्यवस्था। एवमुभयोश्चारितार्थ्येऽपि यथा 'आमि सर्वनाम्नः' (७।१।५२) इत्यादौ। तत्राऽऽमीति सप्तमी 'त्रेस्त्रयः' (७।१।५३) इत्यत्र चरितार्था। आदिति पञ्चमी 'आज्जसेरसुक्' (७।१।५०) इत्यत्र चरितार्थेति स्पष्टं तस्मिन्निति सूत्रे भाष्ये कैयटे च ॥ ७० ॥

ननु 'अतः कृकमि' (८।३।४६) इति सत्वमयस्कुम्भीत्यत्र न स्यात्कुम्भशब्दस्यैवोपादानादत आह—

---

नाऽऽदावनवकाशत्वेन बाधमुक्त्वा परत्वेन बाधमाह—यत्र त्विति। अत एव वैलक्षण्यबोधकस्तुः प्रयुक्तः। उभयोरपीति। अपिरेवार्थे। अन्वयोऽग्रे मिथः समुच्चायको यथाश्रुत एव वा। तेनैव, पाठकृतपरत्वेनैव। एतेन निर्देशव्यावृत्तिः। एव, पाठकृतपरत्वेन व्यवस्था। तत्र, द्वयोर्मध्ये। यद्यपि श्रौती सर्वनाम्न इति पञ्चम्यनवकाशेत्याद्यतुल्यत्व सुवचं तथाऽपि तस्य विहितविशेषणत्वेन तस्मादित्यस्य तत्राप्रवृत्तिरेव। अत एव सर्वनाम्नः परस्याऽऽम आमि परे सर्वनाम्नो वेति सदिह्य पञ्चम्यनवकाशेति भाष्योक्तिरेकदेशिन इति बोध्यम्। तदेतद्ध्वनयन्नाह—आदिति। ततोऽनुवृत्तेत्यादिः। अत्रत्यं तत्त्वं भावप्रकाशे स्पष्टम्। एवं च परत्वनिरवकाशत्वकृतबाधद्वयबोधिकेयं न तु तथेति भावः। तदाह—इति स्पष्टमिति। तथाबोधकमेतद्वचन स्पष्टमित्यर्थः। यथाश्रुते यत्र त्वित्यादेस्तत्रानुक्तत्वादसङ्गतिः स्पष्टैव। स्पष्टीकारकत्वात्कैयटस्योक्तिः। यत्र तु सप्तमीनिर्देश एवानवकाशस्तत्र तस्यैव प्राबल्यम्। यथाऽऽने मुगित्यादौ। तत्र ह्यान इति सप्तम्यनवकाशा। अत इत्यनुवृत्तपञ्चम्यतो येय इत्यत्र सावकाशा। दीर्घात्पदान्ताद्वेत्यादौ तु ज्ञापकादिना कृतार्थाया अपि पूर्वत्रच्छे चेति सप्तम्याः प्राबल्यं नानवकाशाया अपि पञ्चम्या दीर्घादित्यादिकायाः। एवमिकोऽचीत्यत्राऽचः सर्वनामस्थान इत्यनयोरनुवृत्त्या द्वयोश्चारितार्थ्येऽपि सप्तम्याः प्रकल्पकत्वपरभाष्येऽनुवृत्तिसामर्थ्यादिक इति साहचर्याच्च सप्तम्याः प्राबल्यं बोध्यम्। एवं चेयमनित्येति फलितमिति बोध्यम् ॥ ७० ॥

उभयनिर्देशप्रसङ्गादाह—नन्वत इति। इत्यत्र, इत्यादौ। कुम्भेति। कुम्भादीत्यर्थः।

---

१ ङ. 'मेव त'।

**प्रातिपदिकग्रहणे लिङ्गविशिष्टस्यापि ग्रहणम् ॥ ७१ ॥**

सामान्यरूपेण विशेषरूपेण वा प्रातिपदिकबोधकशब्दग्रहणे सति लिङ्गबोधकप्रत्ययविशिष्टस्यापि तेन ग्रहणं बोध्यम् । अपिना केवलस्यापीत्यर्थः ।

अस्याश्च ज्ञापकं समानाधिकरणाधिकारस्थे 'कुमारः श्रमणादिभिः' (२ । १ । ७० ) *इति सूत्रे स्त्रीलिङ्गश्रमणादिशब्दपाठः । स्त्रीप्रत्ययविशिष्टश्रमणादिभिश्च कुमारीशब्दस्यैव सामानाधिकरण्यं न तु कुमा-

---

**सामान्येति** । अत एव ङ्याप्सूत्रे प्रातिपदिकग्रहणेन ङ्याब्ग्रहणवैयर्थ्यमाशङ्कित भाष्ये । **विशेषेति** । अय तु ज्ञापकादयस्कुम्भीत्यत्रानया साधनपरभाष्याच्च सिद्धोऽर्थः । एतेन ज्ञापकादत्रैव प्रवृत्तिर्न तु सामान्य इत्यपास्तम् । यत्तु प्रातिपदिकग्रहण इति बहुव्रीहिः । तच्च शास्त्र प्रत्यासत्तिन्यायात्स्त्रीप्रत्ययविधायकमेव गृह्यत इति । तन्न । तत्रान्येनापि तद्ग्रहणापत्तेः । उक्तभाष्यविरोधापत्तेश्च । ज्ञापकासगत्यापत्तेश्च । तत्पुरुषस्यान्तरङ्गत्वाच्च । तद्ध्वनयन्नाह—**प्रातिपदिकबोधकेति** । सेति सप्तमीयमित्याह—**सतीति** । लिङ्गशब्देन तद्बोधकाष्टाबादयो गृह्यन्तेऽभिधानेऽभिधेयधर्मोपचारात् । तदाह—**लिङ्गबोधकेति** । प्रत्यासत्तिलब्धमाह—**तेनेति** । तथा प्रातिपदिकबोधकशब्देनेत्यर्थः । ग्रहणं बोध्यमिति पाठः ।

**अस्याश्चेति** । चस्त्वर्थे[2] ज्ञापकपदोत्तरं योज्यः । यद्यपि युवा खलतीति सूत्रे जरतीग्रहणं ज्ञापकं भाष्यकारादिभिरुक्त तथाऽपि तत्रैतज्ज्ञापनेऽपि तदवस्थानुपपत्तिकसामानाधिकरण्याय युवत्या जरतीधर्मारोपस्याऽऽवश्यकत्वेनोच्छूनस्तनत्वाच्छमश्रुशून्यत्वाच्च यूनि जरतीत्वारोपेण जरत्या प्रागवस्थायुवत्वारोपेण वा सामानाधिकरण्येन समासोपपत्तौ ज्ञापकत्वासम्भव इति हरदत्तः । अथ युवजरतीत्यत्र समासे तथौपचारिक सामानाधिकरण्यं शब्दशक्तिस्वाभाव्यान्नैव प्रतीयते यथा पञ्चभुक्तशब्दात्पञ्चभिर्भुक्तमस्येत्यर्थ इति हरदत्तोऽयुक्त एवेत्युक्तभाष्यसंगतिरित्युच्यत एवमपि विपरीत ज्ञापक कुतो न लिङ्गविशिष्टग्रहणेन प्रातिपदिकस्यापि ग्रहणमिति । फल तु रेवतीजगतीहविष्याभ्यः प्रशस्ये इत्यत्र जगतीग्रहणेन जगतोऽपि ग्रहणम् । एण्या ढञित्यत्रैणीग्रहणेनैणस्यापि ग्रहणमिति । अथैवं ज्ञापितेऽपि कुमारः श्रमणादिभिरित्येतद्विषयकगणपाठे स्त्रीलिङ्गश्रमणादिनिर्देशासंगतिरेवेत्युच्यते तर्हि तदेव ज्ञापकमस्तु कृतमनेन । तद्ध्वनयन्नाह—**कुमार इति**[3] । सूत्रे, सूत्रविषयकगणपाठे । अत एवाऽऽह—**णादीति** । तत्त्वमुपपादयति—**स्त्रीति** । **दिभिश्चेति** । चो ह्यर्थे ।

---

* क. ङ. सञ्ज्ञकव्याख्याग्रन्थाभ्यामत्र 'इति च सूत्रे' इत्येवं पाठ इति गम्यते ।

---

१ ङ. सत्सप्त° । २ ख. घ. °स्त्वर्थो ज्ञा° । ३ क. ङ. °ति । भिरिति चेति । चो ह्यर्थे । सू°

रशब्दस्येति तदेतज्ज्ञापकम् ।

इयं च 'द्विषत्परयोः' (३।२।३९) इत्याद्युपपदविधौ समासान्तविधौ महदात्वे ञ्नित्स्वरविधौ राज्ञः स्वरे ब्राह्मणकुमारयोः 'बहोर्नञ्वदुत्तरपदभूम्नि' (६।२।१७५) इत्यादौ समाससंघातग्रहणेषु च न प्रवर्तत इति ङ्याप्सूत्रे भाष्ये स्पष्टम् । विभक्तिनिमित्तककार्ये च नेत्यपि तत्रैव । तत्र समासान्तविधाववयवग्रहण एव न । समाससंघातग्रहणे तु प्रवर्तत एव । स्वरविधावेव समाससंघातग्रहणे तत्र दोषोक्तेः । 'बहुव्रीहेरूधसः' (४।१।२५) इति सूत्रभाष्याच्च । एतावत्स्वेवानित्यत्वादप्रवृत्तिर्दोषाः खल्वपि साकल्येन परिगणिता इति भाष्योक्तेः ।

नन्वेवं 'बहुव्रीहेरूधसो ङीष्' (४।१।२५) इति सूत्रस्थभाष्यासंगतिः । तत्र हि कुण्डोध्नीत्यत्र 'नद्यृतश्च' (५।४।१५३) इति कबापादितो नद्यन्तबहुव्रीहेरित्यर्थात् । नद्यन्तस्य बहुव्रीहित्वाभावात्तदसंगतिः । नद्यन्तानां यः समास इत्यर्थेन च परिहृतम् । नद्यन्तप्रकृतिकसुबन्तोत्तरपदकः समास इतीति चेन्न । अनया परिभाषया स्त्रीप्रत्ययसमभिव्या-

---

उपसहरति—इति तदेतज्ज्ञापकमिति । स्त्रीलिङ्गश्रमणादिग्रहणं प्रातिपदिकेतिपरिभाषाज्ञापकमित्यर्थः ।

अतिप्रसङ्ग निराचष्टे—इयं चेति । राज्ञः स्वरे ब्राह्मणकुमारयोरित्येतत्क्रमम् । आर्यो ब्राह्मणकुमारयोरित्यतस्तदनुवृत्त्या राजा चेति सूत्रे तत्र परतस्तस्य विधीयमानस्वरक इत्यर्थः । बहोर्नञ्वदित्यस्य समासेत्यनेनाभेदान्वयो वेदाः प्रमाणमितिवत् । वक्ष्यमाणाशयेन पृथगाह—विभक्तिनिमित्तेति । बहुव्रीहिः । निमित्तताऽत्र यथाकथंचिद्बोध्येति स्पष्टीकृतं भावप्रकाशे । तत्र, तेषा मध्ये । एवव्यावर्त्यमाह—समासेति । तत्र, ङ्याप्सूत्रे भाष्ये । ननु स्वरविधौ तथोक्तिरधिकसग्राहिका न नियामिकाऽत आह—बहुव्रीहेरिति । इद चानुपदमेव स्फुटी भविष्यति । उपसहरति—एतावदिति । अनित्यत्वात्, घटीग्रहणज्ञापितात् ।

तत एव भाष्यात्सिद्धान्तं वक्तुं यथाश्रुतार्थे शङ्कते—नन्वेवमिति । परिभाषाया उक्तार्थाङ्गीकार इत्यर्थः । ननु नद्यन्तानुत्तरपदकत्वात्कथं तदापादनमत आह—नद्यन्तवेति । ल्यब्लोपे पञ्चमी । इत्यर्थमभिप्रेत्येत्यर्थः । असंगतिमुपपादयति—नद्यन्तस्येति । बहुव्रीहित्वस्य सुबन्तसमूहधर्मत्वेनान्यतररूपेण प्रातिपदिकाग्रहणात्परिभाषाप्रवृत्त्यभावेन तस्य तत्त्वाभावादित्यर्थः । बहुव्रीह्यर्थकवाक्यत्वाभावाच्चेत्यपि बोध्यम् । ननु पूर्वपक्षिणोऽज्ञानात्तथोक्तिरिति नासगतिरत आह—नद्यन्तानामिति । समास इति । बहुव्रीहिरित्यर्थः । एवमग्रेऽपि । र्थेन चेति । चो व्युत्क्रमे । परिहृत चेत्यर्थः । तदाशयमाह—नद्यन्तप्रेति । इतीति । अस्य तदाशय इति शेषः । अत एव करभोरूरित्यत्र

हारे तद्रहिते दृष्टानां प्रातिपदिकत्वतद्व्याप्यधर्माणां विशिष्टेऽपि पर्याप्तत्वमतिदिश्यत इत्याशयात् ॥ ७१ ॥

नन्वेवं यूनः पश्येत्यत्रेव युवतीः पश्येत्यत्रापि 'श्वयुव' (६।४।१३३) इति संप्रसारणं स्यादत आह—

## विभक्तौ लिङ्गविशिष्टाग्रहणम् ॥ ७२ ॥

**स्पष्टा चेयं 'युवोरनाकौ (७।१।१) इत्यत्र भाष्ये। घटघटीग्रहणेन लिङ्गविशिष्टपरिभाषाया अनित्यत्वात्तन्मूलैवेत्यन्ये ॥ ७२ ॥**

---

नित्यः कल्पेति बोध्यम्। एवं च सिद्धान्तिना यदि तथाऽभिहितं स्यात्तर्हि तस्याज्ञानकल्पना युक्ता नान्यथेत्यसंगतिर्दृढैवेति भावः। समभिव्याहार इत्यस्य विशिष्टेऽपीत्यत्रान्वयः। **दृष्टानामिति**। एव चान्यतररूपेण वस्तुतः प्रातिपदिकत्वादिवद्ग्रहणे सति तद्विशिष्टस्यापीति परिभाषार्थो बोध्यः। अस्ति च कुण्डोध्नीत्यादौ ङीष्प्रकृतौ प्रातिपदिकत्वबहुव्रीहित्वादिकमिति नोक्तदोषः। यदि समासान्तविधौ सर्वत्रैतदप्रवृत्तिस्तर्हि तदसंगतिः पुनरपि स्पष्टैव। अतोऽवयवग्रहण एव तत्राप्रवृत्तिः। तत्र तु समाससंघातग्रहण नद्यन्तऋदन्तयोरुत्तरपदत्वेन पूर्वपदाक्षेपादिति बोध्यम्। **ष्टेऽपीति**। अपिः प्राग्वत् ॥ ७१ ॥

विभक्तिनिमित्तेति पृथक्प्रागुक्ताशयमेव प्रतिपादयितुं यथाश्रुते शङ्कते—**नन्वेवमिति**। लक्ष्यविशेषेष्वेवानित्यत्वादप्रवृत्तिकोक्तपरिभाषाङ्गीकार इत्यर्थः। **युवतीरिति**। एवमर्थमन इत्युभयोः शेष इति नाऽऽश्रयणीयम्। तथा दुराग्रहे तु गोमतीत्यादौ नुम्बद्यापत्तिर्बोध्या। नन्वस्याः किं ज्ञापकमत आह—**स्पष्टेति**। तथा च सूत्रानारूढत्वेऽपि[1] भाष्याद्युक्तत्वादेव वाचनिकत्वात्प्रमाणमिति भावः। अत एव यथाकथंचिद्वार्तिकारूढत्वं सूचयितुमेकदेशयुक्तिमाह—**घटेति**। शक्तिलाङ्गलाङ्कुशेति वार्तिके घट्यग्रहणेनैव सिद्धे घटीग्रहणेनेत्यर्थः। घटघटीत्यत्र घटीग्रहणेत्यर्थो वा। अनित्यत्वात्, तज्ज्ञापनात्। **तनिति**। तन्मूलैवेत्यर्थः। तथा च नातिरिक्तेयमिति भावः। **अन्य इति**। अनेनारुचिः सूचिता। युवोरनेतिसूत्रभाष्यादावस्याः परिभाषात्वेन व्यवहारादवश्यमेषा परिभाषाऽनेकफलसिद्ध्यर्थं कार्येत्युक्तेश्चास्या पार्थक्यमन्यथा तद्विरोधः। ङ्याप्सूत्रभाष्ये त्वेतल्लब्ध्यार्थकथनमेव। अत एव विभक्तौ चोक्त विभक्तौ किमुक्त लिङ्गविशिष्टाग्रहणादित्येव तत्रोक्तम्। अन्यथोपपदविधौ यञिञोः फगित्यादिवद्विभक्तिविधौ चेत्येव वदेत्। प्रामाण्यं तु प्रागुक्तरीत्यैवेति। एवं सति यथा चित्रगवीणामित्यादावदोषस्तथा भावप्रकाशे स्पष्टम् ॥ ७२ ॥

---

[1] क. °वित्सूत्राद्यारू°।

ननु 'तस्यापत्यम्' (४।१।९२) इत्येकवचननपुंसकाभ्यां निर्देशाद्गार्ग्यो गार्ग्यावित्याद्ययुक्तमत आह—

**सूत्रे लिङ्गवचनमतन्त्रम्॥ ७३ ॥**

'अर्धं नपुंसकम्' (२।२।२) इति नपुंसकग्रहणमस्यां ज्ञापकम्। नित्यनपुंसकत्वार्थं तु न तदित्यन्यत्र निरूपितम्। धान्यपलालन्यायेन नान्तरीयकतया तयोरुपादानमिति तस्यापत्यमित्यत्र भाष्ये स्पष्टम्। अत एवाऽऽकडारसूत्र एकेति चरितार्थमित्यन्यत्र विस्तरः॥ ७३ ॥

ननु 'भृशादिभ्यो भुव्यच्वेः' (३।१।१२) इत्यादौ विधीयमानः क्यङ्क्व दिवा भृशा भवन्तीत्यत्रापि स्यादत आह—

---

लिङ्गप्रसङ्गादेवाऽऽह—**नन्विति । तस्येति ।** इतिसूत्रेऽपत्यमित्येकेत्यर्थः। वचनस्य शास्त्रीयत्वेनाभ्यर्हितत्वात्पूर्वनिपातः। तस्येत्यत्र तु न। वृत्तावुपसर्जनेऽसति गमके संख्याभानाभावात्। अत एव द्वन्द्वनिर्देशः। अत एव नाऽऽह—**गार्ग्याविति ।** अन्यथा तदपि प्रदर्शितं स्यात्। यत्तु व्याख्यानमूलिकैषेति तन्नेति ध्वनयन्नाह—**अर्धमिति ।** निर्देशादेव नपुंसकत्वलाभे पुनर्नपुंसकग्रहणवैयर्थ्यादिति भावः। ननु समांशवाचिनित्यनपुंसकत्वलाभार्थं तदिति दीक्षितादिभिरुक्तमत आह—**नित्येति ।** बहुव्रीहिः। नित्यनपुंसकत्ववद्ग्रहणार्थमित्यर्थः। **न तदिति ।** एओङ् ऐऔच् एच इगितिसूत्रेषु एचो ह्रस्वशासनेनार्धैकारार्धौकारयोर्विधानमाशङ्क्य न वेदे नैव लोकेऽर्ध एकारोऽर्ध ओकारो वाऽस्तीतिसमाधानपरभाष्येऽर्ध इति प्रयोगात्समांशवाचिनोऽपि नित्यनपुंसकत्वाभावात्। अवयववाची तु पुंलिङ्ग एव। अपूपार्धं ग्रामार्धमित्याद्यपि समप्रविभाग एवेति बोध्यम्। तदाह—**अन्यत्रेति ।** शेखरादावित्यर्थः। भाष्ये तु युक्तिसिद्धत्वमस्या उक्तमित्याह—**धान्येति ।** कश्चिदन्नार्थी शालिकलापं सतुषं सपलालमाहरति तावन्नान्तरीयकत्वात्ततः स यावदादेयं तावदादाय तुषपलालान्युत्सृजतीति भाष्यम्। नन्वाद्यमते लिङ्गांशेऽविवक्षालाभेऽपि वचनांशे तदलाभोऽतः सिंहावलोकनन्यायेनाऽऽह—**अत एवेति ।** तथार्थाङ्गीकारादेवेत्यर्थः। नन्वेवं षड्भ्योलुगिति गौणे स्यात्। शौण्डैर्धूर्भ्य इत्यत्र गणग्रहणं च न स्यादिति चेन्न। एकवचन एव कार्ये तत्सामर्थ्यादिष्टसिद्धेर्गणपाठसामर्थ्याच्च। आद्गुण इत्यादौ यथैकत्वविवक्षा तथाऽन्यत्र स्पष्टम्। भृशादिभ्य इत्यादौ तु बहुवचनमप्यतन्त्रमिति दिक्। तदाह—**इत्यन्यत्रेति ।** शेखरादावित्यर्थः॥ ७३ ॥

वचनलक्ष्यान्तर्गतभृशादीतिसूत्रप्रसङ्गादेवाऽऽह—**ननु भृशेति । विधीयेति ।** अभृशो भृशो भवति भृशायत इत्यादावित्ति शेषः। **क्व दिवेति ।** ये रात्रौ भृशा नक्षत्रादयस्ते दिवा क्व भवन्तीत्यर्थः। यत्तु सीरदेवादयोऽन्यादिति सप्तमीविभक्तिप्रतिरूपकनिपातपाठं नपुंसकप्रथमान्तपाठं वाऽभिप्रेत्य व्याचख्युः। नन्विवयुक्तं पदमन्यदन्यस्मिन्सदृशेऽधिकरणे

**नञिवयुक्तमन्यसदृशाधिकरणे तथा ह्यर्थगतिः ॥ ७४ ॥**

**नञ्युक्तमिवयुक्तं च यत्किंचिद्दृश्यते तत्र तस्माद्भिन्ने तत्सदृशेऽधिकरणे द्रव्ये कार्यं विज्ञायते हि यतस्तथाऽर्थगतिरस्ति । न ह्यब्राह्मणमानयेत्युक्ते लोष्टमानीय कृती भवति । अतश्च्व्यन्तभिन्ने च्व्यन्तसदृशेऽभूततद्भावविषये क्यङिति नोक्तदोषः । 'ओषधेश्च विभक्तावप्रथमायाम्' (६ । ३ । १३२) इत्यादौ विभक्तिग्रहणं ह्येतन्न्यायसिद्धार्थानुवाद एव ।**

**एतेन विभक्तावित्याद्यस्यानित्यत्वे ज्ञापकमिति वदन्तः परास्ताः । अनित्यत्वे भाष्यसंमतफलाभावात् । अत एव 'अकर्तरि च' (३।३।१९) इति सूत्रे कारकग्रहणं भाष्ये प्रत्याख्यातमिति बोध्यम् । स्पष्टा चेयं 'भृशादिभ्यः' (३ । १ । १२) इति सूत्रे भाष्ये । अत्रान्यसदृशे-**

---

वर्तते । यद्वा नञिवयुक्त पदं सदृशाधिकरणे वर्तते । कुतः । यस्मादन्यच्छब्दरूपम् । हेतुगर्भविशेषणम् । मुख्यार्थवाचिशब्दरूपादन्यदित्यर्थ इति । तन्न । तथापाठाभावात् । तथाहीतिवाक्यशेषविरोधाच्च । तद्ध्वनयन्शेषपूरणेन वाक्यत्रयेण व्याचष्टे—**नञ्युक्तमिति** । यत्रेत्यादिः । **यत्किंचिदिति** । अनेन वाक्ये कचित्तत्सत्ताऽपेक्षितेति सूचितम् । **तथार्थेति** । तादृश एवार्थः प्रतीयत इत्यर्थः । लोक इति शेषः । तदेवाऽऽह—**न ह्येति** । तथा च लोकन्यायसिद्धेयमिति भाव. । लोष्ट, मृत्पिण्डम् । उक्तातिप्रसङ्ग वारयति—**अत इति** । परिभाषाङ्गीकारादित्यर्थः । सादृश्यप्रयोजकधर्ममाह—**अभूतेति** ।[1] नन्वेवमोषधेश्चेत्यादौ विभक्तिग्रहणाद्यानर्थक्यापत्तिरत आह—**ओषधेश्चेति** । आदिनाऽकर्तरि चेत्यादौ कारकग्रहणसंग्रहः ।

यत्तु सीरदेवादयोऽनित्या चेयं विभक्त्यादिग्रहणात्तेनासूर्यंपश्या इत्यादौ प्रसज्यप्रतिषेधः सिद्ध इति तन्मत खण्डयति—**एतेनेति** । एतेनेत्यस्यार्थमाह—**अनित्यत्व इति** । फलस्योक्तत्वादाह—**भाष्येति** । अभिधानस्वाभाव्यादेव तत्र तथार्थबोधस्य सिद्धत्वाज्ज्ञापकानपेक्षत्वात् । अत एव प्रतीत्यैव परिभाषार्थः साधितः । तदर्थे साधुत्वं तु ज्ञापकेन साधितमेव भगवतेति भाव. । नन्वेवमपि विनिगमनाविरहादनित्यत्वसिद्धार्थानुवाद एवाऽऽस्तां भवन्मत इवात आह—**अत एवेति** । तदनभिमतत्वादेवेत्यर्थः । अन्यथा प्रत्याख्यानासगतिः स्पष्टैवेति भावः । अत्र, परिभाषायाम् । सादृश्यं साधारणधर्मसबन्धप्रयोज्यं सदृशादिपदशक्यतावच्छेदकतया च सिद्ध सदृशदर्शने संस्कारोद्बोधकत्वस्य सर्वसंमतत्वेन तत्कारणतावच्छेदकतया च सिद्धमखण्डमतिरिक्तः पदार्थः । इवयुक्तोदाहरणमिवे प्रतिकृतावित्य-

---

[1] क. ख. घ. °दिभ्यामक° ।

स्युक्त्या साङ्कर्यस्य भेदाघटितत्वं सूचयति । निरूपितं चैतन्मञ्जूषायाम् ॥ ७४ ॥

ननु व्याघ्री कच्छपीत्यादौ सुबन्तेन समासात्ततोऽप्यन्तरङ्गत्वाट्टाप्यदन्तत्वाभावाज्जातिलक्षणो ङीष् न स्यादत आह—

**गतिकारकोपपदानां कृद्भिः सह समासवचनं प्राक् सुबुत्पत्तेः॥७५॥**

'उपपदम्' ( २ । २ । १९ ) इति सूत्रेऽतिङ्ग्रहणेन 'कुगति' ( २ । २ । १८ ) इत्यत्र तदपकर्षणेनातिङन्तश्च समास इत्यर्थात्तयोः सूत्रयोः सुप्सुपेत्यस्य निवृत्त्यैकदेशानुमत्या कारकांशे च सिद्धेयम् । तेनाश्वक्रीती

---

धिकारे शाखादिभ्यो य इति वे सोम्य इत्यादि । तत्र सोमसदृशस्ताद्धित: प्रतीयत इत्यादि मञ्जूषायां प्रतिपादितम् । तदाह—**निरूपितमिति** । उपपदमतिङित्याद्यप्याद्योदाहरण बोध्यम् ॥ ७४ ॥

वृत्तिप्रसङ्गात्समासप्रसङ्गादुदाहरणान्तर्गतोपपदमितिप्रसङ्गाच्चाऽऽह—**नन्विति** । आदिनाऽश्वक्रीतीत्यस्य परिग्रहः । ततोऽपि, सुपोऽपि । स्वार्थादिप्रयुक्तकार्याणां क्रमिकत्वस्वीकारादाह—**प्यन्तेति** । पूर्वस्थितनिमित्तकत्वरूपादित्यर्थः । कृद्भिः, तैरेव सह । एव व्यावर्त्यं ध्वनयन्नाह—**प्रागिति** । उत्तरपदे सुबुत्पत्तेः प्रागित्यर्थः । अत एव चर्मक्रीतीत्यादौ नलोपादिसिद्धिः । इदमुपलक्षणम् । उक्तहेतोरेव प्राक्स्त्रीप्रत्ययोत्पत्तेरित्यपि बोध्यम् । अन्यथा फलाभावाज्ज्ञापकत्वासंगत्यैतदसंगतिः स्पष्टैवेति बोध्यम् ।

अत्र बीजमाह—**उपेति** । कुगतीति गतिश्चेति विभक्तसूत्र इत्यर्थः । अतिङिति बहुव्रीहिः । प्रथमान्तत्वात्समास एव तेन विशेष्यस्तदभिप्रेत्योभयत्रार्थमाह—**नातिङिति** । सुपेत्यस्य निवृत्त्येति पाठः । सुप्सुपेत्यस्येति पाठे समुदायनिवृत्तौ तात्पर्यं न तु केवलसुबित्यस्य । तत्त्वनुवर्तत एवोक्तहेतोरिति बोध्यमिति कैयटादयः । वस्तुतस्तूपपदमित्यन्वर्थसञ्ज्ञया सुबन्तस्यैव पदत्वेनोपपदत्वाद्गतेः सुबन्तत्वाच्च राजयुध्वेत्यादौ पूर्वपदे नलोपादिपदकार्यसिद्धेस्तिङ्घटित इति समासविशेषणेन कारको व्रजतीत्यादिव्यावृत्तिसिद्धेश्च प्रथमान्तसुबनुवृत्तेरपि फलाभाव इति कैयटादयश्चिन्त्या एवेति यथाश्रुतमेव युक्तमिति बोध्यम् । नन्वेवमुभयांशासिद्धावपि कारकांशासिद्धिः । न च कर्तृकरण इति कृद्ग्रहणात्तत्सिद्धिरिति कैयटाद्युक्तं युक्तम् । तस्य काष्ठैः पचतितरामित्यादिव्यावृत्त्या साफल्यात् । नापि बहुलग्रहणं तत्र मानम् । तस्यान्यार्थकत्वात् । अत एव घनक्रीतेत्यस्य सिद्धिरत आह—**एकदेशेति** । एकदेशानुमतिद्वारा विशिष्टपरिभाषाबोधनेन कारकांशे चेत्यर्थः । चेनोभयांशसमुच्चयः । गत्युपपदयोर्लक्ष्ययोरुक्तत्वादाह—**तेनाश्वेति** । अन्यथा, एतदनङ्गीकारे ।

---

१ घ. 'कार्ये सिद्ध ति°' । २ ङ. '°स्याप्यन्या°' ।

सिद्धा । अन्यथा पूर्वं टाप्यदन्तत्वाभावात् ' क्रीतात्करणपूर्वात् ' (४ । १ । ५० ) इति ङीष् न स्यात् ।

अस्या अनित्यत्वात्क्वचित्सुबुत्पत्त्यनन्तरमपि समासो यथा सा हि तस्य धनक्रीतेति । अन्ये त्वनित्यत्वे न मानं तत्राजादित्वाट्टाबित्याहुः ।

अत एव कुम्भकार इत्यादौ षष्ठीसमासोऽपि सुबुत्पत्तेः पूर्वमेव । षष्ठीसमासाभावे चोपपदसमासकृत एकार्थीभाव इति न तत्र वाक्यमिति ' उपपदम् ' (२।२।१९) इति सूत्रे भाष्ये स्पष्टम् । तत्र हि षष्ठीसमासादुपपदसमासो विप्रतिषेधेनेति वार्तिकम् । अथवा विभाषा षष्ठीसमासो यदा न षष्ठीसमासस्तदोपपदसमास इति तत्प्रत्याख्यानं च । यद्यप्यु-

---

**अस्या अनित्यत्वादिति** । अम्बाम्बेति सूत्रे गवादिग्रहणात् । अन्यथा गोष्ठ इत्यादौ सुपि स्थ इति केऽनया सुबुत्पत्तेः पूर्वं समासे सात्पदाद्योरिति निषेधाप्राप्तावादेशप्रत्यययोरित्येव सिद्धे तद्वैयर्थ्यं स्पष्टमेव । तत्र हि स्थ इति प्रतिपदोक्तपरिभाषया सुपि स्थ इति विहितकप्रत्ययान्तानुकरणं षष्ठ्यर्थे प्रथमेति भावः । [ **क्व*चिदिति** । अनेनारुचिः सूचिता ] **न मानमिति** । पदस्याऽऽदिरिति पक्षे तस्य तत्त्वसंभवेऽपि पदादादिरिति सिद्धान्तपक्षे तस्य तत्त्वासंभवादिति भावः । तत्र, धनक्रीतेत्यत्र । अत्रोपपत्तिरुक्ता । अत्रान्य इत्यनेनारुचिः सूचिता । तद्बीजं तु पदेऽन्त इति सप्तमीसमासपक्षे गोचेत्यादेरेतदनित्यत्वं विना न सिद्धिरितीति केचित् । पद इत्यस्य पदत्वयोग्योपलक्षणत्वेन तत्सिद्धेरयुक्तमेतादिति परे ।

कारकांश द्रढयति—**अत एवेति** । कारकांशेऽस्या अङ्गीकारादेवेत्यर्थः । पूर्वमेवेत्यत्रान्वयः । **षष्ठीति** । कृद्योगलक्षणा हि षष्ठीति तस्यास्तत्र कारकत्वादिति भावः । **सोऽपीति** । अपिरुपपदसमाससमुच्चायकः । ननु न तत्र षष्ठीसमासः । उपपदसमासेन बाधितत्वात् । नापि तत्रैतत्परिभाषाप्रवृत्तिः । प्रतिपदोक्तपरिभाषया कारकाधिकारविहितसंज्ञामात्रनिमित्तकविभक्त्यन्तस्य ग्रहण एवैतत्प्रवृत्त्यङ्गीकारात् । अत आह—**षष्ठीति** । **एकार्थीभाव इति** । तथा चाविग्रहत्वेन नित्यसमासत्वलाभात्षष्ठीसमासेऽप्यन्तोदात्तादुत्तरपदादित्यस्याप्रवृत्त्या न षष्ठ्युपपदसमासयोस्तत्र विशेष इति स एवास्त्विति भावः । तदेतदुपपादयति—**तत्र हीति** । **तदोपपदसमास इति** । उपपदमिति सूत्रविहितसमाससंज्ञा तत्पुरुषसंज्ञा च स्थास्यतीत्यर्थः । विप्रतिषेधे परमित्यस्य तु न प्रवृत्तिः । युगपदुभयविहितसमाससंज्ञातत्पुरुषसंज्ञयोः प्रवृत्तिसंभवेनासंभवरूपविप्रतिषेधाभावात् । अन्यादृशविरोधस्य तत्प्रवृत्तिनिमित्तत्वे न मानमिति तत्तात्पर्यम् । न च नित्यत्वानित्यत्वज्ञानकृ-

---

* धनुश्चिह्नान्तर्गतो ग्रन्थो ड. पुस्तकस्थः ।

पपदसमासस्यान्तरङ्गत्वाभिप्रायकं न वा षष्ठीसमासाभावादुपपदसमास इति वार्तिककृतोक्तं तथाऽपि तदुभयप्रत्याख्यानपरमथवेत्यादि भाष्यम्। परिभाषायां सामान्यतः कारकोपादानेन कारकविभक्त्यन्तेन कृद्भिः समासमात्रस्य सुबुत्पत्तेः पूर्वमेव लाभात्। एतेनैषा कारकतद्विशेषयोरुपादान एवेति परास्तम्। अस्या विध्येकवाक्यत्वाभावेन विप्रतिषेधादिशास्त्रवत्कार्यव्यवस्थापकत्वेनोपादान एवेत्यर्थालाभाच्च ॥ ७५ ॥

ननु 'उगिदचाम्' ( ७ । १ । ७० ) इत्यत्र धातोश्चेदुगित्कार्यं तर्ह्यञ्चतेरेवेति नियमेनाधातोरेव नुमि सिद्धेऽधातुग्रहणं व्यर्थमत आह—

## सांप्रतिकाभावे भूतपूर्वगतिः ॥ ७६ ॥

---

तद्विरोध· कैयटेनोक्त एवेति वाच्यम्। बोधे बाधज्ञानस्याप्रतिबन्धकत्वात्। एवं च षष्ठीसमासोऽपि नित्य एवैतद्विषये फलित । तद्बोधिताभावांशस्यैतद्विरोधेनैतद्विषये त्यागात्। नित्य क्रीडेत्यादिविषये तस्य क्लृप्तबाधत्वादिति भावः। **अन्तरङ्गत्वेति**। षष्ठीतिसूत्रे सुपेति तृतीयान्तस्य सबन्धात्तत्र तदभावादिति भावः। अत एव मातुः स्मरतीत्यादौ न षष्ठीसमासः। अत एव च षष्ठ्यन्तस्यानेकसुबन्तेन न समास इति बोध्यम्। **कृतोक्तमिति**। पूर्ववार्तिकखण्डनाय तयोर्मध्य इति शेषः। **तदुभयेति**। पूर्वपक्षसिद्धान्तरूपवार्तिकद्वयेत्यर्थः। **भाष्यमिति**। न वार्तिकमिति भावः। ननूक्तरीत्या विप्रतिषेधासभवात्तत्प्रत्याख्यानेऽप्यन्तरङ्गत्वस्योपपादितत्वात्कथं तत्प्रत्याख्यानमिति प्रतिज्ञातार्थासिद्धिरवात आह—**परीति**। प्रकृतेत्यादिः। इदमुपलक्षणं गतिकारकोपपदादित्यस्यापि। **कारकोपेति**। वस्तुत इत्यादिः कारकपदोपेत्यर्थो वा। प्रतिपदोक्तपरिभाषा तु न प्रवर्तते तस्या अनित्यत्वात्। स्वरसतस्तया तथार्थालाभाच्च। **कारकेति**। तेन सह तन्मात्रस्य ततः पूर्वमेव तैः सह लाभादित्यर्थः। **समात्रस्येति**। मात्र कात्स्न्र्ये। तथा च षष्ठीसमासोऽपि तत्रेत्यन्तरङ्गत्वमेव तस्य नास्तीति प्रागुक्तार्थसर्वसिद्धिरिति भावः। **एतेनैषेति**। तथार्थलाभेनेत्यर्थः। **कारकेति**। तन्मात्रयोरित्यर्थः। दूषणान्तरमाह—**अस्या इति**। निराकाङ्क्षत्वादिति भावः। ननु प्रातिपदिकग्रहण इत्यतो ग्रहणपदानुवृत्तिः कल्प्याऽऽकाङ्क्षया तदेकवाक्यता वाऽत आह—**विप्रेति**॥ ७५ ॥

बौद्धानित्यत्वादिफलगोचेत्यादिप्रसङ्गादेवाऽऽह—**ननूगिदचामिति**। इत्यत्रेत्यस्योभयत्रान्वयः। नाधातोरेव, उगित.। यत्तु सीरदेवादयोऽचो यदित्यज्ग्रहणमस्या ज्ञापकमन्यथा हलन्तेभ्यो ण्यति पारिशेष्यादजन्तेभ्य एव यता भाव्यमिति तद्वैयर्थ्यं स्पष्टमेवेति।

---

१ ख. घ. तत्रावि ।

तत्तद्वचनसामर्थ्यन्यायसिद्धेयम् । तत्सामर्थ्यादधातुभूतपूर्वस्यापीत्यर्थेन गोमत्यतेः क्विपि गोमानित्यादौ नुम्सिद्धिः । 'नामि' ( ६ । ४ । ३ ) इत्यादिसूत्रेषु भाष्ये स्पष्टा ॥ ७६ ॥

**बहुव्रीहौ तद्गुणसंविज्ञानमपि ॥ ७७ ॥**

अपिनाऽतद्गुणसंविज्ञानम् । तेषां गुणानामवयवपदार्थानां संविज्ञानं विशेष्यान्वयित्वमिति तदर्थः । यत्र समवायसंबन्धेन संबन्ध्यन्यपदार्थस्तत्र प्रायस्तद्गुणसंविज्ञानम् । अन्यत्र प्रायोऽन्यत् । लम्बकर्णचित्रगू उदाहरणे । 'सर्वादीनि' ( १ । १ । २७ । 'जक्षित्यादयः' ( ६ । १ । ६ ) इति चोदाहरणे । सर्वनामसंज्ञासूत्रे भाष्ये स्पष्टा ॥७७॥

---

तन्न । एवमपि परिभाषया स्वस्मिन्दोषाप्राप्त्या चारितार्थ्यस्यान्यत्र तज्जातीयफलस्य चाभावात् । तद्ध्वनयन्न्यायपदघटितमाह—**तत्तदिति** । सामर्थ्यरूपो यो न्यायस्तत्सिद्धेयमित्यर्थः । यथा तत्रैवाज्ग्रहणसामर्थ्यादजन्तभूतपूर्वादित्यर्थः । अत एवाऽऽह—**तत्सामर्थ्यादिति** । अधातुग्रहणसामर्थ्यादित्यर्थ. । **स्यापीति** । उगित इति शेषः । अपिरुक्तसमुच्चायकः । **भाष्य इति** । तत्र ह्यामीत्येव कार्थे यदागमा इत्यनेन नामि सिद्धेः । नित्यत्वादादौ दीर्घेऽपि भूतपूर्वगत्या नुट्सिद्धिरग्नीनामित्यादौ । तिस्रादौ तु न सावकाशत्वं षट्चतुरिति त्रेरित्यनुवृत्त्या च सिद्धेः । नापि नृशब्दे नैकमिति न्यायात् । अन्यथा नृनद्याप इत्येव वदेदित्युक्त्वोत्तरार्थं तथा निर्देश इत्युक्तम् ॥ ७६ ॥

उगिदित्यत्र बहुव्रीहेर्गोमानित्यस्य च मत्वर्थे बहुव्रीहिरिति सिद्धान्तेन प्रसङ्गादाह—**बहुव्रीति** । षष्ठीसमासतः कर्मधारयस्य लघुत्वादाह—**तेषामिति** । गुणाना, विशेषणानाम् । अत एवाऽऽह—**अवयवेति** । एतेन सीरदेवादिव्याख्यानमपास्त बोध्यम् । विशेष्यान्वयिनाऽन्वयित्वमिति पाठ । विशेष्यान्वयित्वमिति पाठे तु मुख्यविशेष्यं वाक्यार्थरूप ग्राह्यम् । तदर्थः, उक्तवचनैकदेशार्थः । एव योगार्थमुक्त्वाऽविरोधाय द्वयोर्बाहुल्येन विविक्तविषय आह—**यत्रेति** । यद्यपि कैयटादिभिरत्र सयोगोऽपि निवेशितस्तथाऽपि तस्यासबन्धत्वाल्लाघवाच्चाऽऽह—**समवायेति** । लम्बकर्ण भोजयेत्यादौ व्यभिचारादाह—**प्राय इति** । अन्यत्र, समवायान्यसंबन्धेन सबन्धिन्यन्यपदार्थे । अस्यापि रक्तदण्ड आनीयतामित्यादौ व्यभिचारादाह—**प्राय इति** । अन्यत्, अतद्गुणसविज्ञानम् । तथा चोभयमपि समवाभिप्रायकं बोध्यम् । क्रमस्य बोध्यत्वाल्लम्बकर्णस्य पूर्वनिपातः । लौकिके ते उक्त्वा शास्त्रीये आह—**सर्वादीति** । तथा च लोकन्यायसिद्धेयम् । गमकमप्यत्र यथाक्रममाढ्यसुभगेत्यत्राच्व्योरित्याम्प्रत्ययवादिति च । अन्यथा च्व्यर्थ इत्यनेन च्विभिन्नानामेव ग्रहणादामन्तस्यैव ग्रहणाच्च तदसगतिः स्पष्टैव ॥ ७७ ॥

ननु 'वदः सुपि क्यप्च' (३।१।१०६) इति चेनानुकृष्टस्य यतो 'भुवो भावे' (३।१।१०७) इत्यत्राप्यनुवृत्तिः स्यादत आह—

चानुकृष्टं नोत्तरत्र ॥ ७८ ॥

णमुलयनुवर्तमाने 'अव्ययेऽयथाभिप्रेता' (३।४।५९) इति सूत्रे पुनर्णमुल्ग्रहणमस्या ज्ञापकम्। अन्यथा क्त्वा चेति वदेत्। तद्ध्युत्तरत्रोभयोः संबन्धार्थम्। उदाहरणानि स्फुटानि। इदमनित्यम्। अत एव 'तृतीया च होः' (२।३।३) इत्यत्र चानुकृष्टाया अपि द्वितीयाया 'अन्तरान्तरेण' (२।३।४) इत्यत्र संबन्धः।

'लुटि च क्लृपः' (१।३।९३) इति सूत्रस्थेनानुवृत्त्यर्थसकलचकारप्रत्याख्यानेन विरुद्धेयम्। व्याख्यानादेवानुवृत्तिनिवृत्त्योर्निर्वाह इति तदाशयः। 'कुलिजाल्लुक्खौ च' (५।१।५५) इतिसूत्रस्थभाष्यविरुद्धा च। तत्र हि 'द्विगोः ष्ठंश्च' (५।१।५४) इति सूत्रात्ष्ठनस्तत्र चेनाप्यनुकृष्टस्य खोऽन्यतरस्यामित्यस्य चानुवृत्तिं स्वीकृत्य लुक्खौ चेति भाष्ये प्रत्याख्यातम् ॥ ७८ ॥

---

समुच्चयार्थकापिप्रसङ्गादाह—**नन्विति**। यत्, अचो यदिति सूत्रस्थस्य। **अनुवर्तेति**। स्वादुमीत्यतः। अन्यथा, एतदभावे। ज्ञापिते चारितार्थ्यमाह—**तद्धीति**। पुनर्णमुल्ग्रहण हीत्यर्थः। **उत्तरेति**। तिर्यच्यपवर्ग इत्यादौ क्त्वाणमुलोरित्यर्थः। **इदमिति**। उक्तवचनमित्यर्थ.। **अनित्यमिति**। चानुकृष्टविकल्पनिवारणफलकादेकाजुत्तरेति सूत्रे णग्रहणादिति भावः। अत एव, अनित्यत्वादेव। द्वितीयायाः, तस्या एव स्वरितत्वात्। न तु तृतीयाया अतत्त्वात्।

यत्तु सीरदेवादयः स्वरितत्वेनानुवृत्तिसिद्धौ पुनश्चस्तदर्थं यत्र क्रियते तत्रैतत्प्रवृत्तिः। यत्र तु प्रतियोगिनं दृष्ट्वा निवृत्तिप्राप्तौ चेनानुवृत्तिस्तत्र न। अत एवान्तरान्तरेणेत्यत्र न दोषः। मैत्रेयस्त्वनियमेन प्रवृत्तिमाहेति तदयुक्तमिति ध्वनयन्नाह—**लुटीति**। **अनुवृत्त्यर्थेति**। अनुवृत्तिफलकेत्यर्थः। एतेनान्यफलकाना चाना न प्रत्याख्यानमिति सूचितम्। **विरुद्धेयमिति**। अदृष्टार्थं चसत्त्वेऽप्यनुवृत्त्याद्यर्थत्वाभावेन चानुकृष्टत्वस्य क्वाप्यभावात्। तदाह—**व्याख्यानादेवेति**। स्वरितेनाधिकार इत्येतन्मूलकाद्व्याख्यानादित्यर्थः। अभ्यर्हितत्वादनुवृत्तेः पूर्वनिपात.। निवृत्तिग्रहणेन दृष्टान्तार्थेन व्याख्यानस्याऽऽवश्यकत्वं सूचितम्। एवेन चाभाववत्यनुवृत्त्यर्थत्वमपि[1] व्याख्यानस्याऽऽवश्यकत्वं ध्वनितम्। **तदाशय इति**। तत्प्रत्याख्यानपरभाष्याशय इत्यर्थः। उक्तार्थं द्रढयति—**कुलिजादिति**। तत्र हि, उक्तसूत्रे हि। भाष्य इत्यत्रान्वयः। **ष्ठनस्तत्रेति**। द्विगोरिति सूत्र इत्यर्थ.। **चेनेति**।

---

१ ग. इ. °र्थं.। ननु सूत्रीयाऽपि न तद्विरोधोऽत आह—कु°।

**नन्वनुदात्तादेरन्तोदात्ताच्च यदुच्यते तद्व्यञ्जनादेर्व्यञ्जनान्ताच्च न प्राप्नोतीत्यत आह—**

**स्वरविधौ व्यञ्जनमविद्यमानवत् ॥ ७९ ॥**

**स्वरोद्देश्यके विधावित्यर्थः । 'नोत्तरपदेऽनुदात्तादावपृथिवीरुद्रपूषमन्थिषु' (६ । २ । १४२) इति सूत्रे पृथिव्यादिपर्युदासोऽस्या ज्ञापकः । अन्यथा पृथिव्यादीनामनुदात्तादित्वाभावादप्राप्तौ तद्वैयर्थ्यं स्पष्टमेव । धर्मिग्राहकमानादेव च स्वरोद्देश्यकविधिविषयमिदम् ।**

**अत एव 'शतुरनुमो नद्यजादी' (६ । १ । १७३) 'अचः कर्तृयकि' (६ । १ । १९५) इत्यादावजादी अच इत्यादेश्चारितार्थ्यम् ।**

चेनानुकृष्टस्यापीत्यर्थः । इत्यस्य चेति पाठः । छन्समुच्चायकश्चः । तद्रहितपाठे तु पूर्वोऽपिरत्र योज्यः । आमि सर्वनाम्न इति सूत्रे भाष्ये प्रकृते किमेदित्यामोऽग्रहणमुक्त्वा ग्रहणेऽपि न दोष इति पक्षान्तरे पचतितरामित्यादौ परत्वात्प्राप्तस्य नुटोऽभावाय ह्रस्वनद्येत्यत्र यस्य लोप इत्यनयोरिव तद्धित इत्यस्याप्यनुवृत्तिः कृतेति बोध्यम् । [ * एव च यदि सूत्ररीत्येयं भवेत्तदैतत्प्रत्याख्यानासंगतिरिति भावः ॥ ७८ ॥ )

बहुव्रीहिप्रसङ्गादनुदात्तादेश्चेति चप्रसङ्गाच्चाऽऽह—**नन्विति** । यत्तु सीरदेवादयः स्वरविधावित्यस्य स्वरकर्मकविधावित्यर्थः । तेन कर्तव्यमित्यादौ तकारादेरविद्यमानवत्त्वादकारादेराद्युदात्तादयो भवन्ति । ज्ञापकं चात्र बिल्वादिभ्योऽणिति सूत्रम् । तद्ध्यनुदात्तादेश्चेत्यञ्बाधनार्थम् । अन्यथा तेषामनुदात्तादित्वाभावादञोऽप्राप्त्या सामान्यसूत्रेणाणः सिध्या किं तेनेति । हल्स्वरप्राप्ताविति तु नैवोक्तवन्त. । तन्न । धर्मिग्राहकमानात्तदलाभेन मिथो विरोधात् । अन्यार्थकाभिन्नफलकसज्ञापकपरिभाषाद्वयस्य समासस्येति सूत्रे भाष्ये कण्ठत उक्तत्वाच्च । तद्ध्वनयन्नाह—**स्वरोद्देश्यक इति** । अन्यथा, अस्या अभावे । अप्राप्तौ, निषेधाप्राप्तौ । तथा च देवताद्वन्द्वे चेति पूर्वसूत्रेण पूर्वोत्तरपदयोरिष्टः प्रकृतिस्वरः सिद्ध इति भावः । नन्वेव परिभाषायास्तथैवार्थः स्यान्नायमत आह—**धर्मीति** । उक्तपर्युदासरूपादित्यर्थः । नोत्तरपद इत्यस्य स्वरनिषेधविधित्वेन स्वरकर्मकविधित्वाभावादिति भावः । इदं, वचनम् ।

सीरदेवाद्युक्तौ दोषान्तरं सूचयितुमुक्तार्थं द्रढयति—**अत एवेति** । एवमर्थाङ्गीकारादेवेत्यर्थः । हलाद्यादिव्यावृत्त्यर्थं हि तत्राजाद्यादिग्रहणम् । यदि स्वरकर्मकविधौ तथा स्यात्तदा व्यावर्त्याभावेन तदानर्थक्यं स्पष्टमेव । बिल्वकादिभ्योऽणिति सूत्रमप्येवमेव सफलमिति भावः । एवमुक्तार्थस्य सूत्रारूढत्वमुक्त्वा भाष्याद्यारूढत्व ध्वनयन्प्रागवदाह—

* धनुश्चिह्नान्तर्गतो ग्रन्थो ग. ङ. पुस्तकस्थ. ।

१ घ. °जादि° । २ ग. ङ. सूत्र त्वेवमपि स° ।

अत एव राजवतीत्यादौ नलोपस्यासिद्धत्वादन्वतीशब्दत्वात् 'अन्तोऽवत्याः' (६।१।२२०) इति स्वरो नोदश्विवत्वानित्यत्र 'ह्रस्वनुड्भ्याम्' (६।१।१७६) इति मतुबुदात्तत्वं नेत्याकरः। स्पष्टं चेदं 'समासस्य' (६।१।२२३) इति सूत्रे भाष्ये। 'उच्चैरुदात्तः' (१।२।२९) इति सूत्रे कैयटस्तु, इयमनावश्यकी समभिव्याहृताजुपरागेण हलोऽप्युदात्तादिवदवभासात्तदुपपत्तेरित्याह। तत्र भाष्येऽपि ध्वनितमेतत् ॥ ७९ ॥

नन्वेवमपि राजदृषदित्यादौ 'समासस्य' (६।१।२२३) इत्यन्तोदात्तत्वं षकाराकारस्य न स्यादत आह—

हलस्वरप्राप्तौ व्यञ्जनमविद्यमानवत् ॥ ८० ॥

अस्याश्च 'यतोऽनावः' (६।१।२१३) इति सूत्रे नौप्रतिषेधो ज्ञापकः। नाव्यमित्यत्राऽऽदिर्नकारो न स्वरयोग्यो यश्चाऽऽकारस्तद्योग्यो नासावादिरिति स प्रतिषेधोऽनर्थकः। न चाऽऽदिरेव नकार उदात्तगुणविशिष्टान्तरतमाल्रूपोऽस्त्विति वाच्यम्। तथा सति निमित्तभूतद्यच्कत्वस्य विनाशादुपजीव्यविरोधेनाऽऽद्युदात्तत्वाप्राप्तेरित्यन्यत्र विस्तरः। स्पष्टा

---

**अत एवेति**। प्रागवत्। आकर इत्यत्रान्वयः। तस्य च सगच्छत इति शेषः। कैयटादिसंग्रहाय तथोक्तम्। **शब्दत्वादिति**। हेतुः स्वराभावे। उदात्तत्व नेति निश्चः पाठः। नन्द्वयोक्तेः। अत एवेत्यग्रे योजने नादग्रे योजने वाऽस्तु। तदर्थे त्वेतदसंगतिः स्पष्टैव। **कैयटस्तु**। अस्याऽऽहेत्यत्रान्वयः। समभीति। समभिव्याहारश्च पूर्वेणोत्तरेण वा। **तदुपपेति**। हलादेर्हलन्तात्तत्प्रत्ययोपपत्तेरित्यर्थः। अत्र निर्मूलत्वं निराचष्टे—**तत्रेति**। उच्चैरुदात्त इत्यत्रेत्यर्थः। तथा चैतत्तथा स्पष्टमन्यत्र ॥ ७९ ॥

**एवमपि**। उक्तपरिभाषयाऽनुदात्तादेरित्यादौ निर्वाहेऽपि। **न स्यादिति**। तस्यान्तत्वाभावात्। तथा च तकारस्य लृकारो वक्ष्यमाणरीत्या स्यादिति भाव.। **अस्याश्चेति**। चस्त्वर्थे। तत्त्वमुपपादयति—**नाव्यमिति**। अन्यथेत्यादिः। **चादिरेवेति**। एवेनाऽऽज्व्यावृत्तिः। **विशिष्टान्तरेति**। लृकारेत्यर्थः। अस्तु, स्यात्। तदानर्थक्यात्। एवं च तद्वारणार्थं प्रतिषेधस्याऽऽवश्यकत्वेन ज्ञापकत्वासंभव इति भावः। **निमित्तेति**। आद्युदात्तस्वरेत्यादिः। **दात्तत्वाप्राप्तेरिति**। तस्यैवाप्राप्तेरित्यर्थ.। एवं च प्रतिषेधोऽनर्थकः सञ्ज्ञापक एवेति भाव.। न च हलः स्वरप्राप्त्यभावादेवायुक्तेयमुच्चैरुपलभ्यमानोऽनु-

---

१ क. घ. °ने वाऽ°। २ घ. °थात्वे त°। ३ घ. °षया पूर्वोक्तादौ। ४ ग. °स्यानन्तत्वादिति भावः। त°। ५ क. ग. ङ. °नाऽऽव्या°।

चेयं ' समासस्य ' ( ६ । १ । २२३ ) इति सूत्रे भाष्ये ॥ ८० ॥

ननु 'पूरणगुण' ( २।२।११ ) इति निषेधस्तव्यत्यपि स्यात् । 'दिव औत्' ( ७।१।८४ ) इत्यौत्त्वं दिवेः क्विप्यपि स्यात् । तथा 'यतोऽनावः' (६।१।२१३) इति स्वरो ण्यत्यपि स्यात् । 'ऋदृशोऽङि गुणः' (७।४।१६) इति चङ्यपि स्यात् । अत आह—

**निरनुबन्धकग्रहणे न सानुबन्धकस्य ॥ ८१ ॥**

**तदनुबन्धकग्रहणे नातदनुबन्धकस्य ॥ ८२ ॥**

'वामदेवाड्ड्यड्ड्यौ' ( ४।२।९ ) इति सूत्रे ड्यड्ड्यतोर्डित्त्वमनयोर्ज्ञापकम् । तद्धि 'ययतोश्चातदर्थे' ( ६।२।१५६ ) इत्यत्र तयोरग्रहणार्थम् । नञः परस्य ययदन्तस्योत्तरपदस्यान्त उदात्त इति तदर्थः । एवं चावामदेव्येऽव्ययपूर्वपदप्रकृतिस्वर एव भवति । तन्मात्रानुबन्धकग्रहणे स चान्यश्चानुबन्धो यस्य तद्ग्रहणं नेत्यन्त्यार्थः ।

---

दात्तः स चाचः स्थान इत्याद्यर्थादिति वाच्यम् । षष्ठ्यन्तस्याच इत्यस्यानुवृत्त्योदात्ता-[1]दिपदानामक्षु संकेतादादिरुदात्तगुणकः स्यादित्याद्यर्थे तत्तदन्तरतमः कश्चिदच्स्यादिति हलः स्वरप्राप्तिसंभवात् । तदाह—**इत्यन्यत्रेति** । भाष्यादावित्यर्थः । **चेयमिति** । इयमपीत्यर्थः । तेन पूर्वस्याः समुच्चयः । अत एव तत्र तथा नोक्तम् । तत्र हि व्यञ्जनान्तेषूपसंख्यानमितिवार्तिकप्रत्याख्यानाय परिभाषाद्वयमुक्तम् ॥ ८० ॥

स्वरप्रसङ्गादेवाऽऽह—**नन्विति** । अत एव तृतीयोक्तिः । तव्यत्यपि स्यादिति पाठः । स्वकर्तव्यमित्यादौ । *अपयस्तव्यप्रातिपादिकादिसमुच्चायकाः । क्विप्यपि, अक्षद्यूरित्यादौ । अत्र पदावधिकेऽन्वाख्यानेऽपरानिमित्तकत्वेन वेरपृक्तेति लोपे सेदुष इत्यत्रोक्तप्रकारो बोध्यः । एकदेशविकृतन्यायो वा । यत्त्वधातोरित्यनुवृत्त्या सिद्धेर्नेदं प्रयोजनमिति भ्रान्तः । तन्न । तस्या भाष्य एव दूषितत्वात् । अत्राऽऽद्यद्वयमाद्यपरिभाषाविषयः । अपरद्वयमन्त्यपरिभाषाविषयः । सौत्रक्रममुल्लङ्घ्य परिभाषाक्रमेणाऽऽह—**ड्येति** । तयोः[2], ड्यड्ड्यतोः । अनयोरिति पाठेऽप्येवम् । **नञ इति** । गुणप्रतिषेधविषयादित्यादि । अनुवृत्तिलब्धमिदं सर्वम् । पदस्यान्त उदात्त इति पाठः । तदर्थः, ययतोरितिसूत्रार्थः । एवं च , तयोस्तत्राऽऽभ्यामग्रहणे च । **अव्ययेति** । तत्पुरुषे तुल्यार्थेतीति भावः । स्पष्टत्वादाद्यार्थमुपेक्ष्यान्त्यार्थमाह—**तन्मात्रेति** । सर्वं वाक्यं सावधारणमिति न्यायेनेति भावः । न स एवानुबन्धो यस्येति वाच्योऽर्थः । तत्फलितमाह—**स चेति** । न्यासकाराद्युक्तधर्मिग्राहकमानलब्धार्थनिरासा-

---

* ङ. पुस्तके—अपयः, अपिशब्दा इत्यर्थः ।

---

1 क. ङ. °दात्तादिग° । 2 क. छ. °योः, ययतोः ।

एते च प्रत्ययाप्रत्ययसाधारणे । 'दिव औत्' (७।१।८४) इत्यादौ संचारितत्वात् । वर्णग्रहणे चानयोरप्रवृत्तिरिति स्पष्टं 'औङ आपः' (७।१।१८) इत्यत्र भाष्ये । येनानुबन्धेन सानुबन्धकत्वं द्व्यनुबन्धकत्वादि वा तदनुच्चारण एवैषा । धर्मिग्राहकमानात् । तेन 'जश्शसोः' (७।१।२०) इत्यत्र नैषेति निरनुबन्धकत्वात्तद्धितशस एवात्र ग्रहणं स्यादिति न शङ्क्यम् । एवमन्यतरानुबन्धोच्चारण एव । तेन 'वनो र च' (४।१।७) इत्यादौ ङ्वनिप्क्वनिपोर्ग्रहणसिद्धिः । एकानुबन्धकग्रहणे संभवतीति त्वर्थो न भाष्यादि-

याऽऽह—**एते चेति** । **दिव इति** । अत एवावतरण एतदुल्लेखः । अत एवौहोकः किंत्वं सफलमिति प्राञ्चः । एतेनाऽऽद्ये तथा सत्त्वेऽपि द्वितीये न फलमित्यपास्तम् । अतिप्रसङ्गं निराचष्टे—**वर्णेति** । **औङ इति** । ङकाराभाव आद्यया प्राप्तदोषवारणाय तथोक्तं कण्ठत इति भावः । धर्मिग्राहकमानसिद्धमेवेदमिति तदाकूतम् । तदेतद्ध्वनयन्नाह—**येनेति** । आद्य उक्त्वा * द्वितीय आह—**द्व्यनुबन्धकेति** । ह्रस्वनुड्भ्यामित्यत्र ड्मतुपोऽग्रहणात्तत्संग्रहायाऽऽह—**त्वादीति** । वाशब्दः समुच्चये । अत एवैषेत्येकवचनं + जातौ । प्रत्येकान्वये तु यथाश्रुतमेव सर्वं युक्तम् । **धर्मीति** । ङ्यङ्यतोर्ङित्करणादित्यर्थः । आद्यस्य फलमाह—**तेनेति** । उक्तार्थाङ्गीकारेणेत्यर्थः । नैषेत्यत्रान्वयः । नाऽऽद्येति तदर्थः । इतिर्न शङ्क्यमित्यत्र हेतुत्वेनान्वेति । तदेवाऽऽह—**निरेति** । वात्र, जश्शसोः शिरित्यत्र । एवं, धर्मिग्राहकमानादेव । **अन्यतरेति** । इदं द्व्यनुबन्धोच्चारणस्याप्युपलक्षणम् । अत एव फलोक्तिसंगतिः । ङ्वनिप्क्वनिपोरिति पाठ. । तयोरपीत्यर्थ. । अन्यथा द्व्यनुबन्धकत्वाद्वनिप एव ग्रहणं स्यान्न ङ्वनिपादेः । ध्वनितामिदं मतुवसोरित्यत्रत्येन वन उपसंख्यानं प्रातरित्व इति भाष्येणापि । अन्यथा वन इत्युक्त्वा प्रातरित्व इत्यन्येभ्योऽपीति क्वनिबन्तोदाहरणदानासंगतिः स्पष्टैव । स्पष्टीकृतं चैतत्तत्रैव कैयटेन । ओहाकः किंत्वं तु गःस्थकन्प्रसृत्व इति पूर्वोत्तरसाहचर्येण ह्रश्चेत्यत्राप्यद्व्यनुबन्धकस्यैव प्राप्तग्रहणाभावाय । अन्यथा कं विनाऽपि वनोरेत्यत्रेव सामान्यग्रहणं सूपपादमिति तदानर्थक्यमेव स्यात् । एतेन तस्मादनिष्टार्थापत्तिरित्यपास्तम् । **इति त्वर्थ इति** । इत्यादि त्वर्थं इत्यर्थः । अस्यापि धर्मिग्राहकमानलब्धत्वादाह—**न भाष्येति** । वनो र चेत्यादौ दोषापत्तेर्मतुवसोरित्यत्रत्यप्रागुक्तभाष्यासंगत्यापत्तेश्च । यत्तु सीरदेवादयः परिभाषात्रयं निरनुबन्धकैकानुबन्धकतदनुबन्धकेति । आद्ये उक्तज्ञापकसाध्ये उदाहरणान्युक्तान्येव । तत्तदनुबन्धोच्चारणसामर्थ्य-

* क. ड. पुस्तकयो.—तादृशलक्ष्यासंभवादाहेति पाठान्तरम् । + जाताविलस्याग्रेऽय ग्रन्थ• क ड. पुस्तकयो —धर्मिग्राहकमानसिद्धमेवेदमिति तदाकूतम् ।

१ ङ. 'हागयातो. कि° ।

संमत इत्यन्यत्र विस्तरः ॥ ८१ ॥ ८२ ॥

ननु कुटीर इत्यादौ स्वार्थिकत्वात्स्वार्थिकानां प्रकृतितो लिङ्गवचनानुवृत्तेर्न्यायप्राप्तत्वात्पुंस्त्वानुपपत्तिरप्कल्पमित्यत्र नपुंसकत्वैकवचनयोरनुपपत्तिश्चेत्यत आह—

**क्वचित्स्वार्थिकाः प्रकृतितो लिङ्गवचनान्यतिवर्तन्ते ॥ ८३ ॥**

'णचः स्त्रियाम्' ( ५ । ४ । १४ ) इति सूत्रे स्त्रियामित्युक्तिरस्या ज्ञापिका । अन्यथा 'कर्मव्यतिहारे णच् स्त्रियाम्' ( ३ । ३ । ४३ ) इति स्त्रियामेव विधानात्किं तेन । स्पष्टा चेयं बहुज्विधायके भाष्ये ॥ ८३ ॥

ननु सुपथी नगरीति 'युवोरनाकौ' ( ७ । १ । १ ) इतिसूत्रभाष्योदाहृत 'इनः स्त्रियाम्' ( ५ । ४ । १५२ ) इति कप्स्यादत आह—

**समासान्तविधिरनित्यः ॥ ८४ ॥**

'प्रतेरंश्वादयस्तत्पुरुषे' ( ६ । २ । १९३ ) इत्यन्तोदात्तत्वायांश्वादिषु राजञ्शब्दपाठोऽस्या ज्ञापकः । अन्यथा टचैवान्तोदात्तत्वे सिद्धे किं तेन । 'द्वित्रिभ्यां पाद्दन्मूर्धसु' [ ६ । २ । १९७ ] इति स्वरविधायके भाष्ये स्पष्टेयम् ॥ ८४ ॥

---

लब्धार्थानुवादस्तृतीया । तल्लक्ष्य माङि लुङिति । अत्राङितो माशब्दस्य न ग्रहणम् । तथा चङि विधीयमान द्वित्वमङि नेति । तन्न । भाष्यविरोधात् । परिभाषाद्वयस्यैव भाष्ये सत्त्वात् । तत्तदनुबन्धोच्चारणसामर्थ्यादेव माङीत्यादौ दोषाभावेन तत्परिभाषानपेक्षणाच्च । अनुबन्धादावेवमप्यनिर्वाहेण न्यूनतापत्तेश्चेति दिक् । तदाह—**इत्यन्यत्र विस्तर इति।** उद्द्योतादावित्यर्थः ॥ ८१ ॥ ८२ ॥

निषेधप्रसङ्गादाह—**नन्विति** । रस्येति शेषः । **न्यायेति** । यो[१] यत्र स तद्धर्मभागिति लौकिकन्यायेत्यर्थः । स्वार्थादिकार्याणा क्रमस्य बोध्यत्वादाह—**नपुंसकेति** । क्वचिदित्यनेन बहुषु स्थलेषु तदनुवृत्ति सूचिता । **प्रकृतीति** । आद्यादित्वात्षष्ठ्यन्तात्तसिः । अन्यथा, एतदभावे । तेन, स्त्रियामिति पदेन । ज्ञापकस्य सामान्यापेक्षत्वाद्वचनाशेऽपि सिद्धिर्बोध्या ॥ ८३ ॥

तत्प्रसङ्गादेवाऽऽह—**नन्विति** । **कबिति** । तथा च ङीब्न स्यादिति भावः । **टचैवान्तोदेति** । राजाह इतीति भावः । **द्वित्रीति** । यथा चैतत्तथा स्पष्ट कौस्तुभे । वृद्धिसञ्ज्ञाविधायके सूत्रे ॥ ८४ ॥

---

१ घ. योऽपुत्र. स ।

ननु शतानीत्यादौ नुमि कृते षट्संज्ञा प्राप्नोति ततश्च लुक्स्यात्तथोपादास्तेत्यत्राऽऽत्वे कृते 'स्थाघ्वोरिच्च' (१।२।१७) इतीत्त्वं प्राप्नोत्यत आह—

**संनिपातलक्षणो विधिरनिमित्तं तद्विघातस्य ॥ ८५ ॥**

संनिपातो द्वयोः संबन्धस्तन्निमित्तो विधिस्तं संनिपातं यो विहन्ति तस्यानिमित्तम्। उपजीव्यविरोधस्यायुक्तत्वमितिन्यायमूलैषा।

अत एवात्र संनिपातशब्देन न पूर्वपरयोः संबन्ध एव किंतु विशेष्यविशेषणसंनिपातोऽपि गृह्यते। अत एव ग्रामणि कुलमित्यादौ नपुंसकह्रस्वत्वेऽपि 'पिति कृति' (६।१।७१) इति तुग्न। प्रातिपदिका-

---

तत्प्रसङ्गादेवाऽऽह—**नन्विति। आत्व इति।** दीङा ल्यपि चेतीति भावः। **स्थाघ्वोरिति।** अस्य घुत्वादित्यादिः। यत्तु सीरदेवादय आनन्तर्यलक्षणो विधिस्तद्विघातस्यानिमित्तम्। यदानन्तर्येण यो विहितस्तदानन्तर्यमसौ न विरुणद्धीत्यर्थः। यत्संबन्धेन यो जातस्तस्य स न विघातक इति यावत्। विघात इत्यत्र भावे घञित्याहुः। तन्न। वक्ष्यमाणदूषणगणापत्तेः। तद्ध्वनयन्नाह—**संनिपात इति।** द्वयोः, पूर्वपरयोर्विशेषणविशेष्ययोश्च। तन्निमित्त इति बहुव्रीहिः। विधिरित्यत्र कर्मणि किः। तद्विघात इत्यत्र कर्मण्यणित्याह—**तं समिति।** यद्यपि सीरदेवेनोक्तमत्र ज्ञापकं न तिसृचतसृ इति निषेधः। स च विभक्तिनिमित्तयोस्तिसृचतस्रोरनया ङीप प्रत्यनिमित्तत्वाद्दीर्घप्राप्तावुपपद्यते। अन्यथा तद्व्यवहितत्वान्न स्यात्। ङीपश्च दीर्घादीर्घाभ्यामविशेषादिति। यत्तु भ्रान्तो नेदं ज्ञापक युक्तम्। स्वस्रादिषु[1] तयोः पाठान्ङीब्निषेधेन तत्साफल्यात्। प्रत्युत तत्पाठादनित्येयमिति। तन्न। कृन्मेजन्त इतिसूत्रस्थैतत्परिभाषाफलत्वखण्डकङीबभावज्ञापकपरभाष्यस्वारस्येन तयोस्तत्र पाठस्यानार्षत्वात्। अत एवैतदनित्यत्वे ज्ञापकं वक्ष्यति—कष्टायेत्यादि। अन्यैर्वाऽचि ह्रस्वश्चेत्येव सिद्धे ङिति ह्रस्वश्च वाऽमीतिसूत्रद्वयकरणमस्या ज्ञापकम्। तद्धि भ्रूणामित्यादौ नुडर्थम्। अन्यथा न स स्यात्। नुटयजादिप्रत्ययसंबन्धविनाशादित्युक्तम्। तथाऽपि वक्ष्यमाणदोषगणापत्त्या तदयुक्तमिति ध्वनयन्नाह—**उपजीव्येति।**

तत्र तमेव दोषगणं सूचयन्द्वयोः सबन्ध इत्येतत्परिष्करोति—अत एवेत्यादिना केचिदित्यन्तेन। अत एव, ज्ञापकं विहाय न्यायमूलकत्वस्योक्तत्वादेव। संबन्ध एव, आनन्तर्याख्य एव। सनिपातोऽपि, तयोर्विशेष्यविशेषणभावाख्यसंबन्धोऽपि। अस्या ज्ञापकमूलकत्वे तु तत्र तदसत्त्वात्तस्य सजातीयापेक्षत्वात्तद्ग्रहणं न स्यात्। एतत्फलमाह—**अत एवेति।** विशेष्यविशेषणभावसंबन्धस्यापि ग्रहणादेवेत्यर्थः। ग्रामणीति व्यस्तं पद क्विबन्तप्रकृतिकम्। **त्वेऽपीति।** अपिना वक्ष्यमाणसमस्तोदाहरणे उत्तरपदहेतुकह्रस्वके तुगभावस्य पूर्वसंबन्ध-

---

१ घ. ङ. °दिषा°। २ क. °रणेभूत्त°।

जन्तत्वसंनिपातेन जातस्य ह्रस्वस्य तदविघातकत्वात्। तुक्यजन्तत्व-विघातः स्पष्ट एव।

न चार्थाश्रयत्वेन ह्रस्वस्य बहिरङ्गतयाऽसिद्धत्वम्। अर्थकृतबहिरङ्गत्वा-नाश्रयणस्योक्तत्वात्। किं च 'षत्वतुकोरसिद्धः' (६।१।८६) इत्येतद्बलात्कृ-तितुग्ग्रहणाच्च तुग्विधौ बहिरङ्गपरिभाषाया अप्रवृत्तेः। सर्वविधसंनिपात-ग्रहणादेव वर्णाश्रयः प्रत्ययो वर्णविचालस्यानिमित्तं स्यादित्येतत्परि-भाषादोषनिरूपणावसरे वार्तिककृतोक्तम्। न हि प्रत्ययः पूर्वपरसंनि-पातनिमित्तकः स एव च संनिपातशब्देन गृह्यत इति मत्वा न प्रत्ययः संनिपातनिमित्तक इति शङ्कायां तदभ्युपेत्यैवाङ्गसंज्ञा तर्ह्यनिमित्तं स्यादित्येकदेशिनोक्तमिति न तद्भाष्यविरोधः।

किं चैवं शैवो गार्ग्यो वैनतेय इत्यादावप्यङ्गसंज्ञाया लोपनिमित्तत्वा-

---

ग्रहणेनैव सिद्धि सूचिता। अजन्तसनीतिपाठः। तयोस्तदाख्यसंबन्धेनेत्यर्थ। अजन्तत्व-सनीति पाठे द्वन्द्वोत्तर त्व.। सचोक्तरूपसंबन्धार्थक एव। कृत्तद्धितेति न्यायात्तद्रूपसबन्धेनेत्यर्थ इति केचित्। तन्न। द्वन्द्वेऽजन्तेत्यस्य पूर्वनिपातापत्ते.। तस्मादत्वक एव पाटः। षष्ठीतत्पु-षोत्तरपदकः षष्ठीतत्पुरुषः फले तु न भेद इत्यन्ये। वस्तुतस्तु सत्वक एव[1] पाठः। प्रातिपदिक-स्याजन्तत्वरूपविविशेषणेन यः सबन्धस्तेनेत्यर्थस्य सत्त्वादिति बोध्यम्। **तद्वीति।** सनिपातविघातकतुगनिमित्तत्वादित्यर्थः। लक्षणप्रतिपदोक्तेति न्यायेन तु न निर्वाहः। स्वत'सिद्धवद्ध्रस्वपदविहितस्यापि प्रतिपदोक्तत्वात्। एबमर्थस्यान्यत्राऽऽवश्यकत्वात्। शीघ्र-विलम्बोपस्थित्योरेव[2] तयोर्बीजत्वादिति दिक्[3]। यन्नाशप्रयुक्तस्तन्नाशस्तमाह[4]—**तुकीति।**

उक्तफलान्यथासिद्धया नात्र तस्य ग्रहणमिति कैयटाद्युक्ति खण्डयति—**न चेति।** अर्थो नपुसकत्वरूपः। तदाश्रयणमतेऽप्याह—**किं चेति।** अन्यथा तयैव सिद्धे तुक् कृतितुकोर्ग्रहणानर्थक्य स्पष्टमेव। एवमत्र तद्ग्रहणे फलमुक्त्वा प्रमाणमाह—**सर्वेति।** उभयविधेत्यर्थः। नन्वेवमुत्तरभाष्यविरोधापत्तिरत आह—**न हीति।** हिर्निश्चये। चो ह्यर्थे त्वर्थे वा। क्वचिदचः पाठः। **मत्वेति।** अनेनोक्ताशयमजानानस्येय शङ्केति सूचितम्। [5]उक्तहेतोरभ्युपेत्यवादत्वादेवाऽऽह—**एकदेशीति।**

नन्वु कैयटाद्युक्तरीत्या फलाभावेनात्र तद्ग्रहणेन पूर्वत्रारुच्यैव तद्ग्रन्थप्रवृत्तिस्तदाशय एव वा तेन प्रकाश्यत इति सिद्धान्त्युक्तिरेव साऽत आह—**किं चैवमिति।** तस्य सिद्धान्त्युक्तित्व इत्यर्थः। उक्तप्रकारेणेत्यर्थो वा। बहुषु दोषसूचनायानेकोदाहरणोपन्यासः। **दावपीति।** अपिर्द्वाक्षिप्तसमुच्चायकः। नापत्त्या, तुल्यया। एव च वार्तिककृतस्तथेष्टत्वे प्रत्ययो

---

१ ङ पाठोऽपेक्षितः प्रा॰। २ ङ. 'रेवैत॰। ३ क. ख. ङ. ॰क्। तुकीति। ४ ङ. ॰माहे-त्यर्थः। उ॰। ५ ङ. उक्ते हे॰।

**नापत्त्या वर्णाश्रय इत्यस्य वैयर्थ्यम् । ग्रामणिकुलं ग्रामणिपुत्र इत्यादा-वुत्तरपदनिमित्तके ह्रस्वत्वे यथाकथंचिद्बहिरङ्गपरिभाषयाऽपि वारणं संभवतीति 'ङ्मो ह्रस्वात्' (१ । १ । ३९) इत्यत्र 'ह्रस्वस्य पिति' (६ । १ । ७१) इति सूत्रे चैकदेशिना तया परिभाषया तुग्वारितो भाष्ये। अत एव परिभाषाफलत्वेनेदमुक्तं 'ङ्मो ह्रस्वात्'(१।१।३९) इति सूत्रे वार्तिककृतेति केचित् ।**

**संनिपातलक्षणविधित्वमस्या लिङ्गम् । स्वप्रवृत्तेः प्राक् स्वनिमित्त-भूतो यः संनिपातस्तद्विघातस्य स्वातिरिक्तशास्त्रस्य स्वयमनिमित्तमिति फलति ।**

---

वर्णविचालस्येत्येव वदेदिति न तत्रारुच्या[1] तत्प्रवृत्तिर्नापि तदाशयप्रकाशनमिति तथैव युक्तमिति भावः । नन्वेव समस्ते ग्रामणिकुलमित्यादावुत्तरपदहेतुकह्रस्वत्वेऽपि तुकोऽनयैव वारणसंभवे-नान्यथावारणपरभाष्यविरोधोऽत आह—**ग्रामणीति** । षष्ठीतत्पुरुषः । नाजानन्तर्य इति-निषेधार्थस्य[2] जागरूकत्वादाह—**यथाकथंचिदिति** । निषेधार्थमनाश्रित्येत्यर्थः । **षयाऽ-पीति** । अपिरेतत्परिभाषासमुच्चायकः । **संभवेति** । न तु वास्तवं वारणमिति भावः । इतिहेतौ । ङ्मो ह्रस्वात् इत्यत्रेति पाठः । उक्तज्ञापकात्तुग्विधौ तदप्रवृत्तेरुक्तहेतोश्चाऽऽह—**चैकेति** । तया, बहिरङ्गपरिभाषया । एतेन तत्रत्यकैयटश्चिन्त्य एवेति सूचितम् । अत्रार्थे युक्त्यन्तरमपि सूचयन्नाह—**अत एवेति**[3] । उक्तरीत्योक्तभाष्यस्यैकदेशयुक्तित्वा-देवेत्यर्थः । **परीति** । एतत्परीत्यर्थः । नेदं, तुग्वारणफलकं ग्रामणिकुलमित्यादि । यद्यप्युपजीव्येत्यादिकृतेत्यन्तः प्रागुक्तः सर्वोऽर्थः सिद्धान्त एवेति केचिदित्यनुपपन्नं तथाऽपि प्रागुक्तः परिभाषाया यथाश्रुतोऽर्थः कैयटादिसमतार्थसंग्राहकत्वान्न सिद्धान्त इति सूचनाय तत् । तद्ध्वनयन्सिद्धान्तं वक्ष्यति स्वेतीति । केचिद्भाष्यतत्त्वविद इत्यर्थकं तदित्यन्ये । उपायस्योपायान्तरादूषकत्वान्न तत्तदेकदेशयुक्तित्वसाधकमित्यरुचेरत एवेत्यादिचरममात्रोक्तौ[4] तद्बोधकमिति परे ।

परिभाषाया लिङ्गवत्त्वादिनियमात्फलमुक्त्वा लिङ्गमाह—**संनीति** । सनिपातलक्षण-विधिः स्वप्रवृत्त्युत्तरीवद्यमानसंनिपातस्य विघातकस्यानिमित्तमिति कैयटादीष्टार्थो न युक्त इति ध्वनयंस्तं[5] समित्यादि परिष्करोति—**स्वप्रवृत्तेः प्रागिति** । अत्र स्वादिपदेन संनिपातलक्षणविधिः । अयं भावः—यं[6] संनिपातं निमित्तीकृत्याग्रिमकार्योपजीव्यं यत्कार्यं प्राप्तं तस्य लेशतस्तद्विघातकत्वेऽपि लेशतोऽनुवृत्तसंनिपातसर्वांशविघातकशास्त्रान्तरानिमि-

---

१ घ. °रुचिर्ना° । २ घ. °षेधम° । ३ ङ. °दं, तत्र तु° । ४ घ. °त्रोक्तबोध° । ५ घ. °स्तत्प्रवृत्त्यादि । ६ ग. ङ. यत्संनि° ।

नन्वेवं रामायेत्यादौ 'सुपि च' (७।३।१०२) इतिदीर्घानापत्तिः। अदन्ताङ्गङेसंनिपातेन जातस्य यादेशस्य तद्विघातकत्वात्। न च यञादित्वसापेक्षदीर्घस्य बहिरङ्गतयाऽसिद्धत्वान्नात्र संनिपातविघात इति वाच्यम्। आरोपितासिद्धत्वेऽपि वस्तुतस्तद्विघातस्य जायमानत्वेनैतत्प्रवृत्तेः। किं चान्तरङ्गे कर्तव्ये बहिरङ्गस्यासिद्धत्वेऽपि तत्र कृते तस्यासिद्धत्वे मानाभावः। किं चाऽऽतिदेशिकसंनिपातविघाताभावमादायैतदप्रवृत्तौ गौरीत्यादौ संबुद्धिलोपेऽपि स्थानिवत्त्वेन ह्रस्वनिमित्तसंनिपातविघाताभावात्तत्रैतस्यातिव्याप्तिपर 'कृन्मेजन्तः' (१।१।३९) इतिसूत्रस्थभाष्यासंगतिः। संनिपातस्याशास्त्रीयत्वान्नात्र स्थानिवत्त्वमिति चेत्तर्ह्यत्रासिद्धत्वमपि कथमिति विभावय। अशास्त्रीयेऽसिद्धत्वाप्रवृत्तेः 'ईदूदेत्' (१।१।११) इति सूत्रे कैयटेन

---

त्त्वमित्यर्थः। यत्तदोर्नित्यसबन्धात्प्रत्यासत्तेश्च। अत एवैओङिको गुणेतिसूत्रभाष्यसंगतिः। तत्रत्यकैयटादीनां तु प्रमाद एव। उक्तहेतोः। सिद्धान्ते जातिपक्षेऽनिर्वाहाच्च। स्पष्टं चेदमुद्द्योतादाविति।

उक्ताशयेनैव शङ्कते—**नन्विति**। एवं, परिभाषाङ्गीकारे। नापत्तिः, अप्राप्तिः। **तद्वीति**। अदन्ताङ्गङेसनिपातविघातकदीर्घविध्यनिमित्तत्वादित्यर्थः। संनिपातविघात इत्यत्र भावे घञ्। एवमग्रेऽपि। एव च दीर्घविधौ तद्विघातकत्वान्नैतत्प्रवृत्तिरिति भावः। ननु संनिपातलक्षणविधिनिमित्तानिमित्तकत्वस्यात्राङ्गीकारात् किमस्या अन्तरङ्गत्वमुत यादेशस्येतिचेत्तत्र नाऽऽह्य इत्याह—**आरोपितेति**। **नैतत्प्रवृत्तेरिति**। स्वरूपसद्विघात एवैतत्प्रवृत्तौ निमित्तमिति भावः। नान्त्य इत्याह—**किं चान्तेति**। यत[1] इति शेषः। एवमग्रेऽपि। तत्र, अन्तरङ्गे। ननु तज्ज्ञानमेवैतत्प्रवृत्तौ निमित्तमास्तामित्यनाद्यदोषेण तत्पक्षः सम्यगेवात आह—**किं चेति**। गौरीत्यस्य हे इत्यादिः। **स्थानीति**। आद्यसूत्रेणेति भावः। नियमशास्त्राणां निषेधमुखेन प्रवृत्तिरिति पक्षेणेदम्। विधिमुखेनेति सिद्धान्तपक्षे प्रत्ययलक्षणेनेति बोध्यम्। ह्रस्वेत्यस्याम्बार्थेतीत्यादिः। तत्र, हे गौरीत्यादौ। **भाष्येति**। नदीह्रस्वत्व संबुद्धिलोपस्यानिमित्तं स्यादित्यादिभाष्येत्यर्थः। तदसंगतिनिरासाय शङ्कते—**संनीति**। अभावाभावस्य प्रतियोगिरूपत्वामिति मत इदम्। अतिरिक्तत्वे तु फलितार्थकथनमिदम्। वस्तुतः स एव नेति मञ्जूषाया स्पष्टमिति बोध्यम्। नात्र, संनिपाते। तर्ह्यत्रेति पाठः। उक्तोऽर्थः। क्वचिदुभयत्र तत्रेत्येव पाठः। तत्राऽऽद्यस्य हे गौरीत्यादौ द्वितीयस्य रामायेत्यादावित्यर्थः। **कथमिति**। अत एव पुग्ह्रस्वत्वस्यादीदपदिति भाष्य-

---

१ ख. ग. ङ. °मिति नाऽऽद्य°।

स्पष्टमुक्तत्वात्। एवं च पूर्वत्रासिद्धीयेऽपि कार्यं एतत्परिभाषाप्रवृत्तिर्भ-वत्येवेति चेन्न। 'कष्टाय' (३।१।१४) इति निर्देशेनैतस्या अनित्यत्वात्।

ययोः संनिपातस्य विघातकं शास्त्रं तयोः संनिपातनिमित्तकवि-धावुपादानमपेक्षितमिति तु नाऽऽग्रहः। अत एव दाक्षिरित्यत्राकारान्त-प्रकृतीञ्संनिपातनिमिताङ्गसंज्ञाऽनया परिभाषयाऽल्लोपस्य निमित्ते न स्यादित्याशङ्क्यानित्यत्वेन समाहितं 'कृन्मेजन्तः' (१।१।३९) इति सूत्रे भाष्ये। न ह्यङ्गसंज्ञायामदन्तस्याङ्गसंज्ञेत्युक्तमस्ति। न च कुम्भकारेभ्य आधय इत्यादावव्ययसंज्ञाया अनया परिभाषया वारण-परभाष्यासंगतिः। अनया परिभाषया लुङ्मा भूत्। अव्ययत्वं तु स्यादेव। लुका हि तदीयसंनिपातस्य विघातो नाव्ययसंज्ञया। संज्ञाफलं

---

संगतिरिति भावः। अत एवाऽऽह—**स्पष्टमिति**। अन्यथा भाष्यं विहाय कैयटपर्य-न्तधावनासंगतिः स्पष्टैव। एव च, अशास्त्रीयेऽसिद्धत्वाप्रवृत्तौ च। नैतस्या इति पाठः। क्वचिन्नास्या इति पाठः।

अस्याः सिद्धान्तार्थे उक्ते प्रागुपस्थितातिव्याप्तिमनित्यत्वेन परिहृत्य पुनस्तदर्थे द्वेधा शङ्का वारयन्परिष्करोति—**ययोरित्यादिसुबाश्रयत्वादित्यन्तेन**। ययोः संनिपा-तस्य विघातक शास्त्र तयोः संनिपातनिमित्तकविधावुपादानमिति पाठः। उपादानमित्यस्य विशिष्येत्यादिः। अत एवाग्रिमात एवेत्यादिग्रन्थसगतिरिति बोध्यम्। ययोः संनिपातः कार्यस्य निमित्तं तयोः सूत्र उपेति[२] पाठान्तरम्। उक्त एवार्थः। अत्र भाष्यविरोधापत्ते-रिति हेतु सूचयन्नुक्तं द्रढयति—**अत एवेति**। तदनाग्रहादेवेत्यर्थः। अत एवेत्यस्य समाहितमित्यत्रान्वयः। शङ्काया एकदेश्युक्तित्वस्य प्रागुक्तत्वात्। अन्यथा प्रागुक्ताशया-नभिज्ञोक्तत्वेन[३] शङ्कायास्तत्त्ववदेतदनभिज्ञोक्ततया[४] शङ्कायोजनेऽपि तथैव समाधेर्वक्तव्यतया तथासमाधानासंगतिः स्पष्टैवेति भावः। तदेवाऽऽह—**न ह्यङ्गेति**। न हि तद्विधावद-न्तस्येत्यङ्गसंज्ञेत्युक्तमित्यर्थः। अत्र भाष्यविरोधं परिहर्तुं शङ्कते—**न चेति**। **त्यादा-विति**। आदिना चिकीर्षव इत्यादिसंग्रहः। अण्क्युप्रत्ययानां कृत्वादेत्वाद्युत्तरं कृन्मे-जन्त इति प्राप्तिर्बोध्या व्यपदेशिवद्भावेन। न चान्तग्रहणान्नित्ययोगबहुव्रीहिणोपदेश एजन्त इत्यर्थादत्र न दोषः। अनयैव सिद्धेऽन्तग्रहणं न कार्यमिति भाष्याशयात्। असंगतिमुपपाद-यति—अनयेति। नन्वेवमफलत्वान्न संज्ञाऽत आह—**संज्ञाफलमिति**। **एतदिति**।

---

१ घ. विशेष्येत्या°। २ ग. ङ. °ति त्वपाठः। अस्या तत्त्वेनानुद्देशात्। विधौ तयोस्तस्या-तत्त्वाच्च। अ°। ३ ग. घ. °भिज्ञत्वे°। ४ ग. घ. °भिज्ञतया। ५ घ. °न्तस्याङ्ग°।

त्वकच्स्यादिति वाच्यम् । एतदुदाहरणपरभाष्यप्रामाण्येन साक्षात्परम्परया वा स्वनिमित्तसंनिपातविघातकस्य स्वयमनिमित्तमित्यर्थेनादोषात् । एतेनात्राकच्स्यादित्यपास्तम् । न च कार्यकालपक्षे लुगेकवाक्यतापन्नसंज्ञाबाधेऽप्यकजेकवाक्यतापन्ना स्यादिति वाच्यम् । अन्तरङ्गायां तदेवाक्यतापन्नसंज्ञायां बहिरङ्गगुणादेरसिद्धत्वात् । लुगेकवाक्यतापन्ना तु न गुणादितोऽन्तरङ्गोभयोरपि शब्दतः सुबाद्याश्रयत्वात् ।

'न यासयोः' (७।३।४५) इति निर्देशाच्चैषाऽनित्या । तेन नातिप्रसङ्गः । स्पष्टा चेयं 'कृन्मेजन्तः' (१।१।३९ इति सूत्रे भाष्ये ।

---

अस्या अकज्रहितोदाहरणेत्यर्थः । **इत्यर्थेनेति** । अस्या इति शेष. । क्वचिदेतदर्थेनेति पाठः । एतेन, उक्तार्थेनानयाऽव्ययत्ववारणेन । नन्वेवमपि भाष्यस्यैकदेश्युक्तित्वमावश्यकमेवेति किमर्थं तथार्थकरणमित्याशयेनाऽऽशङ्कते—**न चेति** । एकवाक्यताया मुख्यत्वाच्चाऽऽह—**कार्येति** । **जेकेति** । तस्याः परम्परया तत्त्वेऽप्यस्या अतत्त्वादिति भावः । **अन्तरङ्गेति** । अनैमित्तकत्वेनापरानिमित्तकत्वेन वा । तथा चैजन्त एव नेति भावः । नन्वेव तस्या अप्येव वारणेन भाष्यासंगतिरेवात आह—**लुगेकेति** । दितोऽन्तरङ्गेति पाठः । **सुबाद्याश्रयत्वादिति** । सुपि परे कृद्य एजन्तस्तदन्तमव्ययसंज्ञं तस्मात्तस्य च लुगित्यर्थः । आदिनाऽव्ययरूपप्रकृत्यादिसंग्रहः । तथा चैकैकनिमित्तकत्वेस्योभयत्र तुल्यत्वेनानैमित्तिकत्वादि न तत्रेति भावः । यद्यपि प्राग्वदपरनिमित्तकत्वेन तत्त्व सुवचं तथाऽप्यल्पनिमित्तकत्वादिना वैपरीत्यमेवं । तस्य ततः प्राबल्यस्य प्रागुक्तत्वात् । उक्तभाष्यमप्यत्र गमकमिति भावः । भाष्यप्रामाण्यात्तत्र यथोद्देश एवेत्यन्ये । वस्तुतस्तु गुणस्याधिकनिमित्तकत्वेनान्यनिमित्तकत्वरूपान्तरङ्गत्वं तत्र सुवचम् । किं चैकवाक्यत्वेऽपि वाक्यैकवाक्यतया सज्ञाया संनिमित्तकत्वमेव दुरुपपादमित्यन्तरङ्गायामिति युक्तमेवेति तया तस्या वारणेऽप्युपायस्योपायान्तरादूषकत्वेन न भाष्यासंगतिरिति बोध्यम् । अनित्यत्वात्तत्र तदप्रवृत्तिरिति भाष्याशय इत्यन्ये ।

ननु कष्टायेतिनिर्देशेन दीर्घ एवानित्यत्व स्यादत आह—**न येति** । अत एव च—प्रयोगः । **भाष्य इति** । तत्र हि कुम्भकारेभ्य इत्यादावनतिप्रसङ्गार्थं कृतस्यानन्यप्रक-

---

१ घ. °क्यत्वाय मु° । २ ग. °व. । भाष्यस्यैकदेश्युक्तित्व परिहरति—लु° । ३ ङ. परे कृयजन्त° । ४ घ. चैक° । ५ घ. °त्वस्यतु° । ६ घ °कत्वेन य° । ७ घ. °व स्यात्ततः । ८ घ. ङ. सनैमि° । ९ घ. ङ. °कत्व दु° । १० घ. ङ. °दमेवेत्स° । ११ घ. मेव । एवं तस्या द्वा° । १२ ङ. °स्यार्थं कृ° ।

अस्या अनित्यत्वे फलानि भाष्ये परिगणितानि । वर्णाश्रयः प्रत्ययो वर्णविचालस्यानिमित्तम् । दाक्षिः । आत्वं पुग्विधेः । क्रापयति । पुग्ह्रस्वत्वस्य । अदीदपत् । त्यदाद्यकारष्टाब्विधेः । या सेति । इड्विधिराकारलोपस्य । पपिवान् । 'ह्रस्वनुड्भ्यां मतुप्' ( ६ । १ । १७६ ) 'अन्तोदात्तादुत्तरपदात्' ( ६ । १ । १६९ ) इति मतुब्विभक्त्युदात्तत्वं पूर्वनिघातस्य । अग्निमान् । परमवाचा । नदीह्रस्वत्वं संबुद्धिलोपस्य । नदि कुमारीत्यादि । यादेशो दीर्घत्वस्य । कष्टाय । इतोऽन्यत्र प्रवृत्तिरेव दोषाः खल्वपि साकल्येन परिगणिता इति भाष्योक्तेरित्यन्यत्र विस्तरः ॥ ८५ ॥

ननु पञ्चेन्द्राण्यो देवता अस्य पञ्चेन्द्र इत्यादौ 'द्विगोर्लुक्' ( ४।१। ८८ ) इत्यणो लुकि 'लुक् तद्धित' ( १ । २ । ४९ ) इति स्त्रीप्रत्ययलुक्यानुकः श्रवणापत्तिरत आह—

**संनियोगशिष्टानामन्यतरापाय उभयोरप्यपायः ॥ ८६ ॥**

अत्र च 'बिल्वकादिभ्यश्छस्य लुक्' ( ६ । ४ । १५३ ) इतिसूत्रस्थं छग्रहणं ज्ञापकम् । तद्धि छमात्रस्य लुग्बोधनद्वारा कुको

---

तिरिति वार्तिकस्य खण्डनायेयमुक्ता । परिभाषाऽनित्यत्वयोर्व्यवस्थामाह—**अस्या इति** । नन्ववर्णाश्रय इति पाठ आत्रेयादीनामसंग्रहोऽत आह—**वर्णाश्रय इति** । विचालो लोपः । अनिमित्तमित्यस्याग्रे सर्वत्र संबन्धः । अनया स्यादित्यस्य सर्वत्र शेषः । दाक्षिरित्यादिलक्ष्यनिर्देशः । **या सेतीति** । इतिराद्यर्थकः । **मतुब्विभक्त्युदेति** । मतुब्विभक्त्योरुदात्तत्व इत्यर्थः । जातावेकवचनम् । यथासंख्यमन्वयः । ह्रस्वेति सूत्रेऽन्तोदात्तादित्यस्यानुवृत्तिर्बोध्या । **त्यादीति** । आदिना गौर्यादिपरिग्रह. । यादेशो दीर्घत्वस्य कष्टायेति पाठः । इतः, नवभ्यः । यद्यपीदानीतनभाष्यपुस्तकेषु चरमवार्तिक न दृश्यते तथाऽपि तद्भ्रष्टमिति बोध्यम् । अत एवैते दोषाः समा इति भाष्यसंगतिस्तदाह—**इत्यन्यत्रेति** । उद्द्योतादावित्यर्थः ॥ ८९ ॥

तत्प्रसङ्गादेवाऽऽह—**नन्विति** । **इत्यादाविति** । आदिना पञ्चधीवेत्यादौ रकारपरिग्रहः । तत्र पञ्चभिर्धीवरीभि' क्रीत इत्यर्थ आर्हीयस्य ठकोऽध्यर्धेति लुक् । **संनीति** । निर्धारणषष्ठी । **अन्यतरेति** । शास्त्रतः प्राप्ते सतीति शेषः । **छमात्रेति** । मात्रशब्दोऽवधारणे । इत्यर्थं, इतिप्रयोजनकम् । एतदभावे बिल्वकादितः परत्वं छस्यैव न तु कुक इति छग्रहण विनाऽपि तस्यैव लुगिति तद्वैयर्थ्यं स्पष्टमेव । नन्वकारोच्चारणात्स्वार्थ-

---

१ ड. °जकम् ।

निवृत्तिर्यथा स्यादित्यर्थम् । कृतकुगागमा नडाद्यन्तर्गणबिल्वादय एव तत्र निर्दिष्टा बिल्वकादिशब्देन ।

न चैवमपि छग्रहणं व्यर्थम् । कृतकुगागमानुवादसामर्थ्यादेव तदनिवृत्तिसिद्धेः । अन्यथा बिल्वादिभ्य इत्येव वदेत् । लक्षणप्रतिपदोक्तपरिभाषया बिल्वादिपुरस्कारेण विहितप्रत्ययस्यैव लुग्विधानान्नातिप्रसङ्ग इति वाच्यम् । ततोऽपि प्रतिपदोक्तत्वेन 'बिल्वादिभ्योऽण्' (४।३।१३६) इति विकाराद्यर्थस्य लुगापत्तिवारणार्थं कुगनुवादचारितार्थ्यात् ।

---

कप्रत्ययान्तग्रहणात्तत्प्रकृतिकान्यप्रत्ययव्यावृत्त्या तस्य साफल्यात्कथ ज्ञापकताऽत आह—**कृतेति** । अत्र हेतुगर्भं विशेषणमाह—**नडाद्यन्तरिति** । तत्र, बिल्वकादिभ्य इति सूत्रे । आगन्तुनाऽकारेणेति शेषः । शीघ्रोपस्थितेः । अन्यथा छग्रहणेऽपि कप्रत्ययान्ताच्छस्यैवासभवेन सूत्र व्यर्थमेव स्यादिति भावः ।

अचारितार्थ्येन ज्ञापकत्व विघटयति—**न चैवमपीति** । न चेत्यस्य वाच्यमित्यन्वयः । उक्तरीत्योक्तार्थे ज्ञापितेऽपीत्यर्थः । **नुवादेति** । निर्देशेत्यर्थः । **तदनीति** । कुकोऽनिवृत्तीत्यर्थः । अन्यथा, तदनुवादस्य तदनिवर्तकत्वाभावे । **इत्येवेति** । ततः परस्य प्रत्ययस्य लुगित्यर्थ उक्तन्यायेन कुकोऽपि निवृत्तिसिद्धेः । तथा च छग्रहणस्य चारितार्थ्येन ज्ञापकोपपत्तावपि तन्निर्देशवैयर्थ्यं दुरुद्धरमेवेति तत्सामर्थ्यात्तदनिवृत्तिसिध्या तद्वैयर्थ्यं सुस्थमेवेति भावः । ननु तथा दुर्वचम् । अनतिप्रसङ्गाय तन्निर्देशावश्यकत्वात् । तथाहि—तथा सति बिल्वेभ्य इत्यादावातिप्रसङ्गः । भस्येत्यधिकारेण निर्वाहे तु बिल्वायेत्यादौ सः । हलस्ताद्धितस्येति ताद्धितग्रहणानुवृत्त्या न स इति तु न । तस्यावयवषष्ठ्यन्तत्वादस्वरितत्वाच्च । तस्येदमित्यणो लुगापत्तेश्च । एतेनाऽऽपत्यस्य चेत्यतस्ताद्धित इत्यस्यानुवृत्तिरपि निरस्ताऽत आह—**लक्षणेति** । प्रतिपदोक्तस्वस्वरूपमाह—**बिल्वादीति** । बिल्वादितो विहितेत्युक्ते कुको निवृतिर्न स्यादत आह—**पुरस्कारेणेति** । विशिष्यानुसंधानेनेत्यर्थः । एव च तत एवेष्टसिध्या तन्निर्देशानर्थक्यापत्तिरेवातस्तत्सार्थक्याय तथोक्तौ ज्ञापितेऽपि तदचारितार्थ्यं सिद्धमित्यज्ञापकत्वमिति भावः । ततोऽपि, नडादिच्छादपि । **प्रतीति** । विशिष्योच्चारितत्वेनेत्यर्थः । **णितीति** । विहितस्येति शेषः । **विकाराद्यर्थस्येति** । आदिनाऽवयवपरिग्रहः । अण इति शेषः । **तार्थ्यादिति** । एवं चानया प्राप्तकुग्निवृत्त्यभावाय छग्रहणस्य चारितार्थ्याज्ज्ञापकत्वं सुस्थमिति भावः । नन्वेवमप्ययुक्तमेतत् । अनतिप्रसङ्गाय तस्य चारितार्थ्येन ज्ञापकत्वासंभवात् । तथा हि छग्रहणाभावे

---

१ ष. °षः । अन्यथा शीघ्रोपस्थितेः कप्रत्ययान्तग्रहणेऽपि छस्यै° । २ ङ. न्था. अनु° । ३ छ. °र्तकाभा° । ४ घ. पुस्तके 'रुपपादमे° इति पाठान्तरम् । ५ घ. तत्वासामर्थ्यादनि° । तत्रैव °र्थ्याद्वानि° इति पाठान्तरम् ।

**समुच्चयार्थकचशब्दयोगे तु विधेययोरेककालिकत्वैकदेशत्वनियमा-न्यायसिद्धाऽपीयम् । यत्तु णाविष्ठवदित्यनेन पुंवत्त्वविधानमेतदनित्यत्व-ज्ञापनार्थमन्यथैतयतीत्यादौ टिलोपेनैव ङीपि निवृत्ते संनियोगशिष्टपरि-भाषया नस्यापि निवृत्त्यैतयतीत्यादिसिद्धौ पुंवत्त्ववैयर्थ्यं स्पष्टमेवेति 'टेः' ( ६ । ४ । १५५ ) इति सूत्रे कैयटस्तन्न । इडविडमाचष्ट ऐडविडयती-त्यादौ पुंवत्त्वस्याऽऽवश्यकत्वात् । ऐनेयः श्यैनेय इत्यादि तु स्थानिव-**

---

बिल्वकादिभ्य इत्युक्तौ कृतकुगागमनिर्देशस्यैवानिश्चयेन प्रत्युताकारोच्चारणेन कप्रत्ययान्त-स्यैव ग्रहणापत्तौ कप्रत्ययान्तस्थले बिल्वकेभ्य इत्यादावुक्तरीत्या वारणेऽपि बिल्वकायेत्यादौ तस्येदमित्यणन्ते कोपधाच्चेति विकाराद्यर्थकाणन्ते च बैल्वकमित्यादौ चातिप्रसङ्गः । यत्त्व-नुदात्तादेश्चेत्यञन्ते स इति कैयटस्तन्न । अणोऽपवादत्वात् । नस्तद्धित इत्यतस्तद्धितग्रहणा-नुवृत्त्या सिद्धान्ते स्थितयाऽन्यत्र[1] क्लृप्तया तद्धिते पर इत्यर्थेन[2] तत्र निर्वाहे तु चातुरर्थ्य-न्तर्गतमत्वर्थार्थकनडादिच्छान्तप्रकृतिकमवार्थकाणन्तप्रकृतिकवृद्धत्वहेतुकच्छान्ते बैल्वकीय-मित्यत्र प्रागुक्ताणन्तप्रकृतिकवृद्धत्वहेतुकच्छान्तप्रकृतिकयोपधत्वहेतुकवुञन्ते बैल्वकीयैक[3]-मित्यत्र चैकदेशविकृतन्यायेन बिल्वकात्परत्वेनातिप्रसङ्गः । बिल्वकादिभ्यो विहितस्येति व्याख्यानेना[4]ऽऽद्ये निर्वाहेऽप्यन्त्ये प्रागुक्ताणन्तप्रकृतिकवृद्धत्वहेतुकच्छान्ते च स तदवस्थ एवेति भाष्याद्यनुपपन्नमेवेति चेन्न । लक्षणप्रतिपदोक्तेति परिभाषया बिल्वकादिशब्दपुरस्का-रेण विहितस्येत्यर्थेनादोषात् । न चैवमप्यसम्भवो लक्ष्येऽतत्त्वादिति वाच्यम् । तया भाविकु-गागमकबिल्वादिशब्दपुरस्कारेण विहितस्येत्यर्थाङ्गीकारात् । गणपाठस्य शीघ्रोपस्थितिक-त्वात् । न हि कान्ताना क्वचित्पाठोऽस्ति । गणपाठसत्त्वेनैव च प्रकारवाचिता नादिशब्दस्य । छग्रहणसत्त्वे तस्यैव सम्भवाच्च । एवं च न वैपरीत्यादीत्यगत्याऽऽगन्तुनाऽकारेणैव निर्देश इति सर्वं युक्तमिति दिक् ।

**योगे त्विति** । तुनाऽन्यत्रास्या ज्ञापकसिद्धत्वमेवेति सूचितम् । **नियमादिति** । कालिकदैशिकसमनियतत्वरूपव्याप्तिप्रतीतेरित्यर्थः । **यासिद्धाऽपीयमिति** । अपिना ज्ञापकसिद्धत्वसमुच्चयः । चेयमिति पाठेऽप्येवम् । इत्यनेन, टेरित्यत्रत्यवार्तिकेन । तत्र पुंवद्भावस्य पाठात् । **ज्ञापनार्थमिति** । अत एव श्यैनेय इत्यादिसि-द्धिरिति भावः । अन्यथा, एतदानित्यत्वाभावे । **नैवेति** । एवः पुंवत्त्वव्यवच्छे-दाय । **टेरिति सूत्र इति** । तुरिष्ठ इत्यग्रिम इत्यर्थः । **ऐडेति** । न हीदं टिलोपेन सिध्यतीति भावः । आदिना दरदमाचष्टे दारदयतीत्यादिपरिग्रहः । नन्वेवमुक्तरूपासिद्धिरत आह—**ऐनेय इति** । आदिना रौहिणेय इत्यादिपरिग्रहः । **स्थानीति** । अचः

---

१ ङ. °त्र कृतया । २ घ. °र्थे परे इत्यर्थेन । ३ घ. °यमि° । ४ घ. ङ. °ने त्वाद्ये ।

त्वेन सिद्धमित्यन्यत्र विस्तरः ॥ ८६ ॥

ननु चुरा शीलमस्याः सा चौरीत्यादौ 'शीलम्' (४ । ४ । ६१) 'छत्रादिभ्यो णः' (४ । ४ । ६२) इति णे ङीब्न प्राप्नोतीत्यत आह—

**ताच्छीलिके णेऽण्कृतानि भवन्ति ॥ ८७ ॥**

'अन्' (६ । ४ । १६७) इत्यणि विहितप्रकृतिभावबाधनार्थं 'कार्मस्ताच्छील्ये' (६ । ४ । १७२) इति निपातनमस्या ज्ञापकम् । ताच्छीलिकणान्तात् 'अणो द्व्यचः' (४ । १ । १५६) इति फिञ्सिद्धिरप्यस्याः प्रयोजनमिति नव्याः । ताच्छीलिक इत्युक्तेः 'तदस्यां प्रहरणम्' (४ । २ । ५७) इति णे दाण्डेत्येव । 'कार्मः' (६ । ४ । १७२) इति सूत्रे भाष्ये स्पष्टा ॥ ८७ ॥

---

परेत्यनेन । अत एव भस्याढ इत्यत्राढ इति सफलम् । एतेनास्या अनित्यत्वेऽढ इति प्रतिषेधो ज्ञापक इति सीरदेवाद्युक्तिः परास्ता । ज्ञापकसिद्ध न सर्वत्रेत्येवमनित्यत्व त्वस्त्येव । अत एव श्रौत्रमित्यादिसिद्धिः । अत एव समुदायनिपातनपक्षेण सह न फलभेदः । स्पष्टा चेय बिल्वकादिभ्य इति सूत्रे भाष्ये तदाह—**इत्यन्यत्रेति** । शेखरादावित्यर्थः ॥८६॥

उक्तपरिभाषाविषयस्य बौद्धस्य तद्धितस्याणश्च प्रसङ्गादाह—**नन्विति** । आदिना तापसीत्यादिपरिग्रहः । परिभाषाविषयत्वायानुवृत्त्यर्थमाह—**शीलमिति** । **ङीब्नेति** । विधायकाभावादिति भावः । **ताच्छीति** । ननु शीलमित्येवार्थो न तु तच्छीलमित्याक्तेस्तच्छीलमितिवत् । एव च ताच्छीलिक इत्ययुक्तमिति चेन्न । प्रथमान्तार्थसबन्धि शीलरूपार्थभवत्वेन[1] ताच्छीलिकत्वोक्तेः । यद्वा यस्य तच्छील तस्य तच्छीलत्वात्तत्रभवत्वेनाऽऽर्थिकार्थमादाय तत्त्वोक्तेः । एतेन ताच्छील्य इत्यपि सिद्धम् । **कृतानीति** । अणा कृतान्यन्यत्र[2] कार्याणीत्यर्थः । **ज्ञापकमिति** । कार्म इत्यत्र च्छत्रादित्वाण्णः । अन्यथा तदप्राप्त्या नस्तद्धित इत्येव सिद्धे तद्वैयर्थ्य स्पष्टमेवेति भावः । ज्ञापकसिद्धस्यासार्वत्रिकत्वाच्छात्रेत्येव । अत एव च्छत्रादिभ्योऽणिति न सूत्रितम् । एतेन तथैवोचितमिति सीरदेवाद्युक्तमपास्तम् । **नव्या इति** । दीक्षितादय इत्यर्थः । अत एव परिभाषायामुपक्रमभाष्ये चाण्कृतानीति बहुवचनप्रयोगसगतिरिति तदाशयः । अनेनारुचिः सूचिता । तद्बीज तु तत्रापत्यार्थकाण एव ग्रहणेन सामान्यातिदेश इति न्यायेन तदनतिदेशः । अत एवोपसहारभाष्येऽणन्तादितीकार. सिद्धो भवतीत्येवोक्तमिति । **तदस्यामिति** । एव * कुत्सने

---

* गोत्रस्त्रिया. कु° ।

---

1 ख. °वत्वकृतता° । 2 क. ङ. °तान्यत्र ।

ननु कंसपरिमृड्भ्यामित्यादौ मृजेर्वृद्धिर्दुर्वारेत्यत आह—

धातोः कार्यमुच्यमानं तत्प्रत्यये भवति॥ ८८ ॥

भ्रौणहत्ये तत्वनिपातनमस्या ज्ञापकम्।

धातोः स्वरूपग्रहणे तत्प्रत्यये कार्यविज्ञानमिति पाठस्तु प्रसृड्भिरित्यादौ 'अनुदात्तस्य चर्दुपधस्य' (६।१।५९) इत्यमापादनेन भाष्ये दूषितः। यत्कार्यं प्रत्ययनिमित्तकं तत्रेयं व्यवस्थापिका। तेन पदान्तत्वनिबन्धनं 'नशेर्वा' (८।२।६३) इति कुत्वं प्रणड्भ्या-

---

ण च * णफिञौ + वृत्तिभ्यो ण × आचरिभ्यो ण इत्यादावपि बोध्यम् ॥ ८७ ॥

प्रत्ययप्रसङ्गादेवाऽऽह—नन्विति। दुर्वेति। क्विबन्तानां धातुत्वान्मृजित्वाद्भ्यामः प्रत्ययत्वाच्चेति भावः। इदमुपलक्षणम्। रज्जुसृड्भ्या देवद्रग्भ्यामुदकमग्भ्या प्रणड्भ्यां वार्त्रघ्नो देवगिरावित्यादावम्नुम्तत्त्वलत्वाद्यापत्तिरपि बोध्या। धातो', सामान्यस्य विशेषस्य वा। तत्प्रत्यये, तत्प्रकृतिकप्रत्यये। हत्ये, तच्छब्दे। निपातनमिति। दाण्डिनायनेति सूत्र इति शेष.। अन्यथा भावे ष्यञि नस्तद्धित इति टिलोप बाधित्वा परत्वाद्धनस्त इति सिद्धे तद्वैयर्थ्यं स्पष्टमेव। उपधावृद्ध्यभावार्थं तु न निपातनम्। आदिवृद्ध्या बाधात्। नापि स्वरबाधनार्थम्। तस्येष्यमाणत्वात्। न च कुत्वाभावार्थं तत्। निपातनानामनेकप्रयोजनकत्वेन तावताऽप्यक्षतेः। यद्यपि तद्धिते परे तत्त्व न भवतीत्यस्येद ज्ञापकमिति तत्र सूत्रे भाष्य उक्त तथाऽपि मृजेर्वृद्धिरितिसूत्रभाष्यैकवाक्यतयाऽयमेवार्थस्तेन ज्ञाप्यत इति शब्दान्तरेण तत्र तथा भाष्य उक्तमिति बोध्यम्। परिभाषामनपेक्ष्योक्तमिति कैयटस्य तु प्रमाद एवेति भावः।

प्राचामुक्तिं खण्डयति—धातोरिति। स्वरूपेति। विशेषेत्यर्थः[2]। पाठस्त्विति। वार्तिककृदुक्त इति भावः। प्रत्ययेति। धर्मिग्राहकमानलब्धमिदम्। किं च सप्तम्यन्तपदेन यत्र प्रत्ययस्य निमित्तत्वं तत्रैवानियमप्रसङ्गे नियमार्थैषा धर्मिग्राहकमानात्। अत एवं चाप्रशानिति निषेधः सार्थक इत्यपि बोध्यम्। एव च प्रत्यये परतो यद्धातोः कार्यमुच्यते तद्धातुसशब्दनेन विहितप्रत्यये परतो बोध्यमिति परिभाषार्थ इति भावः। प्रणड्-

---

* फाण्टाहृतिमिमताभ्या णफिञौ। + प्रज्ञाश्रद्धार्चावृत्तिभ्यो ण.। × शीलिकामिभक्ष्याचरिभ्यो णः।

---

१ घ. ङ. तद्धितप्रत्य°। २ ख. घ. °शेष इत्य°। ३ घ. °म्। स°। ४ घ. °व प्र°।

मित्यादौ भवत्येव । इयङादिविधौ तु नैषा । 'न भूसुधियोः' ( ६ । ४ । ८५ ) इति निषेधेनानित्यत्वात् । 'मृजेर्वृद्धिः' ( ७ । २ । ११४ ) इत्यत्र भाष्ये स्पष्टा ॥ ८८ ॥

ननु सर्वक उच्चकैरित्यादौ सर्वनामाव्ययसंज्ञे न स्यातामत आह—

**तन्मध्यपतितस्तद्ग्रहणेन गृह्यते ॥ ८९ ॥**

'नेदमदसोरकोः' ( ७ । १ । ११ ) इति सूत्रेऽकोरिति निषेधोऽस्या ज्ञापकः । तदेकदेशभूतं तद्ग्रहणेन गृह्यत इति 'येन विधिः' ( १ । १ । ७२ ) इति सूत्रे भाष्ये पाठः ॥ ८९ ॥

---

भ्यामिति पाठः । **भवत्येवेति** । पक्ष इति भावः । अत एव भाष्ये क्वचित्कुत्वसहितः पाठो दृश्यते । **इयङादीति** । आदिना यण्परिग्रहः । यत्त्वोः सुपि वर्षाभ्वश्चेत्यारम्भाद-नित्येयमिति सीरदेवादयस्तन्न । तत्र सुपीति विशिष्योक्त्याऽनियमाप्रसङ्गेनैतदप्रसङ्गात् । असंभवाच्च । अत आह—**न भूसुधीति** । सुधीशब्दाशविषयकेणेति भावः । नानित्य-त्वात् । तत्त्वज्ञापनात् । **भाष्य इति** । तत्र हि कंसपरिमृड्भ्यामित्यादौ वृद्ध्यभावाय कृतं वार्तिकं रज्जुसृड्भ्यामित्याद्यर्थमावश्यकैतत्परिभाषया प्रत्याख्यातम् ॥ ८८ ॥

प्रत्ययप्रसङ्गादेवाऽऽह—**नन्विति** । संज्ञायाः साफल्यायाऽऽह—**सर्वक इति**[१] । संज्ञयोः पाठक्रमस्य बोध्यत्वादाह—**सर्वेति** । अत एव तथा लक्ष्यनिर्देशः । **न स्याता-मिति** । विशिष्टस्यापाठादिति भाव[२]ः । येन विधिर्यस्मात्प्रत्ययविधिरितिसूत्रभाष्योक्त-माह—**नेदमिति** । **ज्ञापक इति** । अन्यथेदमदसोर्भिस[३] ऐस उच्यमाननिषेधस्य शब्दा-न्तरत्वात्तत्राप्राप्त्या तद्वैयर्थ्यं स्पष्टमेव । ननु नायं पाठो युक्तः । अकजादेस्तन्म[४]ध्यपतित-त्वाभावात् । मध्यपतितस्याप्यनेनवयवस्य[५] यस्य कस्यचित्तत्त्वापत्तेश्च । येन विधि[६]रित्यत्र भाष्ये पाठान्तरस्य स्पष्टत्वाच्च । अत आह—**तदेकेति** । **येन विधिरितीति** । इदमुपलक्षणं यस्मात्प्रत्ययेतिसूत्रस्यापि । यदि त्विदमदसोः कादिति नियममङ्गीकृत्याकोरिति प्रत्याख्यातं नेदमदसोरित्यत्र भाष्य इत्युच्यते तदैतत्तदोरित्यत्राकोरिति प्रतिषेधो ज्ञापको बोध्यः । [ * अत एव रकोरिति चेति चकारोक्तिः[७] ] उक्तसूत्रद्वयभाष्यं तु सूत्ररीत्येति बोध्यम् ॥ ८९ ॥

---

* धनुश्चिह्नान्तर्गतो ग्रन्थो ङ. पुस्तकस्थः ।

---

१ घ. °दप्राप्तप्र° । २ घ. °ति । क्रमबो° । ३ ङ. °वः । विप्रतिषेधे इति सू° । ४ घ. °स उ° । ५ घ. °प्यन्याव° । ६ क. °रित्यादौ भा° । ७ ङ. °क्तिः । विप्रतिषेधसूत्रभा° ।

**ननु ' गातिस्थाघुपाभूभ्यः ' ( २ । ४ । ७७ ) इति सिचो लुगपासी-दित्यादौ पातेरपि स्यादत आह—**

**लुग्विकरणालुग्विकरणयोरलुग्विकरणस्य ॥ ९० ॥**

**अस्याश्च ज्ञापकः ' स्वरतिसूति ' ( ७ । २ । ४४ ) इति सूत्रे सूङि-ति वक्तव्ये सूतिसूयत्योः पृथङ्निर्देश इति कैयटः । तन्न । साहचर्याद-लुग्विकरणस्यैव ग्रहणे प्राप्ते पृथङ्निर्देशस्य तज्ज्ञापकत्वासंभवात् ।**

**ध्वनिता चेयं परिभाषा ' यस्य विभाषा ' ( ७ । २ । १५ । ) इत्यत्र भाष्ये । तत्र हि विदित इति प्रयोगे निषेधमाशङ्क्य यदुपाधेर्विभाषा तदुपाधेर्निषेधो ' विभाषा गमहनविदविशाम् ' ( ७।२।६८ ) इति सूत्रे शब्विकरणस्य ग्रहणं लुग्विकरणश्चायमित्युक्तम् । तत्र चो हेतौ । यतोऽ-**

---

पूर्वस्थितधातुप्रसङ्गादाह—**नन्विति । पातेरपीति ।** ततः परस्यापि सिचो लुगि-त्यर्थः । अपिरिष्टपिबातिपरं[1]तत्समुच्चायकः । **अलुगिति ।** सर्वं वाक्यमिति न्यायेनालुग्वि-करणस्यैवेत्यर्थः । क्वचित्तथैव पाठः । पकः स्वरेति पाठः । **सूङितीति ।** ङकारः षू प्रेरण इत्यस्य वारणायेष्टसंग्रहाय च । अन्यथा निरनुबन्धकत्वात्तस्यैव ग्रहणं स्यात् । यत्तु ननु सूतीति श्तिपा निर्देशः क्वचित् श्तिपि पित्वाभावेपाठज्ञापनार्थस्तेन सूतीत्यत्र गुणनिषेधासिद्धि-रिति चेत्तर्हि सूतिसूङित्येव ब्रूयात्ताव[3]ताऽप्युक्तार्थसिद्धेः[4] । एव च सूयतीति[5]विकरण[6]निर्दे-शोऽत्र ज्ञापक इति सीरदेवादयस्तन्न । सौत्रत्वान्निपातनाद्वा सूतीतिप्रयोगसिद्धेरुक्तार्थज्ञापने फलाभावाद्वक्ष्यमाणदोषापत्तेश्च । तद्ध्वनयन्नाह—**पृथगिति । कैयट इति ।** स्वरतीति सूत्र इति भावः । साहचर्यात् , पूर्वपरसाहचर्यात् । अनित्यत्वेऽपीष्टस्थलेऽप्रवृत्तौ मानाभा-वात् । अत एव किमर्थं तयोः पृथग्ग्रहण सुवतेर्मा भूदित्येव भाष्य उक्तम् । उक्त एव हि तस्याऽऽशयः ।

नन्वेवमप्रामाण्यापत्तिरस्यामत आह—**ध्वनिता चेयमिति ।** चस्त्वर्थे । तत्र हीत्य-स्योक्तमित्यत्रान्वयः । **विदित इति ।** वेत्ते रूपम् । दिवादितुदादिरुधादीनामनुदात्त-त्वादेव निषेध इति भाव. । **निषेधमिति ।** यस्य विभाषेत्यनेन । विभाषागमेति क[7]सोस्त-द्विकल्पविधानादिति भाव. । यदुपाधेरित्यादि बहुव्रीहिः पञ्चम्यन्त च । विशेषणमात्रमत्रो-पाधिर्न त्वर्थविशेष उपाधिरिति लक्षित. । तच्चार्थ[8]रूपम् । एवमग्रेऽपि । परसाहचर्यस्य बलवत्त्वे मानाभावेनैतदभाव उभयसाहचर्यादुभयोर्ग्रहणं स्यादेतत्सत्त्वे त्वने[9]योपोद्बलितपरसाहचर्यस्यै-

---

१ घ. °रस्तत्स° । २ क. ङ. °वज्ञा° । ३ घ °वतैवोक्ता° । ४ घ. सिद्धेरेव । ५ घ. °ति वक्करणादिनि° । ६ क. °रणादिनि° । ७ ग. कसो विक° । ८ ङ. °रूप. । ए° । ९ घ. ङ. °नया प° ।

यं लुग्विकरणोऽतो विशिसाहचर्याच्छब्विकरणस्य ग्रहणं न तु हनिसाहचर्यादस्याप्येतत्परिभाषाविरोधादिति तदाशयः ।

अत एव परिभाषायां लुग्विकरणस्यैवेति नोक्तम् । कण्ठतस्तु भाष्य एषा क्वापि न पठिता । ‘ गातिस्था ’ ( २।४।७७ ) इति सूत्रे पिबतेर्ग्रहणं कर्तव्यमिति वार्तिककृता सर्वत्रैव पाग्रहणेऽलुग्विकरणस्य ग्रहणमिति भाष्यकृता चोक्तम् । ‘ स्वरतिसूति ’ ( ७ । २ । ४४ ) इति सूत्रे कैयटेन च स्पष्टमुक्ता ॥ ९० ॥

ननु प्रजिघाययिषतीत्यादौ ‘हेरचङि’ ( ७ । ३ । ५६ ) इति विधीयमानं कुत्वं न स्यादत आह—

**प्रकृतिग्रहणे ण्यधिकस्यापि ग्रहणम् ॥ ९१ ॥**

---

वाऽऽश्रयणमित्याशयिकया तथोक्त्येयं ध्वनिता । यथाश्रुते निर्वाहाभावात् । तदाह—**अस्यापीति** । लुग्विकरणस्यापीत्यर्थः । अपिना तस्य समुच्चयः । तथा च भाष्यप्रामाण्यादेव वाचनिक्या अस्याः[1] प्रामाण्यं सिद्धम् ।

कैयटोक्तौ दोषान्तरमपि सूचयन्निदं द्रढयति—**अत एवेति** । अस्या उक्तभाष्येण ध्वननादेवेत्यर्थः । स्यैवेतीत्यस्य विपरीतमिति शेषः । अन्यथोक्तज्ञापकस्य तत्रापि सम्भव इति विनिगमका[2]भावात्तथैवोक्त स्यात्[3] । प्रथमोपस्थितत्वरूपान्तरङ्गत्वानुग्रहायोभयं तु न ज्ञाप्यं तावतैव साफल्यादिति भावः । यत्तु वेत्तेर्विभाषेति श्तिपा निर्देशोऽत्रैव[4] ज्ञापकः । अन्यथा[5] तया रौधादिकव्यावृत्तौ किं तेनेति सीरदेवादयस्तन्न । तन्निर्देशानामर्थाबाधकत्वस्यान्यत्र प्रपञ्चितत्वात् । ध्वनिता चेत्युक्तिस्वारस्यमाह—**कण्ठतस्त्विति** । एषा, एवमानुपूर्वीका सामान्यरूपा । उक्तार्थे मानान्तरमपि सूचयन्नेतदेव द्रढयति—**गातीति** । उक्तमित्यत्रास्यान्वयो वार्तिककृतेत्यस्यापि । **सर्वत्रैवेति** । न त्वत्रैवेति भावः । **कैयटेन चेति** । चस्त्वर्थे । सूतिसूयत्योः पृथङ्निर्देशः षू प्रेरण इत्यस्य निवृत्तय इति भाष्यं धृत्वोक्तरीत्या तेनोक्ता[6] ॥ ९० ॥

धातुप्रसङ्गादेवाऽऽह—**नन्विति । न स्यादिति** । हिनोतेरङ्गावयवस्य योऽभ्यासस्तस्मादित्यर्थेन द्वयो. सं[7]निमित्तलाभे प्रत्यासत्त्याऽङ्गसंज्ञानिमित्त[8]निमित्तकाभ्यासस्यैव ग्रहणात्तत्र[9] ण्यन्ते[10]ऽस्य शब्दान्तरत्वादिति भावः । **प्रकृतीति** । प्रकृतिबोधकशब्दग्रहणे सति तेन तस्य ग्रहणम् । अपिना केवलस्येत्यर्थः । णिचो लोपेऽपि प्रवृत्तये

---

१ घ. स्याः प्रमाण सि° । २ मनाविरहात्त° । ३ घ. °त् । उक्तार्थे मानापरिथ° । ४ घ °शोऽत्र ज्ञा° । ५ ग °थाऽनया । ६ ङ. °नोक्तेतिभाव. । ७ क. °सन्निमि° । ८ क. ङ. °त्तका° । ९ घ. णाण्यन्तस्य । १० ङ. °न्ते तस्य ।

अचङीति प्रतिषेध एवास्या ज्ञापकः। इयं च कुत्वविषयैव। हेर-चङीति सूत्रे भाष्ये स्पष्टेयम्॥ ९१॥

ननु युष्मभ्यमित्यादौ 'भ्यसः' (७।१।३०) इत्यत्र भ्यमिति च्छेदे भ्यसो भ्यमि कृतेऽन्त्यलोप एत्त्वं स्यादत आह—

अङ्गवृत्ते पुनर्वृत्तावविधिः॥ ९२॥

अङ्गेऽङ्गाधिकारे वृत्तं निष्पन्नं यत्कार्यं तस्मिन्सति पुनरन्यस्याङ्ग-कार्यस्य वृत्तौ प्रवृत्तावविधानं भवतीत्यर्थः।

---

ण्यन्तेति विहाय ण्यधिकेत्युक्तम्। ज्ञापक इति। अन्यथोक्तरीत्या तत्राप्राप्त्या तद्वै-यर्थ्यं स्पष्टमेव। एवमानुपूर्वीकैतत्परिभाषाया भाष्ये क्वाप्यपाठादन्यत्रानुपयोगाच्चाऽऽह—इयं चेति। कुत्वेति। हेश्चङि प्रतिषेधानर्थक्यमङ्गान्यत्वात्। ज्ञापक त्वन्यत्र ण्यधि-कस्यापि कुत्वविज्ञानार्थमिति भाष्याद्युक्तेरिति भावः। तद्ध्वनयन्नाह—हेरचेति। एतेनानित्येयम्। न भेतिसूत्रे ण्यन्तभादीनामुपसंख्यानमिति वार्तिकात्। तेनाऽऽङ्पूर्वाद्धन्ते-र्ण्यन्तान्नाऽऽङो यमेत्यात्मनेपदमर्ह इत्यत्र ण्यन्तस्याहंतेर्न ग्रहणमिति रक्षितसीरदेवाद्युक्तम्, अभिषावयतीत्यादावनया षत्वसिद्धिर्न भेतिसूत्र उपसंख्यान च न कर्तव्यं भवतीति पुरुषोत्तमदेवोक्त चापास्तम्। अस्याः कुत्वमात्रविषयत्वात्॥ ९१॥

प्रत्ययप्रसङ्गादङ्गप्रसङ्गाच्चाऽऽह—नन्विति। लोप इति। च कृत इत्यर्थः। अङ्गवृत्त इति। अयमेव भाष्याद्यारूढः पाठ.। एतेनाङ्गवृत्तेः पुनरङ्गवृत्तावविधिर्निष्ठि-तस्याङ्गस्य कार्यस्य वृत्तेः प्रवृत्तेर्हेतोर्निष्ठितस्य प्रयोगार्हस्याङ्गस्य पुनरङ्गकार्यस्य प्रवृत्ताव-विधानमपरिनिष्पत्तिः पुनरङ्गवृत्ताविति षष्ठ्यर्थे सप्तमी चेति श्रुतपालसीरदेवाद्युक्तमुभयत्र सप्तम्यन्ततया पाठ इति न्यासाद्युक्तं चापास्तम्। नन्वङ्गवृत्त इति कर्मधारये बहुव्रीहौ वा निष्ठान्तस्य पूर्वनिपातापत्तिरत आह—अङ्ग इति। अनतिप्रसङ्गाय तदर्थमाह-—अङ्गेति। व्यधिकरणचतुर्थ्यर्थबहुव्रीहिरयम्। तत्साध्यलक्ष्य इत्यर्थः। यद्वा तथा सप्त-म्यर्थबहुव्रीहिरङ्गाधिकार इति यथाश्रुतम्। निष्पन्नं, पठित शास्त्रद्वारा। यद्वा सप्तमी-तत्पुरुषः। कार्यं, शास्त्रम्। इय सति सप्तमी तदाह—तस्मिन्सतीति। तस्मिञ्जाते सतीत्यर्थः। पुनः, पश्चात्। अनेन प्रत्यासत्तिः सूचिता। तेन लक्ष्यैक्यलाभः। ननु पुनस्तस्यैव प्रवृत्तेरसम्भवोऽत आह—अन्यस्येति। प्रत्यासत्तेराह—अङ्गेति। प्रवृत्तौ सत्यामिति शेषः। अविधानम्, अपरिनिष्पत्ति.।

---

१ ग. °क तु चङोऽन्यत्र ण्यन्तेऽपि कुत्वभावस्त्वेति भा°। २ घ. °र्हंतिनाऽप्र°। ३ घ. °दागमप्र°। ४ क. ङ. °मी वेति। ५ घ. °व्रीहावङ्गा°। ६ घ. °श्रुतः। नि°। ७ घ. °त्। ननु।

एषा च 'ज्यादादीयसः' (६।४।१६०) इत्याद्विधानेन ज्ञापिता। अन्यथेकारलोपेन 'अकृत्सार्व' (७।४।२५) इति दीर्घेण च सिद्धे तद्वैयर्थ्यं स्पष्टमेव। अत एव भिन्नस्थानिकाङ्गकार्यविषयाऽप्येषा। इयं चानित्या। 'द्वयोः' (१।२।५९।, ५।३।९२) इति निर्देशात्। अनित्यत्वबललभ्यार्थमादायैव 'भ्यसो भ्यम्' (७।१।३०) इति सूत्रे भाष्ये निष्ठितस्येति पठितम्।

केचित्त्वनया परिभाषया न किंचिल्लक्ष्यं साध्यते। अत एव 'ज्ञाजनोर्जा' (७।३।७९) 'ज्यादादीयसः' (६।४।१६०) इति सूत्रयोरेनां ज्ञापयित्वा किं प्रयोजनमिति प्रश्ने पिबतेर्गुणप्रतिषेध उक्तः स न वक्तव्य इत्येव प्रयोजनमुक्तं न तु लक्ष्यसिद्धिरूपम्। तदुक्तम्—भ्यसोऽभ्यमित्यत्राभ्यमिति च्छेदः शेषे लोपश्चान्त्यलोप एव 'अतो

**चेति**। चो विधानेनेत्युत्तर योज्यः। स च ज्ञाजनोर्जेति जादेशविधानस्य समुच्चायकः। अन्यथा जभावेऽतो दीर्घ इति दीर्घे सिद्ध जानातीति तद्वैयर्थ्यं स्पष्टमेव। **लोपेनेति**। बहोर्लोप इत्यतोऽनुवृत्तेरिति भावः। **अकृदिति**। तत्र हि क्ङितीत्यस्यानुवृत्तेः। उरुयेत्यादौ दीर्घाभावस्तु च्छान्दसत्वादिति भावः। तद्वैयर्थ्यम्, आद्विधानवैयर्थ्यम्। अत एव, अस्मादेव ज्ञापकात्। **याऽप्येषेति**। अपिना ज्ञाजनोर्जेति ज्ञापकात्समानस्थानिकाङ्गकार्थविषयत्वसमुच्चयः। समानस्थानिकत्वं च पूर्वपरस्थानिभिन्नस्थानिकत्वम्। अन्यस्यासंभवात्। इदमेव वक्तुमेतस्यैवोल्लेखः। ननु किमर्थमस्या अनित्यत्वं परिभाषाया निष्ठितस्येत्यंशस्य सीरदेवादिभिः पठितत्वेन तद्विनाऽपि द्वयोरित्यत्रैत्वसिद्धेस्तद्विना तस्यानिष्ठितत्वादत्। अत एव द्वाभ्यामित्यत्र सुपि चेति दीर्घः। अत एव च भ्यसोऽभ्यमितिसूत्रस्थतथापाठः सगच्छतेऽत आह—**अनित्यत्वेति**। **दायैवेति**। एवेन तस्य ज्ञाप्यांशप्रविष्टत्वनिरासः। अत एव ज्ञापकपरोक्तसूत्रद्वयस्थभाष्यसगतिः। अत एव च तत्रोभयत्र तदघटितपाठ इति भावः। भ्यसोभ्यमित्युपलक्षणं पाघ्राध्मेत्यस्यापि।

किंचित्, किमपि। एकमपीति यावत्। **साध्यत इति**। अन्यथा तेषां सिद्धत्वादिति शेषः। ननु विनिगमनाविरहोऽत आह—**अत एवेति**। अस्या लक्ष्यासाधकत्वादेवेत्यर्थः। इत्येव प्रेति पाठः। एवव्यवच्छेद्यमाह—**न त्विति**। **लक्ष्येति**। युष्मभ्यमस्मभ्य दवयति स्त्रजयतीत्यादीत्यर्थः। तत्राऽऽद्यसिद्धिप्रकारमाह—**तदुक्तमिति**। अस्या लक्ष्यासाधकत्वमभिप्रेत्योक्तमित्यर्थः। **च्छेद इति**। अत एव न चाऽऽदेशो हलादिरस्तीति युष्मदस्मदोरनादेश इतिसूत्रभाष्यं सगच्छते। **श्चान्त्यलोप एवेति**। अत एव लिङ्गाभावाट्टिलोपवचनानर्थक्यमिति साम आकमित्यत्र भाष्य उक्तम्। शेषग्रहण

१ घ. पूर्वोप°।

गुणे ' (६।१।९७) इति पररूपेण सिद्धं युष्मभ्यमित्यन्यत्र निरूपितम्। एवं च सूत्रद्वयस्थमेतज्ज्ञापनपरं भाष्यं भ्यसोभ्यमितिसूत्रस्थं च भाष्यमेकदेश्युक्तिरित्याहुः ॥ ९२ ॥

यत्त्वोरोदिति वाच्ये ' ओर्गुणः ' (६।४।१४६) इति गुणग्रहणात्-

**संज्ञापूर्वकविधेरनित्यत्वम् ॥ ९३ ॥**

इयं च विधेयकोटौ संज्ञापूर्वकत्व एव। तेन स्वायंभुवमित्यादि सिद्धम् ॥ ९३ ॥

---

तु भाष्ये प्रत्याख्यातमेव। त्यदादीनाम इति सूत्रस्थ टिलोपट्टाबभावार्थ इति तु वार्तिकैकदेशिवचनमिति न तद्विरोध इति भावः। लक्ष्यानुरोधाद्भाष्यानुरोधाच्चेष्ठवदित्यभावातिदेशोऽपि लक्ष्यविशेषे। तेन दवयतीत्यादौ न वृद्धिः। प्रापयतीत्यादौ तु भवत्येव। तदाह—**इत्यन्यत्रेति**। उद्द्योतादावित्यर्थः। एव च, अस्यास्तदसाधकत्वे च[1]। च भाष्यम्[2], भाष्यं च। **एकदेश्युक्तिरिति**। अदन्तत्वेनैव गुणप्रतिषेधवार्तिकप्रत्याख्यानसंभवेनास्य प्रयत्नस्य गुरुत्वादिति भावः। अत्र केचिदित्यरुचिसूचकम्। तद्बीज तु हलन्तत्वे वार्तिकप्रत्याख्यानस्य प्रकारान्तरेणासिद्धि.। न चाकारोच्चारणाददन्तत्वमेव। जिघ्रादिवदकारसत्त्वात्। न च तथाऽपि लक्ष्यासाधकत्वं समागतमेव। वार्तिकफलसाधकत्वेनैव तन्मात्रलक्ष्यसाधकत्वस्य लाभात्। इदमेव ध्वनयितुमुक्तसूत्रद्वये प्रयोजनप्रश्ने तथैवोक्तम्[4]। न तु युष्मभ्यं दवयतीत्यादिसिद्धिरूपम्[5]। तेषामन्यथाऽपि सिद्धेः। अत एव पाघ्रेतिसूत्रभाष्यसंगति.। एतत्सत्त्वे तदप्यस्या एवोदाहरणमिति केचित्। एवमपि न तथोक्तिस्वारस्यमिति तथैवेति नारुचिरिति भाष्यतत्त्वविद इत्यर्थक तदित्यन्ये ॥ ९२ ॥

अथ संज्ञाप्रसङ्गात्तस्या वक्तव्यत्वे प्राप्ते खण्ड्यत्वेन खण्डनीयत्वसाधर्म्यात्सीरदेवादिभिस्तथाऽनित्यत्वघटितत्वेन क्रमेणोक्ताः काश्चित्तया सह क्रोडीकृत्य लाघवेन खण्डयति—**यत्त्वित्यादिना विस्तर इत्यन्तेन**। विधेयकोटौ, तदंशे। **कत्व एवेति**। ज्ञापकस्य सजातीयापेक्षत्वादिति भावः। साजात्यं च विधेयत्वेनैव लोकेऽर्थपरत्वेन प्रसिद्धशब्दत्वेनापि[6] बोध्यम्। अत एवाणुदित्स्व रूपमित्यादिसंज्ञाविषये नैषा। अत एवौरोदित्युक्तौ न तत्त्वमिति बोध्यम्। **वमित्यादीति**। आदिना ज्योतिष पञ्चबाणः क्षिणोतीत्यादिसंग्रहः। आद्येऽधिकृत्य कृत इत्यणि न वृद्धिः। द्वितीये गुणाभावः। उतो वृद्धिर्लुकीतिसूत्रस्थं बृद्धिग्रहणमपीह ज्ञापक बोध्यम् ॥ ९३ ॥

---

१ ङ. च। स्थ भाष्य चैकेति पाठ। ए[3]। २ क. पुस्तके °वेऽप्य स्य प्रेति पाठान्तरम्। ३ ङ. °त्वस्याल°। ४ घ. वोक्ते। न। ५ ध. 'दिरू°। ६ घ. °द्धत्वश°।

तथाऽऽनिलोडित्येव सिद्ध आनिग्रहणात्—

**आगमशास्त्रमनित्यम् ॥ ९४ ॥**

तेन सागरं तर्तुकामस्येत्यादि सिद्धम् ॥ ९४ ॥

तथा तनादिपाठादेव सिद्धे 'तनादिकृञ्भ्यः' (३ । १ । ७९) इति सूत्रे कृञ्ग्रहणात्—

**गणकार्यमनित्यम् ॥ ९५ ॥**

तेन न विश्वसेदविश्वस्त इत्यादि सिद्धम् ॥ ९५ ॥

तथा चक्षिङो ङित्करणात्—

**अनुदात्तेत्त्वलक्षणमात्मनेपदमनित्यम् ॥ ९६ ॥**

तेन स्फायन्निर्मोकसंधिरित्यादि सिद्धम् ॥ ९६ ॥

तथा विनार्थनञा समासेनानुदात्तं पदमनेकमित्येव सिद्धे वर्जग्रहणात्—

**नञ्घटितमनित्यम् ॥ ९७ ॥**

तेन 'नेयङुवङ्' (१ । ४ । ४) इत्यस्यानित्यत्वाद्धे सुभ्रु इति सिद्धमिति तन्न भाष्येऽदर्शनात् । भाष्यानुक्तज्ञापितार्थस्य साधुताया

---

आनिग्रहणात्, आकारविशिष्टनिग्रहणात् । आकारग्रहणादिति यावत् । यत्तु स्तोश्नुनेत्यत्राकृतनुमागमनिर्देशोऽत्र ज्ञापक इति पुरुषोत्तमदेवस्तन्न । सौत्रत्वेन तस्योपपत्ते. । **कामस्येत्यादि सिद्धमिति** । आदिना क्षुब्धो राजा, अपि शाकं पचानस्येत्यादिसंग्रहः । अत्रेण्मुकौ न ॥ ९४ ॥

**कृञ्ग्रहणादिति** । सीरदेवस्तु घटादित्वादेव षित्वे सिद्धे पुनः क्षमूषः षित्वमत्र ज्ञापकम् । सामर्थ्यात्षिद्गौरेति ङीषर्थ तु न तत्, क्षमायामिति निर्देशादित्याह । **स्त इत्यादीति** । आदिना शपामि किमतः परमित्यादिसंग्रहः ॥ ९५ ॥

**ङिदिति** । इस्थाने युजर्थोऽकारः पाठ्य इति भावः । अनुदात्तेत्त्वेति । एवमपि शपामीत्यस्य कथंचित्सिद्धिरिति चिन्त्यम् । सूत्रापेक्ष वा ज्ञापकमस्तु । सीरदेवस्तु चक्षिङोऽनुबन्धद्वयमुभयत्र ज्ञापकमित्याह । **धिरित्यादीति** । आदिनोदयति विततोर्ध्वैरित्यादिसंग्रहः ॥ ९६ ॥

आदौ साधारणदोषमाह—**भाष्य इति** । ननु तत्रादर्शनं नाभावसाधकं तदधृतानां सूत्राणामभावापत्तेरत आह—**भाष्यानुक्तेति । ज्ञापितेति** । उक्तरीत्येति भावः ।

---

१ घ. °ति पाटान्तरम् । य° । २ ग. घ. ङ. °थ सिद्धि° । ३ घ. वितेति । उक्तरीत्येति भावः ॥ ९६ ॥

नियामकत्वे मानाभावात् । भाष्याविचारितप्रयोजनानां सौत्राक्षराणां पारायणादावदृष्टमात्रार्थकत्वकल्पनाया एवौचित्यात् ।

किं च ज्ञापितेऽप्यानीत्यस्य न सार्थक्यमाडागमशून्यप्रयोगस्याप्रसिद्धेः । आङ्ग्रहणं तु लोड्ग्रहणवदिति बोध्यम् । अत एव 'घोर्लोपो लेटि वा' [ ७।३।७० ] इति सूत्रे वेति प्रत्याख्यातम् । लोपेऽप्याट्पक्ष आटः श्रवणं भविष्यति दधादिति । अटि दधदिति । आगमशास्त्रस्यानित्यत्वे त्वाट्यसति दधादित्यसिद्ध्या वाग्रहणस्याऽऽवश्यकत्वेन तत्प्रत्याख्यानासंगतिः स्पष्टैव । एतेन यत्कैयटे केचिदित्यादिनाऽस्यैव वाग्रहणस्य तदनित्यत्वज्ञापकतोक्ता साऽपि चिन्त्या । प्रत्याख्यानपर-

---

एवं च तत्र दोषलेशाभावेन वार्तिकाप्रवृत्त्या प्रामाण्येन भाष्याधृतानामपि तेषा सत्त्वेऽप्यत्र किंचिदंशे तत्प्रवृत्त्या भाष्यधृत[2]त्वेन सत्त्वेऽपि तत्र तदभावाद्यथोत्तर मुनीना प्रामाण्येन तस्य तदनियामकत्वम् । अन्यथा द्वयोरज्ञानकल्पनापत्तिः । सा च न युक्ता । सर्वाज्ञाननिरासाय भगव[3]तोः प्रवृत्तेरिति भाव· । नन्वेव तथा सौत्राक्षराणामुक्तरीत्या वैयर्थ्यापत्तिरतस्तथैवावश्य वाच्यमित्याशङ्कायामुक्तहेतोरेवाऽऽह—**भाष्यावीति** ।

एवं साधारणदोषमुक्त्वाऽऽद्ये [4]गुणग्रहणस्य ज्ञापकत्वस्य ळणिति णकारस्यैवेष्टत्वेन ज्ञापितपरिभाषाप्रयुक्तानिष्टाभावेन तन्निरासेन चारितार्थ्यानपेक्षणेनाचारितार्थ्यरूपासाधारणदोषाभावाद्द्वितीयेऽसाधारण तमाह—**किं चेति** । यत इति शेषः । यद्यप्यत्र ज्ञापितपरिभा-*षाप्रयु[5]क्तानिष्टप्राप्त्या तन्निवारकतया साफल्यं सुवचं तथाऽप्यन्यथा तदाह—**आडागेति** । **अप्रसिद्धेरिति** । तथा च ज्ञापकत्वमेव नेति भावः । नन्वेवमाङ्ग्रहणवैयर्थ्यमत आह—**आडिति** । इत्संज्ञकटकारोपलक्षितमाग्रहणमित्यर्थः । आटो ग्रहणं ग्राहकः शब्द आकार इत्यर्थो वा । क्वचिदाग्रहणमित्येव पाठः । दृष्टान्तेनेद सूचितम् । यथा तस्य कथमपि न दृष्टार्थत्वं लोटं विनाऽऽनिघटिततद्योग्यप्रयोगाभावात्तथैतस्याप्युभयोरदृष्टार्थत्वमेवेति । घोर्लोपो लेटि वेति वाग्रहणमत्र ज्ञापकमितिन्यासाद्युक्तिखण्डन ध्वनयन्नाह—**अत एवेति** । आगमशास्त्रमनित्यमित्यस्याभावादेवेत्यर्थः । तत्प्रकारमाह—**लोपेऽप्याडिति** । लेटोऽडाटावित्यनेन । बाधे दृढ इति न्यायेन कैयटविरोध परिहरति—**एतेनेति** । **यदिति** । सामान्ये नपुंसकम् । एतेनेत्यस्यार्थमाह—**प्रत्येति** । अत एव तेनापि केचिदित्यरुचिसू-

---

* ङ. पुस्तके °षा अप्रयु° इति पदच्छेदः ।

---

१ ग ङ. °धृतत्वेऽप्य° । २ घ. °त्वेऽपि न । ३ ग. ङ. °वतः प्र° । ४ घ, गुणाग्र° । ५ क. °निष्ठाप्रा° ।

माष्यविरोधात्। तनादिसूत्रे कृञ्ग्रहणस्य भाष्ये प्रत्याख्यानाच्च। चक्षिङो ङकारस्यान्तेदित्त्वाभावसंपादनेन चारितार्थ्याच्च ॥ ९७॥

एवमेव—

आतिदेशिकमनित्यम् ॥ ९८ ॥

सर्वविधिभ्यो लोपविधिरिड्विधिश्च बलवान् ॥ ९९ ॥

इत्यादि भाष्यानुक्तं बोध्यम्। स्वायंभुवमित्यादि लोकेऽसाध्वेवे-

---

चकमुक्तम्। तच्च न्यासादय इत्यर्थकम्। तृतीये तमाह—**तनादीति**। तुर्ये तमाह—**चक्षिङ इति**। **अन्तेदित्त्वेति**। अन्यथा नुम्स्यात्। तत्राकारः पाठ्य इति त्वेकोनसहस्राधिकरणन्यायेन वक्तुमशक्यम्। किं चापाणिनीयत्वेनादृष्टहानिः स्यादिति भावः ॥ ९७ ॥

तथा तदुक्तास्तदग्रिमा अन्या अपि खण्डयति—**एवमेवेति**। असदेवेत्यर्थः। **अनित्यमिति**। स्थानिवत्सूत्रेण सिद्धे प्रत्ययलोप इति सूत्रमत्र ज्ञापकम्। **लोपविधिरिति**। अत एव कानि सन्तीत्यादौ यणः पूर्वमल्लोपः। उक्तसूत्रमेवात्रापि ज्ञापकं यावता विनेति न्यायात्। अन्यथा सर्वत्र प्राक्प्रत्ययनिमित्तककार्यं कृत्वा पश्चाल्लोपेनेष्टसिद्धौ तद्वैयर्थ्यं स्पष्टमेवेति भावः। **इड्विधिश्चेति**। तेन श्वयित्वेत्यत्र सप्रसारणात्पूर्वमिटि न क्त्वा सेडिति कित्त्वनिषेधात्सप्रसारणाभावः। ज्ञापकं चात्र सनि ग्रहेत्यत्रोकोऽनुकर्षणाय चकरणम्। अन्यथा रुरूषतीत्यादाविको झलिति कित्त्वाच्छ्रयुक इति निषेधेन सिद्धे तद्वैयर्थ्यं स्पष्टमेव। सत्या त्वस्यामादाविटि सामान्यसूत्रेणाझलादित्वात्तदप्राप्त्या तत्सार्थक्यं स्पष्टमेवेति भावः। आदिना क्रियाविशेषणाना कर्मत्वं क्लीबत्वमेकत्वं च प्रतिपदविधानाद्योगविभागो गरीयानित्यादिपरिग्रहः। **अनुक्तमिति**। निर्मूलं चेत्यपि बोध्यम्। प्रत्ययलोप इत्यस्य नियामकत्वस्यं भाष्ये सिद्धान्तितत्वात्। आशीरित्यादौ क्विबादेरन्तरङ्गत्वाल्लोप इत्याद्यर्थं तस्योपक्षीणत्वाच्च। अनुवृत्त्यर्थकचाना भाष्ये प्रत्याख्यानाच्च। न च श्वीदितो निष्ठायामिति श्विग्रहण ज्ञापकम्। अन्यथाऽऽदौ संप्रसारणादौ श्र्युक इत्येव सिद्धे किं तेनेति वाच्यम्। श्र्युक इत्यस्योपदेशाधिकारेणाप्राप्त्या शून इत्यादावन्तरङ्गत्वात्संप्रसारणे पूर्वत्वे चेण्निषेधार्थं तस्याऽऽवश्यकत्वात्। निष्फलं चेत्यपि बोध्यम्। नन्वेव स्वायंभुवमित्यादीना का गतिरत आह—**स्वायमिति**। स्वयभुव इदमित्याद्यर्थ इति भावः। आदिना प्रागुक्तसग्रहः। **लोक इति**। अनेनाऽऽर्षप्रयोगाणा साधुता सूचिता। एवमे-

---

१ ख. °कोनुस°। २ ग. घ. ङ. °स्य सि°। ३ घ. °था शून इत्यादावन्तरङ्गत्वात्सप्रसारणे पूर्वत्वे च श्र्यु°। ४ घ. °प्राप्त्येण्निषे°।

त्यन्यत्र विस्तरः ॥ ९९ ॥

यदपि ननु हन्तेर्यङ्लुक्याशीर्लिङि वधादेशो न स्यादत आह—

**प्रकृतिग्रहणे यङ्लुगन्तस्यापि ग्रहणम् ॥ १०० ॥**

षाष्ठद्वित्वस्य द्विष्प्रयोगत्वसिद्धान्तेन प्रयोगद्वयरूपे समुदाये प्रकृतिरूपत्वबोधनेनेदं न्यायसिद्धम् । अत एव जुहुधीत्यादौ द्वित्वे कृते धित्वसिद्धिरिति तदपि न भाष्येऽदर्शनात् । किं च तेन सिद्धान्तेन प्रत्येकं द्वयोस्तत्त्वबोधनेऽपि समुदायस्य तत्त्वबोधने मानाभावः ।

अत एव 'दयतेर्दिगि' ( ७ । ४ । ९ ) इति सूत्रेऽस्तेः परत्वाद्द्वित्वे कृते परस्यास्तेर्भूभावे कृते पूर्वस्य श्रवणं प्राप्नोतीत्याशङ्क्य विषयसप्तम्याश्रयणेन परिहृतं भाष्ये । अन्यथा त्वदुक्तरीत्यैकाज्द्विर्वचनन्यायेन समुदायस्यैवाऽऽदेशापत्तौ तदसंगतिः स्पष्टैव । तस्मादुत्तरखण्डमा-

---

वौपदेशिकेत्यादौ[1] वक्ष्यमाणे क्रियाविशेषणानामित्यादावुक्ते च भाष्यानुक्तत्व निर्मूलत्व निष्फलत्वं च बोध्यम् । तदाह—**इत्यन्यत्रेति** । उद्द्योतशेखरादावित्यर्थः ॥ ९८ ॥ ९९ ॥

खण्डनीयत्वप्रसङ्गादेवाऽऽह—**यदपीति** । **न स्यादिति** । समुदायस्य लिङ्प्रकृतेर्हन्रूपत्वाभावात् । **गन्तस्यापीति** । अपि· केवलसमुच्चायकः । परिभाषार्थः प्राग्वत् । **षाष्ठद्वित्वेति** । बहुव्रीहिः । **द्विष्प्रयोगत्वेति** । द्विष्प्रयोगरूपत्वस्य सिद्धान्तेनेत्यर्थः । बोधने हेतुरयम् । इद, परिभाषारूप वचनम् । **न्यायसिद्धमिति** । इद निष्ठा शीङ्स्यत्र न्यासकृतोक्त सीरदेवादिकैयटदीक्षितादिभिरनुसृतं च । एतस्य बीजस्यान्यत्राऽऽश्रयणमावश्यकमित्याह—**अत एवेति** । उक्तबीजाङ्गीकारादेवेत्यर्थः । प्राग्वत्पूर्वारुच्या बीजाभावेन निर्मूलत्वमाह[2]—**किं चेति** । यत इति शेषः । **तत्त्वेति** । प्रकृतिरूपत्वेत्यर्थः । अत एव स्थानेद्विर्वचनाद्भिदासिद्धिरिति[3] बोध्यम् । **मानाभाव इति** । भिन्नानुपूर्वीकत्वात्स्थानिवत्त्वस्य स्वत्र पक्षे प्राप्तिरेव नेति भावः ।

अत एवात्र प्रमाणमप्याह—**अत एवेति** । तेन[4] तस्य तत्त्वबोधनस्य मानाभावेनासत्त्वादेवेत्यर्थः । **परत्वादिति** । अस्य भूभावादित्यादिः । विषयेत्यस्याऽऽर्धधातुक इतीत्यादिः । अन्यथा[5], तत्र निर्वाहायोक्तबीजकपरिभाषाया एवाङ्गीकारे । **त्वदुक्तेति** । तेन तत्र तत्त्वबोधनरूपया तयैवेत्यर्थः । ननु केवलस्यापि तत्त्वसत्त्वात्कदाचित्तस्यापि स्यादिति तदावश्यकत्वमेवात आह—**काजिति** । **दायस्यैवेति** । एवेन केवलव्यावृत्तिः । आदेशापत्तौ, आदेशप्राप्तौ । तदसगतिः, शङ्काया अज्ञानेन योजनेऽपि परिहारासंगतिः । नन्वेव जुहुधीति कथमत आह—**तस्मादिति** । उक्तभाष्यात्तदभावात्तेन तदङ्गी-

---

१ ग. ङ. °द्रौ भा°। २ घ. °लत्वम् । अत्रप्रमाणमा°। ३ ङ. °नादेरसि°। ४ घ. °दि. । द्विरूपत्वेत्यर्थः । अत एव, स्थाने द्विर्वचनाद्भेदासिद्धिरिति बोध्यम् । वि° । ५ क. घ. °था, तस्य सत्त्वे°। त्व° । ग. °था परिभाषासत्वे । त्व° ।

**द्वायैव यथायोगं तत्तत्कार्यप्रवृत्तिर्बोध्या । 'भूसुवोः' (७ । ३ । ८८) इत्यस्य तदन्ताङ्गस्येत्यर्थादपि प्राप्तस्य गुणनिषेधस्य बोभूत्विति नियम इति न तद्विरोधः ।**

**तस्माद्धन्तेर्यङ्लुकि वध्यादित्यादि माधवाद्युदाहृतं चिन्त्यमेवेत्यन्यत्र विस्तरः ॥ १०० ॥**

**यदपि ननु 'वृद्धिर्यस्याचामादिः' (१ । १ । ७३) इत्यत्रैकपरिभाषोपस्थितौ शालीयाद्यसिद्धिरत आह—**

---

कारादित्यर्थः । भूत्वादीना भूवादय इति धातुत्वस्यार्थवत्त्वस्य चोत्तरखण्ड एव सत्त्वम् । अत एव वेवेद वेविदतुरित्यादौ विदो लटो वेति णलादिसिद्धिः । सनाद्यन्ता इति धातुत्वस्य समुदाये सत्त्वेऽपि[1] भूवेति धातुत्वस्य तत्र सत्त्वादिति भावः । नन्वेवमप्यङ्गत्वस्य तत्राभावात्परिभाषाया अभावेऽप्राप्तगुणाभावसाधकतया साफल्ये बोभूत्विति निपातनस्य लोट्येवेत्येव नियामकत्वं भाष्योक्त विरुध्येतात आह—**भूसुवोरिति । तदन्ताङ्गेति**[2] । तत्प्रामाण्यादुत्तरखण्डस्य भूत्वादेरिवाङ्गत्वस्य समुदाय एवाङ्गीकारादिति भावः । यथा चैतत्तथा शेखरे स्पष्टम् । **र्थादपीति** । अपिनोक्तरीत्याऽङ्गावयवयोर्भूसुवोरित्यर्थपरिग्रह । पर तु संभवति सामानाधिकरण्य इति न्यायेनात्राऽऽद्यार्थ एव युक्तः । तदा पूर्वपक्ष्यभिमत[3]परिभाषासमुच्चायकः स बोध्यः । अपिरहितपाठस्तु युक्त एव । गुणनिषेधस्येति पाठः । स्यागुणस्येति पाठः क्वचित् । अर्थः स एव ।

उपसंहरति—**तस्मादिति** । परिभाषाया अभावादित्यर्थः । अत एवोदुपधाया इत्युपधाग्रहणमोः सुपीत्यत ओरित्यनुवृत्त्या सिद्धे गमहनजनेत्युत्तरार्थमेव । एतेनात्र तज्ज्ञापकमिति वदन्तः पुरुषोत्तमदेवसीरदेवादयः परास्ताः । यत्तु सीरदेवेनोत्तरार्थत्वे ज्ञापकत्वं कथमित्याशङ्क्य तत्रात इति स्थानी निर्देष्टव्य इत्युक्तम् । तन्न । उत्तरार्थस्यापीह किंचित्रपो इति न्यायेन त्वन्मते तत्त्वसभवात् । **माधवादीति** । आदिना दीक्षितादयः । जाग्रहितेत्यादौ तु दीर्घप्राप्तिरेव न । समुदायस्यैवाङ्गत्ववत्सनाद्यन्ता इति धातुत्वस्याप्यङ्गीकारात् । न हि तस्य ग्रहित्वम् । एव चैकाजनुवृत्त्या न दीर्घ इति हरदत्तोक्त दीक्षिताद्युक्तं च चिन्त्यमेव । एव च तत्रत्यमाधवोक्तिर्युक्तैव । तदाह—**इत्यन्यत्रेति** । शेखरादावित्यर्थः ॥ १०० ॥

तत्प्रसङ्गादेवाऽऽह—**यदपीति । स्थिताविति** । इक्स्थानिकवृद्धिरिति तदाऽर्थ इति भावः । नानुवाद इत्युक्तेरन्यत्रास्या[4] इष्टत्वाच्च विधिसूत्र इत्यर्थाभावेऽपि साक्षाद्विधेये

---

१ घ. °पि वेत्तिधा° । २ घ. °ति । एत° । ३ घ. °पक्षाभि° । ४ घ. ङ. °न्यत्र तस्या. ।

## विधौ परिभाषोपतिष्ठते नानुवादे ॥ १०१ ॥

अनूद्यमानविशेषणेषु तन्नियामकपरिभाषा नोपतिष्ठत इति तदर्थः । विध्यङ्गभूतानां परिभाषाणां विधेयेनासिद्धतया संबन्धासंभवेऽपि तद्विशेषणे व्यवस्थापकत्वेन चरितार्थानां तद्विशेषणव्यवस्थापकत्वे मानाभाव इति तर्कमूलेयम् । किं च ' उदीचामातः स्थाने ' ( ७ । ३ । ४६ ) इति सूत्रे स्थानेग्रहणमस्या लिङ्गम् । अन्यथा ' षष्ठी स्थाने ' ( १ । १ । ४९ ) इति परिभाषयैव तल्लाभे तद्वैयर्थ्यं स्पष्टमेवेति ।

तन्न । ' उदात्तस्वरितयोर्यणः ' ( ८ । २ । ४ ) इत्यादौ ' ष्यङः संप्रसारणम् ' ( ६ । १ । १३ ) इतिसूत्रभाष्योक्तरीत्या ' अल्लोपोऽनः ' ( ६ । ४ । १३४ ) इत्यादौ चैतस्या व्यभिचरितत्वात् । भाष्यानुक्तत्वाच्च । स्थानसंबन्धो न परिभाषालभ्य इत्यर्थस्य ' षष्ठी स्थाने ' ( १ । १ । ४९ ) इति सूत्रे भाष्ये स्पष्टमुक्तत्वेन त्वदुक्तज्ञापकासंभ-

---

परिभाषोपस्थितेरसंभवाद्विधावित्यस्य साक्षाद्विधेयविशेषण इत्यर्थ इति सूचयितुं निषेधवाक्यार्थमाह—**अनूद्येति** । **तदर्थ इति** । एतद्घटकनिषेधवाक्यार्थ इत्यर्थः । अत एवात्र तथैव रीतिमाह—**विध्यङ्गेति** । अङ्गत्वमुपकारकत्वम् । तद्विशेषणे, विधेयविशेषणे । **तद्वीति** । विशेषणविशेषणेत्यर्थः । एतेन प्रधानाप्रधानयोरितिन्यायलभ्योऽयमर्थ इति सीरदेवाद्युक्तमपास्तम् । तस्यान्यविषयत्वस्य[1] वक्ष्यमाणत्वात् । अत एव ज्ञापकमप्याह—**किं चेति** ।

**तन्नेति** । तदपि नेत्यर्थः । **इत्यादाविति** । आदिनाऽचो रहाभ्यामित्यादिपरिग्रहः । भाष्यासंमतिध्वननार्थं[3] कोट्यन्तरमाह—**ष्यङ इति** । **रीत्येति** । इयं चानन्त्यविकार इति परिभाषाव्याख्याने स्फुटी भविष्यति । चैतस्या इति पाठः । ननु संख्याव्ययादेरित्यादिग्रहणादनित्येयमिति सीरदेवाद्युक्तस्त्वान्नायं दोषोऽत आह—**भाष्येति** । नन्वयमपि[4] दोषो न युक्त इति प्रागुक्तमत आह—**स्थानेति** । स्थानशब्दार्थनिरूपितसंबन्ध इत्यर्थः । **परीति** । षष्ठी स्थान इतीत्यर्थः । किं त्वन्तरङ्गत्वलभ्यः[5] । तथा सत्यन्यार्थज्ञापनसंभवेऽपि नोक्तार्थज्ञापनसंभव इति भावः । नन्वेव तत्र स्थानपदानर्थक्यमत आह—

---

१ घ. °व बीजमा° । २ ङ. त्वात् । ३ क. नार्थकोऽयं ग्रन्थस्तदाह । ४ क. ङ. नन्वेवम° । ५ क. ङ. °लभ्य इति भावः ।

वाच्च। तत्र स्थानेग्रहणं तु स्पष्टार्थमेव । किं च विधौ परिभाषेति प्रवादः 'इको गुणवृद्धी' (१।१।३) 'अचश्च' (१।२। २८) इत्यनयोर्विधीयत इत्यध्याहारमूलकोऽन्यत्र तु नास्याः फलमित्यन्यत्र विस्तरः ॥ १०१ ॥

ननु नमस्करोति देवान्नमस्यति देवानित्यादौ 'नमःस्वस्ति' (२।३।१६) इति चतुर्थी दुर्वारेत्यत आह—

**उपपदविभक्तेः कारकविभक्तिर्बलीयसी ॥ १०२ ॥**

कारकविभक्तित्वं च क्रियाजनकार्थकविभक्तित्वम्। तच्च प्रथमाया अप्यस्तीति साऽपि कारकविभक्तिरिति 'सहयुक्ते' (२।३।१९) इत्यादिसूत्रेषु भाष्ये ध्वनितम्। इयं च वाचनिक्येव। अत एव 'यस्य च भावेन' (२।३।३७) इति सप्तम्यपेक्षयाऽधिकरणसप्तम्या बलवत्त्वमनेन न्यायेन 'तत्र च दीयते' (५।१।९६) इति सूत्रे भाष्ये

---

**तत्रेति**। उदीचामात इत्यत्रेत्यर्थः। **र्थमेवेति**। एवेन परिभाषामात्रानित्यत्वज्ञापकमिदमिति मतव्यवच्छेदः। उक्तयुक्ते। तर्कस्य तु न्यायज्ञापकभिन्नत्वेन न साधकत्वम्। तत्साध्यानामेव चात्र निरूपणमिति भावः। एव सर्वथा सार्वत्रिकैतदसत्त्वं प्रतिपाद्य क्वाचित्कत्वेन सत्ताऽपि न दुष्टेत्याह—**किं चेति**। **अध्याहारेति**। अत एव शालीयाद्यसिद्धिर्नेति भावः। अत एवात्र हेतुमाह—**अन्यत्र त्विति**। तुर्द्धर्थे। क्ङिति चेत्यत्र तु सतिसप्तम्या निर्वाहः। तदाह—**अन्यत्रेति**। उद्द्योतादावित्यर्थ. ॥ १०१ ॥

एव खण्डनीयखण्डनं कृत्वा बौद्धषष्ठीविभक्तिप्रसङ्गादाह—**नन्विति**। **नित्यादाविति**। आदिना मुनित्रयं नमस्कृत्येत्यादिपरिग्रहः। कारकाधिकारपठितसञ्ज्ञानिमित्तकविभक्तित्वं कारकविभक्तित्वमिति[2] भ्रमनिरासायाऽऽह—**कारकेति**। तस्या अपि क्रियाजनकेऽर्थे कर्त्रादौ विधानादिति भावः। या अप्यस्तीति साऽपि कारेति पाठः। अपी द्वितीयादिसमुच्चायकौ। **क्त इत्यादीति**। प्रसिद्धतरत्वात्सहयुक्त इत्यस्योपन्यासः। तथा चाऽऽदिशब्दः प्रकारे। तेनान्तरान्तरेणेत्यादेरपि संग्रहः। एवमग्रेऽपि बोध्यम्। **भाष्ये ध्वनितमिति**। तत्र ह्यप्रधानग्रहणाभावे[3] पुत्रेणेत्यादौ प्रधाने प्रथमाऽनेन न्यायेन साधिता। सा च तस्यास्तत्त्वं विनाऽनुपपन्ना। तद्ध्वनयन्वक्ष्यति सहयुक्त इत्यादौ चेति। **निक्येवेति**। एवेन प्रधानान्तरङ्गन्यायलब्धत्वव्यवच्छेदः। अत एव, वाचनिकत्वादेव। अस्य ध्वनितमुक्तमित्युभयत्रान्वयः। **तत्र च दीयत इति**। तत्र हि कार्यमित्यस्येव

---

१ घ. °त्वा ष°। २ ग. ङ. °ति मतनि°। ३ घ. °वे मानाभावात्तत्त्वाद्। पु°। ४ घ. °ब्धन्य°।

ध्वनितं कैयटेन स्पष्टमुक्तम् । एतेन क्रियान्वयित्वं कारकत्वमित्यपास्तम् । यस्य च भावेन( २।३।३७ ) इति सप्तम्या अपि क्रियान्वयित्वात् ।

ये तु प्रधानीभूतक्रियासंबन्धनिमित्तकार्यत्वेन कारकविभक्तीनां बलवत्त्वं वदन्ति तेषामुभयोरपि क्रियासंबन्धनिमित्तकत्वेन तदसंगतिः स्पष्टैव । 'नमोवरिवः' ( ३ । १ । १९ ) इति सूत्रे नमस्यति देवानित्यादौ चतुर्थीवारणाय भाष्य उपन्यासस्यासंगतिश्च ।

एतेन क्रियाकारकसंबन्धोऽन्तरङ्ग इति तन्निमित्ता विभक्तिरन्तरङ्गोपपदार्थेन तु यत्किंचित्क्रियाकारकभावमूलकः संबन्ध इति तन्निमित्ता बहिरङ्गेत्यपास्तम् । नमस्यतीत्यत्र नमःपदार्थेऽपि क्रियाकारकभावेनैवान्वयात् । अत्र च नमःपदार्थस्यापि क्रियात्वं मुण्डयतौ मुण्डस्येव ।

---

दीयत इत्यर्थस्यापि वैयर्थ्यशङ्कावसरे मास इति न भावलक्षणसप्तमी किं तर्ह्यौपश्लेषिकेऽधिकरण इत्युक्तम् । **ध्वनितमिति** । अस्य संगच्छत इति शेष[1] । उक्तमित्यस्य चेति शेषः । तेन तस्य तत्रान्वयः । अन्यथाऽन्तरङ्गत्वस्य प्रधानत्वस्य च द्वयोः समत्वेन तैन्न्या[2]ययोरविषयत्वेनैतत्प्रवृत्त्यभावात्तदसगतिः स्पष्टैव । दीक्षिताद्युक्तिं खण्डयति—**एतेनेति**[3] । तस्यार्थमाह—**यस्य चेति** । तथा चोभयोरपि कारकविभक्तित्वादुक्तभाष्यासंगतिरेवेति भावः ।

प्रधानन्यायमूलिकेयमिति सीरदेवाद्युक्तिं खण्डयति—**ये त्विति** । सीरदेवादय इत्यर्थः । **तेषामिति** । अग्रिमापिर्व्युत्क्रमे । तेषामपीत्यर्थः । **उभयोरिति** । सत्सप्तम्यधिकरणसप्तम्योरित्यर्थः । क्रियेत्यस्य प्रधानीभूतेत्यादिः । **तदेति** । तत्र चेति सूत्रभाष्यासंगतिरित्यर्थः । दोषान्तरमाह—**नम इति** । **असंगतिश्चेति** । नम.पदार्थेऽत्र[4] देवस्य क्रियाकारकभावेनैवान्वयेन तुल्यत्वादिति भावः । एतेन यत्रैकस्या एवोपपदविभक्तित्वं कारकविभक्तित्व च तत्रैवास्याः प्रवृत्तिस्तेन ज्योतिष्टोमेनेत्यादौ करणे तृतीया न त्वभेद इति भ्रान्ताद्युक्तमपास्तम् । उक्तभाष्यासगत्यापत्तेः । कैयटसीरदेवाद्युक्तिं खण्डयति—**एतेनेति** । **अन्तरङ्ग इति** । तद्विना पदार्थान्तराननन्वयात् । **तन्निमित्तेति** । बहुव्रीहिः । **यत्किंचिदिति** । सर्वत्र सबन्धस्य किंचित्क्रियाकारकभावमूलकत्वात् । यथा स्वत्व क्रयादिनिबन्धनमिति भावः । एतेनेत्यस्यार्थमाह—**नमस्येति** । देवादेरिति शेषः । तथा चोक्तभाष्यासगत्त्यापत्तिरिति भावः[5] । ननु नमःपदस्य नामत्वेन कथ तदर्थस्य क्रियात्वमत आह—**अत्र चेति** । नमस्यतीत्यत्रेत्यर्थ । विशिष्टधातुतानियामकक्यजादिसमभिव्याहारादिति भावः । अत एवाऽऽह—**मुण्डेति**[6] । तत्र दोषान्तरं ध्वनयन्नाह—

---

१ घ. °नस्य । २ घ. तत्प्राप्तयोर° । ३ ङ. °तिरेत्ति । ४ घ. °दार्थे क्रि° । ५ घ. व. । अत एव न° । ६ घ. °ति । दो° ।

'सहयुक्ते' (२।३।१९) इत्यादौ च प्रधाने प्रथमासाधनार्थमियं भाष्य उपन्यस्तेत्यन्यत्र विस्तरः ॥ १०२ ॥

नन्वदमुयङ्ङित्यादौ पूर्वस्यापि मुत्वापत्तिरत आह—

**अनन्त्यविकारेऽन्त्यसदेशस्य ॥ १०३ ॥**

**अन्त्यसदेशानन्त्यसदेशयोरेकप्रयोगे युगपत्प्राप्तावन्त्यसदेशस्यैवेति तदर्थः । अन्यथा धात्वादेर्नत्वसत्वे नेता सोतेत्यादावेव स्यातां न तु नमति सिञ्चतीत्यादौ । अनन्त्यविकार इति च लिङ्गम् ।**

---

**सहयुक्त इति** । अत एव चसंगतिः पुनरेतत्कथनसाफल्यं च । तथा चास्या अन्तरङ्गन्यायमूलकत्वे प्रथमापवादत्वे तृतीयायाः सर्वत्र तदापत्तिरन्यथा सर्वत्र प्रथमापत्तिस्तदभावे[1] । न चैव द्वितीयपक्षे सूत्राणां वैयर्थ्यम् । न्यायानुगतेऽर्थे हि किं कुर्मः[2] । तत आद्यपक्ष एवास्तु[3] । एवं च सर्वथाऽप्रधानग्रहणावश्यकत्वेऽनया तत्साधनपरभाष्यासंगतिरेव । तस्माद्वचनमेवेदम् । लाघवात् । न चैवं नमश्चकार देवेभ्यः, रावणाय नमः कुर्या इति भट्टिप्रयोगासंगतिः । अनुकूलयितुमित्यर्थेन निर्वाहात् । नमःस्वस्तीति चतुर्थीति जयमङ्गलोक्तिस्तु चिन्त्यैव[4] । उक्त हेतो. । तदाह—**इत्यन्यत्रेति** । उद्द्योतादावित्यर्थः ॥ १०२ ॥

वाचनिकत्वसाधर्म्येणोपस्थितेराह—**नन्वदेति** । पूर्वस्य, दस्य । प्रत्यासत्तिन्यायेनाऽऽह—**अन्त्येति** । **युगपदिति** । कार्यस्येति शेषः । सर्वं वाक्यं सावधारणमिति न्यायेनैवेति । तदर्थः, विधावुपस्थितस्य वचनघटकान्त्यसदेशस्येत्यस्यार्थः । तस्य[5] विधिनिषेधयोरेकप्रयोगरूपविषयकत्वाश्रयणमिति * भाव. । तथा च यत्रानन्त्यविकारस्तत्रान्त्यसेस्युपतिष्ठत इति परिभाषार्थः । अन्यथा, उक्तार्थानङ्गीकारे । धात्वादेरित्यस्य विधीयमाने इति[6] शेषः । आदिना त्यदादिसंबन्धिसत्त्वविध्यादिः स इत्यादावेव स्यान्न तु स्य इत्यादावित्यस्य[7] परिग्रहः । एतेनैतदर्थमस्या अनित्यत्वमिति भ्रान्तोक्तमेतद्दोषेणेय प्रत्याख्यातेति सीरदेवाद्युक्तं चापास्तम् । नन्वेवं सप्तम्यर्न्तं कुत्रान्वेतीत्यत आह—**अनन्त्येति** । परिभाषाया लिङ्गवत्त्वनियमात् । तथा च यत्रानन्त्यविकारस्तत्रानन्त्यसेत्युपतिष्ठत इति परिभाषार्थ इति भावः । एतेनानन्त्यविकार इति सीरदेवाद्यादृतप्रथमान्तपाठोऽनन्त्यस्य यो विकारः सोऽन्त्यसमीपवर्तिनो न यस्य कस्यचिदित्यर्थकः प्रत्युक्तः[8] ।

---

* भाव· इत्यस्याग्रेऽय ग्रन्थो घ. पुस्तके ।

---

१ घ. °पत्तिः । द्वितीयपक्षे न चैव स्यात्तदभावे सू° । २ घ. कुर्मस्ततस्मा° । ३ क एव वाऽस्तु । ४ ग. चिन्त्या नमस्पुरसोरिति सत्वानापत्तेस्तदा° । ५ क. ङ. तया । ६ क. ङ. °दिवि° । ७ घ. °विति । ए° । ८ ग. ङ °न्त व्यर्थमत आ° । ९ ग. पाठः प्रत्युक्तः । भाष्यविरोधात् । सादेशबलात्साहित्यप्रतीतिरिति भ्रमनिरासा° ।

अन्त्येन समानो देशो यस्य सोऽन्त्यसदेशः ।

तत्त्वं चान्त्यवर्णतद्वर्णयोरितराव्यवधानेन बोध्यम् । अत एव विद्ध इत्याद्यर्थं ' न संप्रसारणे ' ( ६ । १ । ३७ ) इति चरितार्थम् ।

' अल्लोपोऽनः ' (६।४।१३४) इत्यादेरनस्तक्षणेत्यादावाद्याकारादावप्रवृत्तिरप्यस्याः फलम् । यजादिस्वादिपरानन्ताङ्गस्याकारस्य लोप इत्यर्थस्यैवाङ्गांशे प्रत्ययस्योत्थिताकाङ्क्षतयौचित्यात् । अङ्गावयवयजादिस्वादिपरस्यान इत्यादिक्रमेणानेकत्रानेकक्लिष्टकल्पनापेक्षयाऽस्या उचितत्वात् ।

---

भाष्यविरोधाच्च । ननु सादेशश्रवणबलात्साहित्यप्रतीतेरव्ययीभावे बहुव्रीहौ वाऽर्थासंगतिरनन्वयापत्तिर्विधेयेन सहेति दोषनिरासायाक्षरार्थमाह—**अन्त्येनेति** । निपातनाद्बहुव्रीहिः सादेशश्चेति भावः ।

ननु देशशब्देनाऽऽकाशस्य प्रयोगस्य वा ग्रहणेऽतिप्रसङ्गस्तदवस्थ एव । स्थूलकालग्रहणेऽप्येवम् । सूक्ष्मकालग्रहणे त्वसंभवः सर्वत्रात आह—**तत्त्वं चेति** । अन्त्यसदेशत्व चेत्यर्थः । **इतरेति** । प्रथमप्रवृत्तविधिविधेयकार्यस्थानित्वानाक्रान्तवर्णेत्यर्थः । यथाश्रुते कालव्यवधानसत्त्वाददमुयङित्यादौ वर्णव्यवायसत्त्वाच्चासंगतिः स्पष्टैव । तथा च समानशब्दस्यैकपरत्वेन तथाऽव्यवधानेन तयोः कालयोरैक्याध्यवसायिक समुदितं कालदेशपदार्थमादाय तद्व्यवहार इति तदव्यवहितसमीपवर्तिन इति फलतीति सदेशशब्दोऽत्र तथा समीपपर इति बोध्यम् । अत्रार्थे मानं सूचयन्नाह—**अत एवेति** । तथाऽव्यवधाननिवेशेन तथार्थाङ्गीकारादेवेत्यर्थः । अन्यथाऽनयैव सिद्धे तद्वैयर्थ्यं स्पष्टमेवेति भाव. । एतेनास्या सत्त्वां स्य इत्यत्र तदोः सः साविति सत्व न स्यादिति भ्रान्तोक्त विद्धमित्यत्र वस्यानया न संप्रसारणमिति पुरुषोत्तमदेवोक्तं विदुष इत्यत्र विदो वस्य नानया वसोरिति सप्रसारणमिति पुरुषोत्तमसीरदेवाद्युक्त चापास्तम् । विदुष इत्यत्र निर्दिश्यमानेतिपरिभाषया निर्वाहाच्च ।

तदेतद्ध्वनयन्प्राचामुक्तिं खण्डयिष्यंश्चास्याः फलान्तरमप्याह—**अल्लोपोन इति** । आदिना विभाषा ङिश्योः सान्तमहत इत्यादिपरिग्रहः । **अन इति** । अनः शकटं तत्संबन्धितक्षणकर्त्रेत्यर्थः । आदिना पयासीत्यादिपरिग्रहः । द्वितीयादिना द्वितीयाद्यकारपरिग्रहः । अपिरदमुयङित्यस्य प्रागुक्तस्य समुच्चायक. । ननु प्राचोक्तव्याख्याभेदेन तत्र प्रवृत्तिरेव नात आह—**यजादीति** । अङ्गस्य भस्येत्युभयलब्धमिदम् । विधौ परिभाषेति तु नास्त्येवेति भाव. । नन्वस्मिन्नर्थेऽस्या अङ्गीकारे गौरवमतस्त व्याख्याभेदं सूचयन्नाह—**अङ्गावयवेति** । **यजादिस्वादिपरस्यान इत्यादीति** । आदिना सान्तमहत इत्यत्र

---

१ ङ. °तिश्चान्त्येन स° । २ ङ °व । स्थल° । ३ ख °सायान्त काल देश प° । घ. °सायार्द काल देश प° । ४ ग. °नाकारादिपरि° । ५ क. ख. ङ. °त्र्यादिव्या° ।

न चैषा 'ष्यङः संप्रसारणम्' (६।१।१३) इति सूत्रे भाष्ये प्रत्याख्यातेति भ्रमितव्यम्। वार्तिकोक्तफलानामनेकक्लिष्टकल्पनाभिरन्यथा सिद्धिं प्रदर्श्यापि यान्येतस्याः परिभाषायाः प्रयोजनानि तदर्थमेषा कर्तव्या प्रतिविधेयं दोषेषु। प्रतिविधानं चोदात्तनिर्देशात्सिद्धमित्याद्युपसंहारात्।

**मिमार्जिषतीत्यर्थं च। तत्र वृद्धेः पूर्वमन्तरङ्गत्वाद्द्वित्वे परत्वादभ्यासकार्ये ततोऽभ्यासेकारस्य वृद्धिवारणायाऽऽवश्यकी। न च वृद्धौ पुनरभ्यासह्रस्वत्वेन सिद्धिः। लक्ष्ये लक्षणस्येति न्यायेन पुनरप्रवृत्तेः।**

---

तथा व्याख्यानपरिग्रह'। निराकाङ्क्षत्वेनैवमन्वयासभवः क्लेशबीजम्। नेकत्र, अल्लोपोनः विभाषा ङिश्यो' सान्तमहतः मृजेर्वृद्धिरित्यादौ वार्तिकपठिते। **नेकेति**। सा च मनोरमादौ स्पष्टा।

पुरुषोत्तमदेवसीरदेवाद्युक्तिमुक्तव्याख्याभेदाश्रयिका खण्डयति—**न चैषेति**। **वार्तिकोक्तेति**। प्रयोजन न संप्रसारणे सप्रसारणमित्यादि तत्सूत्रस्थवार्तिकोक्तैतत्परिभाषाफलानामित्यर्थः। अनेनादमुयङित्यस्य नान्यथा सिद्धिरिति सूचितम्। तत्सूत्रस्थवार्तिकानुक्तत्वात्[2]। प्रदर्श्यापीत्यस्योपसहारादित्यत्रान्वयः। **यान्येतस्या इति**। दोषाः समा भूयांसो वा तस्मान्नार्थः परिभाषयेत्युक्त्वा न हि दोषाः सन्तीत्याद्युक्त्वोक्तं दोषाः खल्वपि साकल्येन परिगणिताः प्रयोजनानामुदाहरणमात्र कुत एतत्, न हि दोषाणा लक्षणमस्ति तस्मादितीत्यादिः। **उदात्तेति**। यथा स्वरितेनाधिकारस्तथा प्रतिज्ञाप्रापितेनोदात्तेनैतत्परिभाषाप्रवृत्तिः। तथा चानन्त्यविकारेऽन्त्यसदेशस्योदात्तनिर्देश इति पाठ्यम्। तथा च न तदुक्तसकलफलानामन्यथासिद्धिः[3]। किं तु केषाचिदेवेति तदर्थमप्यावश्यकीयमिति भावः[4]। **सिद्धमित्याद्युपेति**। आदिनैतत्खण्डनप्रकारस्यान्त्यसदेशानन्त्येत्यादिप्रागुक्तस्य परिग्रहः। अबिभास्स्यत्र गतिस्तु वक्ष्यते।

इदमेव ध्वनयन्वार्तिकोक्तमेवास्या लक्ष्यभेदेन भाष्योक्तफलान्तरमाह—**मिमेति**। **त्यर्थं चेति**। इय स्वीकार्येति शेषः। तदुपपादयति—**तत्रेति**। मिमार्जिषतीत्यत्रेत्यर्थः। **न्तरङ्गेति**। अपरनिमित्तकत्वेनान्तरङ्गत्वम्। सन्यङोरिति हि षष्ठी। **वृद्धीति**। इक्परिभाषया न्यमार्डित्यस्य सिद्धावप्यत्र दोष एवेति भावः। णायाऽऽवश्यकीति पाठः। भाष्योक्तसीरदेवोद्यादृतसमाधिं निराचष्टे—**न चेति**। पर्जन्यवल्लक्षणप्रवृत्तिरिति न्यायेनाऽऽह[5]—**लक्ष्य इति**। विकारान्यानुपूर्व्यैक्यमिति[6] भावः।

---

१ क. 'तत्तत्सू°। २ ग. ङ °तिकक्तदनु°। ३ घ सिद्धिरिति सूचितम्। तदुक्ताना सर्वेषा नान्यथासिद्धिः। कि। ४ ख. घ. °वः। इ°। ५ घ. °वाद्युक्तस°। ६ ख. ङ. °पूर्वैक्य°।

यत्तु न संप्रसारण इति सूत्रे भाष्ये नैतस्याः परिभाषायाः प्रयोजनानीत्युक्तं तस्यायमर्थः। एतत्सूत्रप्रयोजनान्येतस्याः परिभाषायाः प्रयोजनानि न भवन्ति व्यधादावन्त्यसमानदेशयणोऽभावादिति। नैतान्येतस्याः प्रयोजनानीति पाठोऽपि क्वचिद्दृश्यते। वाचनिक्येवैषा। स्पष्टा च 'ष्यङः' (६।१।१३) इति सूत्रे 'अदसोऽसेः' (८।२।८०) इति सूत्रे च केचिदन्त्यसदेशस्येत्यनेन भाष्य इत्यन्यत्र विस्तरः ॥१०३॥

ननु 'अव्यक्तानुकरणस्यातः' (६।१।९८) इति पररूपं पटदिति पटितीत्यादौ 'अलोऽन्त्यस्य' (१।१।५२) इत्यन्त्यस्य प्राप्नोतीत्यत आह—

**नानर्थकेऽलोऽन्त्यविधिरनभ्यासविकारे ॥ १०४ ॥**

---

नन्वेवमप्यस्याः सत्त्वे न संप्रसारण इतिसूत्रस्थभाष्यविरोधोऽत आह—**यत्त्विति**। न भवन्ति व्यधादाविति पाठः। व्यधादाविति हेतुपूरणम्। **अभावादितीति**। अकारेण तादृशेन व्यवधानादिति भावः। एवमर्थकरणे मान सूचयन्नाह—**नैतान्येतेति**। अत एव नैषाऽस्ति परिभाषेति नोक्तम्। **निक्येवेति**। एवः प्राग्वत्। अदमुयङित्येतत्सिद्ध्यर्थमस्या आवश्यकत्वमपि भाष्योक्तमिति सूचयन्प्रागुक्त फलं द्रढयश्च पृथगाह—**अदसोऽसेरितीति**। एवमानुपूर्व्यास्तत्रापाठादाह—**केचिदिति**[2]। चित्रयतेः क्विप्यतो लोपे णिलोपादौ प्रातिपदिकत्वात्सौ हल्ङ्यादिलोपे यणः प्रतिषेधादितः सयोगान्तलोपाभावे पूर्वत्रासिद्धे नेति निषेधात्स्थानिवत्त्वाभावे प्रत्ययलक्षणेन पदान्तत्वाच्चित्र् इत्यत्रान्त्यसदेशस्येकोऽभावादनन्त्यसदेशस्येको दीर्घवारणाय वोरित्यत्रोपधाग्रहणम्। एवमचकासीदित्यादावुक्तरीत्याऽऽद्याकारस्य[3] वृद्धिवारणायोपधाग्रहणमत उपधाया इत्यत्र। एतेनोपधाद्वयग्रहणादनित्येयमिति भ्रान्तोक्तमत उपधाया इत्यत्रोपधाग्रहण चिन्त्यमिति सीरदेवाद्युक्तं चापास्तम्। तदाह—**अन्यत्रेति**। भाष्यादावित्यर्थः॥ १०३॥

प्रतियोगित्वेनोपस्थितालोन्त्यपरिभाषाप्रसङ्गादाह—**नन्वव्यक्तेति**। पटदिति, पटितीत्यादिसिद्ध्यर्थके पटदितीत्यादावित्यर्थः। तथा च पटेतीत्यादि स्यात्। पटितीत्यादि न स्यादेतदर्थमेव तदुपादानम्। **नानेति**। अभ्यासविकार[4]विषयभिन्नानर्थके स नेत्यर्थः। दौ भृञामिदित्याद्यमिति पाठः। आदिभ्यामजीगणदित्यादावी च गण इत्यादिसग्रहः।

---

१ ग °ति। अविभरित्यत्रान्त्यस°। २ घ. °दिति स°। ङ °दि तत. स। ३ ख. ग. घ. ङ. एवं प्रच°। ४ ङ. °काराविं°।

अनभ्यासेत्युक्तेर्बिभर्तीत्यादौ 'भृञामित्' (७।४।७६) इत्याद्यन्त्यस्यैव। अभ्यासोऽनर्थकोऽर्थावृत्त्यभावात्। किं तूत्तरखण्ड एवार्थवानित्यन्यत्र निरूपितम्। एषाऽलोऽन्त्यात्सूत्रे भाष्ये स्पष्टा। फलानामन्यथासिद्धिकरणेन प्रत्याख्याता चेति तत एवावधार्यताम् ॥ १०४॥

ननु ब्राह्मणवत्सा च ब्राह्मणीवत्सश्चेत्यादौ 'पुमान्स्त्रिया' (१।२।६७) इत्येकशेषापत्तिः। स्त्रीत्वपुंस्त्वातिरिक्तकृतविशेषाभावादत आह—

**प्रधानाप्रधानयोः प्रधाने कार्यसंप्रत्ययः ॥ १०५ ॥**

---

नन्वनभ्यासेति व्यर्थमभ्यासस्यार्थवत्त्वेन निषेधस्यैवाप्रा[1]प्तेरत आह—**अभ्यास इति**। **त्त्यभावादिति**। शब्दद्वयश्रवणवत्ततोऽर्थद्वयाप्रतीतेरिति भाव.। समुदायस्यैवार्थवत्त्वमिति प्राचीनमतनिरासायाऽऽह—**किं त्विति**। एवस्तद्व्यावृत्तये। अयं भावः—केवलाभ्यासस्याप्रयोगेण ततो लोकेऽर्थाबोधात्तस्य तत्त्वम्। उत्तरखण्डस्य तु प्रत्ययाव्यवहितप्राग्वर्तिनः केवलस्याप्यन्यत्रार्थबोधकताया दृष्टत्वेनार्थवत्त्वमेव। पेचतुरित्यादौ तदभावेऽप्यर्थबोधाच्च। अभ्यासप्रयोगस्तु रैपोषं पु[2]ष्यतीतिवत्साधुत्वार्थ एव। यातिरित्यादौ तु शिष्यमाण लुप्यमानार्थाभिधायीति न्यायेनैकदेशोतिन्यायेन सर्वे सर्वपदेति न्यायेन चोत्तरखण्डाभावाच्छिष्यमाणस्यैवार्थबोधजनकत्वम्। न हि लोपाविषये तस्य तत्त्वं दृष्टम्। इद केवलस्यानर्थकत्वं समुदायस्यार्थवत्त्वमिति वदताऽप्यावश्यकम्। अत एव प्रागुक्तदयतेरितिसूत्रस्थभाष्यसंगतिरिति। तदाह—**अन्यत्रेति**। शेखरादावित्यर्थः। **अलोन्त्यादिति**। उपधासज्ञासूत्र इत्यर्थः। **अन्यथेति**। नाऽऽम्रेडितस्यान्त्यस्य तु वेति ज्ञापकात्पटितीत्यादिसिद्धिः। अनादेशे कृते हलि लोप इति नलोपादाभ्यामित्यादिसिद्धिः। द्विशाकारकनिर्देशेन ध्वसोरिति लोपः सर्वादेशः। अत्रग्रहणादत्र लोप इति लोपः सर्वादेशः। अत एव तस्य लोप इत्यत्र तस्य ग्रहण सार्थकं सर्वादेशत्वाय। इत्यादिप्रकारेणेत्यर्थः। इय वाचनिकीति केचित्। इदमो मः[3], इदश्च यः सौ, अयुपुसीत्येव सिद्धे[4] दग्रहणमाद्याशज्ञापकमार्तिपिपर्त्योरिति निर्देशोऽनभ्यासेत्यंशज्ञापक इत्यपरे ॥१०४॥

अनभ्यासेत्युक्त्योत्तरखण्डस्यार्थवत्त्वेन स्मृतप्राधान्यप्रसङ्गादाह—**नन्विति**। ननु ब्राह्मणेति पाठ.। **त्यादाविति**। आदिना क्षत्रियवत्सा च क्षत्रियावत्सश्चेत्यादिपरिग्रहः। **प्रधान इति**। निरूपितत्वं सप्तम्यर्थः। तन्मात्रनिरूपितकार्ये[5]त्याद्यर्थः। तेन, उक्त-

---

१ घ. 'वणात्त°। २ क. पुष्णाती°। ३ ग. ङ. °मः, दश्च। ४ ग. सिद्ध इद्ग्रह°। ङ. सिद्ध इद्ग्र°। ५ घ. 'र्येत्यर्थः।

**तेन प्रधानस्त्रीत्वपुंस्त्वातिरिक्ताप्रधानस्त्रीत्वपुंस्त्वकृतविशेषस्यापि सत्त्वेन न दोषः ।**

**स्पष्टा चेयं 'पुमान्स्त्रिया' (१ । २ । ६७) 'नपुंसकमनपुंसकेन' (१ । २ । ६९) इत्यनयोर्भाष्ये । अन्तरङ्गोपजीव्यादपि प्रधानं प्रबलमिति 'हेतुमति च' (३ । १ । २६) इत्यत्र भाष्यकैयटयोः ॥ १०५ ॥**

**ननु स्वस्रादित्वप्रयुक्तो मातृशब्दस्य ङीब्निषेधः परिच्छेत्तृवाचकमातृशब्देऽपि स्यादत आह—**

**अवयवप्रसिद्धेः समुदायप्रसिद्धिर्बलीयसी ॥ १०६ ॥**

---

परिभाषाङ्गीकारेण । **क्ताप्रधानेति** । ब्राह्मणनिष्ठेत्यर्थः । अपिना तत्कृततत्समुच्चयः । न दोष., नैकशेषापत्तिस्तत्र । यत्तु सीरदेवादय आ कडारादित्यत्र कडाराः कर्मधारय इत्यत्रत्यः कडारशब्दोऽवधिर्न तु प्राक्कडारादित्यत्रत्य इत्यस्याः फलम् । आद्ये पूर्वत्वविशिष्टानां तेषा विधानेन प्राधान्यमन्त्ये वैपरीत्येन तत्त्वाभाव इति । तन्न । द्वयोरप्यधिकारत्वेन गुणानामिति न्यायेनासम्बन्धात् । लौकिकोऽय न्याय॰ । तत्र हि जयपराजयौ राज्ञ्येव प्रतीयेते । बहुषु गच्छत्सु को यातीति प्रश्ने राजेत्युत्तर च ।

**स्पष्टा चेयमिति** । आद्येऽनयोक्तरीत्योक्तस्थल एकशेषो वारित॰ । अन्त्येऽनया क्लीबशेषमङ्गीकृत्य तत्सूत्रं प्रत्याख्यातम् । अनिर्ज्ञातेऽर्थे गुणसंदेहे विदूरेऽव्यक्तरूपे च लोके नपुसकलिङ्गस्यैव प्रयोगात्तस्य प्रधानत्वम् । केनेत्यनयोरिति पाठः । नेत्यादाविति पाठान्तरम् । आदिसंग्राह्यमेव प्रकटयन्परिभाषाया विषयान्तरमप्याह—**अन्तरमिति ।** अन्तरङ्गादुपजीव्याच्चेत्यर्थः । परादितोऽन्यस्मात्प्रबलमिति किमु वक्तव्यमित्यपिना सूचितम् । **कैयटयोरिति** । तत्र हि हेतुमतीत्यस्य प्रकृत्यर्थविशेषणत्वं सदूष्य स्वीकृते प्रत्ययार्थविशेषणत्वे पाचयत्योदन देवदत्तो यज्ञदत्तेनेत्यादौ प्रयोज्यकर्तरि स्वव्यापारापेक्षया स्वातन्त्र्येण परत्वादन्तरङ्गत्वादुपजीव्यत्वाच्च प्राप्तकर्तृत्वमनादृत्यदत्तकर्मतापत्तिदोषो गतिबुद्धीति नियमेन वारितः । लोके तथा दर्शनं हि तद्बीजम् । अन्यथा तदसगतिः स्पष्टैवेति भाव: । एतेन मनोरमादिकं चिन्त्यमेवेति सूचितम्[३] ॥ १०९ ॥

प्राबल्यप्रसङ्गादाह—**नन्विति । शब्दस्येति ।** अवधेः संबन्धित्वेन विवक्षायां षष्ठी । एवमग्रेऽधिकरणत्वेन तस्या सप्तमी । **परीति ।** परिच्छेत्ता धान्यमाता । **पि स्यादिति** । व्याप्तिन्यायात् । तस्य यौगिकत्वेन व्यक्त्यादिविशेष्यकत्वेन स्त्रियामपि

---

१ क. ग. घ. °ल इति । २ घ. °दत्य क° । घ. °दत्य क° । ३ क. ङ. °म् । प्राधान्येन तात्पर्यविषयप्रा° ।

**तेन शुद्धरूढस्य जननीवाचकस्यैव ग्रहणं न परिच्छेत्तृवाचकस्य। योगजबोधे तदनालिङ्गितशुद्धरूढिजोपस्थितिः प्रतिबन्धिकेति व्युत्पत्तिरेव तद्बीजम्। रथकाराधिकरणन्यायसिद्धोऽयमर्थः।**

**कश्चित्तु 'दीधीवेवीटाम्' (१।१।६) इत्यत्रानया परिभाषया दीधीङ्वेवीङोरेव ग्रहणं न दीङ्धीङ्वेङ्वीनामिति। तन्न। तथा सति दीवेधीवीटामित्येव वदेदित्यन्ये॥ १०६॥**

---

वृत्तेः। तेन, तद्बलवत्त्वाङ्गीकारेण। समुदायप्रसिद्धिसत्त्वाय योगव्यवच्छेदाय चाऽऽह—**शुद्धेति**। अत्र न्याये बीजमाह—**योगेति**। रूढ्यर्थतावच्छेदकानाक्रान्तैमात्रविषयकयोगजबोध इत्यर्थः। शुद्धेत्यस्य व्याख्या—**तदनेति**। योगामिश्रितेत्यर्थः। यद्वा यतस्तदनालिङ्गितत्त्वमतः शुद्धत्वमित्यर्थः। तथा च यौगिकरूढस्थलेऽयं प्रतिबध्यप्रतिबन्धकभावो न योगरूढस्थल इति बोध्यम्। ननु प्रतिबध्यप्रतिबन्धकभावकल्पन एव किं मानमत आह—**रथेति**। 'माहिष्योग्रौ प्रजायेते विट्शूद्राङ्गनयोर्नृपात्। शूद्रायां करणो वैश्याद्विन्नास्वेष विधिः स्मृत.। माहिष्येण करण्या तु रथकारः प्रजायते' इति मनुः। तदधिकरणे हि योगेन तत्कर्ता द्विजो ग्राह्योऽथ वोक्तरूपो रूढ इति सशय्य विद्यादिमत्त्वाद्योगार्थ एवेति पूर्वपक्ष कृत्वा रूढेः प्राबल्यात्स एव गृह्यते तदन्यथानुपपत्त्याऽध्ययनादिक तस्य कल्प्यत इति सिद्धान्तितम्। **द्धोऽयम्**। प्रतिबध्यप्रतिबन्धकभावः। एतेन नायमेतदधिकरणसिद्ध इति भ्रान्तोक्तमपास्तम्।

पुरुषोत्तमदेवसीरदेवाद्युक्तिमाह—**कश्चिदिति**। समुदायस्य सर्वानुग्राहित्वेन प्राधान्यात्प्रधानन्यायलब्धोऽयमर्थस्तेनेत्युक्त्वैतत्तैरुक्तम्। इतीत्यस्याऽऽहेति शेषः। अत्र कश्चिदित्यनेनारुचिः सूचिता। सिद्धान्त इङ्ग्रहणसत्त्वेऽपि दीधीवेव्योर्ग्रहणस्य प्रत्याख्यानरूपा। तथा च भाष्यरीत्या न तत्फलमिति तात्पर्यम्। सूत्ररीत्याऽपि तन्नेति मतान्तरमाह—**तन्नेति**। यच्चु वीवेदीधीटामिति वदेदिति न्यासकृदनुवादिसीरदेवादयस्तत्र। तावताऽपि दीधीत्यशे दोषतादवस्थ्यात्। अत आह—**दीवेधीति**। यत इत्यादिः। तथा च निष्प्रयोजनेयं परिभाषेति तद्भावः। **अन्य इति**। न्यासकृदादय इत्यर्थः। अनेनारुचिः सूचिता। तद्बीजं त्वेवमपीडशे सदेहतादवस्थ्यमेवेत्युपायान्तराश्रयणावश्यकत्वे तेनैवात्रापि निर्वाह इति नैवंप्रकाराश्रयणमपि। किं चावतारणोक्तफलसत्त्वेन सफलत्वमिति। किं च कश्चिन्मते तत्र प्रधानन्यायेनानिर्वाहः। एतेन प्रधानन्यायेनैवेय गतार्थेति भ्रान्तोक्तमपास्तम्। तस्मादुक्तमूलकलिकैवेयमिति भावः। इदमपि साहचर्यानाश्रयणेन। यदि तु साह-

---

१ ख. ग. घ. ङ. °ये मूलमा°। २ घ °न्तस्तदस्य यौगिकत्वेन व्यक्त्यादिविशेष्यकत्वेन त्रियोगिकरूढ्युपस्थितयोगजबो°। ३ ख° °योर्द्विजात्। ४ ङ. °युक्तिं खण्डयति—क°।

ननु वातायनार्थे गवाक्षेऽवङो वैकल्पिकत्वाद्गोक्ष इत्याद्यपि स्यादत आह—

**व्यवस्थितविभाषयाऽपि कार्याणि क्रियन्ते ॥ १०७ ॥**

लक्ष्यानुसाराद्व्यवस्था बोध्या । 'शाच्छोः' (७।४।४१) इति सूत्रे 'लटः शतृ' (३।२।१२४) इत्यादिसूत्रेषु च भाष्ये स्पष्टा ॥ १०७ ॥

**विधिनियमसंभवे विधिरेव ज्यायान् ॥ १०८ ॥**

नियमे ह्यश्रुताया अन्यनिवृत्तेः सामर्थ्यात्परिकल्पनमुक्तानुवाददोषश्चेति

---

चर्येण योनिसम्बन्धवाचकस्यैव स्त्रीलिङ्गिमात्रस्यैव[1] वा ग्रहणमित्युच्यते तदैषा निष्फलेति केचित् । वस्तुतस्तु पाण्डुकम्बलादिनिरित्यत्र रूढस्यैव तस्य ग्रहण न यौगिकस्यापीत्यादिफलार्थमस्या आवश्यकत्वम् । मूल तूपलक्षणमिति बोध्यम् ॥ १०६ ॥

यौगिकरूढप्रसङ्गेन योगरूढविषयामाह[2]—**ननु वातेति । नार्थे गेति ।** अभिधेयवाच्यर्थशब्देन बहुव्रीहिः[3] शब्दपरेण तेन सामानाधिकरण्यमिति भावः । यद्वा तद्रूपेऽर्थे । गोक्ष इत्याद्यपि स्यात्तत्र[4] तस्य वैकल्पिकत्वादित्यर्थः । **त्याद्यपीति ।** आदिना गो अक्ष इत्यस्य परिग्रहः । **व्यवेति ।** विशिष्टविषयेऽवस्थितया[5] विभाषया विकल्पेनेत्यर्थः अपिः सार्वत्रिकाव्यवस्थिता[6]विभाषासमुच्चायकः । **क्रियन्त इति ।** क्वचिदिति शेषः । तदाह—**लक्ष्येति ।** एतेन जातिपक्षसमाश्रयणलब्धोऽयमर्थः । तत्र हि सकृदेव लक्षण प्रवर्तते । तस्या एकत्वादेकत्र लक्ष्यजातौ कृतोऽपि भावः सर्वत्र कृत इति विकल्पस्य चारितार्थ्यम् । भावाभावात्मको हि विकल्प इति पुरुषोत्तमदेवसीरदेवाद्युक्तमपास्तम् । तदाश्रयणेऽपि लक्ष्यानुसारस्यैव बीजत्वात् । त्वदुक्तयुक्तेः सकृद्गतिन्यायप्रसङ्गे खण्डितत्वाच्च । एतेन व्याख्यानत इत्यस्य प्रपञ्चभूतेयमित्यपास्तम् । व्याख्यानस्यापि लक्ष्यमूलकत्वात् । लक्ष्यानुसारमेव दर्शयन्नाह—**शाच्छोरितीति ।** तत्र हि देवत्रात इत्यादिना तासा परिगणन कृतम् । अन्त्ये कौर्वतः पाचत इत्यादेः पचतितरामित्यादेश्च शत्रादितदभावाभ्यां सिद्धिरनया कृता ॥ १०७ ॥

विकल्पविधिप्रसङ्गादाह—**विधीति ।** अपूर्वविधीत्यर्थः । **संभव इति ।** अनेनासंभवे तस्यावकाशः प्रदर्शितः । प्रकर्षे हेतु सूचयन्नत्र बीजमाह—**नियमे हीति ।** यतस्तत्रेत्यर्थः । परिसख्याऽप्यत्र शास्त्रे नियमपदेन गृह्यत इति न न्यूनता । नियमशास्त्राणा विधिमुखेनैव प्रवृत्तेः सिद्धान्तितत्वादाह—**सामर्थ्यादिति । षश्चेतीति ।**

---

१ क ङ 'लिङ्गमा' । २ ख घ. 'षयमा' । ३ ख. ग ङ 'व्रीहेः श' । ४ घ. 'स्यादित्यादि तत्र । ५ क. पुस्तके 'ये व्यवस्थि' इति पाठान्तरम् । ६ ङ. 'त्रिकव्य' ।

लाघवाद्विधिरेवेति बोध्यम् । 'यस्य हलः' (६ । ४ । ४९) इत्यत्र भाष्ये स्पष्टेयम् ॥ १०८ ॥

ननु 'आशसायां भूतवच्च' (३ । ३ । १३२) इत्यनेन लुङ इव लङ्लिटोरप्यतिदेशः स्यादत आह—

**सामान्यातिदेशे विशेषानतिदेशः ॥ १०९ ॥**

सामान्योपस्थितिकाले नियमेन विशेषोपस्थापकसामग्र्यभावोऽस्या बीजम् । तेनानद्यतनभूतरूपे विशेषे विहितयोस्तयोर्नातिदेशः । इयमनित्या । 'न ल्यपि' (६ । ४ । ६९) इति लिङ्गात् । तेन स्थानिवत्सू-

---

त्रेन प्राप्तबाधसमुच्चयः । तथा च दोषत्रयम् । इतिर्हेतौ । लाघवात्, दोषत्रयाकल्पनलाघवात् । तथा च तन्मूलेयम् । एतेनान्तरङ्गन्यायसिद्धोऽयमर्थ इति सीरदेवाद्युक्तमपास्तम् । अर्थकृतबहिरङ्गत्वस्य निरस्तत्वात् । प्रागुक्तान्यतमस्य तस्य दुर्वचत्वाच्च । **यस्येति** । तत्र हि यस्येतिसघातग्रहणपक्षेऽन्त्यलोपे पूर्वेण सिद्धे सामर्थ्यादप्राप्तः सर्वलोपो विधेय उत यस्य हल एव नान्यतो लोलूयितेत्यादाविति सशय्यानयाऽपूर्वविधिरेवेत्युक्तम् । इजादेः सनुम इत्यत्र तु पूर्वपक्षिणेयमुक्ता न सिद्धान्तिनेति तस्यात्रानुल्लेखः । काचित्कस्तथा पाठस्तु न युक्त इति बोध्यम् ॥ १०८ ॥

विधिप्रसङ्गादतिदेशविधिविषयामाह—**नन्विति** । **स्यादिति** । तयोरपि भूते विधानेन व्याप्तिन्यायादिति भावः । न्यातिदेशे, तत्सभवे । अन्यथा तु तस्यैवातिदेश इति बोध्यम् । **सामान्योपेति** । तृतीयार्थे पञ्चम्यर्थे वा बहुव्रीहि. । तदुपस्थापकसामग्रीकाल इत्यर्थः । एतेन ब्राह्मणवदस्मिन्क्षत्रिये वर्तितव्यमिति लोकन्यायसिद्धोऽयमर्थस्तत्र हि तत्सामान्यकार्यं पादवन्दनादिकमतिदिश्यते न माठरादिप्रयुक्त परिवेषणादिकमिति पुरुषोत्तमदेवसीरदेवाद्युक्तमपास्तम् । तत्राप्यस्यैव बीजत्वस्य वाच्यत्वात् । एतेनोपस्थितसामान्यधर्मैस्तदाक्षिप्तव्यापकधर्मैश्च विध्याकाङ्क्षापूरणे सति तदन्यग्रहणे मानाभाव इति तर्कमूलेयमिति मान्योक्तमपास्तम् । तत्र मूलस्यैवाभावात् । तस्य मूलत्वस्य निरस्तत्वाच्च । नियमेनेत्यनेन तत्सत्त्वे तदतिदेशोऽपीति सूचितम् । तेन, परिभाषाङ्गीकारेण । यत्त्वनित्यत्वेऽनल्विधाविति विधिग्रहण लिङ्गमिति सीरदेवस्तन्न । तस्यान्यार्थताया भाष्य एव स्पष्टत्वात् । तद्ध्वनयन्नाह—**न ल्यपीति** । अन्यथा न क्त्वा सेडिति निषेधेन सेटस्तदभावात्कित्वस्य क्त्वाविशेषधर्मत्वादनतिदेशेनेत्वाप्राप्त्या निषेधवैफल्यं स्पष्टमेवेति

---

१ घ. °षयमा° । २ ग. तस्याप्यति° । ३ घ. °त्रान्यस्यै° । ४ घ. तत्रास्य । ५ ग. °न, तदभावस्यैतद्बीजत्वेन । य° । ६ घ. °देवादयस्त° । ७ क. °वैयर्थ्यं स्प° ।

श्रेण विशेषातिदेशोऽपि । स्पष्टं चैतत्सर्वं स्थानिवत्सूत्रे भाष्ये ॥ १०९ ॥

ननु 'तित्स्वरितम्' (६।१।१८५) इति स्वरितत्वं किरतीत्यादावपि स्यादत आह—

**प्रत्ययाप्रत्यययोः प्रत्ययस्य ग्रहणम् ॥ ११० ॥**

इयं च 'अङ्गस्य' (६।४।१) इति सूत्रे भाष्ये पठिता। वर्णग्रहणे च न प्रवर्तत इति तत्रैव कैयटे स्पष्टम् । अत एव 'सनाशंसभिक्ष उः' (३।२।१६८) 'बले' (६।३।११८) इत्यत्र सन्वलयोः प्रत्यययोर्ग्रहणम् ।

परे तु 'तित्स्वरितम्' (६।१।१८५) इति सूत्र एषा परिभाषा लक्ष्यसंस्काराय भाष्ये क्वापि नाऽऽश्रितेति कैयटेनोक्तम् । 'अङ्गस्य' (६।४।१) इति सूत्रे तत्प्रत्याख्यानायैषा भाष्य एकदेशिनोक्ता। अत एव तिति प्रत्ययग्रहणं कर्तव्यमिति वार्तिककृतोक्तम् ।

---

भावः । तेन, एतदनित्यत्वेन । **देशोऽपीति** । अत एवाग्रहीदित्यादौ दीर्घस्य स्थानिवत्वेनेट्त्वादिट ईटीति लोपासिद्धि. । प्रखाय प्रखन्येत्यादावात्वविकल्पादिसिद्धिश्च । **चैतत्सर्वमिति** । न्यायबीजानित्यस्वरूप त्रितयम् ॥ १०९ ॥

लुडादिप्रत्ययप्रसङ्गादाह—**नन्विति** । ननु तित्स्वरितमिति स्वरितत्वं किरतीत्यादावपीति पाठः । सनाशसेत्युः सन्धातोरपीत्यपपाठ । वक्ष्यमाणेन पौनरुक्त्यापत्तेः । **स्यादिति** । व्याप्तिन्यायादिति भावः । प्रत्ययस्य, तस्यैव । क्वचित्तथैव पाठ. । इय चाङ्गस्येति सूत्र इति पाठः । अङ्गसज्ञासूत्र इति पाठेऽङ्गसज्ञाधिकारसूत्र इत्यर्थः । पठितेत्यनेन वाचनिकत्वं सूच्यते । **हणे चेति** । चस्त्वर्थे । तत्रैव, अङ्गस्येति सूत्र एव । अन्यथेको यणचीत्यादि चयो[1] जय इत्यादावेव स्यान्नतु दध्यत्रेत्यादाविति भावः । अस्याः फलान्तरमप्याह—**अत एवेति** । वर्णान्यत्र परिभाषाङ्गीकारादेवेत्यर्थ' ।

लक्ष्यसंस्कारायेत्युक्तिस्वारस्यमाह—**अङ्गस्येतीति** । **तत्प्रत्येति** । अङ्गाधिकारप्रत्येत्यर्थः । परिभाषापेक्षयाऽङ्गाधिकारे लाघवादनया सर्वेष्टासाधना[2]च्चास्या एकदेश्युक्तित्वम् । इदमेव द्रढयति—**अत एवेति** । तत्र तदर्थ तदुक्तत्वेन लक्ष्यासस्कारकतया वस्तुतोऽस्या अभावादेवेत्यर्थः । तिति, तित्स्वरितमित्यत्र । एतत्सत्त्वे तु तदसगतिः स्पष्टैव । अत एव च नानया तत्प्रत्याख्यात किं त्वन्यथा भगवता । अत एव चापृक्त एकाल स्वाङ्गे तासित्यादौ प्रत्ययग्रहणावैयर्थ्यम् । विज इडित्यत्र प्रत्ययग्रहणाभावश्च । नन्वेवमुक्त-

---

१ क. घ. न्ययो । २ घ °नाद्वाऽस्या ।

उक्तसूत्रयोर्व्याख्यानात्प्रत्यययोरेव ग्रहणमित्याहुः ॥ ११० ॥

ननु 'विपराभ्यां जेः' (१।३।१९) इत्यात्मनेपदं परा सेना जयतीत्यर्थके परा जयति सेनेत्यत्र प्राप्नोतीत्यत आह—

**सहचरितासहचरितयोः सहचरितस्यैव ग्रहणम् ॥ १११ ॥**

**तेन विशब्दसाचर्यादुपसर्गस्यैव पराशब्दस्य ग्रहणमिति तत्रैव भाष्ये स्पष्टम्। सहचरणं सदृशयोरेवेति सहचरितशब्देन सादृश्यवानुच्यते। रामलक्ष्मणावित्यादावपि सादृश्यमेव नियामकम्। सदृशयोरेव सह-विवक्षा तयोरेव सहप्रयोग इत्युत्सर्गाच्च।**

---

सूत्रयोः का गतिरत आह—**उक्तेति**। सनेत्यादिसूत्रयोरित्यर्थः। तित्स्वरितमित्यत्र गतिस्तु भगवतैवोक्तेति भावः। **व्याख्यानादिति**। गर्गादिषु जिगीषुशब्दपाठरूपज्ञा-पकमूलकादाद्ये मतौ बह्वच इति मतुप्साहचर्यमूलकादुपसर्गस्य घञीत्यतो बहुलग्रहणानुवृ-त्तिमूलकाद्वा व्याख्यानादन्त्ये निर्वाह इत्यर्थः। अन्यथाऽऽद्ये धातुसाहचर्याद्धातोरेव ग्रहणं स्यादन्त्ये व्याप्तिन्यायादुभयोर्ग्रहण स्यादिति भावः ॥ ११० ॥

साहचर्यप्रसङ्गात्साजात्याच्चाऽऽह—**ननु विपेति**। परा, उत्कृष्टा। स्यत्र, स्यत्रापि। व्याप्तिन्यायात्। तेन, परिभाषाङ्गीकारेण। तत्रैव, विपराभ्यामिति सूत्र एव। न च पक्षिवाचकविशब्दस्यानुपसर्गस्यापि सत्त्वेन कथ तत्साहचर्यमिति वाच्यम्। जयतिसबद्धविश-ब्दस्यान्यार्थकत्वाभावात्। बहुवि जयति वनं विं जयति वी जयत इति प्रयोगाणा क्वाप्यदर्श-नात्। कैयटस्तु चिन्त्य इत्युद्द्योते स्पष्टम्। अस्या लोकसिद्धत्व प्रतिपादयति—**सहेति**। सहगमनसहप्रयोगादिरूपमित्यर्थः। गत्यर्थत्वात्कर्तरि क्त इत्याह—**सादृश्यवानिति**। ननु लोके दृष्टसाहचर्यसंबन्धस्य रामलक्ष्मणावित्यादावेकत्र कार्ये प्रसिद्धेर्मिथःसापेक्षत्वसं-बन्धरूपस्याभिधानियामकत्वं दृष्टं न सादृश्यस्येति कथमुक्तार्थसिद्धिरत आह—**रामेति**। सहचरस्य भावः साहचर्यं तच्च तयोरेवास्ति साहचर्यशब्देन सादृश्यलाभादिति भावः। **श्यमेवेति**। एवेन तस्य व्यवच्छेदः। सादृश्यनियामकत्वं तु तस्यास्त्येवेति बोध्यम्। तस्यैव तत्त्वे हेत्वन्तरमाह—**सदृशयोरिति**। आद्यन्तौ टकितावित्यादौ क्वचिद्व्यभिचारा-दाह—**इत्युत्सर्गाच्चेति**।

नन्वेवमप्येषा साहचर्यसबन्धो न क्वापि गृहीत इति कथं प्रकृतार्थसिद्धिरत आह—

---

१ क. ग. ङ. °पाठाज्ज्ञापकादा°। २ ख. घ. प्रत्ययप्रस°। ३ क. °र्यमूलकाद्व्याख्यानात्सा°। ४ ख. घ. °द्धमित्यर्थसा°। ५ ग. °सिद्धिः। न ह्येषां क्वापि साहचर्यसबन्धो गृहीतोऽत°।

ध्वनितं चेदं 'कर्मप्रवचनीययुक्ते द्वितीया' (२।३।८) इति सूत्रे भाष्ये। तत्र हि 'पञ्चम्यपाङ्परिभिः' (२।३।१०) इति सूत्रेण लक्षणादिद्योतकपरियोगे पञ्चमीमाशङ्क्य यद्यप्ययं परिर्दृष्टापचारो वर्जने चावर्जने चायं खल्वपशब्दोऽदृष्टापचारो वर्जनार्थ एव कर्मप्रवचनीयस्तस्य कोऽन्यः सहायो भवितुमर्हत्यन्यो वर्जनार्थाद्यथाऽस्य गोः सहायेनार्थ इति गौरेवाऽऽनीयते नाश्वो न गर्दभ इत्युक्तम्। तेन हि सदृशानामेव प्रयोगे सहायभावो बोधितः। 'द्वित्रिश्चतुः' (८।३।४३) इति सूत्रे साहचर्येणैव कृत्वोर्थस्य ग्रहणे सिद्धे कृत्वोर्थग्रहणादेषाऽनित्या। तेन 'दीधीवेवीटाम्' (१।१।६) इत्यत्र धातुसाहचर्येऽप्यागमस्येटो ग्रहणमित्यन्यत्र विस्तरः॥ १११॥

ननु 'अस्थि' (७।१।७५) इत्याद्यनङ्प्रियसक्थ्ना ब्राह्मणेनेत्यत्र न स्यादङ्गस्य नपुंसकत्वाभावादतआह—

**श्रुतानुमितयोः श्रुतसंबन्धो बलवान्॥ ११२॥**

---

**ध्वनितमिति**। दृष्टापचारः, अनियतार्थकः। तदाह—**वर्जेति**। **चावर्जने चेति**। लक्षणादावित्यर्थः। अनर्थकस्यापि तस्य तादृशस्य सत्त्वात्। द्वितीयकोटिप्रदर्शनायैवमुक्तम्। कर्मप्रवचनीय इत्यत्रान्वयः। अपशब्दः, अपेति शब्दः। अदृष्टेत्यस्य व्याख्या—**वर्जेति**। नार्थः, प्रयोजनम्। ध्वनितत्वं विशदयति—**तेन हीति**। यतस्तत्सूत्रस्थोक्तभाष्येणेत्यर्थः। साहेति। अस्य द्वित्रिरित्यादिः। कृत्वोर्थस्य, चतुःशब्दस्य[1]। कृत्वोर्थानामिति पाठेऽर्थापेक्षं प्रयोगापेक्षं वा बहुवचनम्। पूर्वनिपातस्य व्यभिचरितत्वादाह—**तेन दीधीति**। आदृगमेत्यादावृधातोर्ग्रहणाभावोऽपि फलमिति बोध्यम्। सहचरितशब्दस्योक्त एवार्थो न तु सहगन्तृमात्रम्। अत एव सयोगो विप्रयोगश्चेति हरिकारिकाव्याख्यावसरे साहचर्ये पञ्चम्यपाङ्परिभिरित्युदाहृत्य वर्जनार्थापसाहचर्यात्तदर्थस्यैव परेः कर्मप्रवचनीयस्य ग्रहणमित्युक्तं हेलाराजादिभिः। तस्मात्सहचरणसबन्धज्ञानमूलकतदर्थमात्रतात्पर्यग्रहोऽस्या बीजम्। तदाह—**अन्यत्रेति**। उद्द्योतादावित्यर्थः॥ १११॥

साहचर्यसबन्धप्रसङ्गादाह—**नन्वस्थीति**। यत्तु श्रुतानुमितयोः श्रुतेनैव संबन्ध इति परिभाषान्तरमिति। तन्न। वक्ष्यमाणरीत्याऽस्यो[2] नैष्फल्येनात्र श्रुतानुयोगिकसंबन्धस्यैव[3]

---

१ क. ख. ग. ङ. चतुरशब्द°। २ घ. स्यामैकफ°। ३ ङ. 'नुयोगि°।

श्रुतेनैव संबन्धो नानुमितेन प्रकरणादिप्राप्तेनेत्यर्थः । प्रकरणादितः श्रुतेर्बलवत्त्वादिति भावः । एवं च तत्र लिङ्गमस्थ्यादीनामेव विशेषणं नाङ्गस्य । शिशीलुङ्नुम्विधिषु तु गृह्यमाणस्याभावात्प्रकरणप्राप्ताङ्गस्यैव विशेषणम् ।

अत एव 'वा नपुंसकस्य' (७।१।७९) इति सूत्रे वा शाविति न कृतम् । तत्र नपुंसकग्रहणं हि गृह्यमाणशत्रन्तस्यैव नपुंसकत्वे यथा स्याद्बहवो ददतो येषु तानि कुलानि बहुददतीत्यत्र मा भूद्बहूनि ददन्ति येषु ते बहुददन्त इत्यत्र यथा स्यादित्येवमर्थम् । स्पष्टं चेदं 'स्वमोर्नपुंसकात्' (७।१।२३) इत्यत्र भाष्ये ।

केचित्तु 'अचो रहाभ्यां द्वे' (८।४।४६) इत्यत्र श्रुतेन रेफस्य

---

विवक्षितत्वात्तदाह—**श्रुतेनेति** । बलीयानित्यर्थकैवव्यवच्छेद्यमाह—**नानुमीति** । एतदर्थमाह—**प्रकरेति** । अनेन स्थानप्राप्तस्य न तत्त्वमिति सूचितम् । स्फुटी भविष्यत्यनुपदमेवैतत् । अत्र प्रकरणप्राप्तेरेव सत्त्वाल्लिङ्गत्यागः । आदिपद त्वेतद्बीजभूतन्यायसंचारध्वननाय । तदाह—**प्रकरेति** । श्रुतिलिङ्गवाक्यप्रकरणस्थानसमाख्यानां पारदौर्बल्यमर्थविप्रकर्षादिति न्यायेनेति भावः । तत्र, अस्थीत्यादिसूत्रे । लिङ्ग, प्रकरणप्राप्तम् । इदं च तत्संभवे बोध्यम् । तदभाव आह—**शिशीति** । गृह्यमाणस्य, द्विविधश्रूयमाणत्ववतः । अत्र हि श्रुतत्व साक्षादुच्चारितत्वम् । अन्यतराकाङ्क्षारूपस्थानप्रमाणलब्धत्वं च । अनुमितत्वं तूभयाकाङ्क्षारूपप्रकरणप्राप्तत्वमिति बोध्यम् ।

तदेतद्ध्वनयन्नुक्तार्थे ज्ञापकमप्यस्तीति सूचयंश्चाऽऽह—**अत एवेति** । एतद्वचनसत्त्वादेवेत्यर्थः । तत्र नपुंसकग्रहणं हीत्येवमर्थमित्यन्वयः । **गृह्यमाणशत्रन्तेति** । अत्र द्वितीयप्रकारेण तत्त्वम्[६] । ननु केवलस्थलेऽङ्गविशेषणत्वेऽपि सिद्धिरिति किमर्थं नियमोऽतस्तस्य फलमेव व्यवच्छेद्यमाह—**बहेत्यादिना** । फलान्तरमप्याह—**बहूनीति** । **स्पष्टं चेदमिति** । अस्थीत्यादौ तत्तस्य विशेषणम् । श्यादिविधौ तदभावात्तत्तस्य विशेषणमितीत्यर्थः । तत्र हि श्यादिविधौ तत्कस्य विशेषणमिति प्रश्ने तथोक्तम् । तेनार्थतः परिभाषा ध्वनितैवेति भावः ।

अर्थान्तराभिप्राया पुरुषोत्तमदेवसीरदेवाद्युक्तिं खण्डयति—**केचित्त्विति** । श्रुतेन, साक्षाच्छब्दबोधितेन । अनुमितत्व चात्र मते न प्रकरणप्राप्तत्व किंतु सामान्यरूपेण प्रती-

---

१ घ. °ननमा° । २ घ. °ङ्ग, स्थानप्रम प्रा° । च °ङ्गं, स्थानप्रक° । ३ घ. °त अका° । ४ घ. °त्वं वा । अ° । ५ क. ख. घ. °म् केवलस्थल इति भाव. । न° । ६ क. °रिति विधातस्त° । ७ ग. °ङस्यैव व्य° ।

निमित्तत्वेन यदन्तर्भावादनुमितं कार्यित्वं बाध्यत इत्येतदुदाहरणमाहुः । तन्न । तक्रकौण्डिन्यन्यायेन सिद्धेरित्यन्यत्र विस्तरः ॥ ११२ ॥

ननु ' तत्पुरुषे तुल्यार्थ ' ( ६ । २ । २ ) इति स्वरः परमेण कारकेण परमकारकेणेत्यादौ स्यात्तथा ' गातिस्थाघुपाभूभ्यः ' ( २ । ४ । ७७ ) इति लुक् पै शोषण इत्यतः कृतात्वात्परस्यापि स्यादत आह—

लक्षणप्रतिपदोक्तयोः प्रतिपदोक्तस्यैव ग्रहणम् ॥ ११३ ॥

लक्षणोक्तेरत्यर्थः । तत्तद्विभक्तिविशेषाद्यनुवादेन विहितो हि समा-

---

तिविषयत्वम् । तेन विशेषविषयानुमानात् । तदाह—**यदन्तरिति । सिद्धेरिति ।** एतेन तत्सिद्ध एवायमर्थ इति भ्रान्तोक्त लोकन्यायलब्धोऽयमर्थस्तथा च पठ्यते साक्षाच्छिष्टेनानुमित बाध्यत इतीति सीरदेवोक्त चापास्तम् । अस्य वैयर्थ्यापत्तेः [ * उक्तरीत्या विभिन्नविषयत्वाच्च ] यत्तु पुरुषोत्तमदेवो ग्रामहृदोत्तरेतिनिर्देशोऽकृतद्वित्वोऽत्र ज्ञापक इति तन्न । रो रीत्यस्य द्वित्वासिध्याऽविषयत्वेऽपि हलो यमामिति लोपसम्भवात् । तदाह—**इत्यन्यत्रेति** । उद्द्योतादावित्यर्थ ॥ ११२ ॥

श्रुतत्वप्रसङ्गादाह—**नन्विति । परमेणेति ।** परिनिष्ठितविभक्त्या विशेषणमिति समासः । आदिना परमकारक इत्यादिपरिग्रह. । ननु नाय[1] नियतदोषो लोके स्वरस्यैवानियतत्वाच्छन्दसि[2] तु तत्त्वादेव सुपरिहरत्वादत आह—**तथेति** । परस्यापि, सिच इति शेषः । **लक्षणेति** । अत्र लक्षण च प्रतिपद चेति द्वन्द्व कृत्वोक्तशब्देन यथासम्भवमर्थकेन तृतीयासमास. । द्वन्द्वान्ते श्रूयमाणत्वात्प्रत्येक सबन्ध. । लक्षणशब्देन च सामान्यलक्षणमत्र प्रतिपदोक्तसमभिव्याहारादिति बोध्यम् । तदाह—**लक्षणोक्तेरत्यर्थ इति ।** एकदेशस्येति भावः । अर्शआद्यचाऽपीद सुवचम् । एतेन लक्षण लाक्षणिकमुपचारादिति सीरदेवोक्तमपास्तम् । यत्त्वत्र लाक्षणिकत्व खण्डशो. व्युत्पन्नत्वमिति सीरदेवस्तन्न । प्रतिपदोक्तेऽपि तत्त्वस्य क्वचित्स्वरादिविषय उक्तस्थले विभाषा दिक्समास इत्यादौ[3] विषये च सत्त्वेन तत्र दोषापत्तेः । प्रतिपदोक्तत्वं च विशिष्यप्रतिपादितत्वमत्र न तु तत्पदमुच्चार्यविहितत्वम् । इष्टासिद्धेरनिष्टापत्तेश्च । तदेतत्प्रतिपादयन्नाद्यदोषमुद्धरति—**तत्तदिति ।** प्रतिपदेत्यस्यायमर्थः । पदशरीर उभयोर्निवेशात्[4], अत एवाऽऽदिना प्रकृतिविशेषादिपरिग्रहः । **विहितो हीति** । हि यतस्तादृश स प्रतिपदोक्तोऽतस्तस्यैव ग्रहणमित्यर्थ. । प्रतिपदोक्तत्वस्य तत्र हेतुत्वस्य[5] प्रकटनाय तत्तात्पर्यार्थं प्रतिपादयन्परिभाषाबीजसत्ता ध्वनयं-

---

* धनुश्चिह्नान्तर्गतो ग्रन्थ. ख. पुस्तकस्थः ।

---

१ घ. °य दो° । २ घ. °निष्टत्वा° । ३ क. °त्यादिविषयत्वे च । ङ. °त्यादेविष° । ४ घ. °शेषप° । ५ घ. °स्य तत्र हेतुत्वमत्र तात्प° ।

सादिः प्रतिपदोक्तस्तस्यैव ग्रहणं शीघ्रोपस्थितिकत्वात् । द्वितीयो हि विलम्बोपस्थितिकः । पै इत्यस्य पा इति रूपं लक्षणानुसंधानपूर्वकं विलम्बोपस्थितिकं पिबतेस्तु तच्छीघ्रोपस्थितिकम् । इदमेव ह्येतत्परिभाषाबीजम् ।

इयं च वर्णग्रहणेऽपि । ओत्सूत्र भाष्ये संचारितत्वात् । यत्तु वर्णग्रहणे नैषा 'आदेचः' ( ६ । १ । ४५ ) इत्यत्रोपदेशग्रहणादिति तत्तु तस्मिन्नेव सूत्रे शब्देन्दुशेखरे दूषितामिति तत एव द्रष्टव्यम् । अनित्या चेयं 'भुवश्च महाव्याहृतेः' ( ८ । २ । ७१ ) इति महाव्याहृतिग्रणादित्यन्यत्र विस्तरः ॥ ११३ ॥

---

अत्र हेतुमाह—**शीघ्रोपेति** । **द्वितीयो हीति** । तदननुवादेन विहितः समासादिर्यत इत्यर्थः । लाक्षणिकशब्दतात्पर्यार्थमाह—**विलमिति** । यद्यपि प्रागुक्तशब्दार्थमादायैवोक्तस्थले निर्वाहस्तथाऽप्यन्यत्रानिर्वाह इति तात्पर्यार्थावश्यकत्वमिति ध्वनयितुं द्वितीयदोषमुद्धरति—**पै इत्यस्येति** । **लक्षणेति** । हेतुगर्भं विशेषणम् । **पिबतेस्त्विति** । सुवैलक्षण्ये । तत्, पा इति रूपम् । ननु नाय परिभाषाशब्दार्थ इति कथमत्र प्रवृत्तिरायै तथाऽप्यस्याः साफल्यान्न वैयर्थ्यमत आह—**इदमेवेति** । शीघ्रोपस्थितिकत्व विलम्बोपस्थितिकत्वं च रूपमेव यत इत्यर्थः । अत एवाध्याप्य गत इत्यत्र विभाषाऽऽप इति नाय् । एतत्परीति पाठः । एवेन प्रतिपदोक्तलाक्षणिकशब्दयोर्यथाश्रुतार्थनिरासः । एतेन लक्ष्यत इति लक्षणमनुमेयम् । प्रतिपदोक्त च प्रत्यक्षम् । तथा च प्रत्यक्षानुमानयोः प्रत्यक्षं बलीय इतिन्यायसिद्धैवेयमिति भ्रान्तोक्तमपास्तम् । अनेनैव तत्संग्रहादशब्दार्थत्वाच्च । तत्राप्येतस्यैव बीजत्वाच्च । बीज, तत्प्रवृत्तिबीजम् । तथा च लौकिकलाघवगौरवमूलकोऽयं न्यायः । एतेन खिष्णुच इकारादित्वमत्र ज्ञापकम् । तदुक्तम्—'उदात्तत्वाद्भुवः सिद्धमिकारादित्वमिष्णुच । न[3] वास्तु स्वरसिद्ध्यर्थमिकारादित्वमिष्यते' इति सीरदेवभ्रान्ताद्युक्तमपास्तम् । लोकत एव सिद्धे[4] तदाश्रयणे फलाभावात्तस्यापि साफल्याच्च ।

वर्णेति । ऋत इद्धातोरित्यादावित्यर्थः । **संचारीति** । तत्रैव सूत्र इति भावः । दीक्षिताद्युक्ति खण्डयति—**यत्त्विति** । **दूषितमिति** । ओत्सूत्रभाष्यविरोधापत्तेरुपदेशग्रहणस्यान्यार्थत्वाच्चेति भाव. । नन्वेवमध्यापयतीत्यत्र कथं पुक् दाधेत्यत्र घेटः कथ च सिद्धान्ते ग्रहणमत आह—**अनित्येति** । यावत्पुरेतिनिपातग्रहणमपीह ज्ञापकं बोध्यम् । **महेति** । अन्यथाऽनया तस्या एव ग्रहण न जसन्तस्येति तद्वैयर्थ्य स्पष्टमेवेति भावः ॥ ११३ ॥

---

१ ङ. तत्रापि सा° । २ घ. °त्वाद्भवेत्सिद्ध° । ३ ख. व्यैरतु । ४ ङ. सिद्धेः । त° ।

नन्वेवं देङो दोधातोश्च कृतात्वस्य घुसंज्ञा न स्यात्तथा मेङ आत्वे प्रणिमातेत्यादौ 'नेर्गदनद' (८।४।१७) इति णत्वं न स्यात्तथा गै इत्यस्याऽऽत्वे 'घुमास्था' (६।४।६६) इतीत्वं न स्यादत आह—

## गामादाग्रहणेष्वविशेषः ॥ ११४ ॥

अत्र ज्ञापकं दैपः पित्वम् । तद्ध्यदाबिति सामान्यग्रहणार्थम् । अन्यथा लाक्षणिकत्वादेव विधौ तद्ग्रहणे सिद्धे किं निषेधे सामान्यग्रहणार्थेन पित्वेन । तेन चैकदेशानुमतिद्वारा संपूर्णपरिभाषाज्ञाप्यते ।

इयं च लक्षणप्रतिपदोक्तपरिभाषानिरनुबन्धकपरिभाषालुग्विकरणपरिभाषाणां बाधिका । 'दाधा घु' (१।१।२०) इति सूत्रे भाष्ये स्पष्टा । 'गातिस्था' (२।४।७७) इति सूत्र इणादेशगाग्रहणमे-

---

एवम्, अनित्यलक्षणप्रतिपदोक्तपरिभाषाङ्गीकारे । अनेन संगतिः सूचिता । परिभाषाव्युत्क्रमेणाऽऽह—**देङ इति** । **न स्यादिति** । तथा चेत्वादि न स्यादिति भावः । इदमेवाग्रेऽपि बीजम् । **अदाबितीति** । अस्य निषेध इति शेषः । अन्यथा, अस्या अभावे । **तदिति** । दैबित्यर्थः । निषेध इत्यस्यादाबितीत्यादिः । नन्वेवं दाशसिद्धावपीतराशासिद्धिरत आह—**तेन चैकेति** । दैपः पित्वेन चेत्यर्थ. ।

लक्षणप्रतिपदोक्तपरिभाषानन्तरमस्या उल्लेखेन तदपवादत्वमेवेति भ्रमस्य तदनित्यत्वादेव सिद्धे वैफल्यस्य च निरासायाऽऽह—**इयं चेति** । अत्रैवोल्लेखस्तु ज्ञापकानुरोधादशोकवनिकान्यायात्सर्वान्त औचित्याच्चेति भावः । **बाधिकेति** । बाध्यसामान्यचिन्तया येन नाप्राप्तिन्यायादिति भावः । एतेनानन्तरस्येति न्यायेन लक्षणेत्यस्या एव बाधिकेयमिति सीरदेवभ्रान्ताद्युक्त तदनित्यत्वादेव सिद्ध इयं निष्फलेति तदुक्तं चापास्तम् । अन्यबाधेन साफल्यात् । प्रत्यासत्तिन्यायतो व्याप्तिन्यायस्य प्राबल्याच्च । नन्वेव गातिस्थेत्यत्रापि सर्वग्रहणापत्तिरत आह—**गातीति** । गापोर्ग्रहण इण्पिबत्योर्ग्रहणमिति भाष्योक्तेरिति भावः । एतेन लक्षणप्रतिपदोक्तपरिभाषाया एवेयं बाधिका न निरनुबन्धकपरिभाषायास्तस्याः प्रत्ययविधिविषयत्वात् । नापि लुग्विकरणपरिभाषाया बहिरङ्गत्वात् । अत एव नेर्गदेत्यत्र माङ्मेङोरेव ग्रहणं न तु मा मान इत्यस्येत्यपि[2] सीरदेवाद्युक्तमपास्तम् । तस्या· प्रत्ययाप्रत्ययसाधारणत्वात् । द्वितीये बहिरङ्गत्वस्य दुर्वचत्वात् । अर्थकृतबहिरङ्गत्वानाश्रयणात् । तत्र तद्ग्रहणस्येष्टत्वाच्च । अत एव तत्र बस्य प्रणिमातीत्युदाहृत चन्द्रगोमिना । भाष्ये घुप्रकृतिमाङिति

---

१ इ. पि योज्यम् । २ इ. °त्यस्यापीति सी° ।

वेष्यत इत्यन्यत्र विस्तरः ॥ ११४ ॥

ननु वृद्ध्यादिसंज्ञाः समुदाये स्युरत आह—

**प्रत्येकं वाक्यपरिसमाप्तिः ॥ ११५ ॥**

देवदत्तादयो भोज्यन्तामित्यत्र भुजिवत् ॥ ११५ ॥

नन्वेवं संयोगसंज्ञासमाससंज्ञाभ्यस्तसंज्ञा अपि प्रत्येकं स्युरत आह—

**क्वचित्समुदायेऽपि ॥ ११६ ॥**

गर्गाः शतं दण्ड्यन्तामर्थिनश्च राजानो हिरण्येन भवन्तीत्यादौ दण्डनवत् । लक्ष्यानुरोधेन च व्यवस्था ॥ ११६ ॥

---

पाठेनैव तद्वारणाच्च । अर्थवत्परिभाषायास्तु नेय बाधिका । लक्ष्यानुरोधात् । एवमग्रेऽपि । अत एव दाशो दाशब्दस्य घुसंज्ञाया न ग्रहणम् । नापि साहचर्यपरिभाषायाः । अत एव ह्वामश्चेति सूत्रे सानुबन्धकपूर्वोभयसाहचर्यान्माङ्मेङोरेव ग्रहण न तु मा मान इत्यस्येति बोध्यम् । तदाह—**इत्यन्यत्रेति** । उद्द्योतादावित्यर्थः ॥ ११४ ॥

बौद्धघुसंज्ञाप्रसङ्गादाह—**नन्विति** । आदिना गुणादिपरिग्रहः । **समुदाय इति** । तथा निर्देशादिति भावः । लोकसिद्धोऽयं न्याय इत्याह—**देवदत्तेति** । देवदत्तयज्ञदत्तविष्णुमित्रा इत्यर्थ. । **भुजिवदिति** । यथा तत्र समुदाये बाधात्तत्त्वं तथाऽत्रापि समुदायस्यैकत्राभावात्तत्त्वमिति भावः ॥ ११५ ॥

एवम्, एतच्छास्त्रस्थवाक्यानां प्रत्येक परिसमाप्त्यङ्गीकारे । अनेन संगतिः सूचिता । **संयोगेति** । पाठक्रमस्य बोध्यत्वात्तस्य पूर्वनिपातः । **क्वचिदिति** । इष्टस्थल इत्यर्थः । वाक्येत्याद्यनुवृत्तिः । अपिः पूर्वसमुच्चय एव । अयमपि लोकसिद्ध एव न्याय इत्याह—**गर्गा इति** । ननु कथमनयोर्व्यवस्थेष्टत्वस्य दुर्ज्ञेयत्वादत आह—**लक्ष्येति**[1] । तेनानियमो नेति बोध्यम् । इदं लक्ष्यैकचक्षुष्कभाष्यकारमते । लक्षणैकचक्षुष्कमतेनाऽऽह—**चेति** । तेनान्वर्थत्वादिरूपगमकसमुच्चयः । तथा च क्वचिदित्यस्य तादृशगमकवतीत्यर्थः । एवं च यथा तत्र वाक्यशेषात्तत्त्वं तथाऽत्रापि लक्ष्यानुरोधादन्वर्थत्वादिगमकबलाच्च तत्त्वमिति भावः । गर्गैः सह न भोक्तव्यमित्युक्ते समुदितैस्तैः सह प्रत्येकं चाभोजनवदुभयथा वाक्यपरिसमाप्तिरित्यस्य न्यायस्य तु नात्रोपयोगः । लक्ष्याभावात् । अट्कुप्वाङित्यत्र समुदायव्यवाय इत्यर्थस्यासम्भवात् । अवान्तरसमुदायग्रहणस्य व्याख्यानसापेक्षत्वेन तत्त्वरिभाषयैव निर्वाहाच्च । द्व्येकयोरित्यादावेकवाक्यतानेकवाक्यतयोरपि व्याख्यानत एव लाभाच्च । एतेन ता वदन्तः सीरदेवादयः परास्ताः ॥ ११६ ॥

---

१ ग. °तः । तेनानियमो नेति बोध्यम् । क्व° । २ ग. °ति । इ° । ३ ख. °वाक्याप° ।

ननु 'यू स्त्र्याख्यौ' (१।४।३) इत्यत्र व्यक्तिपक्षे दीर्घनिर्देशादनण्त्वेन ग्राहकसूत्राप्राप्त्योदात्ताद्यन्यतमोच्चारणेऽन्यस्वरकस्य संज्ञा न स्यादत आह—

अभेदका गुणाः ॥ ११७ ॥

असति यत्ने स्वरूपेणोच्चारितो गुणो न भेदको न विवक्षित इत्यर्थः। अत्र च 'अस्थिदधि' (७।१।७५) इत्यादावनङादेरुदात्तस्यैवोच्चारणेन सिद्ध उदात्तग्रहणं ज्ञापकम्। स्वरूपेणोच्चारित इत्युक्तेरनुदात्तादेरन्तोदात्तादित्युदात्तादिशब्दोच्चारणे विवक्षैव। 'उञः' (१।१।१७) 'ऊँ' (१।१।१८) इत्यत्राननुनासिक एवोच्चारणीये यत्नाधिक्येनानुनासिकोच्चारणाद्विवक्षा बोध्या। 'पथिमथ्यृभुक्षाम्' (७।१।८५) इत्यादौ स्थान्यनुरूपतयाऽनुनासिक एवोच्चारणीये निरनुनासिकोच्चारणात्तद्विवक्षा। एतदर्थमेवासति यत्न इत्युक्तम्।

न चैवम् 'अस्थ्यादीनां नव्विषयस्य' (फि० २।३) इत्याद्युदात्ततयाऽन्त्यादेशस्यानङः स्थान्यनुरूपेऽनुदात्त एवोच्चारणीय उदात्तो-

---

आद्यविषयविषयकत्वसंगतिं[1] ध्वनयन्नाह—**नन्विति**। जातिपक्षेऽनुपयोगस्य वक्ष्यमाणत्वादाह—**व्यक्तीति**। **दीर्घेति**। न्यायागतादिति भावः। **द्यन्येति**। शेषषष्ठ्या समासः। **अन्यस्वरकेति**। यत्स्वरकोच्चारण तद्भिन्नस्वरत्वावच्छिन्नस्वरकस्येत्यर्थः। संज्ञा, नदीसंज्ञा। संग्राहकपरिभाषाया तत्त्वेऽपि लक्ष्यसंस्कारकवाक्ये बहुत्वानुपयोगादाह—**असतीति**। शेषपूरणमिदम्। **स्वरूपेणेति**। तत्तद्रूपेणेत्यर्थः। **च्चारित इति**। अनेनात्र शास्त्र एवमिति सूचितम्। तेन लोके द्वैविध्येऽपि न क्षतिः। अत्र च, अस्यां परिभाषायां च। आदिना चतुरनडुहोरामुदात्त इत्यादिपरिग्रहः। **स्यैवोच्चेति**। एवो भिन्नक्रमः उच्चारणेनैवेत्यर्थः। स्वरूपेणोच्चारित इति विशेषणस्य[2] फलमाह—**स्वरूपेणेति**। इति, इत्यादौ। व्युत्क्रमेणाऽऽह—**उदात्तादीति**। असति यत्न इत्यस्य यत्नविशेषेऽसतीत्यर्थकस्य फले[3] आह—**उञ ऊँ इत्यादि**। **ननुनेति**। स्थान्यनुरूपतयेति भावः। एतदर्थमेव, एतदुभयार्थमेव।

चैवम्, असति यत्न इतिविशेषणोपादाने[4]। उदात्तादयः शब्दा धर्मपरा धर्मिपराश्चेति न दोषः। भविष्यतीती[5]त्यग्रे स्वस्मिन्नचारितार्थ्यादिति शेषः। अस्य, उदात्तग्रहणस्य पूर्वो-

---

१ ख विशेषवि°। घ. °विषयेऽसं°। २ घ. °षणं ज्ञापकसाजात्येन लब्धमस्य। ३ क. घ. फलमाह। ४ घ. °ने। अनुदात्तोदा°। ५ घ. °तीत्यस्य स्व°।

च्चारणं विवक्षार्थं भविष्यतीति कथमस्य ज्ञापकत्वमिति वाच्यम् । परमास्थिशब्दादावन्तोदात्त उदात्तगुणकस्यापि स्थानित्वेन विवक्षायां मानाभावात् । चतसर्याद्युदात्तनिपातनं करिष्यते वधादेश आद्युदात्तनिपातनं करिष्यते पदादयोऽन्तोदात्ता निपात्यन्ते सहस्य स उदात्तो निपात्यत इत्यादिभाष्यं त्वेकश्रुत्याऽष्टाध्यायीपाठे क्वचिदुदात्ताद्युच्चारणं विवक्षार्थमित्याशयेन । त्रैस्वर्येण पाठ इति पक्षे तु ज्ञापकपरं भाष्यमिति कैयटादयः ।

परे तु निपातनं नामान्यादृशे प्रयोगे प्राप्तेऽन्यादृशप्रयोगकरणं तद्रूपाद्यत्नात्तत्रतत्रोदात्तादिविवक्षा । तिसृचतसृत्यत्र द्वन्द्वप्रयुक्तेऽन्तोदात्त उच्चारणीय आद्युदात्तोच्चारणमन्यत्र स्थान्यनुरूपे स्वर उच्चारणीये तत्तदुच्चारणं विवक्षार्थम् । संपूर्णाष्टाध्याय्याचार्येणैकश्रुत्या पठितेत्यत्र न मानम् । क्वचित्पदस्यैकश्रुत्याऽपि पाठो यथा दाण्डिनायनादिसूत्र ऐक्ष्वाकेति । यद्यप्यध्येतार एकश्रुत्यैवाङ्गानि पठन्ति ब्राह्मणवत्तथाऽपि व्याख्यानतोऽनुनासिकत्वादिवदुदात्तनिपातनादिज्ञानमित्याहुः ।

---

कस्य । यद्वा अस्य, न्यायस्य । उदात्तग्रहणस्येति शेषः । दात्त इति । समासस्वरेणेति भावः । अपिरनुदात्तगुणकसमुच्चायकः । स्थानित्वेनेत्यग्रे स्थान्यनुरूपोच्चारणस्यैव सत्त्वेन यत्नविशेषाभावादिति शेषः । एवं च केवलेऽनुदात्त एव स्यादित्युदात्तग्रहणं चरितार्थमिति भावः । नन्वेवमपि निपातनस्थले यत्नविशेषाभावाच्चतसर्यादिभाष्यासंगतिरत आह—चतेति । नन्वेवं ज्ञापकपरभाष्यासंगतिस्तत्राप्युक्तरीत्या तदुच्चारणस्य विवक्षार्थत्वसंभवादत आह—त्रैस्वर्येणेति । पाठ इत्यस्याष्टाध्यायीत्यादिः ।

पूर्वत्रारुच्या सिद्धान्तमाह—परे त्विति । एवं सामान्येनोक्तमर्थमुक्तेषु विशिष्याऽऽह—तिसृचतसृत्यत्र द्वन्द्वेति । अत्रापिपाठो लेखकप्रमादात् । च्चारणमित्यस्य विवक्षार्थमित्यत्रान्वयः । अन्यत्र, वधादौ । कैयटादय इति सूचितामरुचिं तत्राऽऽह—संपूर्णेति । त्रैस्वर्येण संपूर्णा सा पठितेत्यत्र मानं ध्वनयन्संपूर्णादिपदव्यक्तिफलमाह—क्वचिदिति । अपिर्व्युत्क्रमे । पाठोऽपीत्यर्थः । यदि कैयटोक्तोऽर्थः स्यात्तर्हि तत्राऽऽशङ्कैवायुक्ता स्यात् । यद्यपि तत्र द्वन्द्वेन समासान्तोदात्तत्वे तन्निमित्तशेषनिघातेन निर्देशान्नाऽऽद्युदात्तस्य नाप्यन्तोदात्तस्य निर्देश इति शङ्काऽयुक्तैव तथाऽपि तदीयविग्रहवाक्याभिप्रायेण शङ्कादिसत्त्वमिति भावः । पाणिनेस्तथा पाठेऽप्यध्येतृणा तथा पाठाभावात्तदज्ञानेन निपातनेनापि कथं सिद्धिरत आह—यद्यपीति ।

---

१ घ. °मान्य उक्तम् । उक्ते° । २ घ. °पूर्ण सा ।

विधेयाण्विषये त्वप्रत्यय इति निषेधान्न गुणाभेदकत्वेन सवर्णग्रहणम् । अत एव घटवदित्यादौ मतोर्मस्य नानुनासिको वकारः । अत एव 'तद्वानासाम्' (४ । ४ । १२५) इति सूत्रनिर्देशः । अन्यथा प्रत्यये भाषायामिति नित्यमनुनासिकः स्यात् ।

जातिपक्षे तु नास्योपयोग इति बोध्यम् । यू इत्यादौ दीर्घमात्रवृत्तिजातिनिर्देशान्न क्षतिरित्यन्यत्र विस्तरः ॥ ११७ ॥

ननु 'सर्वनामानि' (१ । १ । २७) इत्यत्र णत्वाभावनिपातनेऽपि लोके सणत्वप्रयोगस्य साधुत्वं स्यादत आह—

**बाधकान्येव निपातनानि ॥ ११८ ॥**

तत्तत्कार्ये नाप्राप्ते निपातनारम्भात् । 'पुराणप्रोक्तेषु' (४ । ३ । १०५) इति निपातितपुराणशब्देन पुरातनशब्दस्य बाधः प्राप्तोऽपि

---

ननु व्यक्तिपक्षेऽनणर्थे स्वीकृतैतत्परिभाषाया अनूद्यमानेऽणि प्रवृत्तावुपायस्योपायान्तराऽदूषकत्वाद्बाधकाभावेऽपि विधेयेऽणि प्रवृत्त्यापत्तिरप्रत्यय इति तु सूत्रस्यैव निषेधोऽत आह-**विधेयाणिति** । अप्रत्यय इत्यस्य योगविभागेन सर्वनिषेधकत्वात् । एतेनाजुदिदित्येव सिद्धेऽण्ग्रहणेनाप्सु गुणभेदकत्वं ज्ञाप्यत इत्यनित्येयमित्यपास्तम् । विधेये प्राप्त्यभावेनानुवादे दोषाभावेन च तज्ज्ञापने फलाभावादिति भावः । अत एव, विधेयाण्येतदप्रवर्तनादेव । अत्र मान सूचयन्निष्टापत्तिं तत्र परिहरति—**अत एव तद्वानिति** । नित्यमित्यनेन पक्षे तत्सिद्ध्यभावः सूचितः । यवला निरनुनासिका एवेति शब्देन्दुशेखरे स्पष्टम् ।

अवतरणे व्यक्तिपक्ष इत्युक्तेः फलमाह—**जातीति** । तेनैवेष्टसिद्धेरिति भावः । अस्य, उक्तन्यायस्य । नन्वेवं यू इत्यादौ सर्वग्रहणापत्तिरत आह–**यू इत्यादाविति** । वृद्धिसूत्रे भाष्ये स्पष्टेयम् । देवदत्तो मुँड्यपीत्यादिन्यायश्चात्र मूलमिति भ्रान्तोक्त तु न युक्तम् । अन्यदिदमुष्णमिति दृष्टान्तस्यापि लोके सत्त्वेनात्रापि द्वैविध्यापत्तेः । एतेनाऽऽश्रीयमाणो गुणो भेदको भवतीति परिभाषान्तरमित्यपास्तम् । फलाभावात् । तदाह—**इत्यन्यत्रेति** ॥ ११७ ॥

उक्तासंगतिं गुणपदबोध्यसंज्ञाप्रसङ्गं च सूचयन्नाह—**नन्विति** । इत्यत्र, सूत्र इति शेषः । इत्यादावित्यपपाठः । स्य **साधुत्वमिति** । पूर्वपदादिति सूत्रेणेति भावः । **नाप्राप्त इति** । तथा च येननाप्राप्तिन्यायमूलकत्वमस्या इति भावः । परिभाषान्तरसाधकं सीरदेवाद्युक्तमतिप्रसङ्ग निराचष्टे—**पुरेति** । **पुरातनेति** । सायमिति व्युत्पन्नस्ये-

---

१ घ. °क्षेऽपि त° । २ ङ. °तः । विधेये प्राप्त्यभावेनानुवादे दोषाभावेन च तु य° । ३ घ. मुण्डयतीत्या° ।

पृषोदरादित्वान्नेति बोध्यम् । पुराणेति पृषोदरादिः पुरातनेति चेत्यन्ये । इयं सर्वादिसूत्रे भाष्ये स्पष्टा । अबाधकान्यपि निपातनानीति तु भाष्यविरुद्धम् ॥ ११८ ॥

ननूखधातोर्द्वित्वे स्वत एव ह्रस्वत्वात्पूर्वमभ्यासह्रस्वत्वाप्रवृत्तौ हलादिः शेषे सवर्णदीर्घे ह्रस्वापत्तिरत आह—

## पर्जन्यवल्लक्षणप्रवृत्तिः ॥ ११९ ॥

एवं च ह्रस्वस्यापि ह्रस्वत्वे कृते लक्ष्ये लक्षणस्येति न्यायेन न पुनर्ह्रस्वः । तदुक्तम् 'इको झल्' (१ । २ । ९) इति सूत्रे भाष्ये कृतकारि खल्वपि शास्त्रं पर्जन्यवदिति । सिद्धेऽपि ह्रस्वादिकारीत्यर्थः ।

---

त्यर्थः । प्राप्तोऽपीति पाठः । प्राप्नोतीति पाठे यद्यपि तथाऽपीति शेषपूरणेन व्याख्येयम् । **पृषोदेति** । बाधकस्य पुराणेति निपातनस्य पक्षे बाधनार्थं तत्र तस्यापि निपातनमिति भावः । उभयत्रानिपातनजलाघवादाह—**पुराणेतीति** । एतेन 'पुरातनीर्नदीर्दृश्यतः' 'पुरातनमुनेर्मुनितामिति' माघभारविप्रयोगौ प्रामादिकाविति भागवृत्तिसीरदेवाद्युक्तामपास्तम् । कैयटदीक्षिताद्युक्तिं खण्डयति—**अबाधेति** । **भाष्येति** । बाधकान्येव हीत्यादि तत्रोक्तेरिति भावः । अत एव पुरुषोत्तमदेवादिभिरप्येवमेवोक्तम् । एतेन निजां त्रयाणामिति निपातनादेव सिद्धे पक्षे त्रीणामिति प्रासन्व्यावर्तकेन त्रेस्त्रय इति सूत्रेण ज्ञापितां तामेवाङ्गीकुर्वन्सीरदेवभ्रान्तादिः परास्तः ॥ ११८ ॥

संज्ञाप्रसङ्गात्संज्ञोद्देश्यकविधिविषयोक्तिरिति निपातनप्रसङ्गात्तदुक्तिरिति वा सूचयन्नाह—**ननूखेति** । द्विवचनादाविति भावः । पूर्वं, वक्ष्यमाणात् । एवं च, परिभाषासत्त्वे च । **कृत इति** । अस्य ततो हलादिःशेषादाविति शेषः । इय च शब्दान्तरेण भाष्यारूढे- त्याह—**तदुक्तमिति** । दृष्टान्तेन लोकसिद्धत्वमस्या दर्शितम् । मेघो ह्यूने पूर्णे चोख- (ष) रेऽनूख (ष) रे च वर्षति तद्वत् । एतेन जलेऽपि वर्षतीति सीरदेवाद्युक्तमपास्तम् । अपूर्णे जले फलसत्त्वात् । ननु कृतादिशब्दबलादन्यशास्त्रकृतेऽन्यशास्त्रप्रवृत्तिरित्यर्थस्या- न्यशास्त्रकृतमेव करोतीत्यर्थस्य वा लाभान्न प्रकृतसिद्धिरनिष्टापत्तिर्लक्ष्ये लक्षणस्येति न्याय- विरोधापत्तिश्चात आह—**सिद्धेऽपीति** । स्वतः सिद्धेऽपीत्यर्थः । एतेन खट्वाढकमि- त्यादौ दीर्घसिद्धिः फलमित्यपि सीरदेवाद्युक्तमपास्तम् । अत्र ज्ञापकमपि प्रवाहणस्य ढे इत्युत्तरपदस्याऽऽदेर्वृद्धिविधानम् । तद्धि प्रवाहणेयीमानिनीत्यत्र वृद्धिनिमित्तेति पुंवत्त्वप्रति- षेधार्थम् । अमानिनीत्यनुवृत्तेर्जातेश्चेत्यनेन न सिद्धिरित्यपि बोध्यम् ।

---

१ घ. °टपुरुषोत्तमदेवसीरदेवदीक्षितभ्रान्ताद्यु° । २ ङ. °ले न व° ।

न च लक्ष्ये लक्षणस्य सकृदेव प्रवृत्तिरित्यत्र न मानमिति वाच्यम्। समो वा लोपमेक इति लोपेनैकसकारस्य द्वित्वेन द्विसकारस्य पुनर्द्वित्वेन च त्रिसकारस्य सिद्धौ 'समः सुटि' (८।३।५) इति सूत्रस्यैव मानत्वात्। 'संप्रसारणाच्च' (६।१।१०८) 'सिचि वृद्धिः' (७।२।१) इत्यादौ भाष्ये स्पष्टमुक्तत्वाच्च। अत्र विकारकृतो लक्ष्यभेदो नेति सिचि वृद्धिरिति भाष्यात्प्रतीयत इत्यन्यत्र विस्तरः॥ ११९॥

ननु स्यन्दूधातोः स्यन्त्स्यतीत्यादौ सकारादिविशेषापेक्षत्वादात्मनेपदनिमित्तत्वाभावनिमित्तत्वात् 'न वृद्भ्यश्चतुर्भ्यः' (७।२।५९) इति निषेधस्य बहिरङ्गत्वेनान्तरङ्गत्वादूदिल्लक्षणस्येड्विकल्पस्याऽऽपत्तिरत आह—

निषेधाश्च बलीयांसः॥ १२०॥

---

प्रसङ्गात्ता प्रतिपादयितुं शङ्कते—**न चेति**। **न मानमिति**। तथा च पुनरपि ह्रस्वापत्त्या पर्जन्यवदिति परिभाषा निष्फलैव स्यादिति भावः। इरयोर इति द्विवचनं तत्र मानमिति खण्डनकृदुक्त्यसाङ्गत्यं ध्वनयन्नाह—**सम इति**। ननु वार्तिकं दृष्ट्वा सूत्रकृतो न प्रवृत्तिरिति सूत्रमते तस्या वैयर्थ्येनाज्ञापकत्वेऽप्येकसकारकप्रयोगसिध्यर्थमावश्यकवार्तिकेनैव सिध्या तस्य वैयर्थ्यमिति वार्तिकमते ज्ञापकत्वमिति वार्तिकारूढत्वेऽपि न भाष्यारूढत्वमिति भ्रममपाकुर्वन्नाह—**संप्रेति**। तथा च तावताऽपि प्रामाण्यमेवेति भावः। ननु लक्ष्ये लक्षणस्येति न्यायस्य प्रामाणिकत्वेऽपि प्रकृते विकारकृतलक्ष्यभेदादप्राप्तावुक्तदोषस्तदवस्थ एवात आह—**अत्रेति**। लक्ष्य इति प्रोक्तन्याय इत्यर्थः। विकारकृत इति पाठ.। विकारागमकृत इत्यपपाठः। आगमकृतलक्ष्यभेदाङ्गीकारात्। तद्भाष्यात्तदलाभाच्च। **भाष्यादिति**। तत्र क्षुदवोदामित्यादावोत्वात्परत्वाद्वृदत्रजेतिवृद्धौ वर्णपदसामर्थ्येनौत्वेनेष्टं साधितम्। अन्यथा पुनर्वृद्ध्यापत्त्या भाष्यासगतिः स्पष्टैव। प्रतीयते, निश्चीयते। तदसांगत्यादि चान्यत्र स्पष्टमित्याह—**इत्यन्यत्रेति**। उद्योतादावित्यर्थः॥ ११९॥

तत्प्रसङ्गादेवाऽऽह—**नन्विति**। **धातोरिति**। प्रकृतिविकृतिभावसंबन्धे षष्ठी। इत्यादावित्यस्याऽऽपत्तिरित्यत्रान्वयः। **सकेति**। सकारादित्वरूपो यो विशेषस्तदपेक्षत्वादित्यर्थः। ननु तत्रापि बलादित्वापेक्षत्वेन समत्वमत आह—**आत्मन इति**। इति केचित्। वस्तुतस्तु तीत्यादावात्मनेपदनिमित्तत्वाभावनिमित्तत्वान्न वृद्भ्य इति पाठः। तत्र पूर्वनिमित्तकत्वस्योभयत्र तुल्यत्वादाह—**आत्मनेपदेति**। तथा चाधिकनिमित्तकत्वेनात्र तत्त्वं बोध्यम्। **धाश्चेति**। चो ह्यर्थे। स चात्र हेतोः प्रसिद्धत्वसूचकः। स चानुपदमेव

**अन्तरङ्गादुपजीव्यादपि बलीयांस इत्यर्थः। चतुर्भ्य इति तु स्पष्टार्थमेव।**
**अत एव तत्प्रत्याख्यानं भाष्योक्तं संगच्छते। अत एव सवर्णसंज्ञादेर्निषेधविषये न विकल्पः। अन्यथा मीमांसकरीत्या विधेरुपजीव्यत्वेन प्राबल्यात्तस्य सर्वथा बाधानुपपत्त्या दुर्वारः स इति मञ्जूषायां विस्तरः। अत एव 'द्वन्द्वे च' (१।१।३१) 'विभाषा जसि' (१।१।३२) इति चरितार्थम्। विध्युन्मूलनाय प्रवृत्तिरस्या बीजम्। 'न लुमता' (१।१।६३) 'कर्मणिङ्' (३।१।३०) इत्यनयोर्भाष्ये स्पष्टैषा ॥ १२० ॥**

---

व्यक्ती भविष्यति। **अन्तरिति**। अन्तरङ्गादुपजीव्याच्चेत्यर्थः। अपिः परादिसमुच्चायकः। तथा चानयाऽन्तरङ्गमपि विकल्पं बाधित्वा तत्र निषेध इति भावः। ननूक्तफलस्य चतुर्ग्रहणसामर्थ्यादेव सिद्धिरत आह—**चतुर्भ्य इतीति**।

ननु परिभाषाङ्गीकारेण सौत्रपदस्यान्यार्थत्वं नोचितमत आह—**अत एवेति**। तस्य स्पष्टार्थत्वादेवेत्यर्थः। वृतादिभ्यो यद्यत्प्राप्तं तत्तन्नेति वचनव्यक्त्या सर्वेणिनिषेधसिद्धेरिति भावः। एवमन्तरङ्गतस्तस्य प्राबल्यमुक्त्वोपजीव्यात्तत्साधयति लक्ष्यदर्शनद्वारा—**अत एवेति**। उपजीव्यतोऽपि तत्प्राबल्यादेवेत्यर्थः। अन्यथा, एतत्परिभाषायास्तथार्थाभावे। स्वमते तस्य तत्त्वेन प्राबल्यस्याभावादाह—**मीमांसेति**। नानुयाजेष्वित्यादौ[1] पर्युदास एव न प्रसज्यप्रतिषेधः। विहितप्रतिषिद्धत्वेन विकल्पापत्तेरिति हि तैरुक्तम्। सः, विकल्पः। मञ्जूषाया, नव्वादे। तदंशे ज्ञापकमपि ध्वनयन्नाह—**अत एवेति**। तत्रापि निषेधप्राबल्येन विकल्पालाभादेवेत्यर्थः[3]। **द्वन्द्वे चेति**। अस्येति कृतेऽपीति इत्यग्रिममिति वा शेषः। द्वितीये[4] तदनुवृत्तिसूचनार्थमात्र तदुल्लेखः। अन्यथोक्तरीत्या द्वन्द्वे चेत्येतावतैव विकल्पलाभे तदसगतिः स्पष्टैव। न च नियमार्थं तदिति वाच्यम्। विधिनियमसंभवे विधेरेव ज्यायस्त्वादिति भावः। अस्या लोकसिद्धत्वमाह—**विध्युन्मूलेति**। प्राप्तस्य विधेर्निवर्तनायेत्यर्थः। यस्य यदुन्मूलनाय प्रवृत्तिस्तस्य तत्त्व ततो लोके प्रसिद्धतरमित्यपवादन्यायेनैवैतद्विषयेऽन्तरङ्गाद्यसंभव[5] इति भावः। तसिलादिषु जातीयदेशीययोर्ग्रहणमप्यत्र[6] लिङ्गम्। अन्यथा पुंवत्कर्मधारयेति सिद्धे तद्वैयर्थ्यं स्पष्टमेवेत्यपि बोध्यम्। **न लुमतेति**। तत्र ह्युत्तरपदत्वे चेत्यस्य प्रत्याख्यानावसरेऽसर्वनामस्थान इति प्रतिषेधोऽनया प्राप्नोतीत्युक्तम्। कर्मणिङित्यत्रापि णिङोऽनुबन्धयोः सावकाशत्वेन प्रतिषेधबलीयस्त्वात्प्रतिषेधः प्राप्नोतीत्युक्तम् ॥ १२० ॥

---

१ ख. घ ङ. नानूया°। २ घ. °जेष्टीला°। ३ क. °ल्पाभावादे°। ४ ख. °येन त°। ५ ख. घ. ङ. °नैत°। ६ ख. घ. ङ. °मत्र।

नन्वत्यन्तस्वार्थिकानामर्थप्रत्यायकत्वरूपप्रत्ययत्वानुपपत्तिरत आह—

**अनिर्दिष्टार्थाः प्रत्ययाः स्वार्थे ॥ १२१ ॥**

यस्यार्थः प्रकृत्या प्रत्याय्यते सोऽपि प्रत्यय इत्यस्याप्यङ्गीकारात्तस्य प्रत्ययत्वमिति न दोषः। स्वार्थ इत्यस्य स्वीयप्रकृत्यर्थ इत्यर्थः। महासंज्ञाबलादर्थाकाङ्क्षायामन्यानुपस्थितिरस्या बीजम्। 'सुपि स्थः' (३।२।४) इत्यादिसूत्रेषु भाष्ये स्पष्टैषा ॥ १२१ ॥

**योगविभागादिष्टसिद्धिः ॥ १२२ ॥**

इष्टसिद्धिरेव न त्वनिष्टापादनं कार्यमित्यर्थः। तत्तत्समानविधिकद्वितीययोगेन विभक्तस्यानित्यत्वज्ञापनमेतद्बीजम् ॥ १२२ ॥

**पर्यायशब्दानां लाघवगौरवचर्चा नाऽऽद्रियते ॥ १२३ ॥**

तत्र तत्रान्यतरस्यां विभाषा वेति सूत्रनिर्देशज्ञापितमिदम् ॥ १२३ ॥

---

निषेधप्रसङ्गादाह—**नन्विति**। स्वार्थिके दोषाभावादाह—**अत्यन्तेति**। तत्रार्थस्यैवाभावादिति भावः। स्वार्थिके सत्त्वेऽप्यत्यन्तस्वार्थिकेऽन्वयव्यतिरेकयोरभावात्प्रकृत्यर्थप्रत्यायकत्वमपि दुर्वचमत आह—**यस्यार्थ इति**। तत्त्वेनाभिमत इत्यर्थः। अनेन विकारागमयोर्नानया तत्त्वमिति सूचितम्। यत्र हि प्रकृतेः पृथगर्थस्तत्रैवास्याः प्रवृत्तिः। न हि विकारादिरहिता प्रकृतिरर्थवतीति बोध्यम्। **प्रकृत्येति**। अन्वयव्यतिरेकयोः सत्त्वादिति भावः। इत्यस्य, प्रत्ययपदार्थस्य। अपिना प्रत्येत्यर्थं बोधयति यः स प्रत्यय इत्यस्य परिग्रहः। तथा च प्रत्ययशब्दे तन्त्रेणार्थद्वयम्। तस्य, अत्यन्तस्वार्थिकत्वावच्छिन्नस्य। नन्वेवं स्वीयार्थाभावात्स्वार्थ इत्यनुपपन्नमत आह—**स्वार्थ इति**। स्वशब्द आत्मीयवाची नाऽऽत्मवाचीति भावः। अस्या न्यायसिद्धत्वमाह—**महेति**। प्रत्यय इति महेत्यर्थः। एतेन यावादिभ्य कनित्याद्युदाहरन्तः सीरदेवादयः परास्ताः। **सुपि स्थ इति**। तत्र ह्याखूत्थ इत्याद्यर्थं योगविभागेन विहितः प्रत्ययो भाव एव न कर्मादावनेन न्यायेनेत्युक्तम् ॥ १२१ ॥

बौद्धयोगविभागप्रसङ्गादाह—**योगेति**। सर्वं वाक्यमिति न्यायेनाऽऽह—**इष्टेति**। एवव्यवच्छेद्यमेवाऽऽह—**न त्विति**। तत्तदिति योगान्वयि। **विधीति**। कर्मणि किः। यदि विभक्तस्य सर्वविषयत्व स्यात्तर्हि तस्य वैयर्थ्यं स्पष्टमेव। विकल्पस्य तु शङ्कैव न सामान्ये बोधकाभावादेकयोगवत् ॥ १२२ ॥

बौद्धविकल्पप्रसङ्गादाह—**पर्यायेति**। एतेनान्यत्र साऽस्तीति सूचितम्। अस्या मानमाह—**तत्र तत्रेति**। बहुषु सूत्रेष्वित्यर्थ.। **विभाषा वेति सूत्रेति**। इत्या-

---

१ घ. प्रकृत्यर्थे। २ ख. घ. ङ. °य. पोषिता.। ३ ग. घ. °द्यमाह।

**ज्ञापकसिद्धं न सर्वत्र ॥ १२४ ॥**

स्पष्टमेव पठितव्येऽनुमानाद्बोधनमसार्वत्रिकत्वार्थमित्यर्थः। तेन ज्ञापकसिद्धपरिभाषयाऽनिष्टं नाऽऽपादनीयमिति तात्पर्यम्। भाष्येऽपि ध्वनितमेतन्ङ्याप्सूत्रादौ। ज्ञापकेति न्यायस्याप्युपलक्षणम्। न्यायज्ञापकसिद्धानामपि केषांचित्कथनमन्येषामनित्यत्वबोधनायेति भावः। यथा तत्स्थानापन्ने तद्धर्मलाभ इति न्यायसिद्धं स्थानिवत्सूत्रं ज्ञापकसिद्धं च तत्रानल्विधाविति ॥ १२४ ॥

ननु द्रोग्धा द्रोग्धा द्रोढा द्रोढेत्यादौ घत्वादीनामसिद्धत्वात्पूर्वं द्वित्व एकत्र घत्वमपरत्र ढत्वमित्यस्याप्यापत्तिरत आह—

**पूर्वत्रासिद्धीयमद्वित्वे ॥ १२५ ॥**

द्वित्वभिन्ने पूर्वत्र कर्तव्ये परमसिद्धमित्यर्थः। 'पूर्वत्रासिद्धम्' (८।२।१) इत्यधिकारभवं शास्त्रमस्या लिङ्गम्।

---

दिविविधसूत्रनिर्देशेत्याद्यर्थ.। अन्यथा सर्वत्र वेत्येव सिद्धे तदानर्थक्य स्पष्टमेवेति भावः ॥ १२३ ॥

बौद्धज्ञापकप्रसङ्गादाह—**ज्ञापकेति**। अस्या बीजमाह—**स्पष्टमेवेति**। ज्ञापकशब्दार्थमाह—**अनुमानादिति**। तेन, तदसार्वत्रिकत्वेन। अस्या भाष्याभिमतत्वमाह—**भाष्येऽपीति**। ङ्याप्सूत्रादौ भाष्येऽपीत्यर्थः। आदिना स्व रूपमित्यादिपरिग्रह·। नन्वेवमपि न्यायसिद्धाना सार्वत्रिकत्वापत्तिरेवात आह—**ज्ञापकेतीति**। ननु स्पष्टोक्तौ गौरवमित्यनुमानाद्बोधन लघुभूतमिति कथमसार्वत्रिकत्वमत आह—**न्यायेति**। प्रारम्भे तथा प्रयोगस्तु साभिप्राय इत्युक्तम्। केषाचित्, अर्थानाम्। अन्येषा, परिभाषार्थानाम्। अस्योदाहरणमाह—**यथेति**। **इति न्यायेति**। यथा गुरोः स्थाने शिष्यो याज्यकुलानि गत्वाऽग्रासनादीनि लभते तद्वदत्रापि सिद्धिरित्यर्थः। इद च स्व रूपमितिशास्त्राविषये बोध्यम्। **ज्ञापकेति**। अदो जग्धिरित्यत्रत्वल्यब्ग्रहणेत्यर्थः ॥ १२४ ॥

विकल्पप्रसङ्गात्तथाऽतिदेशप्रसङ्गाच्चाऽऽह—**नन्विति**। त्यादौ, साध्य इति शेषः। **घत्वादीनामिति**। आदिना ढत्वादिपरिग्रह। **पूर्वमिति**। तथा च द्रोह्ताद्रोह्तेति स्थितिर्बोध्या। **त्यस्याप्येति**। अपिर्भिन्नक्रमः। इत्यस्याऽऽपत्तिरपीत्यर्थ.। अपिना पाक्षिकेष्टसिद्धिसमुच्चय.। अय भावः—यद्येकस्या आकृतेरित्यस्याः सचारोऽर्थान्तरसभावनाया द्वित्वाभावसभावनाया. सत्त्वात्तदिष्टसिद्धिर्यदाऽनित्यत्वादिनाऽनाश्रयण तदापत्तिरिति। एतेन तत्र संचार कुर्वन्भ्रान्त परास्त·। **पूर्वत्रेति**। यत्पूर्वत्रासिद्धीय शास्त्र तत्राद्वित्व इत्युपतिष्ठत इत्यर्थ.। एव सति पूर्वत्रासिद्धमित्यधिकारादेकवाक्यतया तत्रत्यार्थमाह—**द्वित्वेति**। परिभाषाया उक्तार्थं ध्वनयस्तदानर्थक्यं परिहरस्तन्नियमादाह—**पूर्वत्रेति**।

**यत्र च सिद्धत्वासिद्धत्वयोः फले विशेषस्तत्रैवेयम्। कृष्णर्द्धिरित्यादौ जश्त्वात्पूर्वमनन्तरं वा द्वित्वे रूपे विशेषाभावेन नास्याः प्रवृत्तिरित्यन्यत्र विस्तरः। 'सर्वस्य द्वे' (८।१।१) इति सूत्रे भाष्ये स्पष्टेयम्॥ १२५॥**

**ननु गोष्वश्वेषु च स्वामीत्यादिवद्गोष्वश्वानां च स्वामीत्यपि स्यात् 'स्वामीश्वर' (२।३।३९) इति सूत्रेण षष्ठीसप्तम्योर्विधानादत आह—**

**एकस्या आकृतेश्चरितः प्रयोगो द्वितीयस्यास्तृतीयस्याश्च न भविष्यति॥ १२६॥**

**यत्रान्याकृतिकरणे भिन्नार्थत्वसंभावना तद्विषयोऽयं न्याय इत्यन्यत्र**

---

लक्षणया तस्य तत्परत्व गहादित्वाच्छ इति भाव॰। एतेन द्वित्वे कार्ये पूर्वत्रासिद्धमिति सूत्र न प्रवर्तत इति परिभाषार्थ इति सीरदेवाद्युक्तमपास्तम्। उदक्षरत्वात्।

परिभाषाणा फलवत्त्वनियमादाह—**यत्र चेति। कृष्णर्द्धिरिति।** अस्य तथा चेत्यादिः। एतेन तत्र सचारं कुर्वन्भ्रान्तः परास्तः। इय द्वित्वाश्रयवर्णस्यान्यस्य वा सिद्धत्व यत्र कार्ये तत्र सर्वत्र प्रवर्तते। अप्रवृत्तौ मानाभावात्। उद्द्योतादिग्रन्थास्त्वेकदेशिन इति न दोषः। अनित्या चेयम्। उभौ साभ्यासस्येति लिङ्गात्। तेन प्रणिनायेत्यादिसिद्धिः। वोकूक् वागिति भाष्योक्तलक्ष्यसिद्धये[2]ऽर्थान्तरमप्यस्या स्वीकार्य तदाह—**इत्यन्यत्रेति।** शेखरादावित्यर्थ.। **स्पष्टेयमिति।** उक्तप्रयोगसिद्ध्यर्थमेव तत्र वार्तिकत्वेन पठितेत्यर्थः। एतेन न मु न इति योगविभागेन सिद्धेयमित्यपास्तम्। तस्य भाष्यादावदर्शनात्। यत्त्वर्शआद्यजन्त कृतसर्वकार्यकेत्यर्थक सर्वस्य द्व इत्यत्रत्यसर्वग्रहणमत्र ज्ञापकमिति सीरदेवादयस्तन्न। तस्यान्यार्थत्वस्य भाष्य एव स्पष्टत्वादिति दिक्॥ १२५॥

उक्तोपयोगित्वादेवाऽऽह—**नन्विति। त्यादिवदिति।** आदिना गवामश्वाना च स्वामीत्यादिपरिग्रहः। **विधानादिति।** प्रयोगभेद इवैकप्रयोगेऽपि तयोर्दुर्वारत्वादिति भावः। **एकस्या इति।** यतोऽत इति शेष। यत एकस्या आकृतेः स्वरूपस्य प्रयोग॰श्चरितः कृतोऽतो द्वितीयस्यास्तृतीयस्याश्च नेत्यर्थः। चश्चतुर्थ्यादिसमुच्चायक.। अत्र बीजं ध्वनयन्नतिप्रसङ्गाभावमाह—**यत्रेति।** अस्ति चात्र गोष्वश्वाना चेत्युक्तेऽश्वाना स्वामी गोषु तिष्ठतीत्यर्थान्तरस्य[3] तादृशी प्रतीतिरिति भावः। तथा च लोकसिद्धप्रतिपत्तिलाघवमूलकोऽयं न्याय इति बोध्यम्। तदाह—**इत्यन्यत्रेति।** उद्द्योतादावित्यर्थः।

---

१ ख. ङ. वा कानि॰। २ घ. 'सिद्धेरर्थो॰'। ३ घ. ॰रस्यैना॰।

विस्तरः । 'कृञ्चानुप्रयुज्यते' (३ । १ । ४०) इति सूत्रे भाष्ये स्पष्टेयम् ॥ १२६ ॥

ननु विव्याधेत्यादौ परत्वाद्धलादिःशेषे वस्य संप्रसारणं स्यादत आह—

संप्रसारणं तदाश्रयं च कार्यं बलवत् ॥ १२७ ॥

तदाश्रयं 'संप्रसारणाच्च' (६ । १ । १०८) इति पूर्वरूपम् । वस्तुतो 'लिट्यभ्यासस्य' (६ । १ । १७) इति सूत्र उभयेषां ग्रहणस्योभयेषां संप्रसारणमेव यथा स्यादित्यर्थकत्वेनेदं सिद्धमित्येषा व्यर्थेति लिट्यभ्यासस्येति सूत्रे भाष्ये स्पष्टम् । फलान्तरान्यथासिद्धिरपि तत्रैव भाष्ये स्पष्टा । 'णौ च संश्वङोः' (६ । १ । ३१) इत्यादौ संश्वङोरित्यादि विषयसप्तमीति तत्रापि न दोष इत्यन्यत्र विस्तरः ॥ १२७ ॥

---

**भाष्य इति** । तत्र हि सूत्राक्षेपे लिट्परस्यैवानुप्रयोगो यथा स्यादन्यपरस्य मा भूदित्युत्तरमनया संखण्ड्यान्यथा सिद्धान्तितम् । कैयटेन वेदप्रसिद्धत्वमप्यस्यास्तत्रोक्तम् । एतेनैनामबन्दन्सीरदेवादिः परास्तः ॥ १२६ ॥

द्वित्वप्रसङ्गादाह—**नन्विति** । परत्वादित्यस्य संप्रसारणादित्यादिः । तदाश्रयत्वस्यातिप्रसक्तत्वादाह—**संप्रेति** । **रणमेवेति** । अन्यथा वच्यादीना ग्रह्यादीना चानुवृत्त्यैव सिद्धे किं तेनेति भावः । नेद, विव्याधेत्यादिरूपम् । **फलान्तरेति** । ण्यल्लोपेयङ्यण्निवृत्तिरूपेत्यर्थः । भृष्टो जुहुवतुः शुशुवतुरित्यादौ नित्यत्वादिना तत्सिद्धिरिति भावः । भाष्ये न्यूनता परिहरति—**णौ चेति** । एतेनोभयेषा ग्रहणेनेय ज्ञापिता । तद्धि वव्रश्चेत्यादौ हलादिःशेष बाधित्वा संप्रसारण यथा स्यादित्येवमर्थमिति सीरदेवाद्युक्तं सहिवहोरितिसूत्रेस्थावर्णग्रहणं ज्ञापकमूढवानिति व्यावर्तक हि तादिति न्यासकृदाद्युक्तं चापास्तम् । भाष्यविरोधात् । तदाह—**इत्यन्यत्रेति** । उद्योतादावित्यर्थः । वस्तुतोऽभ्यासविकारेषु बाध्यबाधकभावाभावेनेष्टानुरोधेन कार्यप्रवृत्त्येष्टसिद्ध्या व्यथादौ न दोष इत्यपि बोध्यम् ॥ १२७ ॥

---

१ ङ. °दमूलकत्व° । २ क °दिनैत° । ३ घ. भाष्य न्यू° । ४ ग. °त्रस्थव° । ५ ख. घ. व्यथादौ ।

यत्तु—

क्वचिद्विकृतिः प्रकृतिं गृह्णाति ॥ १२८ ॥

तेन 'निसमुपविभ्यो ह्वः' ( १ । ३ । ३० ) इत्यत्र ह्वाग्रहणेन ह्वेञो ग्रहणसिद्धिः ॥ १२८ ॥

तथा—

औपदेशिकप्रायोगिकयोरौपदेशिकस्यैव ग्रहणम् ॥ १२९ ॥

तेन 'दादेर्धातोः' ( ८ । २ । ३२ ) इत्यत्रौपदेशिकधातोरेव ग्रहणमिति तन्न । तयोर्निर्मूलत्वाद्भाष्याव्यवहृतत्वाच्च । न च विकृतिः प्रकृतिं गृह्णातीति 'ग्रहिज्या' ( ६ । १ । १६ ) इतिसूत्रस्थभाष्येणाऽऽद्यायास्तिरस्काराच्च । निसमुपविभ्यो ह्व इत्यादौ ह्वेञोऽनुकरणे सौत्रः प्रयोगः ।

आत्वविषय एवाऽऽत्मनेपदं प्रयोगस्थानामेवानुकरणस्य घुसंज्ञासूत्रे भाष्ये स्पष्टमुक्तत्वादित्यन्ये । अन्त्याऽपि तत्र तत्रोपदेशग्रहणं कुर्वतः

---

अथ तदुक्ताः काश्चित्खण्डयति—**यत्त्विति** । **सिद्धिरिति** । तथा च निह्वयत इत्यादावात्मनेपदसिद्धिः ॥ १२८ ॥

अन्यामाह—**तथौपदेशिकेति** । उपदेशे भव औपदेशिकः । अध्यात्मादित्वाट्ठञ् । एवमग्रेऽपि । **ग्रहणमिति** । तेनाधोगित्यस्य सिद्धिर्दामलिडित्यादौ च नेति भावः । तत्राऽऽद्यौ साधारणदोषमाह—**तयोरिति** । ननु तयोर्मूलमस्ति । तत्र द्वितीये मूलं श्वीदित इत्यादौ श्व्यादिग्रहणं यथाकथंचित्सीरदेवादिभिरुक्तम् । तद्धि शून इत्यादावनया श्व्युक इत्यस्याप्रवृत्तौ सार्थकम् । न हि तत्रोपदेशग्रहणस्यानुवृत्तिः । तीर्णमित्यादेरनयैव सिद्धेः । तथा न व्यो लिटीति विकृतनिर्देश आद्ये ज्ञापक इति कथं निर्मूलत्वमत आह—**भाष्येति** । नन्वेवमप्यप्रतिषिद्धमिति न्यायेनानुमतत्वमास्तामतो विशेषदोषमाद्य आह—**न चेति** । न हीत्यर्थः । नन्वेवं निसेत्यादौ का गतिरत आह—**निसेति** । नन्वशितीति प्रसज्यप्रतिषेधेऽपि पक्षान्तरैकवाक्यतया शित्परत्वयोग्यस्यैव तेनाऽऽत्वविधानाल्लक्षणवशासपन्नत्वमात्वस्य सीरदेवाद्युक्त दुर्वचमत आह—**सौत्र इति** । एतेन न व्यो लिटीत्यस्य ज्ञापकत्वमपास्तम् ।

सिद्धान्तमाह—**आत्वेति** । कृतात्वस्यैवानुकरणादिति भावः । अत्र हेतुमाह—**प्रयोगेति** । एवं च फलाभावान्नेयमिति भाव. । अन्त्याया तमाह—**अन्त्याऽपीति** ।

---

१ क. घ. 'दुक्ते केचित्ख° । ख. °दुक्तौ के° ।

सूत्रकृतो वार्तिककृतश्चासंमता । इह हि व्याकरणे सर्वेष्वेव सानुबन्धकग्रहणेषु रूपमाश्रीयते यत्रास्यैतद्रूपमिति रूपनिर्ग्रहश्च शब्दस्य नान्तरेण लौकिकं प्रयोगं तस्मिंश्च लौकिके प्रयोगे सानुबन्धकानां प्रयोगो नास्तीति कृत्वा द्वितीयः प्रयोग उपास्यते क उपदेशो नामेति घसंज्ञासूत्रभाष्येण प्रायोगिकासंभवे तद्ग्रहणमित्यर्थस्य लाभेन भाष्यासंमता च । भाष्ये सानुबन्धकेत्यादि प्रकृताभिप्रायेण । दादेरितिसूत्रे दादिपदस्यौपदेशिकदादित्ववति लक्षणेति न दोष इत्यन्यत्र विस्तरः ॥ १२९ ॥

यदपि नन्वजर्वा बेभिदीतीत्यादौ तत्तद्गणप्रयुक्ता विकरणा यङ्लुकि स्युस्तथा यङ्लुकि बेभेदितेत्यादौ 'एकाच' (७।२।१०) इतीण्णिषेधः स्यादत आह—

शितपा शपाऽनुबन्धेन निर्दिष्टं यद्गणेन च ।
यत्रैकाज्ग्रहणं चैव पञ्चैतानि न यङ्लुकि ॥ १३० ॥

अनुबन्धनिर्देशो द्विधा स्वरूपेण ङित इत्यादिपदेन च । 'हन्ति याति वाति' (८।४।१७) 'सनीवन्त' (७।२।४९) इति

औपदेशिकेति परिभाषाऽपीत्यर्थ. । भाष्यासंमतत्वमाह—**इह हीत्यादिना । यत्रास्यैतदिति** । यत्रास्यैतद्रूपमनुबन्धयुक्त तत्र घसंज्ञेत्याद्यर्थ । एव चोपदेश एव घसंज्ञादि । प्रयोगे तु स्थानिवद्भावेन तदिति बोध्यम् । तद्ग्रहणम, औपदेशिकग्रहणम् । भाष्ये न्यूनता निराचष्टे—**भाष्य इति** । शब्दमात्रग्रहणेऽपि स्व रूपमित्यनेन रूपाश्रयणादिति भावः । नन्वेवं दादेरित्यत्र का गतिरत आह—**दादेरिति** । दीक्षिताद्युक्तप्रकारस्यासागत्यादाह—**दादीति** । इद च शेखरादौ स्पष्टम् । एतेनाऽऽध्याया दाधा ध्वदाबित्यत्र देङ्धेटोर्ग्रहणात्प्रणिदयते· प्रणिधयतीति सिद्धि· फलमिति सीरदेवाद्युक्तमन्त्याऽनित्योपदेशेऽजित्यत्रोपदेशग्रहणादिति भ्रान्तोक्त चापास्तम् । तदाह—**इत्यन्यत्रेति** । उद्योतादावित्यर्थः ॥ १२९ ॥

अन्यामपि कैयटदीक्षिताद्युक्तां खण्डयति—**यदपीति** । यङ्लुकश्छान्दसत्वेऽदोषगैणनाद्भाषायामसार्वत्रिकत्वात्तत्र भाष्योक्तलक्ष्याण्याह—**अजर्वा इति** । आदिना चेच्छिदीतीत्यादिपरिग्रहः । **विकरणा इति** । श्नम्श्यन्नादय इत्यर्थः । **यङीति** । लक्ष्यविशेषणम् । अत एव तथैव दोषान्तरमाह—**तथा यङीति** । गणकार्यानित्यत्वेन तत्सुपरिहरमित्याशयः । **निषेध इति** । उपदेश एकाच्त्वस्य सत्त्वादिति भावः । **यदिति** ।

१ ङ. त्वे तु दोषगणाद्भा° । घ. °त्वेऽपि भाषा° । २ ख °गणाद्भा° । ३ क. ख ङ. °यः । तस्य नि° ।

सूत्रे भरोति । 'दीङो युडचि' (६ । ४ । ६३) 'अनुदात्तङितः' (१ । ३ । १२) 'दिवादिभ्यः श्यन्' (३ । १ । ६९) 'एकाच उपदेशे' (७ । २ । १०) इत्युदाहरणानि । द्वित्वं 'सनाद्यन्ताः' (३ । १ । ३२) इति 'भूवादयः' (१ । ३ । १) इति च धातुत्वं च भवत्येव 'गुणो यङ्लुकोः' (७ । ४ । ८२) इत्यादिभिर्निषेधानित्यत्वकल्पनात् । तेन भष्भावोऽप्यजर्घा इत्यादौ भवति । अत एव 'श्वीदितः' (७ । २ । १४) इति सूत्रे कैयटे यत्रैकाज्ग्रहणं किंचिदिति पाठः । 'एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्' (७ । २ । १०) इति सूत्र एकाज्ग्रहणेनैकदेशानुमत्यैषा ज्ञाप्यते । अन्यथोपदेशेऽनेकाचामुदात्तत्वस्यैव सत्त्वेन तद्वैयर्थ्यं स्पष्टमेवेति ।

तदपि न । भाष्यानुक्तत्वात् । एकाज्ग्रहणस्य वधिव्यावृत्त्यर्थमावश्यकत्वाच्च । न च वधिः स्थान्युपदेश एकाजेवेति वाच्यम् । साक्षादुपदेशसंभवेनैतद्विषये स्थान्युपदेशाग्रहणादुपदेशत्वावच्छेदेनैकाजित्यर्थाच्च । किंचोत्तरार्थमेकाज्ग्रहणम् । अत एव जागरितवानित्यादावुपदेश उग-

---

यत्रेत्यर्थेऽव्ययम् । यद्वा यत्, शब्दस्वरूपम् । यत्रेत्यस्य सर्वत्र सबन्धः । **इत्युदेति** । क्रमेणेति भाव· । नन्वेव तत्र द्वित्वादिक न स्यादत आह—**द्वित्वमिति** । सनाद्यन्ता इत्यस्य प्रत्याख्यानादाह—**भूवादेति** । इति च धातुत्वं चेति पाठ । **गुणो यङिति** । अन्यथाऽभ्यासाभावेन तद्वैयर्थ्य स्पष्टमेव । आदिना दीघोऽकित इत्यादिपरिग्रहः । **निषेधेति** । एतत्परिभाषाबोध्यनिषेधेत्यर्थ । अनित्यत्वस्य फलान्तरमाह—**तेनेति** । एतदनित्यत्वेनेत्यर्थ· । भष्भावोऽप्येति । अपिरुक्तफलादिसमुच्चायकः । अत एव, एतदनित्यत्वादेव । किंचिदित्यस्य सर्वत्रान्वय· । तथा च केषांचिदेव तत्राप्रवृत्तिर्न तु सर्वेषामिति भाव. । नुमत्या, तद्द्वारा । अन्यथा, अस्या अभावे । तद्वैयर्थ्यम्, एकाच्पदवैयर्थ्यम् ।

ननु तदनुक्तत्वे[3]ऽपि प्राग्वदङ्गीकारोऽत आह—**एकाजिति** । तस्यादन्तत्वात् । तथा च निर्मूलेयमिति भाव· । **न चेति** । तथा च तेन तस्याव्यावृत्त्या वैयर्थ्येन तस्य ज्ञापकत्व सुस्थमेवेति भाव. । **साक्षादिति** । मुख्यत्वादिति भाव । **उपेति** । अवच्छेदकावच्छेदेनान्वयस्यौत्सर्गिकत्वाल्लक्ष्यानुरोधाच्च । तथा च तद्व्यावर्त्यो वधिरेवेति न ज्ञापकत्वमिति भाव. । तत्र दोषान्तरमाह—**किं चेति** । उपदेशे, तत्कालिकम् । ननूपदेश-

---

१ ख. घ ङ तदानर्थक्य स्प° । २ ङ. °षालभ्यनि° । ३ घ. °त्वेऽप्यप्रतिषिद्धमिति न्यायेन तद° । ४ ङ. °न ज्ञा° ।

न्तत्त्वमादाय 'श्र्युकः किति' (७।२।११) इतीण्निषेधो न। तत्रोपदेश इत्यनुवृत्तिश्च स्तीर्णमित्यादाविण्निषेधाद्येत्याकरे स्पष्टम्। न च भाष्ये यङ्लोपे बेभिदितेत्यादाविट्प्रवृत्त्यर्थमुपदेशेऽनुदात्तादेकाचः श्रूयमाणादङ्गादित्यर्थे सनीट्प्रतिषेधो वक्तव्यो बिभित्सतीति दोषोपन्यासवद्यङ्लुकि दोषानुपन्यासेन तत्रेडिष्टः। यङ्लोप इत्यादि भाष्यं तूपक्रमोपसंहारबलेन न यङ्लुग्विषयम्।

किंच तस्य तद्विषयकत्वे यङ्लोपे स्थानिवत्त्वस्येव यङ्लुक्युपायाप्रदर्शनेन न्यूनतापत्तिरिति वाच्यम्। इड्विषये यङ्लुको लोकेऽनभिधानेन च्छन्दसि सर्वविधीनां वैकल्पिकत्वेन च तत्र दोषानुपन्यासेनादोषात्। अन्यथैकाज्ग्रहणं किमर्थमिति प्रश्नस्योत्तरत्र जागर्त्यर्थमिह वध्यर्थमित्युत्तरस्य च भाष्ये निरालम्बनतापत्तेः।

---

ग्रहणस्य[1] तत्र नानुवृत्तिरेव[2] मानाभावादिति तत्र न तत्प्रवृत्तिरत आह—**तत्रोपेति**। श्र्युक इत्यत्रेत्यर्थ.। **वृत्तिश्चेति**। चस्त्वर्थे। अत एव पूर्वमवतरणे यथाकथंचिदित्युक्तम्। **प्रवृत्त्यर्थमिति**। अस्याङ्गीक्रियमाण इति शेषः। **दोषानुपेति**। यङ्लुकीट्प्रतिषेधो वक्तव्य इति दोषेत्यर्थः। तत्र, यङ्लुकि। **इडिष्ट इति**। स च सिद्धान्तार्थे श्तिपा शपेति निषेधं विनाऽनुपपन्न इतीयमावश्यकीति भावः। ननु तद्भाष्यं यङ्लुग्विषयमेवेति तत्र दोषोपन्यास एवेति तत्सिद्ध्यर्थं तदर्थस्यैवाङ्गीकारेण सिद्धान्तार्थाभावेन तदप्राप्त्या निषेधानावश्यकत्वमेवेति[3] न तदभावप्रयुक्तभवादिष्टसिद्धिरत आह—**यङ्लोप इति**। **तूपेति**। उपक्रमो लोपपदेन, अग्रे स्थानिवत्त्वेन व्यवायेन समाधानमुपसंहारस्तद्बलेनेत्यर्थः। **न यङ्लुग्विषयमिति**। न तन्मात्रविषयमित्यर्थ.।

ननु तद्विषयत्वमप्युच्यते लोपत्वस्य व्यापकत्वादिति नोपक्रमविरोधो लोपमात्रविषयत्वान्नोपसंहाराविरोधोऽप्यत आह—**किं चेति**। **तस्येति**। उपक्रमभाष्यस्य तद्विषयकत्वेऽप्यङ्गीकृत इत्यर्थः। **पत्तिरिति**। तथा च न तद्विषयकत्वमिति प्रागुक्तार्थसिद्धिरिति भावः। नन्वेवमपि च्छन्दस्यभिधानमेवेति तत्र का गतिरत आह—**छन्देति**। तत्र, यङ्लुकि। **दोषानुपेति**। दोषानुपन्यासकृतपरिभाषाङ्गीकारापत्तिरूपदोषाभावादित्यर्थः। अत्र बीजमाह—**अन्यथैकाजिति**। उक्तप्रकारानङ्गीकार इत्यर्थः। त्तरत्र, श्र्युकः कितीत्यत्र। ननु तर्हि तत्रैव कर्तव्यमत आह—**इह वेति**। यङ्लुग्व्यावृत्त्यर्थत्वेनोक्तरीत्या साफल्ये प्रश्नादेर्निरालम्बनत्वमिति भावः।

---

१ ङ. °णस्यैव त°। २ ङ. °त्तिर्मा°। ३ घ. °ति तत्तद°।

न चाऽऽर्धधातुकाक्षिप्तधातोरेकाच इति विशेषणम् । एवं च बिभित्सतीत्यादावुत्तरखण्डस्य धातोरेकाच्त्वमस्त्येवोत्तरखण्डेऽस्तित्ववत् । एतच्च 'दयतेः' ( ७ । ४ । ९ ) इति सूत्रे भाष्ये स्पष्टम् । एवं च प्रकृतभाष्यासंगतिरिति वाच्यम् । आक्षेप आक्षिप्तस्यान्वये च मानाभावात् । अङ्गत्वं तु विशिष्ट एवेति 'एकाचो द्वे' ( ६ । १ । १ ) इति सूत्रे भाष्ये स्पष्टम् । निरूपितं च तनादिशेषे शब्देन्दुशेखरे ।

धातुत्वं तूत्तरखण्ड एव । अत एव 'एकाचो बशो भष् झषन्तस्य स्ध्वोः' ( ८ । २ । ३७ ) इति सूत्रे धातोरवयवस्यैकाच इति वैयधिकरण्येनान्वये गर्धप्सिद्धिः प्रयोजनमुक्तं भाष्ये न तु प्रसिद्धमजर्घा इति । अजर्घा बेभिदीतीत्यादौ श्नम्श्यनादयस्तु चर्करीतं चेत्यस्यादादौ पाठेन

---

एवं च । तस्य तादृशतद्विशेषणत्वे च । दृष्टान्तासिद्धिं परिहरति—तच्चेति । तत्राऽस्तित्वं चेत्यर्थः । स्पष्टमेतत्प्रकृतिग्रहणे यङ्लुगन्तस्यापीति परिभाषाखण्डनावसरे मूल एव । ततः किमत आह—**एवं चेति** । तत्र तत्त्वादिण्निषेधसिद्धौ चेत्यर्थः । **असंगतिरिति** । एव चैकदेशयुक्तित्वेन नोक्तार्थे साधकत्वमुक्तभाष्यस्येति भाव. । **आक्षेप इति** । फलाभावात् । यथा पीनत्वानुपपत्त्याऽनुमीयमानरात्रिभोजनस्य पीनत्वोपपत्ति. फल न तथा तत्र सूत्रे तदनुमानेनाऽऽर्धधातुकत्वोपपत्तिर्भवति । किं चाऽऽर्धधातुकस्योत्पत्तौ धात्वपेक्षत्वेऽपि ज्ञाने तदनपेक्षत्वादिति भावः । **अन्वये चेति** । अनतिप्रसङ्गाय वृत्त्युपस्थितस्यैव प्रायेण शाब्देऽन्वयप्रतियोगित्वाङ्गीकारादिति भावः । नन्वेवमप्यङ्गस्येत्यस्याधिकारादेकाचोऽङ्गादित्यर्थेन प्रागुक्तरीत्योत्तरखण्डे तस्य सत्त्वेन बिभित्सतीत्यादावदोषेण भाष्यासंगतिरेवात आह—**अङ्गत्वं त्विति** । द्विष्प्रयोगो द्विर्वचनमिति सिद्धान्तेनाऽऽद्ये प्रत्ययविधानावधित्वप्रत्यभिज्ञया तदादिग्रहणसत्त्वेन समुदाय एव तत्त्वम् । निरर्थकेऽप्यङ्गत्वदर्शनेनाङ्गसंज्ञायामर्थवत्परिभाषाया अप्रवृत्तेः । यस्मादित्यनेनोद्देश्यतावच्छेदकशब्दानुपूर्वीमात्रावच्छिन्नस्यैव ग्रहणाच्च । तदाह—**निरूपितं चेति** ।

नन्वेव धातुत्वमपि समुदाय एवेत्येव कुतो न समाहितमत आह—**धातुत्वं त्विति** । अभ्यासस्य नैरर्थक्यात् । इदमपि तत्रैव निरूपितमत्र प्राक्प्रतिपादितं च । अत्रान्यद्भाष्यमपि प्रमाणयति—**अत एवैकेति** । तस्योत्तरखण्डीयत्वादेवेत्यर्थः । भाष्ये, दादेरितिसूत्रस्थे । नन्वेवमजर्घा इत्यादौ विकरणाः कुतो नात आह—**अजर्घा इति** । **पाठेनेति** । अस्य बोधितयेति शेषः । चर्करीतमिति यङ्लुकः संज्ञासामर्थ्यात्तदन्तग्रहणम् । संग्राहकवाक्य चैतत् । तथा चानेन यङ्लुगन्तत्वावच्छिन्नस्य तत्त्वं बोध्यते । यदि ते

यङ्लुगन्ते गणान्तरप्रयुक्तविकरणस्याप्राप्त्या न भवन्ति । छान्दसत्वादेव कार्यान्तराणामपि च्छन्दसि दृष्टप्रयोगेष्वदृष्टानामभावो बोध्यः । भाषायां तु तादृशानामभाव एव । श्तिप्शबादिनिर्देशास्तु 'भवतेरः' (७ । ४ । ७३) इत्यादिसूत्रस्थतन्निर्देशवन्नार्थसाधका इत्यन्यत्र विस्तरः ॥ १३० ॥

ननु जभोऽचि रधेश्च नेट्यलिटीत्येव सूत्र्यतां किं द्वी रधिग्रहणेनेत्यत आह—

**पदगौरवाद्योगविभागो गरीयान् ॥ १३१ ॥**

प्रतिवाक्यं भिन्नवाक्यार्थबोधकल्पनेन गौरवं स्पष्टमेव । परं तु भाष्यासंमतेयम् । 'टाङसि' (७ । १ । १२) इतिसूत्रस्थभाष्यविरुद्धा च । तत्र चेनादेशेकारप्रत्याख्यानं योगविभागेनैव कृतमिति बहवः॥१३१॥

**अर्धमात्रालाघवेन पुत्रोत्सवं मन्यन्ते वैयाकरणाः॥ १३२ ॥**

एओङैऔच्सूत्रयोर्ध्वनितैषा भाष्ये ।

---

स्युस्तर्हि तथा बोधनासगतिस्त्व । तस्मात्तदन्ताच्छबेव[1] तेन बोध्यत इति भावः । नन्वेवमप्यन्यत्र दोषः स्यादेवात आह—**छान्देति** । नन्वेवमपि भाषाया स्युरत आह—**भाषायां त्विति** । **तादृशानामिति** । परिभाषाविषयाणामित्यर्थः । अनेन केषाचित्सत्ता सूचिता । नन्वेव श्तिबादिनिर्देशानर्थक्यमत आह—**श्तिप्शबेति** । **भवतेर इति** । प्रयोगदृष्टानुकरणाच्श्तिब्निपातनाच्छप् । अत्र लिटो निमित्तत्वेन यङ्लुकि न प्राप्तिरिति तन्निर्देशः साधुत्वद्वाराऽदृष्टार्थ एव यथैवमन्यत्रापीति भावः । **तन्निर्देशेति** । शबादिनिर्देशेत्यर्थः ॥ १३० ॥

धातुप्रसङ्गात्पदप्रसङ्गाच्चाऽऽह—**नन्विति** । सूत्र्यता त्रिसूत्री क्रियतामिष्टानुवृत्तये । **वाक्यमिति** । तथा च पदगौरवापेक्षया प्रतिपत्तिगौरवे[2] प्रकर्षेण योगविभागेन[3] भिन्नवाक्ये गौरवाधिक्यं स्पष्टमेवेति भाव. । **परं त्विति** । तदनुक्तत्वादिति भावः । पूर्ववदाह—**टाङसीति** । द्वितीयचो ह्यर्थे । **योगेति** । आङि चाऽऽप इत्यत्रेति भावः । एतेन प्रतिपदविधानाद्योगविभागो गरीयानिति सीरदेवाद्युक्त परिभाषान्तरमपास्तम् । द्वी रधिग्रहणं त्वेकदेशानुवृत्तिबोधकपरिभाषाया अनित्यत्वज्ञापनद्वारा तत्रत्यस्य क्वचिदित्यस्य बोधनार्थमिति[4] बोध्यम् ॥ १३१ ॥

गौरवप्रसङ्गादाह—**अर्धेति** । वैयाकरणा अर्धमात्रालाघवेनापि पुत्रोत्सवं मन्यन्ते किमुताधिकलाघवेनेत्यर्थः । **एओङिति** । तत्र ह्यच इगित्यस्य प्रत्याख्यानायार्धैकारा-

---

१ ख. ङ. °बेवेति न बो° । २ ङ. °त्तिज्ञानगौ° । ३ ग. °गेनाति भि° । ४ ङ. °पनार्थमिति बोधनद्वा° ।

**तत्रानेकपदघटितसूत्रे प्रायेण पदलाघवविचार एव न तु मात्रालाघवविचार इति 'ऊकालोऽच्' (१।२।२७) 'अपृक्त एकाल्' (१।२।४१) इत्यादिसूत्रेषु भाष्ये ध्वनितम्। तत्र हि सूत्रेऽल्ग्रहणहल्ग्रहणयोर्विशेषविचारे संज्ञायां हल्ग्रहणं 'ण्यक्षत्रिय' (२।४।५८) इति सूत्रेऽणिञोरिति वाच्यमिति त्रीणि पदान्यल्ग्रहणे तदेकं स्वादिलोपे हल्ग्रहणं ण्येतिसूत्रेऽणिञोरिति न वाच्यमपृक्तेति वाच्यमिति त्रीण्येव पदानीति नास्ति लाघवकृतो विशेष इत्युक्तम्। 'अचि श्नु' (६।४।७७) इति सूत्र इण इत्येव सिद्धे य्वोरिति संमृद्य ग्रहणात्पूर्वेणेण्ग्रहणं न। तत्र विभक्तिनिर्देशे संमृद्य ग्रहणे च सार्धास्तिस्रो मात्रा इण्ग्रहण इति तिस्रो मात्रा इति लण्सूत्रे भाष्योक्तेः।**

---

वौंकारौ यदि स्याता तर्हि तावेव लाघवादयमुपदिशेदित्युक्तम्। ताभ्यामुपदिष्टाभ्या दीर्घप्लुतयोरपि प्रदेशेषु ग्रहण सिध्यति। नन्वेव मात्रिकयोरेव गुणसज्ञा स्यात्तपरत्वादिति चेन्न। तत्र दीर्घयोरेव स्वरूपेण निर्देशादिति कैयटः। एवमपि तत्र ह्रस्वपाठेऽर्धमात्रलाघवं भवतीति तदाकूतम्।

मात्रापदलाघवयोर्व्यवस्थामाह—**तत्रेति**। तयोर्मध्य इत्यर्थः। एवव्यवच्छेद्यमाह—**न त्विति**। आदिना प्रत्ययस्य लुक्श्लुलुप एओङैऔजित्यादिसूत्रपरिग्रहः। तत्रान्त्यध्वनितमुपपादयति—**तत्र हीति**। अपृक्त एकालिति सूत्रे हीत्यर्थ.। उक्तमित्यत्रान्वयः। वाच्यमिति त्रीणीति पाठः। अवान्तरपदत्वाभिप्रायमिदम्। **अल्ग्रहण इति**। अस्य सज्ञायामित्यादिः। तदेकम्, अल्ग्रहणमेकम्। **त्रीण्येवेति**। अपृक्तशब्दस्य सज्ञाशब्दत्वान्नावान्तरपदभेद इति भाव.। ऊकालोऽजित्यत्र ह्रस्वसज्ञावचनसामर्थ्याद्दीर्घप्लुतयोः पूर्वसज्ञा न भविष्यतीति समाधान समर्थयितु यावदज्ग्रहणं तावद्ध्रस्वग्रहणमिति सज्ञाया अभावे त्रिर्ह्रस्वप्रदेशेष्वेच इगिति षड्ग्रहणानि सज्ञाकरणे पुनरष्टावित्युक्तम्। प्रत्ययस्य लुगिति सूत्रे स एषोऽनन्यार्थः कसीयपरशव्ययोर्विशिष्टनिर्देश. कर्तव्यः प्रत्ययग्रहण वा कर्तव्यमित्युक्तम्। ए ओङित्यादौ वर्णैकदेशाना वर्णग्रहणेन ग्रहणपक्षे दीर्घे प्राप्तह्रस्वविध्यभावाय दीर्घादिति तुग्विधायक ज्ञापकमित्युक्तम्। अन्यथा ह्रस्वस्येत्यत्राच इत्येव सिद्धे ह्रस्वग्रहणसामर्थ्यादेव तुङ्नेति ज्ञापकपर्यन्तधावनासगतिः स्पष्टैवेति बोध्यमिति भावः। प्रायेणेत्युक्तस्य फलमाह—**अचीति**। **संमृद्येति**। आदेशेन तौ निवर्त्येत्यर्थः। ग्रहण नेति पाठः। तदेवोपपादयति—**तत्रेति**। अचीति सूत्र इत्यर्थः। तयोर्मध्य इति वाऽर्थः। ग्रहणे चेति पाठः। **इति तिस्र इति**। पदच्छेदाभिप्रायेण-

---

१ ह. °रौ द्वौ य°। २ घ. °व सिद्धौ तत्पर्क°।

तथा 'ओतः श्यनि' (७।३।७१) इति सूत्रे शितीति वक्तव्यं तत्राप्य- मप्यर्थः 'ष्ठिवुक्लमु' (७।३।७५) इति सूत्रे शितीति न कर्तव्यं भवतीति भाष्ये न केवलं मात्रालाघवं यावदयमप्यर्थ इति कैयटोक्तेः प्रायेणेति शिवम् ॥ १३२ ॥

इति श्रीमदुपाध्यायोपनामकशिवभट्टसुतसतीगर्भजनागेश- भट्टकृतः परिभाषेन्दुशेखरः समाप्तः।

---

दम्। अत एवोक्त विभक्तिनिर्देश इति। संहितायां तु सार्धमात्राद्वयमेवेति बोध्यम्।- तथेति। तथेति भाष्य इति कैयटोक्तेरित्यन्वयः। मप्यर्थः, प्रयोजनम्। यावदिति। पदगौरवलाघवमपीत्यर्थः। ऋलृक्सूत्रभाष्यं तु पदलाघवपक्षेणापि सुयोजमिति नात्र तदु- क्तम्। एवं ज्ञाजनोर्जेत्यादिसूत्रभाष्यमप्यत्र गमकं बोध्यमित्यन्यत्र विस्तर इति सर्वमनव- द्यमिति शिवम्॥ १३२॥

इति श्रीमत्पायगुण्डोपाख्यमहादेवसुतवेणीगर्भजवैद्यनाथभट्टकृतपरिभाषेन्दु- शेखरकाशिका परिपूर्णा।

# चसंज्ञकगदाटीकासमेतपरिभाषेन्दुशेखर-पुस्तकस्थपाठान्तराणि ।

—.*:—

| पृष्ठम् । | पङ्क्ति । | मूलम् । | पाठ । |
|---|---|---|---|
| १ | ९ | गङ्गाद्भु° | तमद्भु° |
| ३ | १४ | °तु सज्ञापकादिति | °तु सा ज्ञापकादिनेति |
| ३ | २८ | °व प्लु° | °व वैकल्पिकत्वात्प्लुता |
| ६ | १३ | °तिदेशस्य | °तिदेश्यस्य |
| १८ | १८ | तु त° | तु न त° |
| २४ | २१ | चिच्यतु° | विव्यतु° |
| २९ | १९ | °कत्व° | °क विधत्व° |
| ३० | १९ | °हे स्था° | °हेण स्था° |
| ३२ | २५ | °र्थे चाय° | °र्थेऽव्यय° |
| ३२ | २७ | °ति । गु° | °ति । प्रवृत्तिकगु° |
| ३४ | ११ | °प्रातिपदिककार्यव्य° | प्रागुक्तपदकार्यद्वयव्य° |
| ३५ | २१ | °यि । द्वि° | °यि । तेन न्यायेन द्वि° |
| ३९ | १८ | °योमेति° | °योगनिर्दिष्टेति° |
| ४० | २३ | °न तत्र कृतेड्ग्रहणाश्रयणेन | °न आर्धधातुकेति सूत्र इट्शब्दस्य करणेन |
| ४३ | १५ | चानणि | चाणि |
| ५७ | २८ | °त्वेन ततो भेद्भावाद्° | °त्वेनान्तोदात्ताभावाद्° |
| ८२ | २० | °त्र कृ° | °त्र गुणे कृ° |
| ८५ | २८ | °यन्तोपा° | °यन्तशब्दोपा° |
| १०३ | | °व ग° | °ववग° |
| ११२ | १८ | °न्तत° | °न्त इव त° |
| १२६ | २० | नाङ्ग | °नान्तरङ्ग° |
| १२७ | २९ | °त्राथ कु° | °त्राय् कु° |
| १४१ | २० | °तीति° स | °तीतिस्तत्र तेभ्य स |
| १५७ | १७ | °न तत्र तथो° | °न तत्तथो° |
| १६२ | ८ | °न्येति । अ° | °न्येति । प्रातिपदिकत्वात्मकसामान्यधर्मप्रकारोपस्थितिजनकशब्दोच्चारण इत्यर्थ । विशेषरूपेणेत्यस्य प्रातिपदिकत्वव्याप्यधर्मविशिष्टबोधकशब्दोच्चारण इत्यर्थ. । अ° |
| १७२ | २७ | °विधौ तथा स्या° | °विधावित्यर्थ स्या° |
| १७५ | २० | °था क विना° | °था कनिना° |

## २ घसंज्ञकगदाटीकासमेतपरिभाषेन्दुशेखरपुस्तकस्थपाठान्तराणि ।

| पृष्ठम् । | पङ्क्ति । | मूलम् । | पाठ । |
|---|---|---|---|
| १९७ | २९ | °दङ्गी° | °दनङ्गी° |
| १९८ | १० | तत्र स° | तत्रास° |
| २०० | १४ | °म् । त° | °म् । सानाभावात् । त° |
| २०७ | २६ | °म् १०५ प्राब° | °म् १०५ प्राधान्येन तात्पर्यविषयप्राब° |

## समाप्तानि पाठान्तराणि ।